

अध्याय ७

ऋग्वेद १०. १७-२८ के देवता

१ सरण्यु की कथा (क्रमशः)	२१६
२ सरण्यु की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १०. १७ के देवता	२१६
३ ऋग्वेद के १०. १८, अन्त्येष्टि सूक्त का विस्तृत विवरण	११७
४ ऐसे मन्त्र जिनमें किसी देवता का उल्लेख नहीं होता	२१९
५ ऋग्वेद १९. १९-२७ के देवता	२२०
६ ऋग्वेद १०. २७ (क्रमशः) । ऋग्वेद १०. २८ : इन्द्र और वसुक्त का संवाद	२२१
७ ऋग्वेद १०. ३०-३३ के देवता	२२२
८ अक्ष-सूक्त : १०. ३४ । ऋग्वेद १०. ३५-४४ के देवता	२२३
९ ऋग्वेद १०. ४५-४६ के देवता । घोषा की कथा	२२४
१० घोषा की कथा (शेषांश)	२२५
११ इन्द्र वैकुण्ठ की कथा	२२५
१२ इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (क्रमशः)	२२६
१३ इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (शेषांश) । अग्नि तथा उनके भ्राताओं की कथा : ऋग्वेद १०. ५१-५३	२२७
१४ अग्नि के पलायन की कथा (क्रमशः)	२२८
१५ 'पञ्चजना' का अर्थ	२२९
१६ अग्नि के पलायन की कथा (क्रमशः)	२२९
१७ अग्नि के पलायन की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १०. ५४-५७	२३०
१८ सुबन्धु की कथा ऋग्वेद १०. ५७-५९	२३१
१९ सुबन्धु की कथा (क्रमशः)	२३२
२० ऋग्वेद १०. ५९. ६० का विस्तृत विवरण	२३३
२१ सुबन्धु की कथा (शेषांश) ऋग्वेद १०. ६१-६६ के देवता	२३४
२२ ऋग्वेद १०. ६३-६६ का विवरण । ऋग्वेद १०. ६७-७२ के देवता	२३५
२३ ऋग्वेद १०. ७१ का विस्तृत विवरण	२३६
२४ ऋग्वेद १०. ७२-८४ के देवता । खिल	२३७
२५ सूर्या-सूक्त : ऋग्वेद १०. ८५ । उपसु के तीन रूप	२३८
२६ सूर्या-सूक्त का विवरण (क्रमशः)	२३९
२७ चन्द्रमसु की व्युत्पत्ति । ऋग्वेद १०. ८५, २०-३० का विषय-वस्तु	२४०
२८ ऋग्वेद १०. ८५, ३१-४३	२४१

वर्ग		
२९ सूर्य-सूक्त पर टिप्पणी (शेषांश)		२४२
३० ऋग्वेद १० ८९-९३ के देवता । पुनर्वसू और उर्वशी की कथा		२४३
३१ पुनर्वसू और उर्वशी की कथा (शेषांश)		२४४
३२ ऋग्वेद १० ९६ ९७ के देवता । देवापि की कथा		२४५

अध्याय ८

ऋग्वेद १० ९८-१२१ (१-२८) के देवता । निष्कर्ष (९९-१४०)		
१ देवापि की कथा (क्रमशः)		२४६
२ देवापि की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १० १०१ के देवता		२४७
३ ऋग्वेद १० १०२ १०३ के देवता । नकुल का विल		२४८
४ ऋग्वेद १० १०४-१०५ के देवता । भूनाश कादयप ऋग्वेद १० १०६		२५०
५ ऋग्वेद १० १०७ । सरमा और पणिया की कथा ऋग्वेद १० १०८		२५१
६ सरमा और पणियों की कथा (क्रमशः)		२५२
७ सरमा और पणियों की कथा (शेषांश)		२५३
८ ऋग्वेद १० १०९-१२० के देवता		२५४
९ ऋग्वेद १० १२१-१२९ के देवता । तीन खिल		२५४
१० ऋग्वेद १० १३०-१३७ के देवता		२५५
११ 'भूमि' खिल । ऋग्वेद १० १३८-१४२ के देवता		२५६
१२ ऋग्वेद १० १४३-१५४ के देवता । खिल भेषामुक्त		२५७
१३ ऋग्वेद १० १५५-१५९ के देवता		२५९
१४ ऋग्वेद १० १६०-१६४ के देवता । ऋषि कपोत नेऋतं		२५९
१५ ऋग्वेद १० १६५-१७४ के देवता		२६०
१६ ऋग्वेद १० १७५-१८१ के देवता		२६२
१७ ऋग्वेद १० १८२-१८४ के देवता		२६३
१८ नेत्रमेघ खिल । ऋग्वेद १० १८५-१८८ के देवता		२६४
१९ ऋग्वेद १० १८९ १९० । 'सज्जानम्' खिल		२६५
२० हो खिल । ऋग्वेद १० १९१ । महानाम्नी ऋचार्ये		२६६
२१ महानाम्नी ऋचार्ये सूक्त क्या होता है		२६७
२२ निविद् निद और छन्दो के देवता		२६९
२३ छन्दो, वेदो, वपटकार, स्वाहाकृतियों के देवता । स्वर		२७०
२४ स्वरा के देवता		२७१

वर्ग		पृष्ठ
२५ स्वरो के देवता (शेपाश) । प्रस्ताव, उद्गीय, उपद्रव, प्रतिहार, निधन, के देवता	२७२
२६ वैश्वदेव सूक्तों के विभिन्न नैपातिक देवता	२७३
२७ देवता सम्बन्धी विवरण तथा उनका ज्ञान	२७४
२८ देवताओं को जानने का महत्त्व	२७५

परिशिष्ट १ : बृहद्देवता में उद्धृत वैदिक प्रतीकों की सूची	२७७
परिशिष्ट २ : बृहद्देवता में उद्धृत आचार्यों के नाम	२८८
परिशिष्ट ३ : बृहद्देवता के अनुसार ऋग्वेद के देवताओं की सूची	२८६
परिशिष्ट ४ : बृहद्देवता में वर्णित कथाओं की सूची	३०२
परिशिष्ट ५ : अन्य ग्रन्थों में उद्धृत बृहद्देवता के स्थलों की सूची	३०४
परिशिष्ट ६ : अन्य ग्रन्थों के साथ बृहद्देवता का सम्बन्ध	३०७
परिशिष्ट ७ : संस्कृत शब्दों और नामों की अनुक्रमणिका	३२७



॥ शौनकीयबृहद्देवता ॥

॥ अथ शौनिकीयबृहद्देवताप्रारम्भ ॥

१-देवताओं को जानने का महत्त्व, वैदिकत्रयी

मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्यां समान्नायानुपूर्वशः ।

सृक्तर्गर्घ्यपादानाम् ऋग्भ्यो वक्ष्यामि दैवतम् ॥ १ ॥

मन्त्र दृष्टाओं को नमस्कार करते हुये, मैं परम्परागत पाठ^१ के सन्दर्भ में (प्रत्येक) ऋचा को उद्दिष्ट करके मूक्तों के देवताओं, ऋचाओं, अर्घ्यसूचाओं और मन्त्रों का वर्णन करूँगा ।

^१ ऋग्विधान १ १ १ म नमस्कृत्वा मन्त्रदृग्भ्य पाठ है ।

^२ समान्नायानुपूर्वशः ऋग्विधान १ १ २ में भी आता है ।

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः ।

दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति ॥ २ ॥

(सभी ऋचियों को) प्रत्येक मन्त्र के देवताओं का ठीक ठीक ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि जो मन्त्रों के देवता को जानते हैं वह उनके अर्थ को भी समझते हैं ।

तद्विज्ञानं तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु ।

विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च ॥ ३ ॥

ऋषियों पर मूलतः प्रकट होने के समय मन्त्रों में निहित अभिप्रायों^१ से परिचित तथा उनके और उनसे सम्बद्ध सस्कारों को ठीक ठीक ग्रहण करने की क्षमता रखनेवाले व्यक्ति ही मन्त्रों के विविध अभिप्रायों तथा कर्मों के सम्बन्ध में प्रामाणिक मत व्यक्त कर सकते हैं,

^१ तु० वा० 'एवम उच्चावचैर अभिप्रायैर ऋषीणा मन्त्रदृष्टयो भवन्ति', निरुक्त ७ ३ ।

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन दैवतम् ।

लौक्यानां वैदिकानां वा कर्मणां फलमश्नुते ॥ ४ ॥

क्योंकि अस्तित्व में मन्त्रों से सम्बन्धित देवताओं के लौकिक फल के विना लौकिक अथवा वैदिक सस्कारों का फल नहीं प्राप्त किया जा सकता ।

^१ सर्वानुक्रमणी के अनुसार भा २म प्रकार के ज्ञान के विना 'श्रोत' और 'स्मार्त' सन्धारों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता । तु० का० नीचे १ २१, तथा ऋग्विधान १ ३, १, गी ।

प्रथमो भजते त्वासां वर्गोऽग्निमिह दैवतम् ।

द्वितीयो वायुमिन्द्रं वा तृतीयः सूर्यमेव च ॥ ५ ॥

देवों का प्रथम वर्ग अग्नि देवता के, द्वितीय वायु अथवा इन्द्र के, और तृतीय सूर्य के अन्तर्गत आता है ।^१

^१ तु० की० नीचे १ ६९; निरुक्त ७. ५, सर्वानुक्रमणी, १. ८ ।

अर्थमिच्छन्नृपिद्वं यं यमाहायमस्त्विति ।

प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः ॥ ६ ॥

ऐसा कथन है कि किसी वस्तु की कामना करते हुये एक द्रष्टा जिस किसी देवता की स्तुति करता है वही उस मन्त्र का देवता होता है ।^१ किसी देवता की प्रमुख रूप से भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाला मन्त्र उसी देवता को सम्बोधित होता है ।

^१ तु० की० निरुक्त ७ १ ।

२-स्तुति और आशीस

स्तुतिस्तु नाम्ना रूपेण कर्मणा बान्धवेन च ।

स्वर्गायुर्धनपुत्रायैर् अर्थैराशीस्तु कथ्यते ॥ ७ ॥

स्तुति को नाम, रूप, कार्य, और बन्धुत्व के द्वारा व्यक्त किया जाता है, किन्तु आशीस को स्वर्ग, आयुश्य, धन और पुत्र के द्वारा ।^१

^१ तु० की० ऋग्विधान, १, ६

स्तुत्याशिषौ तु यास्वृक्षु दृश्येतेऽल्पास्तु ता इह ।

ताभ्यश्चाल्पतरास्ताः स्युः स्वर्गो याभिस्तु याच्यते ॥ ८ ॥

ऐसे मंत्र जिनमें आशीस और स्तुति दोनों हों (ऋग्वेद में) पाये तो जाते हैं किन्तु अत्यन्त कम । इनसे भी कम ऐसे मंत्रों की संख्या है जिनमें स्वर्गप्राप्ति की याचना की गयी हो ।

स्तुवन्तं वेद सर्वोऽयम् अर्थयत्यप मामिति ।

स्तांतीत्यर्थं ब्रुवन्तं च सार्थं मामेव पश्यति ॥ ९ ॥

हम सभी लोग अपनी स्तुति करनेवालों को जान लेते हैं, और उनके सम्बन्ध में यह भी अनुमान कर लेते हैं कि 'वह (याचना करनेवाला) व्यक्ति हमसे कुछ चाहता है, और अपने अभीष्ट की याचना करनेवाला व्यक्ति

भी हमारे मन्त्र में यह समझता है कि हम उसका अभीष्ट उसे प्रदान कर सकते हैं ।

स्तुवद्भिर्वा ब्रुवद्भिर्वा ऋपिभिस्तन्वदर्शिभिः ।

भवत्युभयमेवोक्तम् उभयं ह्यर्थतः समम् ॥१०॥

किन्तु तत्त्वदर्शी ऋषि चाहे आशीस करे अथवा किसी बात को कहे उसमे दोनों ही बातों की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि यह दोनों ('आशीस' और 'किसी बात का कथन') समान हैं ।

प्रत्यक्षं देवतानाम यस्मिन्मन्त्रेऽभिधीयते ।

तामेव देवतां विद्यान् मन्त्रे लक्षणसंपदा ॥ ११ ॥

यदि किसी मन्त्र में किसी देवता का नाम मध्यम पुरुष^१ में आता है तो भी उसी को उस मन्त्र का देवता समझना चाहिये क्योंकि ऐसे पदों का यही लक्षण होता है ।

^१ तु० मा० 'प्रत्यक्षकृता मन्त्रमपुन्ययोगान् स्वम् इति चैतेन सर्वनाम्ना', निरुक्त ७ २ ।

३-सूक्तों के विभिन्न प्रकार

तस्मात्तु देवतां नाम्ना मन्त्रे मन्त्रे प्रयोगवित् ।

बहुत्वमभिधानां च प्रयत्नेनोपलक्षयेत् ॥१२॥

अतः मन्त्रों के प्रयोग से परिचित व्यक्ति को चाहिये कि वह देवों के नाम और विविध उपाधियों की दृष्टि से मन्त्र में देवता को प्रयत्नपूर्वक देखे ।

सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते ।

दृश्यन्ते देवता यस्मिन् एरुस्मिन् बहुषु द्वयोः ॥१३॥

किसी ऋषि के सम्पूर्ण वाक्य को सूक्त कहते हैं जिसके एक, दो, अथवा अनेक मन्त्रों में देवता दिखाई देने हैं ।

देवतापार्थिछन्दस्तो वैविध्यं च प्रजायते ।

ऋपिसूक्तं तु यावन्ति सूक्तान्येकस्य वै स्तुतिः ॥ १४ ॥

श्रूयन्ते तानि सर्वाणि ऋपेः सूक्तं हि तस्य नत् ।

यावदर्थसमाप्तिः स्याद् अर्थसूक्तं वदन्ति तत् ॥ १५ ॥

देवता, आर्ष, त्रिपय-वस्तु और छन्द का दृष्टि से सूक्तों में विविधता उत्पन्न

वास्तव में लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि 'कितने कर्मों से नामों की उत्पत्ति होती है ?'

^१ यह व्याहृति 'लौक्यानाम्' के ही समान है; तु० की० 'लौक्यानां वैदिकानां वा', उपर १. ४।

नवभ्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये ।

मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते ॥ २४ ॥

व्युत्पत्ति-शास्त्रियों अथवा नैरुक्तों का कथन है कि नौ (कर्मों) से इनकी (नामों की) उत्पत्ति होती है; पौराणिक ऋषिगण, और मधुक, श्वेतकेतु तथा गालव आदि कवि भी ऐसा ही विचार रखते हैं।

निवासात्कर्मणो रूपान् मङ्गलाद्वाच आशिपः ।

यदृच्छयोपवसनात् तथामुप्यायणाच्च यत् ॥ २५ ॥

इन नौ के अन्तर्गत आशाम, कर्म, रूप, मङ्गलवा, वाच्, आशीस, स्वेच्छा, निकटवाम तथा उच्च-कुलव आते हैं।

चतुर्भ्य इति तत्राहूर् यास्कगार्ग्यरथीतराः ।

आशिपोऽथार्थवैरूप्याद् वाचः कर्मण एव च ॥ २६ ॥

इसी समस्या के सम्बन्ध में यास्क, गार्ग्य, और रथीतर ने चार आधार, अर्थात् आशीस, अर्थ-वैरूपता, वाच्, तथा कर्म, निश्चित किये हैं।

^१ यहाँ 'अर्थ-वैरूप्य' उपरोक्त २५वें के 'रूप' के समान है।

६-शौनक का दृष्टिकोण : सभी नाम कर्म से उत्पन्न होते हैं

मर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनकः ।

आशी रूपं च वाच्यं च सर्वं भवति कर्मतः ॥ २७ ॥

किन्तु शौनक का कथन है कि सभी नाम कर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं, अर्थात् आशीस, रूप, वाच्, आदि सभी की उत्पत्ति कर्म से ही होती है।

^१ यहाँ 'रूप' उपरोक्त २६वें श्लोक के 'अर्थ-वैरूप्य' के तथा 'वाच्य', 'वाच्' के समान है।

यदृच्छयोपवसनात् तथामुप्यायणाच्च यत् ।

तथा तदपि कर्मैव तच्छृणुष्वं च हेतवः ॥ २८ ॥

इसी प्रकार स्वेच्छा, निकटवास तथा उच्च-कुल से उत्पन्न नामों को

भी कर्म द्वारा ही उत्पन्न मानना चाहिये । हम स्थापना की आधार क्या है, उसे सुनें :

प्रजाः कर्मसमुत्था हि कर्मतः सत्त्वसंगतिः ।

क्वचित्संजायते सच्च निवासात्तत्प्रजायते ॥ २९ ॥

प्राणियों की उत्पत्ति कर्म से ही होती है, कर्म से सत्त्व-संगति विकसित होती है; और प्रत्येक व्यक्ति वास्तव में किसी न किसी स्थान पर ही अस्तित्व धारण करता है, अर्थात् वह अपने निवास में ही उत्पन्न होता है ।

यादृच्छिकं तु नामाभिधीयते यत्र कुत्रचित् ।

औपम्यादपि तद्विद्याद् भावस्यैवेह कस्यचित् ॥ ३० ॥

स्वच्छया रक्षणे गये नाम भी किसी न किसी स्थान पर ही रक्षणे जाते हैं । अतः लोगों को जानना चाहिये कि यहाँ यह भी अस्तित्व के किसी न किसी भाव की तुलना में ही निष्पन्न होते हैं,

नाकर्मकोऽस्ति भावो हि न नामास्ति निरर्थकम् ।

नान्यत्र भावान्नामानि तस्मात्सर्वाणि कर्मतः ॥ ३१ ॥

क्योंकि अस्तित्व का कोई भी रूप ऐसा नहीं जो कर्म से सम्बन्ध न हो, और न कोई नाम ही ऐसा है जो निरर्थक हो । नामों का अस्तित्व के अनिश्चित और कोई स्मृत है ही नहीं । इन प्रकार सभी नाम कर्म से ही निष्पन्न होते हैं ।

७-मांगलिकनाम; विभिन्नप्रकार के मंत्र

मङ्गलात्क्रियते यच्च नामोपवसनाच्च यत् ।

भवत्येव तु सा ह्याशीः स्वस्त्यादेर्मङ्गलाद्धि ॥ ३२ ॥

मांगलिकता की दृष्टि से निमित्त और निवास से सम्बन्धित नाम भी 'स्वस्ति' जैसे सौभाग्य मूलक शब्दों के आधार पर केवल आशीर्षक का रूप धारण कर लेते हैं ।

अपि कुत्सितनामायम् इह जीवेत्कथं चिरम् ।

उति क्रियन्ते नामानि भूतानां विदिनान्यपि ॥ ३३ ॥

प्राणियों के प्रसिद्ध नाम हम (मद्राष्ट्र के) सिद्धान्त पर ही निर्मित

होते हैं कि 'यह कुत्सित नामवाला व्यक्ति चिरकाल तक कैसे जीवित रह सकता है ?'^१

^१ अर्थात् साधारण नाम वा अमादलिकता की बचाने के सिद्धान्त पर ही निर्मित होते हैं। तु० की० निरुक्त १. २०, जहाँ यदि पशु (मृग) की उपाधि है तो उस दशा में 'कु-चर' शब्द के 'कु' की 'कुत्सित' के रूप में व्याख्या की जा सकती है; किन्तु यदि वह (कु-चर) किसी देवता के लिये व्यवहृत हुआ है तो ऐसा अर्थ नहीं होगा।

मन्त्रा नानाप्रकाराः स्युर् दृष्टा ये मन्त्रदर्शिभिः ।

स्तुत्या चैव विभूत्या च प्रभावाद्देवतात्मनः ॥३४॥

मन्त्र दृष्टाओं द्वारा दृष्ट मन्त्र, देवता के अपने प्रभाव से उत्पन्न विभूति तथा स्तुति की दृष्टि से नाना प्रकार के हो सकते हैं।

स्तुतिः प्रशंसा निन्दा च संशयः परिदेवना ।

स्पृहाशीः कथना याच्ना प्रश्नः प्रैपः प्रवल्हिका ॥३५॥

स्तुति (४७), प्रशंसा (४८), निन्दा (४९), संशय (५१), परिदेवन (५०), स्पृहा (५३), आशीम (५०), दम्भ (५१), याचना (४९), प्रश्न (५०), प्रैप (५७), प्रवल्हिका (५७),

^१ ३५-३९ श्लोकों के अर्थ में कोष्ठों में लिखी मन्त्रार्थों से प्रस्तुत अध्याय के उन श्लोकों का तात्पर्य है जिनमें इन स्वाहृतियों की व्याख्या की गई है। तु० की० निरुक्त ७. ३, जहाँ 'स्तुति', 'आशीम्', 'आचिख्याम', 'परिदेवना', 'निन्दा', और 'प्रश्ना', के उदाहरण दिये गये हैं।

नियोगश्चानुयोगश्च श्लाघा विलपितं च यत् ।

आचिख्यासाथ संलापः पवित्राख्यानमेव च ॥ ३६ ॥

नियोग (५१), अनुयोग (५२), श्लाघा (५३), विलाप (५३), वृत्तान्तकथन (५८), वार्तालाप (५२), पवित्र आख्यान (५३),

^१ इसके लिये ५३वें श्लोक में 'विलाप' का प्रयोग किया गया है।

^२ ५३वें श्लोक में केवल 'आख्यान' है।

८-विभिन्न प्रकार के मन्त्र तथा अभिव्यंजनात्मक पद्धतियाँ

आहनस्या नमस्कारः प्रतिराधस्तथैव च ।

संकल्पश्च प्रलापश्च प्रतिवाक्यं तथैव च ॥ ३७ ॥

प्रतिषेधोपदेशौ च प्रमादापह्नवौ च ह ।

उपप्रैषश्च यः प्रोक्तः संज्वरो यश्च विस्मयः ॥ ३८ ॥

आक्रोशोऽभिष्टवश्चैव क्षेपः शापस्तथैव च ।

उपसर्गो निपातश्च नाम चाख्यातमित्यपि ॥ ३९ ॥

भूतं भव्यं भविष्यं च पुमान् स्त्री च नपुंसकम् ।

एवंप्रकृतयो मन्त्राः सर्ववेदेषु सर्वशः ॥ ४० ॥

कामनात्मक श्लोक (५५), ममस्कार (५४) प्रतिषाध (५५), सकल्प (५७), प्रलाप (५५), उत्तर (५०), प्रतिषेध और उपदेश (५२) प्रमाद और अपह्नव (५६, ५७), तथा जिमे आमन्त्रण (५६), मन्त्राभ (५६) और विस्मय (५७) कहते हैं, आक्रोश (४८), अभिष्टव, 'आक्षेप (४९), शाप' (४९, ५८), उपसर्ग, निपात, सज्ञा, और क्रिया, भूत, वर्तमान, और भविष्य, पुद्गिद्ध, स्त्रीलिङ्ग, स्त्रीव, इत्यादि की प्रकृति से युक्त मन्त्र ही समस्त वेदों में सर्वत्र मिलते हैं ।

^१ हम काँ का नीचे शब्द उदाहरण नही मिलना जिसका कारण सम्भवतः व्यावहारिक दृष्टि से 'स्तुति' के साथ इमकी समानता हा है ।

^२ देखिये नावे (४७-५८) जहाँ व्याहृतियों वा इन समस्त पैमास पद्धतियों के ('अभिष्टव' के अनिर्गुण) उदाहरण दिये गये ह ।

^३ व्याकरण सम्बन्धी इन चार कोटियों की नीचे (१ ४०-४५ और २ ८९-९८) विवेचना की गइ है ।

^४ 'भव्य' का यहाँ 'वर्तमान' तथा १ ६१ में 'भविष्य' अर्थ है

^५ तु० की० नीचे २ ९६ ।

वाक्यार्थदर्शनार्थीया ऋन्तोऽर्धर्चाः पदानि च ।

ब्राह्मणे चाथ कल्पे च निगद्यन्नेऽत्र कानिचित् ॥ ४१ ॥

ऋचाओं, अर्धऋचाओं और पदों का प्रयोजन अपने वाक्यार्थ को व्यक्त करना ही होता है, साथ ही ब्राह्मण और कल्प की भी कुछ ऋचायें यहाँ उद्धृत हैं ।

९-संज्ञा और क्रिया की परिभाषा

शब्देनोच्चरितेनेह येन द्रव्यं प्रतीयते ।

तदक्षरविधौ युक्तं नामेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४२ ॥

कोई भी उच्चरित शब्द, जिससे किसी द्रव्य या वस्तु का बोध हो, जब उच्चारणानुकूल अक्षर-विन्यास से युक्त होता है तो उसे मनीषिगण 'संज्ञा' कहते हैं।

अष्टौ यत्र प्रयुज्यन्ते नानार्थेषु विभक्तयः ।

तन्नाम कवयः प्राहुर् भेदे वचनलिङ्गयोः ॥ ४३ ॥

जिसमें विभिन्न अर्थों में आठ विभक्तियों का प्रयोग होता है उसे कविगण 'संज्ञा' कहते हैं, और उसमें लिङ्ग तथा वचन का भी भेद होता है।

क्रियासु बह्वीष्यभिसंश्रितो यः पूर्वापरीभूत इहैक एव ।

क्रियाभिनिर्वृत्तिवशेन सिद्ध आख्यातशब्देन तमर्थमाहुः ॥

अनेक क्रियाओं से सम्बद्ध पूर्व अथवा अपर रूप धारण करने पर भी,^१ एक होते हुये यदि कोई शब्द क्रिया की निर्वृत्ति द्वारा सिद्ध होता है तो उसे 'क्रिया' (आख्यात) शब्द से व्यक्त किया जाता है।

^१ अर्थात् वह जो कालक्रम को व्यक्त करता है : यह व्याहृति निरुक्त १. १ से गृहीत है।

क्रियाभिनिर्वृत्तिवशोपजातः

कृदन्तशब्दाभिहितो यदा स्यात् ।

संख्याविभक्त्यव्ययलिङ्गयुक्तो

भावस्तदा द्रव्यमिवोपलक्ष्यः ॥ ४५ ॥

जो भाव किसी क्रिया की निर्वृत्ति से उत्पन्न हो, और जो कृदन्त शब्द से व्यक्त हो तथा जो संख्या, विभक्ति (अथवा) अव्यय और लिङ्ग से संयुक्त हो, उसे 'द्रव्य' मानना चाहिये।

१०-विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के उदाहरण

यथा नानाविधैः शब्दैर् अपश्यन्नृपयः पुरा ।

त्रिविधानीह वाक्यानि तान्यनुक्रमतः शृणु ॥ ४६ ॥

अब क्रम से यह सुनिये कि पूर्वकाल में ऋषियों ने विभिन्न प्रकार के शब्दों से किस प्रकार उनके विभिन्न वाक्यों को देखा था।

रूपादिभि स्तुतिः प्रोक्ता आशीः स्वर्गादिभिस्तथा ।

यानि वाक्यान्पतोऽन्यानि तान्यपि स्थरनेकधा ॥

सुन्दर रूपादि व्यक्त करनेवाले वाक्य स्तुति कहलाते हैं, स्वर्गादि व्यक्त करनेवाले आशीस कहलाते हैं, इनसे अन्य जो वाक्य हैं वे भा अनेक प्रकार के हो सकते हैं ।

मन्त्रे प्रशंसा भोजस्य चित्र इत् सोभरे स्तुतिः ।

आक्रोशार्थास्तु हृश्यन्ते माता चेत्यभिमेथति ॥ ४८ ॥

‘चित्र इत्’ (ऋग्वे० ८. २१, १८) मन्त्र में सोभरि द्वारा उदार दाता की स्तुति एक प्रशंसा है । आक्रोश की अभिव्यक्ति करनेवाले मन्त्र भी दृष्टिगत होते हैं, जैसे ‘माता च’^१ ।

^१ वास० २३ २४, २५ तम० ७ ४ १९ ३ मैस० ३ १३ १ शतना० १२ ५, २, ५ तैमा० ३ ९, ७ ४, आश्रौ० १० ८ १०, शाश्रौ० १६ ४ ? ।

ऋद्ध् मोघमन्नं निन्दा च शापो यो मेत्यृगेव तु ।

याच्ना यदिन्द्र चित्रेति क्षेपोऽभीदमिति त्वृचि ॥ ४९ ॥

‘मोघम् अन्नम्’ (ऋग्वे० १० ११७, ६) ऋचा में निन्दा का, तथा ‘यो मा’ (ऋग्वे० ७ १०४, १६) में शाप का भाव निहित है । इसी प्रकार ‘यद् इन्द्र चित्र’ (ऋग्वे० ५ ३९, १) में याचना का और ‘अमीदम्’ (ऋग्वे० १० ४८, ७) में आक्षेप का भाव है ।

आशीस्तु वात आ वातु दण्डेति परिदेवना ।

प्रक्षश्च प्रतिवाक्यं च पृष्ठामि त्वेत्यूचौ पृथक् ॥ ५० ॥

‘वात आ वातु’ (ऋग्वे० १० १८६, १) आशीस, और ‘दण्डा’ (ऋग्वे० ७. ३३, ६) परिदेवन है, जब कि ‘पृष्ठामि त्वा’ (ऋग्वे० १ १६४, ३४ ३५) से आरम्भ होनेवाली दो ऋचाओं में क्रमशः प्रक्ष और उत्तर है ।

संशयोऽधः स्विदासीच्च कथना स्यादहं मनुः ।

इमं नो यज्मिन्त्यस्यां नियोगः पाद उच्यते ॥ ५१ ॥

‘अध म्विद् आसीत्’ (ऋग्वे० १० १२९, ५) में संशय और ‘अहं मनु’ (ऋग्वे० ४ २६, १) में दम्भ का भाव है । ‘इमं नो यज्म’ (ऋग्वे० ३ २१, १) मन्त्र के प्रथम पाद में नियोग का कथन है ।

इह ब्रवीत्वनुयोगः संलाप ऋगुपोप मे ।

प्रतिपेधोपदेशौ तु अक्षैर्मैत्यक्षसंस्तुतौ ॥ ५२ ॥

'इह मवीनु' (ऋग्वे० १. १६४, ७) में अनुयोग और 'उपोप मे' (ऋग्वे० १. १२५, ७) में वार्तालाप है, किन्तु पासे^१ के खेल की स्तुति करनेवाले 'अर्चर् मा' (ऋग्वे० १०. ३४, १३) में प्रतिषेध और उपदेश दोनों हैं ।

^१ अर्थात् अथ सूक्त १०. ३४ ।

आख्यानं तु हये जाये विलापः स्यान्नदस्य मा ।

अवीरामात्मनः श्लाघा सुदेव इति तु स्पृहा ॥ ५३ ॥

'हये जाये' (ऋग्वे० १० ९५, १) आख्यान' और 'नदस्य मा' (ऋग्वे० १. १७९, ४) विलाप^१ है। 'अवीराम्' (ऋग्वे० १०. ८६, ९) में आत्मश्लाघा है जब कि 'सुदेव'^२ (ऋग्वे० १०. ९५, १४) में स्पृहा की अभिव्यक्ति है ।

^१ वहाँ 'आख्यान' उपरोक्त ३६वें श्लोक के 'पवित्राख्यान' के समान है ।

^२ वहाँ 'विलाप' उपरोक्त ३६वें श्लोक के 'विलपिनम्' के समान है । निरुक्त ५. २ में भी ऋग्वेद (१. १७२, ४) के सन्दर्भ में 'विलपितम्' का ही प्रयोग किया गया है ।

^३ निरुक्त ७. ३ में इस स्थल को 'परिदेवना' कहा गया है ।

नमस्कारः शुनःशेषे नमस्ते अस्तु विद्युते ।

संकल्पयन्निदं तुल्योऽहं स्यामिति यदुच्यते ॥ ५४ ॥

शुनःशेष मे सम्बद्ध मन्त्र 'नमस् ते अस्तु विद्युते' (अथे० १. १३, १) में नमस्कार व्यक्त किया गया है, किन्तु जब व्यक्ति शब्दों से व्यक्त भाव द्वारा संकल्प कर लेता है जैसे 'इदं तुल्योऽहं स्याम्',^२ तो,

^१ तु० की० नीचे ८. ४४ ।

^२ 'संकल्प' का उदाहरण दे सकने में असमर्थ होने के कारण यहाँ देखकर केवल उमकी परिभाषा मात्र से सन्तोष कर लेना है ।

संकल्पस्तु यदिन्द्राहं प्रलापस्त्वैतशस्य यः ।

महानग्न्याहनस्या स्यात् प्रतिराधो भुगित्यपि ॥ ५५ ॥

उसे 'संकल्प' कहते हैं । 'यद् इन्द्राहम्' (ऋग्वे० ८. १४, १; अथे० २०. २७, १) ऐतश' के प्रलाप का उदाहरण है, जब कि 'महानग्नी' (अथे० २०. १३६, ५) एक कामनाभिव्यंजक मन्त्र है । पुनश्च, 'भुक्' (अथे० २०. १३५, १-३)^३ में प्रतिराध व्यक्त किया गया है ।

^१ देखिये ऐतरेय ब्राह्मण ६. ३३, १ और इस पर सायण भाष्य । हाँग : ऐतरेय ब्राह्मण, भाग २, पृ० ४३४ भी देखिये ।

^२ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ६. ३३. १९; हाँग उ० पु०, पृ० ४३५ ।

प्रमादस्त्वेप हन्ताहं न स स्व इत्यपह्वः ।

इन्द्राकुत्सेत्युपप्रैपो न विजानामि संज्वरः ॥ ५६ ॥

‘हन्ताहम्’ (ऋग्वे० १०. ११९, ९) मन्त्र में प्रमाद, ‘न स स्व’ (ऋग्वे० ७. ८६, ६) में अपह्व, ‘इन्द्राकुत्सा’ (ऋग्वे० ५. ३१, ९) में आमन्त्रण, और ‘न वि जानामि’ (ऋग्वे० १. १६४, ३७) में सत्तोम है ।

होता यक्षदिति प्रैपः को अद्येति तु विस्मयः ।

जामयेऽपह्वो नैपा विततादिः प्रवल्हिका ॥ ५७ ॥

‘होता यक्षत’ (ऋग्वे० १. १३९, १०) में प्रैप, ‘को अद्य’ (ऋग्वे० १. ८४, १६, अथवा ४. २५, १) में विस्मय, ‘न जामये’ (ऋग्वे० ३. ३१, २)^१ में अपह्व, और ‘वितता’ (अवे० २०. १३३, १-६)^२ में प्रवल्हिका है ।

^१ जु० का० नीचे ४ १११ । यदि यहाँ पाठ (जामयेऽपह्वो न) शुद्ध है तो ‘न’ की स्थिति महत्त्वपूर्ण है, और इस प्रकार हमें ‘अपह्व’ के लो दो उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु ‘अभिष्टव’ के एक भा नहा । ऊपर १ ३९ पर टिप्पणा देखिये ।

^२ ‘विततादि’ की सन्धि इस पंक्ति में एक द्वितीय अभिव्यक्तिता ला देती है ।

न मृत्युरासीदित्येताम् आचिख्यासां प्रचक्षते ।

अभिशापोऽप्रजाः सन्तु भद्रमाशीस्तु गोतमे ॥ ५८ ॥

‘न मृत्युर् आसीत्’ (ऋग्वे० १०. १२९, २) से आरम्भ होनेवाली ऋचा को वृत्तान्तकथन कहा गया है^१, और ‘अप्रजा सन्तु’ (ऋग्वे० १. २५, ५) एक शाप^२ है; जब कि ‘भद्रम्’ (ऋग्वे० १. ८९, ८) में गोतम^३ का आशीस्^४ है ।

^१ निरुक्त ७ ३ में भी इस ऋचा का वर्णन करने के लिये इसी शब्द का प्रयोग किया गया है ।

^२ इसका दो बार उदाहरण दिया गया है एक बार ४९वें श्लोक में (शाप द्वारा) और दूसरी बार प्रस्तुत श्लोक में (अभिशाप द्वारा) ।

^३ ऋग्वेद १ ८९ का प्रणेता ।

^४ यह ‘आशित्’ (२१) का दूसरा उदाहरण है ।

बहूप्येवंप्रकारं तु शक्यं द्रष्टुमितीदृशम् ।

वक्तुं प्रयोगतश्चैषाम् ऋक्सूक्तार्थचसंश्रितम् ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण भी मिल सकते हैं और किसी भी

ऋचा, सूक्त, अथवा अर्धऋचा में निहित अभिप्रायों को उनके प्रयोग के आधार पर उक्त प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

एते तु मन्त्रवाक्यार्था देवतां सूक्तभागिनीम् ।

संश्रयन्ते यथान्यायं स्तुतिस्त्वत्रानुमानिकी ॥ ६० ॥

मन्त्रों के यह वाक्यार्थ अपने सूक्त के देवता के साथ उपयुक्तः सम्बद्ध होते हैं, किन्तु यहाँ उनकी स्तुति अनुमान का विषय है।

११-समस्त स्थावर जङ्गम के स्रोत के रूप में सूर्य और प्रजापति

भवद्भूतस्य भव्यस्य जङ्गमस्थावरस्य च ।

अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥ ६१ ॥

कुछ लोग, जो कुछ था, है, अथवा होगा, और जो कुछ स्थावर अथवा जङ्गम है, उस सबके प्रभव तथा प्रलय का सूर्य को ही कारण मानते हैं।

^१ ऊपर (१. ४०) 'भव्य' का 'वर्तमान' के आशय में प्रयोग हुआ है।

असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः ।

यदक्षरं च वाच्यं च यथैतद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

जो कुछ है (सत्) अथवा नहीं है (असत्) उन दोनों का वास्तविक स्रोत वह प्रजापति ही है, जिसे शाश्वत ब्रह्म के समान अनश्वर (अक्षरम्) तथा वाच्य कहते हैं।

कृत्वैष हि त्रिधात्मानम् एषु लोकेषु तिष्ठति ।

देवान्यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ॥ ६३ ॥

वह (सूर्य) अपने को तीन भागों में विभक्त करके इन लोकों में प्रतिष्ठित है, और वही अन्य सब देवताओं को यथाक्रम अपनी रश्मियों में निविष्ट रखता है।

एतद्भूतेषु लोकेषु अग्निभूतं स्थितं त्रिधा ।

ऋपयो गीर्भिरर्चन्ति व्यञ्जितं नामभिल्लिभिः ॥ ६४ ॥

जो अग्नि के रूप में भूतों में और लोकों में त्रिधात्मक रूप से स्थित है, तीन नामों से व्यक्त होने वाले के रूप में उसी की ऋषिगण अपने गायनों द्वारा अर्चना करते हैं।

तिष्ठत्येष हि भूतानां जठरे जठरे ज्वलन् ।

त्रिस्थानं चैनमर्चन्ति होत्रायां वृक्तवर्हिषः ॥ ६५ ॥

यत वही प्रथम प्राणी के अन्तर में ज्वलन्त रूप से स्थित है, अतः यज्ञीय उशामन फेंका कर 'तोन स्थानोंवाले' के रूप में होतागण उसकी अर्चना करते हैं ।

१२-अग्नि के तीन रूप

इहैष पवमानोऽग्निर् मध्यमोऽग्निर्यनस्पतिः ।

अमुष्मिन्नेव विप्रस्तु लोकेऽग्निः शुचिरुच्यते ॥ ६६ ॥

पुराहितगण उसे यहाँ (पृथ्वी पर) 'अग्नि पवमान', मध्य क्षेत्र में 'अग्नि यनस्पति',^१ किन्तु दिव्यलोक में 'अग्नि शुचि'^२ के नाम से पुकारते हैं ।

^१ अथर्ववेद, १. २४. २, में अग्नि को 'यनस्पति' कहा गया है ।

^२ नक्षि त्र्य महिना २. २, ४, २, तथा पुराणों में अग्नि के तीन नाम 'पवमान', 'शुचि', और 'पावक' हैं । तु० का० नाचे (७. ६१) अग्नि के भ्राताओं के नाम ।

इहाग्निभूतस्त्वृषिभिर् लोके स्तुतिभिरीळितः ।

जातवेदा स्तुतो मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि ॥ ६७ ॥

ऋषिगण उसका इम लोक में 'अग्नि' के रूप में, मध्य लोक में 'जातवेदस्' के रूप में, तथा दिव्य लोक में 'वैश्वानर' के रूप में स्तवन करते हैं ।^३

^३ अग्नि, जातवेदस्, और वैश्वानर, वा यया का नदण्डन के द्रव्यकाण्ड में सर्वप्रथम उल्लेख है । यास्क (निरुक्त ७. २३) का कथन है कि प्राचीन याज्ञिरों ने 'अग्नि वैश्वानर' को आदित्य माना था, जब कि शाङ्गुण के मत से पार्थिव अग्नि ही 'अग्नि वैश्वानर' है । इम द्वितीय दृष्टिकोण से यास्क (निरुक्त ७. ३१) बहुत अज्ञो तत्र महमत हैं । तु० का० नाचे २. १७ ।

रसान् रश्मिभिरादाय वायुनायं गतः सह ।

वर्षत्येष च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मृतः ॥ ६८ ॥

यतः अपनी रश्मियों से जलों को ग्रहण करके वायु के साथ वह इस लोक पर वर्षा करता है, अतः उसे इन्द्र कहते हैं ।

अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च ।

सूर्यो दिवीति विज्ञेयास् तिस्र एवेह देवताः ॥ ६९ ॥

इस लोक में अग्नि, मध्य लोक में इन्द्र और वायु, तथा दिव्य लोक में सूर्य को ही यहाँ तीन देवता मानना चाहिये।^१

^१ तु० का० 'त्रिंश एव देवता', निरुक्त ७ ५, और पद्मपुराण के भाष्य सहित सर्वानुक्रमणा २ ८।

एतासांमेव माहात्म्यान् नामान्यत्वं विधीयते ।

तत्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ ७० ॥

इन देवों की महानता^१ के कारण इनके लिये विभिन्न नामों का व्यवहार किया गया है, और इनके क्षेत्रों के विभाजन के अनुसार ही इनके नामों में विविधता दिखाई पड़ती है।

^१ तु० का०, 'नामा माहात्म्याद् एकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति', निरुक्त ७ ५।

१३-त्रयी और आत्मन् : वाच् के तीन रूप

तासामियं विभूतिर्हि नामानि यदनेकशः ।

आहुस्तासां तु मन्त्रेषु कवयोऽन्योन्ययोनिताम् ॥ ७१ ॥

यह इनकी विभूति का ही परिणाम है कि इनको अनेक नाम दिये गये हैं। फिर भी कवियों ने इन देवों की उत्पत्ति को मंत्रों में अन्योन्याश्रित माना है।^१

^१ निरुक्त ७ ४, में देवों को 'दत्तरेतरजन्मान' कहा गया है।

यथास्थानं प्रदिष्टास्ता नामान्यत्वेन देवताः ।

तद्भक्तास्तत्प्रधानाश्च केचिदेवं वदन्ति ताः ॥ ७२ ॥

यह देवता अपने नाम-भेद के कारण ही यथास्थान प्रतिष्ठित हैं। कुछ लोगों का ऐसा कथन है कि जो जिस देवता का भक्त होता है वह उसे ही उस स्थान पर प्रधान मानता है।

पृथक्पुरस्ताद्ये तूक्ता लोकाधिपतयस्त्रयः ।

तेषामात्मैव तत्सर्वं यद्यद्भक्तिः प्रकीर्त्यते ॥ ७३ ॥

पृथक्-पृथक् रूप से उपरोक्त तीन लोकाधिपतियों का जिसे गुण (भक्ति) कहते हैं, वही उनका सर्वस्व^१ आत्मा है।

^१ तु० का० 'आत्मा सर्वं देवस्य', निरुक्त ७. ४।

तेजस्त्वेवायुधं प्राहूर् वाहनं चैव यस्य यत् ।

ऽमामैन्द्रो च दिव्यां च वाचमेवं पृथक् स्तुताम् ॥७४॥

अपियों वा कथन है कि तेज ही किसी देवता का आयुध होता है ।^१

इसी प्रकार उनका कथन है कि इस (पार्थिव), ऐन्द्री (अन्तरिक्ष), तथा दिव्य लोक रूपों में वाच् की ही इन देवताओं के वाहन के रूप में स्तुति करनी चाहिये ।

^१ देविरे 'आत्मा एव एषा एव भवति, आ मा एध, आत्मा 'ायुधम्', निरुक्त
७ ४ त० ३० नाचे ३ ८० ४ १६३ ।

बहुदेवता स्तुतयो द्विवत्संस्तुतयश्च याः ।

प्राधान्यमेव सर्वासु पतीनाञ्च तास्वपि ॥ ७५ ॥

अनेक देवताओं को सम्बोधित स्तुतियों में और उन सम्मिलित स्तुतियों में भी जो द्विवाचक होती हैं, इन्हीं तीन लोकाधिपतियों की प्रधानता रहती है ।

१४-सूक्त का प्रधान देवता

स्थानं नामानि भक्तीश्च देवताया स्तुतौ स्तुतौ ।

संपादयन्नुपेक्षेत यां कांचिदिह संपदम् ॥७६॥

प्रदेश स्तुति में किसी देवता के स्थान, नाम, और गुण (भक्ति) को व्यक्त करने के लिये, व्यक्ति को यहाँ प्रत्येक सम्भव माध्यमों का आश्रय लेना चाहिये ।

अग्निभक्तिस्तुतान्सर्वान् अग्नावेव समापयेत् ।

यदिन्द्रभक्ति तच्चेन्द्रे सूर्ये सूर्यानुगं च यत् ॥७७॥

उन समस्त देवताओं को, जिनकी अग्नि के गुणों के साथ स्तुति की गई है, अग्नि में ही निहित मानना चाहिये । इसी प्रकार जिनकी इन्द्र के गुणों के साथ स्तुति हो उनको इन्द्र में, तथा जो सूर्य के साथ सम्बद्ध हों उन्हें सूर्य में, निहित मानना चाहिये ।

निष्प्यते हविर्यस्यै सूक्तं च भजते च या ।

सैव तत्र प्रधानं स्यान् न निपातेन या स्तुता ॥ ७८ ॥

जिन देवता को जहाँ हवि समर्पित की गई हो, और उसे कोई सूक्त

समर्पित हो^१, वहाँ स्तुति के लिये वही प्रधान होता है, वह देवता नहीं जिसकी स्तुति केवल नैपतिक हो ।

^१ तु० वा० 'यस्तु मूक्तमज्ञैः, यस्मै हविर् निम्नते', निरुक्त ७ १८ ।

इति त्रयाणामेतेषाम् उक्तः सामासिको विधिः ।

समाप्तेनैवमुक्तस्तु विस्तरेण त्वनुक्रमः ॥७९॥

इस प्रकार इन तीनों प्रमुख देवताओं से सम्बद्ध नियमों का संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया । किन्तु इस संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् देवों की विस्तृत नाडिका इस प्रकार प्रस्तुत है ।

अवश्यं वेदितव्यो हि नाम्नां सर्वस्व विस्तरः ।

न हि नामान्यविज्ञाय मन्त्राः शक्या हि वेदितुम् ॥८०॥

हमें प्रत्येक देवता के नाम के विस्तृत विवरण से परिचित होना ही चाहिये, अन्यथा नामों के ज्ञान के बिना मंत्रों को समझना असम्भव होगा;

१५-देवों के नामों की गणना

सन्यान्यमूर्तान्यपि च देवतावन्महर्षयः ।

तुष्टुयुक्त्तपयः शक्त्या तासु तासु स्तुतिष्विह ॥ ८१ ॥

क्योंकि महान ऋषियों अथवा द्रष्टाओं ने भी अपनी विभिन्न स्तुतियों में यथाशक्ति अमूर्त पदार्थों तक को देववत् मान कर उनका स्तवन किया है ।

यैस्त्वग्निरिन्द्रः सोमश्च वायुः सूर्यो बृहस्पतिः ।

चन्द्रोऽथ विष्णुः पर्जन्यः पूषा चाप्यृभवोऽश्विनौ ॥८२॥

ऋषियों ने, अग्नि, इन्द्र, सोम, वायु, सूर्य, बृहस्पति, चन्द्रमा, विष्णु, पर्जन्य, पूषा, ऋभुओं, अश्विनौ,

रोदसी मरुतो देवाः पृथिव्यापः प्रजापतिः ।

देवौ च मित्रावरुणौ पृथक् सह च तावुभौ ॥ ८३ ॥

दोनों लोकों, दिव्य महर्षी, पृथिवी, जलों, प्रजापति, एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् दिव्य मित्र-वरुण,

विश्वे च देवाः सविता त्वष्टा वै रूपकृन्मतः ।

अश्वोऽन्नमृत्विजो वज्रो ग्रावणो रथसंयताः ॥८४॥

स्तुताः पृथक् पृथक् स्वैः स्वैः सूक्तैर्ऋग्भिश्च नामभिः ।

स्तुतौ स्तुतौ प्रवक्ष्यामि तानि तेषामनुक्रमात् ॥८५॥

विश्वेदेव, सवितृ, रूपों के निर्माता स्वष्टा, अश्व, अन्न, ऋग्विज, वज्र, दधाने के पत्थर, तथा इन सभी देवनाओं की उनके रथों सहित, अपने विभिन्न सूक्तों और ऋचाओं में जिन नामों से पृथक्-पृथक् स्तुति की है, उन नामों का मैं प्रत्येक स्तुति में यहाँ यथाक्रम उल्लेख करूँगा ।

१६-अग्नि, इन्द्र-वायु, और सूर्य को समर्पित सूक्तों की विशेषता

व्यवस्येन्मन्त्रमाग्नेयं लिङ्गैरग्नेश्च लक्षितम् ।

हविष्पङ्क्तिप्रधानैश्च नामाह्वानैश्च केवलैः ॥ ८६ ॥

किसी मन्त्र को उसी समय अग्नि का आवाहन करनेवाला समझना चाहिये जब उसमें अग्नि के विशिष्ट लक्षण उपलब्ध हों, और इन लक्षणों के अन्तर्गत एक ओर तो प्रमुखतः पाँच प्रकार की हविष्पक्तियाँ आती हैं और दूसरी ओर केवल नाम से आवाहन ।

ऐन्द्रस्तु मन्त्रो वायव्यैर् लिङ्गैरैन्द्रैश्च लक्ष्यते ।

नामधेयैश्च वज्रस्य बलकृत्या^१ बलेन च ॥ ८७ ॥

इन्द्र का आवाहन करनेवाले मन्त्रों को वायु तथा इन्द्र दोनों के ही विशिष्ट लक्षणों, और वज्र, महान कार्यों, तथा बल के उल्लेख द्वारा, जाना जा सकता है ।

^१ निरुक्त ७ १०, में यही व्याहृति (बलकृति) इन्द्र के लिये व्यवहृत हुई है ।

सौर्यस्तु लिङ्गैः सूर्यस्य गुणैः सर्वैश्च तैजसैः ।

नामधेयैश्च चन्द्रस्य सूक्तां च भजनेऽत्र यैः ॥ ८८ ॥

सूर्य का आवाहन करनेवाले मन्त्र की विशेषता सूर्य के विशिष्ट गुणों के वर्णन के साथ-साथ तेज से सम्बद्ध समस्त गुण, तथा चन्द्रमा के उन नामों का उल्लेख है जिनसे वह सूक्त में व्यक्त होता है ।

एतासां देवतानां तु नामधेयानुकीर्तनैः ।

यस्य यस्येह यावन्ति न व्यवस्यन्त्यतोऽन्यथा ॥८९॥

किसी द्रष्टा के उन समस्त सूक्तों का, जिनका इन देवों के नामों के आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता, अन्य आधारों पर निर्णय करना चाहिये ।

अयं प्रयोगस्त्वेतेषां ज्योतिषां त्रिषु वर्तताम् ।

लोकेषु मन्त्रविद्विद्भान् प्रयोगे नावसीदति ॥ ९० ॥

इन तीन ज्योतिषों^१ का क्रमानुसार तीनों लोकों में यह प्रयोग विदित हो : (इस ज्ञान के फलस्वरूप) मन्त्रों का ज्ञान रखनेवाले विद्वान इनका लोकानुसार प्रयोग करने में कभी असफल नहीं होते ।

^१ तु० की० नीचे १. ९७, और निरुक्त ७. २० ।

१७-तीन अग्नियाँ

नीयतेऽयं नृभिर्यस्मान् नयत्यस्मादसौ च तम् ।

तेनेमां चक्रतुः कर्म सनामानौ पृथक् पृथक् ॥ ९१ ॥

यतः इस (पार्थिव) अग्नि को मनुष्य अग्रसर करते हैं, और वह (दिव्य) अग्नि इसको इस संसार से अग्रसर करता है, अतः नामों की समानता होते हुये भी यह दोनों (अग्नि) अपने-अपने कर्मों पर पृथक् पृथक् अग्रसर रहते हैं ।

^१ यहाँ व्युत्पत्तिशास्त्रान् दृष्टि में 'नी' धातु नाम के द्वितीय अदा से नम्बड़ है (तु० की० 'नी परः', निरुक्त ७. १४) ।

यद्विद्यते हि जातः सञ् जातैर्यद्वात्र विद्यते ।

तेनेमौ तुल्यनामानौ उभौ लोकां समाप्नुतः ॥ ९२ ॥

यतः वह जन्म^१ लेने पर ही जाना जाता है, अथवा वह यहाँ पर जीवों द्वारा जाना जाता है, अतः यह दोनों, समान नाम (अर्थात् 'जातवेदस') होते हुये भी, दोनों लोकों को^२ पृथक् पृथक् व्याप्त करते हैं ।

^१ यह व्युत्पत्ति निरुक्त ७. १९ में ङी हुं पाँच में से प्रथम से भिन्न है, किन्तु द्वितीय, आश्रय में यारु ('जगामि वेद तानि वेदं विदुः') के द्वितीय के समान है । वास्तु के साथ सहस्रान् अन्य व्युत्पत्तियों का जहंख नीचे २. ३०. ११, में मिलेगा ।

^२ अर्थात् पार्थिव और दिव्य ।

विसृजन्नयमेतेषां भ्राजते व्योम्नि मध्यमः ।

निपातमात्रे कथ्यन्ते तथाग्नेयानि कानिचित् ॥ ९३ ॥

यतः यह (अग्नि) आकाश के मध्य में स्थित होकर प्रकाशित होते हुये वर्षा करता है, अतः यहाँ इसका कवल नैपातिक उल्लेख है । इसी प्रकार अन्य आग्नेय मंत्रों में भी अग्नि के नैपातिक नाम ही सरत है ।

^१ तु० की० नीचे २. ५९ ; 'विसृजन्न अदः' और ऊपर १. ६८ में 'वर्षति अं ।

अचिंभिः कश्ययं त्वग्निर् विद्युद्भिश्चैव मध्यमः ।

असौ तु रश्मिभिः केशी तेनैनानाह केशिनः ॥ १४ ॥

यह (पार्थिव) अग्नि ज्वालाओं रूपी, और मध्यम स्थित विद्युत्-रूपी केशी से युक्त है । जय कि वह (दिव्य) अग्नि रश्मियों के केशों से युक्त है अतः कविगण उसे 'केशिन' नाम से पुकारते हैं ।^१

^१ तु० का० निरुक्त १० २५ २७, और नाच ० ६२५

एतेषां तु पृथक्त्वेन त्रयाणां केशिनामिह ।

संलक्ष्यन्ते प्रक्रियासु त्रयः केशिन उत्पृचि ॥ १५ ॥

यहाँ इन तीन केश युक्तों की पृथक् पृथक् प्रकृति के कारण अतीतों में भी इन तीनों का इनकी विशिष्टताओं के आधार पर विभेद किया गया है, जैसा 'त्रय केशिन' (ऋग्वे० १ १६४, ४४) ।

^१ तु० की० ऋग्वे० १ १६४ पर मर्वातुनमण ।

१८-अग्नि, जातवेदस्, वैश्वानर • मूलतः समान, किन्तु इनका विभेद न चैषां प्रसृतिर्वा विभृतिस्थानजन्म वा ।

निर्वक्तुं शक्यमेतैर्हि कृत्स्नं व्याप्तमिदं जगत् ॥ १६ ॥

इनकी उत्पत्ति अथवा इनकी विभृति, स्थान, और ज म की व्याख्या करना असम्भव है । क्योंकि यह समस्त लोक इनमें पूर्णतया व्याप्त है ।

^१ क्योंकि, तथा १ १७ न न्वास्वा वा वा चुरा ह, यह वास्तव में समान है, ब्रह्मणो कारण ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इनमें जम, आवाग, और शक्तिर्वा परस्पर भिन्न ह ।

वैश्वानरं श्रितो ह्यग्निर् अग्निं वैश्वानरः श्रितः ।

अनयोजातवेदास्तु तथैने जातवेदसी ॥ १७ ॥

अग्नि वैश्वानर में निहित है, वैश्वानर अग्नि में निहित है, तथा जातवेदस् इन दोनों में, अतः यह दोनों जातवेदस् के ही दो रूप हैं ।^१

^१ तु० की० ऊपर १ १० और 'अने उत्तर अतोतिपा जातवेदसी उच्यते', निरुक्त ७ २० ।

सालोक्याच्चैकजातत्वाद् व्याप्तिमत्त्वात्तु तेजसः ।

तस्य तस्येह देवत्वं दृश्यन्ते च पृथक् स्तुताः ॥ १८ ॥

यहाँ प्रत्येक देवता की दिव्य प्रकृति, उनके एक ही लोक के और समान जन्म के होने से, तथा सभी में तेज के निहित होने से ही, निष्कृष्ट है; फिर भी इनकी पृथक्-पृथक् स्तुति की गई प्रतीत हो सकती है।^१

^१ जैसा कि नीचे के श्लोक में कहा गया है, आवास, उत्पत्ति, और प्रकृति की दृष्टि से समान होने के कारण सूक्तों में इनकी अलग-अलग देवों के रूप में स्तुति की गयी हो सकती है। तु० की० नीचे १. १०१ भां।

यत्त्वाग्नेयमिति ब्रूमः सूक्तभाक् तत्र पार्थिवः ।
जातवेदस्यमित्युक्ते सूक्तेऽस्मिन्मध्यमः स्मृतः ॥ ९९ ॥

जब हम किसी सूक्त द्वारा अग्नि को सम्बोधित करते हैं तो उस दशा में उस सूक्त का देवता पार्थिव अग्नि होता है, किन्तु जब कोई सूक्त जातवेदस् को सम्बोधित किया जाता है तो मध्य में स्थित अग्नि को उसका देवता मानना चाहिये।

वैश्वानरीयमिति तु यत्र ब्रूमोऽथ वा क्वचित् ।
सूर्यः सूक्तस्य भाक् तत्र ज्ञेयो वैश्वानरस्तुतौ ॥ १०० ॥

अथवा, पुनः, जब हम कहीं कहीं किसी सूक्त को वैश्वानर को सम्बोधित करते हैं तो उस दशा में वैश्वानर की स्तुति में सूर्य को ही उस सूक्त का देवता मानना चाहिये।

१९-अवरोहक क्रम से तीनों लोकों के देवता
सूर्यप्रसूनावग्नी तु दृष्टौ पार्थिवमध्यमौ ।
एतेषामेव लोकानां त्रयाणामध्वरेऽध्वरे ॥ १०१ ॥
रोहात्प्रत्यवरोहेण चिकीर्षन्नाग्निमारुतम् ।
शस्त्रं वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते ॥ १०२ ॥

अत्र, पार्थिव और मध्यम (अग्नि) सूर्य से उत्पन्न हुए दृष्ट होते हैं : प्रत्येक यज्ञ के समय अवरोहक क्रम से, जो इन तीन लोकों के आरोहक क्रम का उल्टा है,^१ अग्नि तथा मरुतों की प्रार्थना करने की इच्छा रखनेवाला (पुरोहित) वैश्वानर^२ को सम्बोधित सूक्त से प्रतिपादन करता है।

^१ अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश।

^२ अर्थात् आकाश के सूर्य। यहाँ शब्द-विन्यास बहुत कुछ निष्कृत ७ २३ (एषा लोकानाम् रोहेण.....रोहान् प्रत्यवरोहः चिकीर्षितः । ताम् अनुकृतिं होतव्यमग्निमारुतं शस्त्रं, वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते) के ही समान है।

ततस्तु मध्यमस्थाना देवतास्त्वनुशंसति ।

रुद्रं च मरुतश्चैव स्तोत्रियेऽग्निमिमं पुनः ॥ १०३ ॥

इसके उपरान्त वह, मध्यम स्थान के देवता रुद्र और मरुतों की प्रशंसा, तथा पुन, ^१ इम (पार्थिव) अग्नि का स्तोत्रिये^२ में स्तवन करता है ।

^१ अथात् पृथ्वा को तृतीय स्थान देता है ।

^२ जो विशेषतः अग्नि के लिये प्रयुक्त होता है देविये निरुक्त ७ २३, जहाँ याम्प यह मग व्यक्त करते हैं 'नल आगच्छति मध्यस्थाना देवता रुद्र च मरुतश्च, नल अग्निम इह स्तवनम अत्रैव स्तोत्रिय इमनि ।'

यथैतदुक्तमेतेषां विभूतिस्थानसंभवम् ।

तथा च देवदेवस्य तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ १०४ ॥

जिस प्रकार इन तीन को, अपने अपने विभूति तथा स्थान से उत्पन्न कहा गया है, ठीक उसी प्रकार यहाँ यह अपने अपने स्थानों पर देवों के देव (प्रजापति)^३ के लिये भी व्यवहृत हो सकता है ।

^३ निमके ही यह सब रूप हैं देविये ऊपर १ ६२, ६३ ।

यद्यत्र पृथिवीस्थानं पार्थिवं चाग्निमाश्रितम् ।

तत्सर्वमानुषूर्व्येण कथ्यमानं निबोधत ॥ १०५ ॥

जो कुछ और कहीं भी पृथ्वी स्थान से सम्बद्ध और पार्थिव अग्नि में निहित प्रतीत हो, वह उससे सम्बद्ध होता है जिसका जब यथाक्रम वर्णन किया जायगा ।

२०-पार्थिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करनेवाले देवता

जातवेदाः श्रितो ह्यग्निम् अग्निं वैश्वानरः श्रितः ।

द्रविणोदास्तथेधमश्च श्रितश्चाग्निं तनूनपात् ॥ १०६ ॥

जातवेदस् अग्नि में निहित है, और वैश्वानर भी अग्नि में निहित है, इसी प्रकार द्रविणोदम्, ईधन और तनू नपात् भी अग्नि में ही निहित हैं ।^१

^१ प्रस्तुत तथा अगले वर्ष (१०६-११८) में उद्धृष्ट देवों की नामों का नक्षत्र ५ १-३ के पार्थिव देवों का नामों के हा समान है । दोनों नामों में केवल एक अन्तर है कि ११० में श्लोक में 'इडा' (नैषण्डु ५ ५ में 'मध्य स्थान ती एव देवा) को सम्मिलित कर लिया गया है । नैषण्डु ५ १-३ में जात वेदस् नामों के अर्थ का भाव यथावत अनुसरण किया गया है (१०६-१०९ में) । श्रित भी नैषण्डु ५ ३ में जात वेदस् नामों के अर्थ तथा रूप की दृष्टि से यही एक विशेष मिलता है (१०९-११४ में) । वारह आश्रा देवों (२ म स्थान ८ १५, नैषण्डु

१. ०) का मन्त्रेऽ १. १३ (नीचे २. १४७-५५) के मन्त्र में पुनः गणना कराई गई है, जो कि उनके नामों की व्युत्पत्ति का नीचे २. १५८; ३. १-३० में विवेचन किया गया है ।

नराशंसः श्रितश्चैनम् एनमेवाश्रितस्त्विळः ।

वर्हिद्वारश्च देव्योऽग्निम् एनमेव तु संश्रिताः ॥ १०७ ॥

नराशंस इसी में निहित है, इळा भी इसी में निहित है; वर्हिस् और दिव्य द्वार भी इसी अग्नि में निहित हैं ।

नक्तोपासा^१ च दैव्यौ च होतारावेतदाश्रयौ ।

देव्यस्तिस्त्रः श्रिताश्चैनं त्वष्टा चैवैतदाश्रयः ॥ १०८ ॥

रात्रि और उपस्, तथा दं दिव्य होता इसी में निहित हैं; तीन देवियाँ इसी में निहित हैं, और त्वष्टा भी इसी में निहित है ।

^१ 'नक्तोपासा', २. १८८ में भी (३. ८ में 'नक्तोपासा' है), जब कि नैषण्डक ५. २ में 'उपामानक्ता' है ।

श्रितो वनस्पतिश्चैनं स्वाहाकृतय एव च ।

अश्वश्च शकुनिश्चैव मण्डूकाश्चैतदाश्रयाः ॥ १०९ ॥

वनस्पति और स्वाहाकृतिपौ भी इसी में निहित हैं; और^२ अश्व, पक्षी, माण्डूक्य भी इसी में निहित हैं ।

^१ १०९-११४ में मिलनेवाले यह सैनीम नाम नैषण्डक ५. ३ के छत्ताम नामों के समान है । अन्तर इतना है कि यहाँ ११० में इळा को भी सम्मिलित कर लिया गया है जो नैषण्डक ५. ३ में नहीं बरन् ५. ५ में मिलता है ।

ग्रावाणश्चैनमक्षाश्च नराशंसस्तथा रथः ।

दुन्दुभिश्चेपुधिश्चैनं हस्तघ्नोऽभीशयो धनुः ॥ ११० ॥

और दबाने के पत्थर इसी में निहित हैं, अश्व,^१ नराशंस,^२ रथ और दुन्दुभि, तथा तरकम, हस्तघ्न, वरुगायें और धनुष भी इसी में निहित हैं;

^१ नैषण्डक ५. ३ में नामों का क्रम 'अश्वः ग्रावाणः' है ।

^२ 'नराशंस' की (ऊपर १. १०७), एक पारिवि देवता (= नैषण्डक ५. २) के रूप में उद्धरण देते हुये, निरुक्त ९. ९ (येन नरा. प्रशस्वन्ने स नाराशंसो मन्त्रः) में व्याख्या की गई है (तु० की० नीचे ३. १५८) ।

ज्या चतदाश्रितेषुश्च श्रिता अश्वाजनी च या ।

वृषभो वृषणश्चैनम् एनं पितुरुद्धखलम् ॥ १११ ॥

और धनुष की प्रत्यक्षा और बाण इसी में निहित हैं; तथा इसी में प्रतिष्कश, वृषभ, हथौडा, पेय और उल्लूखल^१ भी निहित हैं;

^१ नैघण्टुक ५ ३ में 'उल्लूखलम', 'वृषभः' के पहले आता है।

नद्यश्चैवैनमापश्च सर्वा ओषधयश्च ह ।

रात्र्यप्वाग्नाय्यरण्यानी श्रद्धेळा पृथिवी तथा ॥ ११२ ॥

और नदियाँ और जल, तथा ओषधियाँ इसी में निहित हैं; रात्री, अप्वा, अग्नायी, अरण्यानी, श्रद्धा, इळा,^२ और पृथिवी^३ भी इसी में निहित है।

^१ 'इळा' शब्द नैघण्टुक ५ ३ में हा नश आता वरन् इने ५ ४ में लिया गया है।

^२ यह देवियों के समान है तथा इनमें से प्रथम चार का व्रम भा बना है। यह देवियों नाचे (२ ७३-७५) में भा आता^२ जहाँ 'इळा' के स्थान पर 'उपस्' और 'मरन्वता' को सम्मिलित किया गया है।

भजेते चैनमेवालीं द्वन्द्वभूते च रोदसी ।

मुसलोल्लूखले चैनं हविर्धाने च ये स्मृते ॥ ११३ ॥

और धनुष के दोनों किनारे इसी के हैं; युग्म के रूप में दोनों लोक^१ और मूमल तथा उल्लूखल^२ इसी के हैं; और जिन्दे दो हविर्धान कहते हैं वह भी इसी के हैं।

^१ नैघण्टुक ५ ३ के 'पावापृथिवी' के स्थान पर यहाँ 'रोदसी' है।

^२ नैघण्टुक ५ ३ के 'उल्लूखलमुमले' के स्थान पर यहाँ 'मुसलोल्लूखले' है।

जोष्ट्रो चोर्जाहुती चैनं शुतुद्रया च विपाट् सह ।

यौ च देवौ शुनासीरौ तौ चाग्नी चैतदाश्रयौ ॥ ११४ ॥

दो धात्री देवियाँ और दो ऊर्जाहुतियों^१ द्वारा पृथ्य इसी में निहित है; विपाश तथा साथ ही साथ शुतुद्री, दो अग्नियाँ, तथा शुन और सीर^२ भी इसी में निहित हैं।

^१ तु० की० निरुक्त ९ ४२-४२।

^२ चिनकी नाण्यरागों ने 'शुन' और 'आदित्य' के रूप में व्याख्या की है (तु० की० नीचे ५ ८)।

लोकोऽयं यच्च वै प्रातः सवनं क्रियते मग्ने ।

वसन्तशरदौ चर्तुं स्तोमोऽनुष्टुबयो त्रिवृत् ॥ ११५ ॥

यह लोक, प्रातःकालीन यज्ञ के समय का सोम-सवन, वसन्त तथा शरद्^१ ऋतुये, अनुष्टुभ^२ छन्द, और त्रिवृत् स्तोम,

^१ यह तथा नाचे के माडे चार श्लोक प्रमुग्तः निरुक्त ७. ८ पर आधारित हैं। अग्नि के क्षेत्र वाले (अग्निभक्तानि) पदावी की निरुक्त के उक्त स्थल पर इस प्रकार गणना कराट गट है - 'अत्र लोकः प्रातःसवन वसन्तो गायत्रो त्रिवृत्स्तोमो रथंतर साम वे च त्रेकगणा- सनास्राताः प्रथमे स्थाने ।' 'शरद्' और 'अनुष्टुभ' को निरुक्त ७. ११ से लिया गया है जहाँ इन दोनों तथा 'एथर्षिज्जन्तोः' तथा 'वैराजं साम' को पृथ्वी-स्थानीय (पृथिव्यास्तनानि) बताया गया है।

^२ 'अनुष्टुभ' को, 'स्तोम-' तथा 'त्रिवृत्' के बीच, कुछ कौतूहलवर्धक ढङ्ग में निश्चिद्रूप से छन्द को दृष्टि में रखकर ही रक्का गया है। स्वाभाविक क्रम का एक अन्य दर्ती प्रकार वा श्वनिक्रम २. १२ (असी, तृतीय सवन, लोकः) में मिलता है।

२१-अग्नि के साथ सम्यद् अन्य देव

गायत्री चैकविंशश्च यच्च साम रथंतरम् ।

साध्याः साम च वैराजम् आप्त्याश्च वसुभिः सह ॥ ११६ ॥

गायत्री, एकविंश (स्तोम),^१ रथंतर साम, और वैराज साम,^२ साध्यगण और आप्त्यगण, तथा वसुगण^३ (अग्नि-स्थान में ही स्थित हैं)।

^१ देखिये ऊपर श्लोक ११५ पर टिप्पणी १।

^२ किन्तु नैषण्डुक ५ ५-६ के अनुसार इन तीन वर्गों में से कोई भी पार्थिव स्थान से सम्बद्ध नहीं है।

इन्द्रेण च मरुद्भिश्च सोमेन वरुणेन च ।

पर्जन्येनर्तुभिश्चैव विष्णुना चास्य संस्तवः ॥ ११७ ॥

वह इन्द्र और मरुतों^१ के साथ, सोम और वरुण के साथ, पर्जन्य और ऋतुओं, तथा विष्णु^२ के साथ, स्तुतियों को ग्रहण करता है।

^१ निरुक्त ७ ८ में मरुतों का उल्लेख नहीं है, बल्कि अग्नि के साथ स्तुतियों को ग्रहण करने-वाले देवों के अन्तर्गत केवल इन्द्र, सोम वरुण, पर्जन्य, ऋत्व. (अस्व मत्सविका देवा.) को ही रजरा गया है।

^२ निरुक्त ७. ८ के अनुसार ऋग्वेद में विष्णु के साथ अग्नि केवल यह भाग ग्रहण करते हैं, स्तुतियों नहीं (अग्नावैष्णवं हविर्, न त्व ऋक् मत्सविकां वरुणवीपु दिष्टवे)।

अस्यैवाग्नेस्तु पूषणा च साम्राज्यं वरुणेन च ।

देवतामर्थतत्त्वज्ञो मन्त्रैः संयोजयेद्धविः ॥ ११८ ॥

यही अग्नि, पूषन्^१ और वरुण के साथ साम्राज्य के भागी हैं। जो (मंत्रों के) अनिवार्य तत्त्व को जानता है उसे मंत्रों के माध्यम से देवता और हवि को सम्बद्ध करना चाहिये।

^१ यहाँ सम्भवतः निरुक्त ७ ८ का यह भाग्य उद्दिष्ट है कि युगल रूप में अग्नि-पूषन् केवल हवि को ही ग्रहण करते हैं त्रिमा स्तुति को नष्ट (जम्भापौष्ण हविरे, न तु संस्तव)। फिर भा यास्क अग्नि और पूषन् का पृथक्-पृथक् स्तवन (विभक्ति स्तुति) कर्मशाले के रूप में (युगल रूप में नहीं) ऋग्वेद १० १७, ३ वा उद्धरण देता है।

असंस्तुतस्यापि सतो हविरेकं निरुप्यते ।

देवतावाहनं चैव वहनं हविषां तथा ॥ ११९ ॥

जहाँ एक देवता की किमी अन्य के साथ (युगल रूप से) स्तुति नहीं की जाती, वहाँ भी एक ही और समान हवि कभी कभी दोनों^१ को समर्पित की जाती है। देवों को लाना और उनके पास हवि को ले जाना,

^१ हमने नि मन्त्रैः निरुक्त ७ ८ का यास्क का यह भाग्य ही उद्दिष्ट है कि अग्नि विष्णु और अग्नि पूषन् को साथ साथ हवि को समर्पित हो सकता है, किन्तु स्तुति नहीं। अर्थात् जिन युगल देवों का सम्मिलित स्तुति होता है उन्हें सम्मिलित हवि को समर्पित जा जा सकता है, किन्तु जब उनका सम्मिलित स्तुति नहीं मिलता तो भा उन्हें सम्मिलित हवि को समर्पित हो ही सकता है। 'अग्नि पूषन्' के सम्बन्ध में दुर्गा यह टिप्पणी करती है 'मृग्यम उदाहरण देव सम्भव'।

कर्म दृष्टे च यत्किञ्चिद् विषये परिवर्तते ।

इत्युक्तोऽयं गणः सर्वः पृथिव्यग्न्याश्रयो महान् ॥ १२० ॥

उसका ही कार्य है; दृष्ट क्षेत्र में जो कुछ भी गतिशील होता है, वह भी उसी के कार्य से सम्बद्ध है।^१ इस प्रकार पार्थिव अग्नि में निहित इस महान् देव-समूह का वर्णन किया गया।

^१ अर्थात् पदार्थों को दृश्य बनाना भी अग्नि के कार्य में से एक है।

२२-इन्द्र से सम्बद्ध मध्य-स्थान का देव-समूह

यश्चन्द्रो मध्यमस्थानो गणः सोऽयमतः परः ।

विमानानि च दिव्यानि गणश्चाप्सरसां तथा ॥ १२१ ॥

अब इन्द्र से सम्बद्ध मध्य-स्थान के गणों का वर्णन किया जायगा, जिनके अन्तर्गत दिव्य रथ और अप्सरसाथें भी सम्मिलित हैं।

इन्द्राश्रयस्तु पर्जन्यो रुद्रो वायुर्बृहस्पतिः ।

वरुणः कश्च मृत्युश्च देवश्च ब्रह्मणस्पतिः ॥ १२२ ॥

इन्द्र^१ में ही पर्यन्त, रुद्र, वायु, वृहस्पति, वरुण, 'क', मृत्यु और ब्रह्मणस्पति नामक देवता निहित है ।

^१ प्रस्तुत तथा निम्न मान श्लोकों में मन्त्र-स्थान के त्रिन देवताओं की गणना करके गण्ड ६ वह नवण्डुक ५ ४-५ का तान्त्रिक के ही समान है । फिर भी वहाँ इन देवों के क्रम में पर्याप्त : न्तर्ग, तथा दो अन्य ('मीना' और 'लाक्षा') को सम्मिलित कर दिया गया है ।

मन्युश्च विश्वकर्मा च मित्रः क्षेत्रपतिर्यमः ।

ताक्षर्यां वास्तोष्पतिश्चैव सरस्वांश्चैवमन्न ह ॥ १२३ ॥

मन्यु, विश्वकर्मा, मित्र, क्षेत्रपति,^१ यम, ताक्षर्य, तथा साथ ही साथ वास्तोष्पति और सरस्वती भी यही हैं;

^१ नवण्डुक ५ ४, न 'क्षेत्रस्थ पतिः' ह ।

अपांनपाद्दधिकाश्च सुपर्णोऽथ पुरुरवाः ।

ऋतोऽनुनीतिर्वेनश्च तस्यैतस्याश्रयेऽदितिः ॥ १२४ ॥

अपां नपात् और दधिका, ओर फिर सुपर्ण, पुरुरवस, ऋत, अनुनीति, वेन भी इसी में स्थित हैं; और इसी के क्षेत्र में अदिति भी है;

त्वष्टा च सविता चैव वातो वाचस्पतिस्तथा ।

धाता प्रजापतिश्चैव अथर्वाणश्च ये स्मृताः ॥ १२५ ॥

और त्वष्टा तथा सविन्, वात तथा वाचस्पति, धातु और प्रजापति, तथा यह सब जिन्हें अथर्वन् कहते हैं;

श्येनश्चैवैवमग्निश्च तथेळा चैव या स्मृता ।

विधातेन्दुरहिर्वुध्न्यः सोमोऽहिरथ चन्द्रमाः ॥ १२६ ॥

और इसी प्रकार श्येन, अग्नि, तथा साथ ही साथ वह जिसे इळा कहते हैं इसी में स्थित है; विधातु, इन्दु, अहिर्बुध्न्य, सोम, अहिरथ, और चन्द्रमा

२३-इन्द्र के क्षेत्र से सम्बद्ध देवता तथा दैवीकृत पदार्थ

विश्वानरश्च वै देवो रुद्राणां संस्तुतो गणः ।

ममृतोऽङ्गिरसश्चैव पितरश्चर्भुभिः सह ॥ १२७ ॥

और दिव्य विश्वानर, और रुद्रगण तथा मरुद्गण, साथ ही साथ, अङ्गिरसों, पितरों, ऋभुओं की भी इसी के साथ स्तुति की जाती है ।

राका वाक् सरमाप्त्याश्च भृगवोऽध्व्या सरस्वती ।

यम्युर्वशी सिनीवाली पथ्या स्वस्तिरूपाः कुहः ॥१२८॥

राका, वाक्, सरमा, आप्त्यगण, भृगुगण, अध्व्या, सरस्वती, यमी, उर्वशी, सिनीवाली, पथ्या, स्वस्ति, उपस्, कुह,

पृथिव्यनुमतिर्धेनुः सीता लाक्षा तथैव गौः ।

गौरो च रोदसी चैव इन्द्राण्याश्चैव वै पतिः ॥ १२९ ॥

पृथिवी, अनुमती, धेनु, सीता, लाक्षा, गो और गौरी, और साथ ही साथ रोदसी भी इसी प्रकार (इन्द्र के क्षेत्र में) निहित है, और वह (इन्द्र) इन्द्राणी का पति है ।

^१ उक्त श्लोक (१२०-१२९) में केवल 'साता' और 'लाक्षा' नाम दो नपुण्ड्रक ४ म नदा मिलते ।

^२ श्रितिवे नीचे २८४ (आर्षानुक्रमशा १० २०० भा । १८ २१ ।

छन्दस्त्रिष्टुप् च पङ्क्तिश्च लोकानां मध्यमश्च यः ।

एतेष्वेवाश्रयो विद्यात् सवनं मध्यमं च यत् ॥१३०॥

त्रिष्टुप् और पङ्क्ति छन्द, और लोकों के केन्द्र, तथा मध्याह्न के सोम-सवन को भी, इन्हीं देवों की भौति इन्द्र के क्षेत्र में ही स्थित जानना चाहिये ।

^१ प्रस्तुत तथा नावे ये श्लोक का उक्ति निम्न ७ १० (अर्धताना द्रमक्तानि अन्त रिक्षलोरी माध्यदिन सवन प्राग्मन्त्र त्रिष्टुप् ... इट् नान), तथा ७ ११ (हिमन्त-पक्ति ... शाकर सामेत्य-जन्तरिक्षावनताति) पर आधारित है ।

ऋतू च ग्रीष्महेमन्तौ यश्च सामोच्यते बृहत् ।

शकरीषु च यद्गीतं नाम्ना तत्साम शाकरम् ॥१३१॥

दो ऋतुयें ग्रीष्म तथा हेमन्त, और बृहत् नामक साम, और शकरी श्लोकों में गाया जानेवाला शकर नामक साम भी, इसी के क्षेत्र से सम्बद्ध है ।

^१ तु० वी० निम्न ७ १०-११ पर दुर्ग ।

॥ इति बृहद्देवतायां प्रथमोऽध्यायः ॥



१-इन्द्र-स्थान के देवता

आह चैवास्य द्वौ स्तोमाव् आश्रयौ शाकटायनः ।

यश्च पञ्चदशो नाम्ना संख्यया त्रिणवश्च यः ॥ १ ॥

इमकं अतिरिक्त शाकटायन का कथन है कि उनके (इन्द्र) लिये दो स्तोमों का विधान है, यथा : एक तो वह जिसे 'पञ्चदश' कहते हैं, और दूसरा वह जो संख्या में नौ का त्रिगुणित (अर्थात्, सत्ताइस) होता है ।^१

^१ निरुक्त ७ १०-११ में सा क्रमनः यह कहा गया है कि 'पञ्चदश स्तोम' तथा 'त्रिणव स्तोम' इन्द्र से सम्बद्ध है ।

संस्तुतश्चैव पूष्णा च विष्णुना वरुणेन च ।

सोमवाय्वग्निऋत्सैश्च ब्रह्मणस्पतिनैव च ॥ २ ॥

पूषन् के साथ, विष्णु और वरुण के साथ, और सोम, वायु, अग्नि, ऋत्स, तथा ब्रह्मणस्पति के साथ, और^१

^१ प्रस्तुत तथा बाद के श्लोक में त्रिन दस देवताओं को इन्द्र के साथ स्तुत्य बताया गया है, उनका निरुक्त ७ १० (अथ अस्य सस्तविका देवाः अग्निः, सोमो वरुणः पूषा बृहस्पतिर् ब्रह्मणस्पतिः पर्वतः कुम्भो विशुर् वायुः) में भी इन्हीं आशय में उल्लेख है ।

बृहत्स्पतिना चैव नाम्ना यश्चापि पर्वतः ।

कासुचित्केचिदित्याहुर् निपाता स्तुतिषु स्तुताः ॥ ३ ॥

बृहत्स्पति,^१ तथा उसके साथ भी जिसका नाम पर्वत^२ है, इनकी (इन्द्र की) स्तुति की जाती है । लोगों का कथन है कि कुछ स्तुतियों में कुछ देवों की केवल निपातिक^३ स्तुति होती है ।

^१ इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ 'बृहत्स्पति' व्युत्पत्ति की दृष्टि से (तु० की० 'बृहत्-पाता', निरुक्त १०. ११) 'बृहत्स्पति' के ही समान है ।

^२ तु० की० नीचे ४. ५ जहाँ 'पर्वत' की, इन्द्र के चक्र का प्रतिनिधित्व करनेवाले के रूप में व्याख्या की गई है ।

^३ यहाँ 'निपाताः' का 'नपातिनः' के रूप में ही प्रयोग किया गया है : तु० की० निरुक्त १०. १२ (काश चिद—देवता—निपातभाजः) ।

मित्रश्च श्रूयते देवो वरुणेन सहासकृत् ।

रुद्रेण सोमः पूष्णा च पुनः पूषा च वायुना ॥ ४ ॥

वातेनैव च पर्जन्यो लक्ष्यतेऽन्यत्र वै क्वचित् ।

ऋध्वर्धनेषु पादेषु सूक्तेष्वेषु तु कृत्स्नशः ॥ ५ ॥

और मित्र देव की अक्सर श्रुतियों में वरुण के साथ, सोम की रुद्र और पूरन के साथ, तथा पुनः, पूषन् की वायु के साथ और पर्जन्य की वात के साथ स्तुति^१ की गई है; फिर भी, अन्यत्र वह (इन्द्र) यत्र-तत्र ऋचाओं, अर्ध ऋचाओं, मन्त्रों (अथवा), सम्पूर्ण सूक्तों (ऋग्वेद के) में एक देव के रूप में आता है ।

^१ अर्वात् इन्द्र (मध्य) के क्षेत्र में । देवताओं के इन पाँच गुणों की स्तुति सम्बन्धी हम उक्ति का आधार निरुक्त ७ १० है (अथापि मित्रो वरुणेन सस्तुयते पूषणा रद्रेण च सोमोऽग्निना च पूषा वातेन च पर्जन्य) ।

रसादानं तु कर्मास्य वृत्रस्य च निवर्हणम् ।

स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य बलस्य निखिला कृतिः ॥ ६ ॥

आर्द्रता को ग्रहण करना और वृत्र का विनाश करना—जो कि उसकी स्तुतियों की एक प्रमुख विशेषता है—तथा हर प्रकार के शक्तिपूर्ण कार्यों को पूर्णतया सम्पन्न करना उसका कार्य है ।^२

^१ यहाँ प्रथम दृष्टि में 'रसादानम्' पाठ को ग्रहण करने का प्रवृत्ति हो सकती है तु० की० निरुक्त ७ १० में 'रमानुप्रदानम्', जब कि यहाँ 'रसादानम्' को मूर्त्य का कार्य बनाया गया है (देखिये नाचे १९ वें श्लोक) । किन्तु यहाँ 'रसादानम्' पाठ ऊपर १ ६८ द्वारा पुष्ट होता है जहाँ श्मे मन्यम (जातिवेदम्) अग्नि का कार्य बनाया गया है (रमान्.....आदायवर्षति), नाचे ४ ३८ में (मन्यम) अग्नि के कार्य का 'हरणम्.....वारो विमर्ग पुनर ण्व च' के रूप में वर्णन किया गया है ।

^२ यह श्लोक निरुक्त ७ १० पर आधारित है, जहाँ इन्द्र के तीन कार्यों के अन्तर्गत रसादान, वृत्र के वध, तथा बल के कार्यों की गाना कराई गई है, (अवास्य कर्म रमानुप्रदान वृत्रवधो या च वा च बलकृतिर् इन्द्रमैव तत्र) ।

२-सूर्य-क्षेत्र के देवता : सूर्य की तीन पत्नियाँ

इत्यैन्द्रो मध्यमस्थानो गणः सम्यगुदाहृतः ।

यः परस्तु गणः सौर्यो द्युस्थानस्तं निबोधत ॥ ७ ॥

इस प्रकार मध्यम-स्थान में स्थित इन्द्र-वर्ग के देवों का यथोचित उल्लेख किया गया । अब सूर्य से सम्बद्ध दिव्य-स्थानीय देवों का ज्ञान प्राप्त करें ।

तस्य मुख्यतमौ देवाव् अश्विनौ सूर्यमाश्रितौ ।

वृषाकपायी सूर्योपाः सूर्यस्यैव तु पत्नयः ॥ ८ ॥

सूर्य से सम्बद्ध इस वर्ग के दो प्रमुख देवता^१ अश्विनद्वय^२ हैं; जबकि वृषाकपायी, सूर्या और उपस^३, सूर्य^४ की पत्नियाँ हैं ।

^१ तु० की० निरुक्त १० १ 'तासाम् (ध्रुवानानां देवतानाम्) अश्विनौ प्रथमानामितौ भवतः' ।

^२ प्रस्तुत तथा इसके बाद के चार श्लोकों (८-१२) में उन्हीं सब देवताओं का वर्णन है जिनका नैघण्टुक ५ ६ में उल्लेख है; फिर भी यहाँ इनके क्रम में अन्तर है और 'वृषा' को छोट दिया गया है (सम्भवतः श्मल्लिवे कि यह ऊपर दो बार : १. १०८ और १ १०५ में आ चुका है) ।

^३ तु० की० नीचे ३ १० ।

^४ तु० की० निरुक्त १०. ७ 'सूर्या सूर्यस्य पत्नी ।'

अमुतोऽर्वाङ् निवर्तन्ते प्रतिलोमास्तदाश्रयाः ।

पुरोदयात्तामुपसं सूर्या मध्यंदिने स्थिते ॥ ९ ॥

उमके (सूर्य के) आश्रय में वह सब उम दिव्य लोक में इधर आते हैं, और फिर लौट जाते हैं । उमे सूर्योदय^१ के पूर्व उपस, मध्याह्न के समय^२ सूर्या,

^१ 'अमुतोऽर्वाङ्' अत्र नि मन्त्रेह सूर्य की रश्मियों के मन्दर्भ में निरुक्त ७. २४ (अमुतोऽर्वाङ् पर्यावर्तन्ते) से गृहीत है ।

^२ तु० की० . 'प्राग् उदयात्', नीचे ३. १० और देखिये ७ १२१ भी ।

^३ 'मध्यंदिने स्थिते' व्याहृति ऋग्विज्ञान १. ९, २ में भी आती है ।

वृषाकपायीं सूर्यस्य तामेवाहुस्तु निम्नुचि ।

तस्याश्रये सरण्यूश्च भगः पूषा वृषाकपिः ॥ १० ॥

यमो वैश्वानरो विष्णुर् वरुणश्चैकपादजः ।

पृथिवी च समुद्रश्च देवाः सप्तर्षयश्च यं ॥ ११ ॥

आदित्याः केशिसाध्याश्च सविता वसुभिर्मनुः ।

दध्यङ्ङथर्वा विश्वे च वाजिनो देवपत्नयः ॥ १२ ॥

किन्तु सूर्यास्त के समय वृषाकपायी कहते हैं । उमी के आश्रय में सरण्यू, भग, पूषन्, वृषाकपि, यम, वैश्वानर, विष्णु, वरुण, अज एकपाद, और पृथिवी और समुद्र, देवगण तथा सप्तर्षिगण, आदित्यगण, केशिनगण और

साध्यगण, सवितृ, वसुगण, मनु, दध्यङ्, अथर्वन्, विश्वेदेव, अश्व, तथा देवों की पत्नियों भी स्थित हैं।

^१ नैषण्ड ५ ६ में 'केना और केदिन दोनों आते हैं।

^२ ऋतु प्रथम में विश्वदेवों के लिये अक्षर विश्व का ही प्रयोग किया गया है।

असौ तृतीयं सवनं लोकः साम च रैवतम् ।
वैरूपं चैव वर्षाश्च शिशिरोऽथ ऋतुस्तथा ॥ १३ ॥

त्रयस्त्रिंशश्च य स्तोमः कल्पत्या सप्तदशश्च यः ।
छन्दश्च जगती नाम्ना तथातिछन्दसश्च याः ॥ १४ ॥

उसी दिव्य लोक में तृतीय सोम सवन, रैवत और वैरूप साम, और वर्षा तथा शिशिर ऋतु और तैंतीस स्तोम, तथा वह जो व्यवस्था में सत्रह है, और जगती तथा अतिछन्दस् छन्द भी स्थित हैं।'

^१ उक्त श्लोक श्लोकान्तक ७ ११ की ४म उक्ति पर आधारित है 'अथैतान् आदित्यभक्तानि अमी लोका मृतावमदन वया जगता मत्तन्नुस्तोमो वरुप साम और गिरागरे निधन्ताम त्रयस्त्रिंशस्तोमो रपन सामेति अमत्तानि ।'

पौरुषं चाहुरस्यैतत् सर्वमेव ते पौरुषम् ।
एतस्यैव तु विज्ञेया देवाः संस्तविकास्त्रयः ॥ १५ ॥

जो कुछ भी पुरुष में सम्बद्ध है वह उसका ही कहा गया है, और यह सब कुछ (विश्व) पुरुष में ही सम्बद्ध है। (निघण्टुवित्त) तीन देवताओं को स्तुति में उमसे (सूर्य से) ही सम्बद्ध माना गया है

^१ तु० ब्रा० ऊपर १ ७३ ।

चन्द्रमाश्चैव वायुश्च यं च संवत्सरं विदुः ।
केचित्तु निर्वपन्त्यस्य सौर्यवैश्वानरं हविः ॥ १६ ॥

चन्द्रमा, वायु, और वह जिते सब सर कहते हैं।' कुछ लोग उसको सूर्य और वैश्वानर को सम्बोधित हवि भी समर्पित करते हैं।

^१ यन् उक्ति निघण्टु ७ ११ (चन्द्रमा वायुना सवत्सरणीति सस्तव) का अनुसरण करता है।

^२ तु० ब्रा० १० ८८ पर एतन्नुस्त्रिय 'सौर्यवैश्वानराम सूर्यदेवत्व वैश्वानरुणाति देवत्व च ।'

३-सूर्य और वैश्वानर अग्नि के ही रूप हैं
सौर्यवैश्वानरीयं हि तत्सक्तमिव दृश्यते ।
ऋगर्थचांऽथवा पादो द्रवृचो वा यदि वा तृचः ॥ १७ ॥

चाहे श्रुचा हो अथवा अर्ध-श्रुचा, चाहे मन्त्र ही अथवा दो या तीन पदों का श्लोक, सूर्य और वैश्वानर^१ को सम्बंधित होने पर सूर्य का ही सूक्त प्रतीत होता है।

^१ ऋग्वेद १० ८८; देविये इस सूक्त पर सायण तथा सर्वानुक्रमणी; तु० की० ऊर्ग १. १०० और १०२, और निरुक्त ७. २२ और २४।

अनेन तु प्रवादेन दृष्टा सूर्धन्वता स्तुतिः।

सूर्यवैश्वानरार्शीनाम् एकात्म्यमिह दृश्यते ॥ १८ ॥

किन्तु जिस व्याहृति में 'सूर्धन्व' शब्द होता है उसकी स्तुति स्पष्ट है। यहाँ सूर्य, वैश्वानर और अग्नि की एकात्मकता दृष्टिगत होती है।

^१ ऋग्वेद १० ८८, १. ६ (सूर्धन्वता) जहाँ अग्नि का, शीर्ष (सूर्धा) अथवा विश्व के शीर्ष पर (सूर्धन्) स्थित होने के रूप में वर्णन किया गया है; तु० की० निरुक्त ७. २७ भी।

हरणं तु रसस्यैतत् कर्मानुत्र च रश्मिभिः।

येन नातिविजानन्ति सर्वभूतानि चक्षुषा ॥ १९ ॥

अपनी रश्मियों द्वारा उस दिव्य लोक में आर्द्रता का हरण भी उसका ही कार्य है, जिसे सभी प्राणी अपने चक्षु से स्पष्टतया जान नहीं पाते।

^१ यहाँ इस शब्द का प्रयोग सम्भवतः निरुक्त, ७. ११ (अथास्य कर्म रसादानं रश्मि-विद् च रसाधारणम्) के दोहरे आशय (रश्मियों से आर्द्रता को ग्रहण करना तथा उसे अपने में धारण कर रखना) को व्यक्त करने के लिये किया गया है।

विभागमिममेतेषां विभूतिस्थानसंभवम्।

संयग्विजानन्मन्त्रेषु तं तु कर्मसु योजयेत् ॥ २० ॥

अध्यापयन्नधीयानो मन्त्रं चैवानुकीर्तयन्।

स्थानं सालोक्यं सायुज्यम् एतेपामेव गच्छति ॥ २१ ॥

मन्त्रों में, वैभव और स्थान की दृष्टि से उत्पन्न^१ (इन तीन देवों की) विशेषताओं के वितरण को ठीक-ठीक समझने हुये, और अध्यापन, अध्ययन, तथा मन्त्रों का उच्चारण करते हुये, अनुप्य इन्हीं देवों के स्थान और लोक को, तथा उनके साथ घनिष्ठ सायुज्य को, प्राप्त करता है।

^१ यहाँ 'विभूति-स्थान-संभवम्', बहुव्रीहि है जैसा कि १. १०४ में भी है; किन्तु १९६ में 'विभूति-स्थान-जन्म', द्वन्द्व है।

४-अग्नि के पाँच नाम, अग्नि, द्रविणोदस्, तनूनपात् की उत्पत्ति अग्नेस्तु यानि सूक्तानि पञ्च नामानि कारवः ।

पङ्क्तिशतिस्तथेन्द्रस्य प्राहुः सूर्यस्य सप्त च ॥ २२ ॥

अब, सूक्तों में कविगण अग्नि के पाँच, इन्द्र के छठबीस, और सूर्य के सात नामों की घोषणा करते हैं ।

तेषां पृथङ्निर्वचनम् एकैकस्येह कर्मजम् ।

उच्यमानं यथान्यायं शृणुध्वमखिलं मया ॥ २३ ॥

यहाँ मैं इनमें से प्रत्येक (देवता) की कर्म' पर आधारित पृथक् पृथक् व्याख्या करूँगा, जिसे सुने :

^१ 'पृथङ् निर्वचन कर्मजम्' की ऊपर २० वें श्लोक के 'विभाग विभूति-ज्ञान मम्मवम्' के साथ तुलना करें ।

जातो यदग्रे भूतानाम् अग्रणीरध्वरे च यत् ।

नाम्ना संनयते वाङ्गं स्तुतोऽग्निरिति सूरिभिः ॥ २४ ॥^१

यतः उसका जन्म सभी भूतों के पूर्व हुआ था, और यतः वह यज्ञ का अग्रणी है, अथवा यत वह (अपने) शरीर को एकत्रिभूत कर लेता है, अतः ऋषिगण उसकी 'अग्नि' के नाम से स्तुति करते हैं ।

^१ यहाँ अग्नि वा प्रवृत्ति का बगन करनेवाले तीनों शब्द प्रत्यक्षान्तिरित् ७ ८४ (अग्रगार् भवति, अग्र यज्ञेषु प्रगीयते, अग्र नयति सनप्रमन') के समान है, तु० वा० ऊपर ? ९१ भी ।

द्रविणं धनं बलं वापि प्रायच्छन्नेन कर्मणा ।

तत्कर्म दृष्ट्वा कुत्सस्तु प्राहेनं द्रविणोदसम् ॥ २५ ॥

धन और बल प्रदान करनेवाले उसके कार्य को देख कर कुत्स^१ ने उम द्रविणोदस्, (१) कहा है ।

^१ ऋग्वेद ? ९६ ८ में ।

अयं तनूनपादग्निर् असौ हि तननात्तनुः ।

ततस्तु मध्यमो जज्ञे स्थानेऽयं मध्यमात्ततः ॥ २६ ॥

यह पाथिय अग्नि 'तनूनपात्' (२) है । क्योंकि वह (दिव्य) अग्नि 'तनन' (विस्तृत) से 'तनु' हुये : उनसे ही मध्यम-स्थान के अग्नि का

जन्म हुआ, और पुनः, मध्यम-स्थान के अग्नि से अपने (उपयुक्त) स्थान पर यह (पार्थिव) अग्नि उत्पन्न हुये ।^१

^१ तु० की० नीचे ३. ६४ ।

५-नराशंस, पवमान, जातवेदस्

अनन्तरां प्रजामाहुर् नपादिति कृपण्यवः ।

नपादमुष्य चैवायम् अग्निस्तेन तन्नपात् ॥ २७ ॥

कविगण, प्रथम वंशज के अनन्तर वंशज को पौत्र कहते हैं—और यह (पार्थिव) अग्नि उस (दिव्य) अग्नि के पौत्र^२ हैं; अतः इन्हें 'तन्नपात्' कहते हैं ।

^१ यह व्याहृति निरुक्त ८. ५ (नपाद् इति अनन्तरायाः प्रजाया नामधेयम्) में गृहीत है ।

^२ यास्क ने भी 'तन्नपात्' का 'पौत्र' के रूप में ही व्याख्या की है, यद्यपि एक भिन्न आशय में, क्योंकि उनके अनुसार यह शब्द 'आज्य' का घोक है ।

पृथक्त्वेन समासैस्तु यज्ञे यच्छस्यते नृभिः ।

स्तुवन्त्याप्रीषु तेनेमं नराशंसं तु कारवः ॥ २८ ॥

यतः यज्ञ के समय मनुष्यगण (नृ)^१ एक साथ ही इनकी पृथक्-पृथक् प्रशस्ति (शंस) करते हैं, अतः आप्री सूक्तों में कवियों ने इस अग्नि की 'नराशंस' (३) के रूप में स्तुति की है ।

^१ यह 'नराशंस' के रूप में अग्नि का शाकपूणि द्वारा प्रस्तुत व्याख्या (निरुक्त ८. ६) 'नरैः प्रशस्यो भवति', पर आधारित है । काटुक्य द्वारा प्रस्तुत 'यज्ञ' के रूप में 'नराशंस' की व्याख्या के लिये देखिये नीचे ३. २ ।

पुनाति यदिदं विश्वम् एवाग्निः पार्थिवोऽथ च ।

वैश्वानसर्षिभिस्तेन पवमान इति स्तुतः ॥ २९ ॥

और यतः यह पार्थिव अग्नि विश्व को पवित्र करते हैं, अतः ऋषि वैश्वानस उनकी 'पवमान' (४) के रूप में स्तुति करते हैं ।^१

^१ तु० की० ऊपर १. ६९ ।

भूतानि वेद यज्जातो जातवेदाथ कथ्यते ।

यच्चैष जातवियोऽभूद् वित्तं जातोऽधिवेत्ति वा ॥ ३० ॥

विद्यते सर्वभूतैर्हि यद्वा जातः पुनः पुनः ।

तेनैष मध्यभागेन्द्रो जातवेदा इति स्तुतः ॥ ३१ ॥

यत् जन्म लेने पर अग्नि प्राणियों को जानते हैं, अतः उन्हें जातवेदम् (५) कहते हैं । और यत् वह (अग्नि) वह बने जिसमें विद्या का जन्म हुआ, अथवा यत् जन्म लेने पर वह अधिवेत्ति होते हैं, अथवा यत् चार चार जन्म लेने पर सभी प्राणी उन्हें जान लेते हैं, अतः मध्यम स्थान^१ क इन्द्र की ही भाँति इनकी भी 'जातवेदम्'^२ क रूप में स्तुति होती है ।

^१ तु० की० ऊपर १ ९० नहीं जातवेदम् को मन्त्रिण सूक्त से मध्यम स्थान के अग्नि के सम्बोधन का तात्पर्य है तु० ५० ऊपर १ ६७ भी ।

^२ जातो विद्यत और जानते विद्यते के रूप में जातवेदम् का तो 'सुपत्तिषाँ ऊपर १ ९० में दा या चुना इ तितमें से प्रथम उक्त ३० ३१ ग्लोसों के चौथे के हा सम्मान है । इस प्रकार जातवेदम् का पाँच 'सुपत्तिषाँ हृत् तौ मूनाधिर्मात्वा न निष्क ७ १९ (जातविद्य जातानि वेत्त जातानि वा एत विदुः जाने जाते विद्यत, जातवित्त) के हा सम्मान है ।

६-इन्द्र के छद्मीस नाम वायु, वरुण, रुद्र, इन्द्र
अणिष्ठ एष यत्तु त्रीन् व्याप्यैको व्योम्नि तिष्ठति ।

तेनैनमृपयोऽर्चन्तः कर्मणा वायुमद्रुचन् ॥३२॥

किन्तु यत् वह अ यत्त सूक्ष्म रूप से तीनों लोकों को व्याप्त करता हुआ वायुमण्डल में प्रतिष्ठित है, अतः कर्म की दृष्टि से उसकी अर्चना करते हुये उसे वायु^१ (१) कहते हैं ।

^१ मध्य-स्थान के देवों की नैषण्डक (५ ४) की तालिका में 'वायु' स० प्रथम आता है तु० का० निष्क १० १ । इन छद्मनामों में से तेरस (प्रथम आठ उसी क्रम से) तो नैषण्डक (५ ४) के वृत्तान्त के अन्तगत आ जाते हैं और शेष तान नैषण्डक ५ ५ में आते हैं । तु० की० ऊपर १ १२२-१२९ ।

त्रीणामान्यावृणोत्यैको मूर्तेन तु रसेन यत् ।

तयैनं वरुणं शक्त्या स्तुतिप्वाहुः कृपण्यवः ॥ ३३ ॥

किन्तु यत् स्थूल आर्द्रता से केवल वही इन लोकों को आवृत्त (वृणोति)^१ करते हैं अतः उनके इस कर्म के कारण ऋषिगण स्तुतियों में उन्हें वरुण (२) के नाम से पुकारते हैं ।

^१ यह निष्क १० ३ (वरुणो वृणोति मन) का 'सुपत्ति' का अनुसरण करना है ।

अरोदोदन्तरिक्षे यद् विद्युद्बृष्टिं ददन्नृणाम् ।

चतुर्भिर्ऋषिभिस्तेन रुद्र इत्यभिसंस्तुतः ॥ ३४ ॥

यत् उन्होंने अन्तरिक्ष में गर्जन^१ करते हुये मनुष्यों के लिये विद्युत्

सहित वर्षा की, अतः चार ऋषियों^१ ने उनकी रुद्र (३) के रूप में अत्यधिक स्तुति की।

^१ यह 'रुद्र' की व्युत्पत्तियों में से एक है जो निरुक्त १०. ५ (यद् अरोदिद नद् रुद्रस्य रुद्रत्वम् इति हारिद्रविक्रम्) में दी हुई है। यास्क के अनुसार यह नाम 'रु' धातु से भी व्युत्पन्न हुआ हो सकता है।

^२ अथांरु कण्व (ऋग्वेद १. ४३), कुत्स (ऋग्वेद १. ११४), गृत्समद (ऋग्वेद २. ३३) और बमिष्ठ (ऋग्वेद ७. ४६)।

चतुर्विधानां भूतानां प्राणो भूत्वा व्यवस्थितः ।

ईष्टे चैवास्य सर्वस्य तेनेन्द्र इति स स्मृतः ॥ ३५ ॥

चार प्रकार के प्राणियों के जीवन का व्यवस्थित स्रोत बन कर वह इस विश्व पर शासन करते हैं; अतः उनको 'इन्द्र' (४) नाम दिया गया है।

इरां हणाति यत्काले मरुद्भिः सहितोऽम्बरे ।

रवेण महता युक्तस् तेनेन्द्रमृषयोऽब्रुवन् ॥ ३६ ॥

यतः उन्होंने मरुतों के साथ सम्बद्ध होकर उपयुक्त समय पर भीषण राज्ञ के साथ आकाश में जलों (इराम्)^१ को प्रकट किया, अतः ऋषिगण उन्हें इन्द्र नाम से पुकारते हैं।

^१ यह निरुक्त १०. ८ में दी हुई अनेक व्युत्पत्तियों में से प्रथम के समान है।

७-पर्जन्य, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, क्षेत्रस्य-पति, क्रतु

यदिमां प्रार्जयत्येको रसेनाम्बरजेन गाम् ।

कालेऽन्निरौर्वशश्चर्षी तेन पर्जन्यमाहतुः ॥ ३७ ॥

यतः केवल वही उपयुक्त समय पर आकाश में उत्पन्न आर्द्रता इस पृथिवी को प्रदान^१ करते हैं, अतः ऋषि अन्निर^२ तथा उर्वशी-पुत्र^३ (वसिष्ठ) उन्हें पर्जन्य (५) के नाम से पुकारते हैं।

^१ प्रस्तुत तथा बाद के श्लोक में दी गई पर्जन्य की चार व्युत्पत्तियाँ निरुक्त १०. १० (पर्जन्यम् नृपेरु आयन्नविपरीतरस्य तर्पयिता जन्यः, परो जेता ना जनयिना वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्) के ही समान हैं।

^२ पर्जन्य-सूक्त (ऋग्वेद ५. ८३) के प्रणेता के रूप में।

^३ वसिष्ठ, जिन्हें प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक बार इस मातृनामोद्गत नाम से व्यक्त किया गया है (यथा: २. ४४, १५६; ३. ५६; तु० वी० ५. १४९, १५०), अन्य दो पर्जन्य सूक्तों (ऋग्वेद ७. १०१ और १०२) के भी प्रणेता हैं।

तर्पयत्येष यल्लोकाब् जन्यो जनहितश्च यत् ।

परो जेता जनयिता यद्वाग्नेयस्ततो जगौ ॥ ३८ ॥

यत यह लोकों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं, और यत यह समस्त जनों के हितैषी हैं, अथवा यत यह परम विजेता या जनयिता हैं, अतः (कुमार) आग्नेय^१ ने उनकी (पर्जन्य के रूप में) स्तुति की ।

^१ ऋग्वेद ७ १०१ और १०० के एक अन्य प्रपञ्च के रूप में तु० वा० इन मूर्तों पर आर्षानुकम्पा (अग्निपुत्र कुमारो वा वसिष्ठो वा स्वयं मुनि) और सर्वानुक्रमगा (यत्ने कुमार आग्नेयोऽपरयद्रमिष्ठ एव वा वृष्टिकाम) ।

बृहन्तौ पाति यल्लोकाब् एष द्वौ मध्यमोत्तमौ ।

बृहता कर्मणा तेन बृहस्पतिरितीच्छितः ॥ ३९ ॥

यत यह दो बृहत्, मध्यम और उच्चतम, लोकों की रक्षा करते हैं अतः इस महान कर्म के कारण उन्हें 'बृहस्पति' (६) कहने हैं ।

^१ तु० वा० यात्क वा न्युत्पत्ति 'बृहस्पतिर' बृहत् पाना पालयिता वा (निरुक्त १० ११) तहाँ दुग् ने 'बृहत् की 'महतो अस्य तगत उद्वस्य वा' के रूप में व्याप । की है । तु० वा० बृहत्तम पतिना' (ऊपर ० ३) ।

ब्रह्म वाग् ब्रह्म सत्यं च ब्रह्म सर्वमिदं जगत् ।

पानारं ब्रह्मणस्तेन शौनहोत्र स्तुवद्भगौ ॥ ४० ॥

ताच् भी ब्रह्म है, और सत्य भी ब्रह्म है, यह समस्त जगत भी ब्रह्म है, अतः शौनहोत्र' (गृ-समद) ने स्तुति करते हुये उन्हें ब्रह्म का रक्षक' (अर्थात् 'ब्रह्मणस्पति') (७) कहा ।

^१ ऋग्वेद ० ०३ २६ में ।

^२ निरुक्त १० १२ (ब्रह्मणस्पतिर ब्रह्मण' पाना वा पालयिता वा) ।

अन्नं क्षिनिभ्यो विदधद् यद्वतुष्वविशत्क्षितो ।

तेनैनमाह क्षेत्रस्य वामदेव स्तुवन्पतिम् ॥ ४१ ॥

यत यह उपयुक्त समय पर पृथिवी' में प्रवेश करके पृथिवी वामियों को भक्षण प्रदान करते हैं, अतः स्तुति करते हुये वामदेव' उन्हें 'क्षेत्रों का अधिपति' (८) कहते हैं ।

^१ देखिये निरुक्त १० १३ 'क्षेत्रस्य पति क्षेत्र क्षियन्तर् निवामकमगम्, नस्य पाना वा पालयिता वा ।'

^२ ऋग्वेद ४ ५९ में ।

मनसेमं तु यद्दृश्यं मध्यमं लोकमाश्रितम् ।

शंसत्सत्येन सत्ये वै स एष स्तुतवानृतम् ॥ ४२ ॥

यतः उन्होंने ही उमको प्रगट किया जो मध्यम-स्थान में सम्बद्ध होते हुये, सत्य^१ में मध्य के साथ केवल मन में दृष्टिगत होता है, अतः उसी वामदेव ने इनकी 'ऋत'^२ (९) के रूप में स्तुति की ।

^१ निरुक्त १० में 'ऋत' की 'सत्यं वा यज्ञ वा' के रूप में व्याख्या की गई है ।
तु० की० ऋग्वेद ४. २३, ८ पर सायण भां ।

^२ ऋग्वेद ४. २३, ८ का याम्क ने ('ऋत' की उदाहरण में) निरुक्त १०. ४१ में विवेचन दिया है ।

रघेणान्तारसैः श्रितै स्थितो व्योम्न्येष मायया ।

ऋतस्य श्लोक इत्येष पुनश्चैनं ततोऽब्रवीत् ॥ ४३ ॥

और यतः वह अपनी मायावी शक्ति से गर्जन के साथ बरसनेवाली, आन्तरिक आर्द्रता^१ के साथ आकाश में स्थित है, अतः उमने (वामदेव ने) पुनः^२ उन्हें श्रुत श्लोकों^३ में व्यक्त किया ।

^१ 'जल' के अर्थ के मन्दर्भ में प्रयुक्त (निरुक्त २. २५ - 'ऋतम इत्य् उदकनाम) ;
तु० की० नीचे २. ५० ।

^२ अर्थात् पहले 'सत्य' के रूप में और अब 'जल' (अर्थात् मेघ-जल) के रूप में ।

^३ ऋग्वेद ४. २३, ८ . देविये निरुक्त १०. ४१ ।

८-वास्तोष्पति, वाचस्पति, अदिति, क, यम

वास्तुप्रयच्छ्लोकस्य मध्यमः स तु पाति यत् ।

तेन वास्तोष्पतिं प्राह चतुर्भिरिममौर्वशः ॥ ४४ ॥

यतः मध्यम-स्थान में स्थित होने के कारण वह संसार को आवास प्रदान करते हुये उसकी रक्षा^१ करते हैं, अतः उर्वशी पुत्र (वमिष्ठ) ने उन्हें चार मन्त्रों^२ में 'वास्तोष्पति' (१०) कहा है ।

^१ निरुक्त १०. १६ : 'वास्तोष्पतिर् : वास्तु वसतर् निवामकर्मण्यु, तस्य पाला वा पालयिता वा ।'

^२ ऋग्वेद ८. ५४, १-३, ५५, १ ।

वाचा वेदा ह्यधोयन्ते वाचा छन्दांसि तत्र ह् ।

अथो वाक् सर्वमेवेदं तेन वाचस्पति स्तुतः ॥ ४५ ॥

यतः वेदों को वाणी द्वारा ही ग्रहण, और उनके छन्दों का वाणी द्वारा

ही उच्चारण किया जा सकता है, और यत वाणी ही यह विश्व है, अतः उनकी 'वाणी के अधिपति' (वाचस्पति, ११)^१ के रूप में स्तुति की जाती है।

^१ निरुक्त १० १७ 'वाचस्पतिर वाच पाना वा पालयिना वा।'

न कुतश्चन यदीनो वृत्वा तिष्ठति मध्यमः।

राहूगण ऋपिस्तेन प्राहैनं गोतमोऽदितिम् ॥ ४६ ॥

यत वह ससार को आवृत्त^१ करते हुये मध्यम स्थान में स्थित, और किसी भी दिशा से हीन नहीं हैं, अतः राहूगण गोतम^२ ऋषि ने उन्हें 'अदिति'^३ (१२) कहा है।

^१ तु० वा० ऋग्वेद १० ९० १ न भूमि विभवा वृत्वापध्वर

^२ ऋग्वेद १ ८९ १० में (देखिये निरुक्त ४ २२ २३)।

^३ निरुक्त ४ २२ अदितिर् अगाना त्वनाया।'

प्रजाभ्यस्त्वेप यच्छर्म कमिच्छन्मनसा सुखम्।

हिरण्यगर्भस्तेनैतम् ऋपिर्चक्षुवाच कम् ॥ ४७ ॥

किन्तु यत वह प्राणियों के रक्षक है और अपन हृदय में प्राणियों के सुख^१ की कामना करते हैं, अतः हिरण्यगर्भ^२ ऋषि ने उनकी अर्चना^३ करते हुये उन्हें 'क' (१३) कहा है।

^१ निरुक्त १० २२ (व कननी वा कमगो वा मगो वा) में 'क' का तान व्याख्याओं में से एक 'सुख' भी है।

^२ ऋग्वेद १० १२१ का प्रसिद्ध द्रष्टा, देखिये आर्षानुक्रमणा १० ५९ और ऋग्वेद १० १२१ पर सर्वानुक्रमणा।

^३ तु० की० उपर २ ३० में 'अर्चन्त'।

इह प्रजाः प्रयच्छन्स संगृहीत्वा प्रयाति च।

ऋपिर्विवस्वतः पुत्रं तेनाहैनं यमो यमम् ॥ ४८ ॥

वह यहाँ सतान प्रदान^१ करते हैं, और उनको एकत्र करके दूसरे लोक में ले जाते हैं,^२ अतः यम^३ ऋषि उन्हें विवस्वत्^४ पुत्र 'यम'^५ (१४) कहते हैं।

^१ निरुक्त १० १९ 'यमो यच्छतानि सत।'

^२ तु० की० ऋग्वेद १० १४, १ निमका निरुक्त १० १९ (परनिवामन सगमन अनन्यत्वं) में व्याख्या की गई है।

^३ ऋग्वेद १० १४ का प्रसिद्ध द्रष्टा तु० की० आर्षानुक्रमणा १० ६ और श्म सूक्त पर सर्वानुक्रमणा।

^४ ऋग्वेद १० १४, १ (विवस्वत यमम्)।

^५ तु० की० निरुक्त १० २० 'अदितिर् अग्नि यम उच्यते।'

९-मित्र, विश्वकर्मन् , सस्वत् , वेन, मन्यु
मित्रीकृत्य जना विश्वे यदिमं पर्युपासते ।

मित्र इत्याह तेनैनं विश्वामित्र स्तुवन्स्वयम् ॥ ४९ ॥

यतः सभी मनुष्यगण उन्हें अपना मित्र मान कर उनकी उपासना करते हैं, अतः स्वयं विश्वामित्र^१ भी उनकी स्तुति करते हुये उन्हें 'मित्र' (१५) कहते हैं ।

^१ ऋग्वेद ३ ५९, १ में, जिस पर निरुक्त १०. २२ में टीका की गई है ।

निदाघमासातिगमे यद्वतेनावति क्षितिम् ।

विश्वस्य जनयन्कर्म विश्वकर्मैप तेन सः ॥ ५० ॥

यतः ग्रीष्म मासों की समाप्ति पर वह पृथिवी को जलों^१ से तृप्त और सभी वस्तुओं में क्रियाशीलता^२ उत्पन्न कर देते हैं, अतः उन्हें विश्वकर्मन् (१६) कहते हैं ।

^१ तु० की० ऊपर २ ४३ ।

^२ तु० की० निरुक्त १० २५ : विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता ।'

सरांसि घृतवन्त्यस्य सन्ति लोकेषु यत्त्रिषु ।

सरस्वन्तमिति प्राह वाचं प्राहुः सरस्वतीम् ॥ ५१ ॥

यतः उनके पास तीनों लोकों में घृत से परिपूर्ण सरोवर हैं, अतः ऋषिगण^१ उन्हें 'सरस्वत्'^२ (१७) और 'वाच्' को सरस्वती कहते हैं ।

^१ अर्वाङ् ऋग्वेद ७. ९६. ४-६ में वसिष्ठ; इन मंत्रों में से एक का यास्क (निरुक्त १० २४) ने उद्धरण तो किया है किन्तु व्याख्या नहीं की है ।

^२ यास्क (निरुक्त १० २४) 'सरस्वत्' की व्याख्या नहीं करते, वरन् केवल ऐनी टिप्पणी कर देते हैं : 'सरस्वान् व्याख्यानः ।'

प्राणभूतस्तु भूतेषु यद्वेनत्येषु तिष्ठति ।

तेनैनं वेनमाहर्षिर् वेनो नामेह भार्गवः ॥ ५२ ॥

यतः उनका (भूतों का) प्राण होने के कारण वही उनमें गतिशील^१ हाते हैं, अतः वेन भार्गव^२ नामक ऋषि ने उन्हें 'वेन' (१८) कहा है ।

^१ यास्क (निरुक्त १०. ३८) ने 'श्च्यदा करने' के आशय में 'वेन' की, 'वेन्' क्रिया से व्युत्पन्न हुये होने के रूप में व्याख्या की है (वेनतेः कान्तिवर्माणः) । यह क्रिया नैषण्डुक २. ६ के 'कान्तिकर्माणः' में से एक है; नैषण्डुक २. १४ में यह 'वति-कर्माणः' के अन्तर्गत भी आती है ।

^१ ऋग्वेद १० १०३ का प्रसिद्ध द्रष्टा। इसके प्रथम मन्त्र की यास्क ने निरुक्त १० ३८ में व्याख्या की है। तु० वा० आपानुक्रमणा १० ६० 'विनो नाम मृगो सुतः।'

ससृजे मासि मास्येनम् अभिमत्यं तपोऽग्रजम्।

तेनैनं मन्युरित्याह मन्युरेव तु तापसः ॥ ५३ ॥

यत इच्छा करते हुये अग्रज तप ने उमका प्रतिमाम सृजन किया, अत मन्यु तापस^१ उन्हें 'मन्यु' (१९) कहते हैं।

^१ यास्क (निरुक्त १० २९) ने 'मन्यु' को 'मन्' से व्युत्पन्न माना है (मन्युर मन्यनेर दाग्निकर्मण क्रोधकर्मणो वर्धकर्मणो वा।)

^२ आपानुक्रमणा १० ३३ और ऋग्वेद १० ८३ पर मर्वाणुक्रमणा के अनुसार मन्तु तापसः, ऋग्वेद १० ८३-८४ के द्रष्टा हैं। इस वाद के सूक्त (१० ८४) के प्रथम मन्त्र पर यास्क ने (निरुक्त १० ३० में) टिप्पणी का है।

१०-अमुनीति, अपां नपात्, दधिका, धावृ, तार्क्ष्यं

यदन्तकाले भूतानाम् एक एव नयत्यसून्।

तेनामुनीतिरुक्तोऽयं स्तुवता श्रुतवन्धुना ॥ ५४ ॥

यत जब प्राणी की मृत्यु होता है तो केवल यही उमकी आत्मा का पथ प्रदर्शन करते हैं, अत इनकी स्तुति करनेवाले श्रुतवन्धु^२ ऋषि ने इन्हें 'अमुनीति' (२०) कहा है।

^१ निरुक्त १० ३९ 'अमुनातिर अमुन् नयति।'

^२ ऋग्वेद १० ५९ का प्रसिद्ध प्रणेता। इस सूक्त के पाँचवें मन्त्र पर निरुक्त १० ४०, में टिप्पणी की गयी है।

निदाघमासातिगमे जन्म मध्ये भवत्यपाम्।

नक्षारमाह तेनैनम् ऋषिर्गृत्समद स्तुवन् ॥ ५५ ॥

तस मासों की समाप्ति के समय उनके बीच' इनका जन्म होता है। नत गृत्समद^३ ऋषि ने उनकी स्तुति करते हुये उन्हें 'जलों' का पुत्र' (२१) कहा है।

^१ तु० वा० ऋग्वेद १० ३०, ४ में 'अप्सव अन्तर', पिन पर निरुक्त १० २९ में टिप्पणी की गई है। यहाँ 'मध्यम-स्थान' का तात्पर्य नहीं है, वैसा कि प्रथम वृष्टि में ऊपर २ ४४ में 'मध्यम' तथा २. ३१ में 'मध्यभागन्द्' के प्रयोग से मानने का प्रवृत्ति हो सक्ता है।

^२ ऋग्वेद २ ३५ में (तु० वा० निरुक्त १० २९)।

^३ तु० वा० निरुक्त १० १८ 'अथा नपात् तनूनन्त्रा न्यास्तान', देखिये ऊपर २ २७।

अपामम्बरगर्भोद्यम् आदधत्सोऽष्टमासिकम् ।

यत्क्रन्दत्यसकृन्मध्ये दधिक्रास्नेन कथ्यते ॥ ५६ ॥

यतः वह आठ मास तक आकाश^१ में जलों को धारण कर रखने हैं और उनके बीच कभी-कभी गर्जन^२ भी करते हैं, अतः उन्हें 'दधिक्रा' (२२) कहा गया है ।

^१ त० वी० 'अन्ताग्मा', ऊपर २ ४३ ।

^२ यत् निम्न २ = ७ । उधत् नामनीति वा दधत् क्रन्दतीति वा दधत्कारि मवतीति वा । में ही तुः नाम व्युत्पत्तियों में से एक है ।

मासेन संभृतं गर्भं नवमेनाथ मासिकम् ।

स्वयं क्रन्दन्द्वात्युर्व्या धानेत्यृग्भिः स गीयते ॥ ५७ ॥

उमके पश्चात् स्वयं गर्जन करते हुये नव^१ मास में वह विकसित गर्भ को एक मास तक पृथिवी में स्थापित रखते हैं । अतः (ऋग्वेद की) ऋचाओं में उनका 'धानृ'^२ (२३) के रूप में गायन किया गया है ।

^१ निम्न में हमरी दोः याग्या नदी मिलनी; केवल इतना ही कथन मिलता है : 'वाना मर्त्य विधाना' (११ १०) ।

स्त्रीणोऽन्नरिक्षे क्षियति यद्वा तूर्णं क्षरत्यसौ ।

अरिष्टनेमिस्ताक्षर्यपिस् ताक्षर्य तेनैवमुक्तवान् ॥ ५८ ॥

वह विस्त्रीर्ण^१ अन्तरिक्ष में निवास करते, अथा उममें तीव्र गति से चरित होते हैं; अतः अरिष्टनेमि ताक्षर्य^२ ऋषि ने उन्हें 'ताक्षर्य' (२४) के रूप में व्यक्त किया है ।

^१ निम्न १० २७ 'नार्क्ष्यम् स्वष्टा व्याख्यान' (देविये ८. १३ : स्वष्टा नूर्णम् अस्तुत इति नैम्क्ता) : 'नार्क्ष्योऽन्नरिक्षे क्षियति तूर्णम् अर्धं रक्षन् अर्धोत्तं वा ।' तु० वी० नीचे ३. १६ में श्री हर्ष 'स्वष्टृ' की व्युत्पत्ति मी ।

^२ ऋग्वेद १. १७८ का प्रसिद्ध प्रणेता (आर्षानुक्रमणी १०. ६१), दस मूल के प्रथम मन्त्र पर निम्न १०. २८ में टिप्पणी की गई है ।

११-पुरूरवस्, मृत्यु । सूर्य के नाम : सवितृ, भग

म्यन्दयोम्युदयं याति कृन्तत्राद्विसृजन्नपः ।

पुरूरवसमाहैनं स्ववाक्येनोरुवासिनी ॥ ५९ ॥

आकाश में गर्जन के साथ वह सूर्योदय की ओर अग्रसर होते हुये विहीर्ण गर्भ से वर्षा करते हैं;^१ अतः उरवासिनी^२ (अर्थात् उर्वशी) उन्हें अपने शब्दों^३ में 'पुरूरवस्'^४ (२५) कहती हैं ।

^१ तु० वा० ऊपर १. ९३ ।

^२ यहाँ वह 'उर्वगा' का ही एक व्युत्पन्न रूप है, किन्तु वह वास्क द्वारा निरुक्त १ १३ में दी हुई नानों व्युत्पत्तियों से भिन्न है ।

^३ ऋग्वेद १० ९५, ७ में, (इन पर वास्क ने निरुक्त १० ४७ में टिप्पणी की है ।)

^४ तु० कौ० निरुक्त १० ५६, 'पुस्त्रवा बहुधा रोरुयते ।'

यत्तु प्रच्यावयन्नेति घोषेण महता मृतम् ।

तेन मृत्युमिमं सन्तं स्तौति मृत्युरिति स्वयम् ॥ ६० ॥

नाम्ना संकुसुको नाम यमपुत्रो जघन्यजः ।

संवर्तयंस्तमः सूर्याद् उपसं च प्रवर्तयन् ॥ ६१ ॥

यतः वह अत्यधिक घोष के साथ मृतक' को ले जाते हैं, अतः संकुसुक^२ नामक यम के सबसे छोटे पुत्र स्वयं 'मृत्यु'^३ (२६) के रूप में उनकी स्तुति करते हैं ।

सूर्य से अन्धकार को हटाते और उषा को प्रकट करते हुये,

^१ निरुक्त ११ ५ पर शनवलाक्ष मोहन्व वा व्याख्या (मृत्युर् माग्मनाति मनो, मृत च्यावयानि वा शनवलाक्षो मोहन्व ।)

^२ ऋग्वेद १० १८ का प्रणेता (इसके प्रथम मन्त्र का वास्क ने निरुक्त ११ ७ में उद्धरण दिया है) । तु० वा० अपानुव्रजता १० ८, और ऋग्वेद १० १८ पर मर्दानुक्रमणी ।

^३ इन नामों में से तेजस तो नैघण्टुक ५ ४ में, और नील (अग्नि, वात, मृत्यु) ५ ५ में प्राये हैं । इनमें से अग्निवाश की निरुक्त १० में व्याख्या वा गर है ।

दिवाकरं प्रसौत्येकः सविता तेन कर्मणा ।

उदितो भासयंल्लोकान् इमांश्चैप स्वरश्मिभिः ।

स्वयं वसिष्ठस्तेनैनम् ऋषिराह स्तुवन्भगम् ॥ ६२ ॥

भकेले वही दिन के तारे को अग्रसर' करते हैं : इस कर्म के कारण उन्हें 'मवितृ' (१) कहते हैं । और यतः वह अपनी रश्मियों से इन लोकों को भासमान करते हुये उदित हुये, अतः स्वयं वसिष्ठ^३ स्तुति करते हुये उन्हें 'भग'^३ (२) कहते हैं ।

^१ तु० कौ० निरुक्त १० ३१ 'सविता मरुतस्य प्रमविता ।' सूर्य के मान नानों की गणना इमी श्लोक से आरम्भ होनी है ।

^२ ऋग्वेद ७. ४१, ० के प्रणेता (इन पर निरुक्त १२. १४ में टिप्पणी वा गर है ।)

^३ तु० कौ० निरुक्त ३ १६ 'रात्रेर् जरणिता स एव भासाम् ।'

१२-पूपन्, विष्णु, केशिन्, विश्वानर, वृषाकपि
पुष्यन् क्षितिं पोषयति प्रणुदन् रश्मिभिस्तमः ।

तेनैनमस्तौत्पूषेति भरद्वाजस्तु पञ्चभिः ॥ ६३ ॥

पोषण करते हुये वह पृथिवी की जीवन-वृद्धि, और रश्मियों^१ से अन्धकार को विसर्जित करते हैं; अतः भरद्वाज ने उनकी पाँच सूक्तों^२ में 'पूपन्' (३) के रूप में स्तुति की ।

^१ तु० की० निरुक्त १२. १६ : 'यद् रश्मिपोषं पुष्यति तन् पूषा भवति ।'

^२ ऋग्वेद ६ ५३-५६ और ५८ । इस वाद के सूक्त के प्रथम मन्त्र पर यास्क ने निरुक्त १२ १७ में टिप्पणी की है । तु० की० नीचे ५. ११८ ।

त्रोणि भान्ति रजांस्यस्य यत्पदानि तुतेजसा ।

तेन मेधातिथिः प्राह विष्णुमेनं त्रिविक्रमम् ॥ ६४ ॥

यतः तीनों क्षेत्र उन्हीं के पादों के रूप में प्रकाशमान होते हैं, अतः मेधातिथि^१ उन्हें तीन पाद-प्रक्षेप करनेवाला 'विष्णु' (४) कहते हैं ।

^१ ऋग्वेद १. २२, १७, जिस पर यास्क ने निरुक्त १२. १९ में टिप्पणी की है ।

ऋग्वेद के इस मूल स्थल के 'त्रेधा निदधे पदम्' शब्दों की व्याख्या करते हुये यास्क ने शाकपूणि के इस मत का उद्धरण दिया है कि इनसे तीन लोकों (पृथिव्याम् अन्नरिक्षे दिवि) का नात्पर्य है । बृहदेवता के प्रस्तुत शोक में भी इसी मत का अनुसरण किया गया है ।

कृत्वा सायं पृथग्याति भूतेभ्यस्तमसोऽत्यये ।

प्रकाशं किरणैः कुर्वस् तेनैनं केशिनं विदुः ॥ ६५ ॥

यतः अल्पकालिक पृथक्-निवास के पश्चात् अन्धकार के प्रस्थान के समय वह अपनी रश्मियों से जीवों के लिये प्रकाश^१ उत्पन्न करते हैं, अतः ऋषियगण उन्हें 'केशिन्' (५) कहते हैं ।

^१ तु० की० निरुक्त १२. २५ : 'केशी, केशा रश्मयस्, तस् तद्वान् भवति, काशनाद् वा प्रकाशनाद् वा ।' तु० की० ऊपर १. ९४ में ।

संप्रत्येकैकशस्त्वेनं यन्मन्यन्ते पृथङ्नराः ।

विश्वे विश्वानरस्तेन कर्मणा स्तुतिषु स्तुतः ॥ ६६ ॥

यतः सभी मनुष्य अपने अपने मत के अनुसार, और पृथक्-पृथक्, उनके सम्बन्ध में ही विचार^१ करते हैं, अतः इस कार्य के कारण उनकी 'विश्वानर' (६) के नाम से स्तुति की जाती है ।

^१ यास्क की व्याख्या में 'मन्' नहीं वरन् 'नी' क्रिया का प्रयोग हुआ है : 'विश्वान् नरान् नयति विश्व एनं नरा नयन्तीति वा' (निरुक्त ७. २१ ।)

वृषैष कपिलो भूत्वा यज्ञाकमधिरोहति ।
 वृषाकपिरमौ तेन विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।
 रश्मिभिः कम्पयन्नेति वृषा वर्षिष्ठ एव सः ॥ ६७ ॥
 सायाह्नकाले भूतानि स्वापयन्नस्तमेति यत् ।
 वृषाकपिरिनो वा स्याद् इति मन्त्रेषु दृश्यते ॥ ६८ ॥
 त्रिषु धन्वेति होन्द्रेण प्रयुक्तो वारिपाकपे ।

यत एक कपिल वृषभ^१ का रूप धारण करके यह आकाश में ऊपर चढ़ते हैं, अतः 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तर'^२ (ऋग्वेद १० ८६, २) ऋचा में यह 'वृषाकपि' (७) है, (अथवा) यह उतत्तम वृषभ अपनी रश्मियों^३ से कम्पित करते हुये जाते हैं, क्योंकि यह सन्ध्या-समय प्राणियों को प्रसुप्त^४ करते हुये अपने गृह को आते हैं, इस कारण इनका 'वृषाकपि' नाम इस कर्म से भी व्युत्पन्न हुआ हो सकता है । वृषाकपि मूक्त^५ की 'धन्व' से आरम्भ होनेवाली तीन ऋचाओं (ऋग्वे० १० ८६, २०-२२) में इन्द्र ने इनकी इसी प्रकार स्तुति की है ।

^१ तु० का० नाचे ७ १४१ ।

^२ ऋग्वेद १० ८६ मूक्त के शकामवे मन्त्र पर यास्क ने निरुक्त १२ ०८ में टिप्पणी की है ।

^३ यह दूसरा व्युत्पत्ति यास्क के निरुक्त १२ २७ (यद् रश्मिभिः अभिप्रकम्पयन्न एति नद् वृषाकपिर भवति वृषाकम्पन) पर आधारित है ।

^४ इमते 'रश्मिभिः कम्पयन्न एति' की व्याख्या की गई है ।

^५ श्लोक में इन्द्र की आवश्यकता के कारण ही कदाचित् 'वारिपाप' के स्थान पर 'वारिपाकप' का प्रयोग किया गया है ।

१३-विष्णु की व्युत्पत्ति । नैपातिक नामों की गणना नहीं कराई जा सकती

विष्णातेर्विशनेर्वा स्याद् वेवेष्टेर्यासिकर्मणः ।
 विष्णुर्निरुच्यते सूर्यः सर्व सर्वान्तरश्च यः ॥ ६९ ॥

व्यासि को व्यक्त करते हुये 'विष्णु' नाम 'विष्' (विष्णाति) अथवा 'विष्' (विशति) अथवा 'वेविष्' (वेवेष्टि)^१ (धातु) से व्युत्पन्न हुआ है, अतः विष्णु की उस सूर्य के रूप में व्याख्या की गई है जो सब कुक्ष^२ और सब में व्याप्त है ।

^१ ऊपर ६४ वें श्लोक में न ही गई जाने के कारण विष्णु का व्युत्पत्ति को यहाँ सूर्य के नामों का तात्पर्य के अन्त में दिया गया है ।

^१ तु० की० निरुक्त १०. १८ : 'अथ यद् विधितो भवति तद् विष्णुर् भवति, विष्णुर् विशंत वा व्यश्रोतेर वा ।'

^२ तु० की० नीचे २. १५८ ।

पञ्च पङ्क्तिशतिश्चैव यानि नामानि सप्त च ।

सम्यग्ग्रीन्द्रसूर्याणां तान्युक्तानि यथाक्रमम् ॥ ७० ॥

इस प्रकार 'अग्नि के पाँच, इन्द्र के छत्तीस, और सूर्य' के सात नामों का यथाक्रम वर्णन किया गया ।

^१ तु० का० ऊपर ० ०२ ।

नैपातिकानां नाम्नां तु प्रागुक्तैर्नामलक्षणैः ।

संपन्नानां पृथक्त्वेन परिसंख्या न विद्यते ॥ ७१ ॥

किन्तु उक्त^१ नामगत लक्षणों के साथ-साथ आनेवाले नैपातिक नामों^२ की पृथक् गणना विद्यमान नहीं है ।

^१ ऊपर १. ८६-८८ ।

^२ 'नवान् उदात्तगण के लिये 'वृत्रहन्' जैसी उपाधियों की, जो नियमित नामों (जैसे 'इन्द्र') के साथ आती ह, गणना नहीं कराई जा सकती । तु० की० निरुक्त ७. १३ : 'अभिवानैः मयुज्य हविश् चोदयतीन्द्राय वृत्रह इन्द्राय वृत्रतुर इन्द्रावाहोमुच इति, नान्-अप् एके समामनन्ति, भूयासि तु समाम्नानात् ।' तु० की० नीचे ० ९३ भी ।

१४-त्रिविध-वाच् : उसके पार्थिव और मध्यम रूप

पार्थिवी मध्यमा दिव्या वागपि त्रिविधा तु या ।

तस्याः सूक्तानि नामानि यथास्थानं निबोधत ॥७२॥

'वाच्' के भी, जो पार्थिव, मध्यम और दिव्य रूपों में त्रिविध है, स्थानानुसार नामों और सूक्तों (के विवरण) को सुनें ।

कृत्स्नं तु भजते सूक्तम् एषा नद्य स्तुता भुवि ।

यदा चैनं भजन्त्यापो यदा चौपधयो यदा ॥ ७३ ॥

ऐसे सभी सूक्तों को जिनमें पृथिवी के नदियों की, जलों, और पौधों^१ की, स्तुति हो, सम्पूर्णतः. इसके ही सूक्त जानना चाहिये ।

^१ नदियों, जलों, पौधों का यहाँ उसी क्रम से उल्लेख है जो नैपण्डुर ५. ३ और ऊपर १. ११२ में मिलता है ।

अरण्यानी च रात्री च श्रद्धा चोपाः सरस्वती ।

पृथिवी चैव नामैषा भूत्वाप्वर्चं भजन्ति च ॥ ७४ ॥

और जब यह अरण्यानी और रात्री, श्रद्धा, उपस्, तथा पृथिवी नाम से, और आप्ना क रूप में जाती है, तो भी (इन विविध नामों से) इसकी ही स्तुति होती है ।

^१ ऋग्वेदे नाचे श्लोक ७५ पर प्रथम विष्णोर्णा ।

अग्रायी नामनोऽप्येषा भूत्वाग्नेयेषु केषुचित् ।

स्तुता निपातमात्रेण तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ ७५ ॥

और जब यह अग्रायी बन जाती है तो (श्रद्धा के) विभिन्न स्थलों पर अग्नि को सम्बोधित सूक्तों में इसकी केवल नैपानिश् स्तुति ही होती है ।

^१ देविय के उपरोक्त ग्याह नाम। म से नी नी नैषण्डुः २ (नय से जगाना नय) का पार्थिव देविय की मूत्रा के हा समान ह और उपम तथा मरस्वत को नैषण्डुः () की जन्मिच्छ देवियों का मूत्रा से लिया गया है । देविय की यह मूत्रा ऊपर १ ११२ का तम ऋषियों का मूत्रा के समान है (न हें पार्थिव अग्नि के साथ सम्बद्ध किया गया है) किन्तु जन्त केवल तना नि उक्त श्लोक का इला' के स्थान पर यहाँ उपम' और सरस्वती को सम्मिलित कर लिया गया है ।

मध्ये सत्यदिनिर्वाक् च भूत्वा चैषा सरस्वती ।

समग्रं भजते सूक्तं त्रिभिरेव तु नामभिः ॥ ७६ ॥

जब मध्यम स्थान के वाच् के रूप में यह अदिति और सरस्वती बन जाती है, तब भी केवल अपने तीन नामों से यही सम्पूर्ण सूक्त की 'भागिनी' होती है ।^२

^१ म ७६ में लय ७५ में श्लोक तक मध्यम वाच के दिन उक्तास नामों का गणना नगद गई है उनमें से 'रोमणा' (और दुर्गा) को छोड़कर अन्य सभी नैषण्डुः ५ ५ (मध्यस्थानीय देवियों) में मिलने ह, और देवपत्य को नैषण्डुः ५ ६ (दिव्य देवियों) से लिया गया है । तब कि नैषण्डुः ५ ५ की चार देवियों के नाम (पृथिवी, तैरा, उपम, और इला) को छोड़ दिया गया ह । यह सभी अधिकांश ऊपर (१ १२८ १२९) वर्णित इन्द्र से सम्बन्धित देवियों के हा समान है ।

^२ अर्थात् मध्य-स्थानाय 'वाच्' केवल इन्हा तान नामों से 'सूक्तभाज' है, तब कि अन्य नामों से, जो नैपानिक ह यह केवल 'ऋग्भाज मात्र हा होता है ।

१५-वाच् के अन्य मध्य-स्थानीय रूप; इसके चार दिव्य रूप
एषैव दुर्गा भूत्वर्च कृत्वा स्यात्सूक्तभागिनी ।^१
तन्नामानि यमीन्द्राणी सरमा रोमशोर्वशी ।

भवत्यग्र्या सिनीवाली राका चानुमतिः कुहूः ॥ ७७ ॥

[दुर्गा बन कर और एक ऋचा का उच्चारण करते हुये यह (सम्पूर्ण)
सूक्त की भागिनी होती है]^१ । इसके अन्य नाम यमी, इन्द्राणी, सरमा,
रोमशा,^२ उर्वशी है; यह सर्वप्रथम^३ सिनीवाली और राका, अनुमति,
तथा कुहू, बनती है;

^१ इसमें सन्देह नहीं कि यह पक्ति प्रक्षिप्त है, क्योंकि वैदिक देवी न होने के कारण
'दुर्गा' का नैषण्टुक में उल्लेख नहीं है ।

^२ उपरोक्त नामों में से केवल यही एक ऐसा है जो नैषण्टुक ५. ५. ६ में नहीं आता ।
तु० की० ऊपर ७६वें श्लोक की टिप्पणी ।

^३ इससे कदाचित्त यह तात्पर्य है कि नैषण्टुक ५. ५ में अनुमति, राका, सिनीवाली,
और कुहू का क्रम यमी, उर्वशी, पृथिवी, और इन्द्राणी के पहले आना है ।

गौर्धेनुर्देवपत्न्योऽध्वन्या पथ्या स्वस्तिश्च रोदसी ।

नैपातिकानि ऋग्भाञ्जि येषां नामानि कानिचित् ॥ ७८ ॥

और इनके बाद गो, घेनु, देवी की पत्नियों, अध्वन्या, पथ्या, स्वस्ति,
तथा रोदसी । जिस देवता^१ का नाम नैपातिक^२ रूप से आता है वह केवल
उम ऋचा विशेष का ही भागी होता है ।

^१ यहाँ 'येषां' का सामान्य प्रयोग हुआ है अतः इससे केवल गण पत्नियों में वर्णित
देवियों मात्र का आशय नहीं है ।

^२ अर्थात् मन्त्र-वाच् के नैपातिक नाम (७४, ७५ वें श्लोक में वर्णित इसके पार्थिव
रूपों के ही समान) केवल 'ऋग्भाञ्ज' मात्र होते हैं, 'सूक्तभाञ्ज' नहीं, जैसे कि
७६ वें श्लोक (तथा ७३ वें और ७९ वें) के इसके नाम हैं ।

यदा तु वाग्भवत्येषा सूर्यामुं लोकमाश्रिता ।

तथा सूक्तमुपा भूत्वा सूर्या च भजतेऽखिलम् ॥ ७९ ॥

किन्तु जब यह वाच् 'सूर्या' बन जाती है तो यह दिव्य लोकगत हो
जाती है; अतः उपसू, और साथ ही साथ सूर्या के रूप में यह सम्पूर्ण सूक्त की
भागिनी होती है ।^१

^१ यह दिव्य वाच् के प्रधान नाम हैं, इसी कारण सूर्या को एक (ऋग्वे० १०. ८५)
तथा उपसू को अनेक सम्पूर्ण सूक्त समर्पित हैं ।

वृषाकपाद्यृचं भूत्वा सरण्यूर्ध्वं च ते ध्रुवम् ।

निपातमात्रं भजते द्युवच्च पृथिवी सती ॥ ८० ॥

और जब वह वृषारूपायी (और) सरण्यु^१ बन जाती है तो यह दोनों रूपों में नि सन्देह ऋचा^२ की ही भागिनी होती है। जब यह ध्रुवत्^३ और पृथिवी होती है तो यह केवल नैपातिक^४ रूप में ही किसी ऋचा की भागिनी होती है।

^१ उपम सूर्या, वृषारूपाया और सरण्यु का, साथ साथ और इमा क्रम से दिव्य क्षेत्र की देविय के रूप में नैषण्डुक ६ ६ में उल्लेख है।

^२ वृषाकपाया और सरण्यु का ऋग्वेद (क्रमशः १० ८६, १३ और १० १७, ०) में केवल एक एक बार ही उल्लेख है।

^३ अर्थात् दिव्य स्थानीय होने के रूप में, क्योंकि पृथिवी का नैषण्डुक ५ ३, ५, ६, में स्थानों का स्थानों में से प्रत्येक के अन्तर्गत उल्लेख है।

^४ पृथिवी को केवल एक ही सम्पूर्ण (तान ऋचाओं के) मूक्त (ऋग्वेद ५ ८४) में सम्बोधित किया गया है, जहाँ इसे नाचे (५ ८८ में) 'भृगमा' कहा गया है। किन्तु ऊपर २ ७४, ७६, ८०, के अनुसार पृथिवी का कोई भी रूप 'सूक्तमान' नहीं है।

सूर्यामेव सतीमेतां गौरीं वाचं सरस्वतीम् ।

पश्यामो वैश्वदेवेषु निपातेनैव केवलाः ॥ ८१ ॥

हम देखते हैं कि जब यह वाच् सूर्या, गौरी^१ और सरस्वती होती है तो इसके यह नाम केवल विश्वदेवों की स्तुति करनेवाले सूक्तों में केवल नैपातिक रूप से ही आते हैं।

^१ मायस्थान (नैषण्डुक ५ ५) की एक देवी जिसको ऊपर (७७ वें और ७८ वें श्लोक में) की गणनाओं में छोड़ दिया गया है। निरुक्त १२ ४०, ४१, में ऋग्वेद १ १६४, ४१-४२, को 'गौरी' के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है।

१६-स्त्री द्रष्टियों के नाम . तीन वर्ग

घोषा भोधा विश्ववारा अपालोपनिपन्निपत् ।

ब्रह्मजाया जहर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः ॥ ८२ ॥

इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्षशी ।

लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती ॥ ८३ ॥

श्रीर्लाक्षा सार्वराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा । रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ॥ ८४ ॥

घोषा^१, गोघा^२, विश्ववारा^३, अपाला^४, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया जिसका नाम जुहू^५ है, अगस्त्य की भगिनी^६, अदिति^७, इन्द्राणी^८ और इन्द्र की माता^९, सरमा^{१०}, रोमशा^{११}, उर्वशी^{१२} और लोपामुद्रा^{१३} और नदियों^{१४}, यमी^{१५} तथा पत्नी दक्षती^{१६}, श्री^{१७}, लाक्षा^{१८}, सार्वराज्ञी^{१९}, वाक्^{२०}, श्रद्धा^{२१}, मेधा^{२२}, दक्षिणा^{२३}, रात्री^{२४} और सूर्या सावित्री^{२५}, इन सभी को ऋषि अथवा ब्रह्मवादिनी कहा गया है ।^{२६}

^१ ऋग्वेद १०. ३९, ४० ।

^२ ऋग्वेद १०. १३४, ६-७ ।

^३ ऋग्वेद ५. २८ ।

^४ ऋग्वेद ८. ९१ ।

^५ यह दोनों 'प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्य' से आरम्भ होनेवाली मान ऋचाओं के ऋषि की द्राष्टियों हैं जिनका कश्मीर की ऋषियों की पाण्डुलिपि में इस प्रकार वर्णन है : 'प्र', सप्त, ब्राह्मणो [अर्थात् ब्राह्मण्यै = ब्रह्मवादिन्यै] निषदुपनिषदौ' ।

^६ ऋग्वेद १०, १०९ की ऋषि जुहू ब्रह्मजाया, देखिये आपानुक्रमणा १०. ५१, और ऋग्वेद १० १०९ पर सर्वानुक्रमणी ।

^७ ऋग्वेद १०. ६०, ६ की ऋषि, तु० की० आपानुक्रमणी १०. २४; ऋग्वेद १०. ६० पर सर्वानुक्रमणी ।

^८ ऋग्वेद ४. १८ की कुत्र ऋचाओं की ऋषि ।

^९ ऋग्वेद १०. ६८ (की अनेक ऋचाओं) और १४५ ।

^{१०} 'इन्द्रमातरः' को ऋग्वेद १०. १५३ में ऋषि बताया गया है; आपानुक्रमणी, १०. ७९ ।

^{११} ऋग्वेद १०. १०८ की अनेक ऋचाओं में ।

^{१२} ऋग्वेद १. १२६, ७ ।

^{१३} ऋग्वेद १०. ९५ की अनेक ऋचाओं में ।

^{१४} ऋग्वेद १. १७९, १. २१ ।

^{१५} ऋग्वेद ३. ३३ की कुत्र ऋचाओं में ।

^{१६} अर्थात् ऋग्वेद १०. १० और १५४ में 'यमी वैवस्वती' ।

^{१७} ८. १, ३४; तु० की० ऋग्वेद ८. १, पर सर्वानुक्रमणी, और नीचे ६. ४० ।

^{१८} ऋग्वेद ५. ८७ के बाद के ऋषि या श्रीमूक्त की ऋषि ।

^{१९} ऋषि की ऋषि; तु० की० नीचे ८. ५१ ।

^{२०} ऋग्वेद १०. ८९ ।

^{२१} ऋग्वेद १०. १२५ ।

^{२२} ऋग्वेद १०. १५१ ।

^{२३} ऋग्वेद १०. १५१ के बाद के ऋषि, या मेधामूक्त की ऋषि ।

^{२४} ऋग्वेद १०. १०७ ।

^{२५} ऋग्वेद १०. १०७ ।

^{२६} ऋग्वेद १०. ८५ ।

^{२७} यह तीनों श्लोक (८२-८४) आपानुक्रमणी (१०. १००-१०२) के समान हैं ।

नबकः प्रथमस्त्वासां वर्गस्तुष्टाव देवताः ।

ऋषिभिर्देवताभिश्च समृदे मध्यमो गणः ॥ ८५ ॥

इन ऋषियों में से नौ^१ के प्रथम वर्ग ने देवताओं की स्तुति की, बीच के वर्ग^२ ने ऋषियों तथा देवताओं से वार्तालाप किया ।

^१ अर्थात् तिनकी ऊपर ७ ८ में गणना कराए गए हैं ।

^२ वह नौ तिनकी ऊपर ७ ८ में गणना कराए गए हैं ।

आत्मनो भाववृत्तानि जगौ वर्गस्तथोत्तमः ।

उत्तमस्य तु वर्गत्य य ऋषिः सैव देवता ॥ ८६ ॥

इनके अन्तिम वर्ग ने 'आत्मा' की 'भाववृत्ति' का गायन किया । इस अन्तिम वर्ग में से (किसा एक द्वारा रचित सूक्त का) जो ऋषि है वह स्वयं देवता भी^३ है ।

^१ 'भाववृत्ति' का परिभाषा के लिये देखिये गात्रे = १० ।

^२ सर्वानुक्रमणी के अनुसार 'म पाराश (ऋग्वे० १० १८० 'आत्मदेवता'), 'वाच (ऋग्वे० १० १२५ 'तुष्टानात्मानम । 'धृडा' (ऋग्वे० १० १२१), 'न्धिष्णा' (ऋग्वे० १० १०७) 'गथा (ऋग्वे० १० १२७) 'सूर्या मरुतिता' (ऋग्वे० १० ८० 'आत्मदेवता') गति की ग्ना में ऋषि तथा देवता दोनों एक ही हैं । अन्य तीन (आत्मा आँ मेषा) तिनके ऋषि तथा देवता हैं ।

^३ क्योंकि स्तुति का विषय 'आत्मा' है ।

१७-आत्म-स्तुतियों तथा संवाद वाक्यों के देवता, निपात

आत्मानमस्तौद्वर्गस्तु देवतां यस्तथोत्तमः ।

तस्मादात्मस्तवेषु स्याद् य ऋषिः सैव देवता ॥ ८७ ॥

इस प्रकार इस अन्तिम वर्ग के प्रत्येक ने देवता के रूप में अपनी स्तुति की है, अतः इस आत्म स्तुति में जो ऋषि है वह साथ ही साथ देवी भी है ।

संवादेष्वाह वाक्यं यः स तु तस्मिन्भवेदृषिः ।

यस्मेनोक्ष्येत वाक्येन देवता तत्र सा भवेत् ॥ ८८ ॥

जो वाक्यों का संवाद के रूप में उच्चारण करता है, उसे ही उसमें

(संवाद-वाक्य मे) ऋषि', और उस संवाद-वाक्य द्वारा जो सम्बोधित हो उसे ही उसमें देवता मानना चाहिये ।^१

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणा . 'यस्य वान्यं स ऋषिः' ।

^२ तु० की० वही : 'या तेनोच्यते सा देवता', और देखिये ऋग्वेद १. १६५ पर पद्गुणशिष्य की देवतानुक्रमणी ।

उच्चावचेपु चाथेषु निपाताः समुदाहृताः ।

कर्मापसंग्रहार्थं च क्वचिच्चौपम्यकारणात् ॥ ८९ ॥

'निपातों' की विभिन्न आशयों में—सम्बद्धात्मक क्रियाओं के उद्देश्य से, और अवसर उपमा के उद्देश्य से—गणना कराई गई है ।^१

^१ तु० की० निरुक्त १. ४ : 'अथ निपाता उच्चावचेष्ु अथेषु निपतन्त्य् अप्य् उपमा-र्थेऽपि कर्मापसंग्रहार्थं ।'

ऊनानां पूरणार्था वा पादानामपरे क्वचित् ।

मिताक्षरेषु ग्रन्थेषु पूरणार्थास्त्वनर्थकाः ॥ ९० ॥

पुनः अन्य का दोषपूर्ण पादों को पूर्ण^१ करने के लिये प्रयोग किया जाता है । ऐसे निपात, जिनका छन्दःआत्मक स्थलों पर केवल पादों की दोषपूर्ति मात्र की दृष्टि से प्रयोग किया जाता है वह निरर्थक होते हैं :^२

^१ तु० की० निरुक्त १. ४ : 'अथ निपाताः.....अपि पदपूर्णाः' ।

^२ निरुक्त १. ९ पर आधारित : 'अथ ये प्रवृत्तेऽर्थेऽमिताक्षरेषु ग्रन्थेषु वाक्यपूरणा आगच्छन्ति, पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्ु अनर्थकाः कम् ईम् इद् इत् इति ।' इनके उदाहरण निरुक्त १. १० में उद्धृत हैं । तु० की० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२. ९, और वाजसनेयि संहिता प्रातिशाख्य २. १६ ।

कर्मीमिद्विति विज्ञेया ये त्वनेकार्थकाश्च ते ।

इव न चिन्नु चत्वार उपमार्था भवन्ति ते ॥ ९१ ॥

ऐसे निपातों के अन्तर्गत 'कम्', 'ईम्', 'इद्', 'व्' आते हैं ।^१ किन्तु निपात ऐसे भी होते हैं जिनके विभिन्न आशय होते हैं । 'इव', 'न', 'चिद्', 'नु', यह चार ऐसे हैं जिनका उपमार्थक आशय है ।^२

^१ निरुक्त १. ९ ।

^२ निरुक्त १. ४ : 'एते चत्वार उपमार्थे भवन्तीति' ।

उपमार्थे नकारस्तु क्वचिदेव निपात्यते ।

मिताक्षरेषु ग्रन्थेषु प्रतिषेधे त्वनल्पशः ॥ ९२ ॥

छान्दा मक ग्रन्थों म निपात के रूप में 'न' उपमार्थक आशय में केवल कभी कभी ही, किन्तु 'नकारात्मक' आशय में बहुधा प्रयुक्त होता है।^१

^१ तु० का० निरुक्त १ ४ 'नेति प्रतिषेधार्थो भाषायाम्, उभयम् अन्वध्याय प्रतिषेधार्थीय उपमार्थीय ।'

इयन्त इति संख्यानं निपातानां न विद्यते ।

वशात्प्रकरणस्यैते निपात्यन्ते पदे पदे ॥ ९३ ॥

निपात कितने हैं इसकी ठीक ठीक गणना विद्यमान नहीं।^१ प्रकरण के अनुसार निपातों का पद पद पर प्रयोग होता है।^१

^१ ऋग्वेद प्रातिशाख्य १० ९ में भी इन्हा शब्दों (नेयन्त इत्य अरित सख्या) का प्रयोग है किन्तु वानसनेपि महिला प्रातिशाख्य (२ १६ और ८ ५७) में इनका सख्या चौदह िनाइ गइ है। फिर भी, वास्क, निरुक्त १ ४ और वात्, में बादम का उल्लेख करते हैं, जिसके अन्तर्गत वानसनेपि महिला प्रातिशाख्य में उद्धृष्टिन सख्या में से पाँच नहीं आते।

^२ तु० का० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ९ (अथवशात्) । देखिये हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि ।

१८-उपसर्ग, लिङ्ग

उपसर्गास्तु विज्ञेयाः क्रियायोगेन विंगतिः ।

विवेचयन्ति ते ह्यर्थं नामाख्यातविभक्तिषु ॥ ९४ ॥

क्रिया के योग^१ से उपसर्गों की सत्ता बीम^२ जाननी चाहिये, यह (उपसर्ग) सज्ञा और क्रिया (आख्यात)^३ की विभक्तियों में अर्थ भेद^४ उत्पन्न कर देने हैं ।

^१ तु० का० पाणिनि १ ४, ५९ 'उपसर्गा क्रियायोगे ।'

^२ ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ६, ७ में स्पष्ट रूप से इसा सत्ता का उल्लेख है। निरुक्त १ ३ वानसनेपि महिला प्रातिशाख्य ६ २४, और प्रादय 'गण, म भा गही सख्या मानी गई है।

^३ तु० का० निरुक्त १ ३ नामाख्यातयोर अधविकरणम् ।'

^४ तु० का० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १२ ८ 'उपसर्गो विशेषणम् ।'

अथ अदन्तरित्येतान् आचार्यः शाकटायनः ।

उपसर्गान् क्रियायोगान् येने ते तु त्रयोऽधिकाः ॥ ९५ ॥

'अद्य', 'अद्', 'अन्तर'—इन्हें आचार्य शाकटायन ने क्रिया के साथ योग के कारण उपसर्ग माना है, इनके अन्तर्गत तीन और आत हैं ।

^१ 'अल्म्', 'अन्तर्' और 'अद्' पाणिनि १. ४, ६४, ६५, ६९ में 'गतिर्वा' है। पाणिनि १. ८, ५०, के वाचिक-कार ने उपसर्गों की तालिका में 'अद्' भी सम्मिलित कर दिया है।

त्रीण्येव लोके लिङ्गानि पुमान् स्त्री च नर्पुंसकम् ।

नामसूक्तप्रयोगेषु वाच्यं प्रकरणं तथा ॥ १६ ॥ .

लोक-प्रचलित लिङ्गों की संख्या तीन है, यथा : पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और क्लीबलिङ्ग।^१ संज्ञा, जिनका प्रयोग बताया जा चुका है,^२ के प्रकरण का इस प्रकार वर्णन किया जाना चाहिये।^३

^१ तु० की० उ० १. ६० :

^२ इसमें सम्भवतः ऊपर १. २३-४५ का तात्पर्य है।

^३ अर्थात् लिङ्ग के सम्बन्ध में।

१९-संज्ञा, सर्वनाम, आशय; अन्वय

तेषां तु नामभिलिङ्गैर् ग्रहणं सर्वनामभिः ।

कृताकृतस्य सदृशो गृहीतस्य पुनर्ग्रहः ॥ १७ ॥

इन नामों का न केवल संज्ञाओं के ही, धरन् लिङ्ग के माध्यम से भी उल्लेख होता है। सर्वनामों के द्वारा किसी पूर्वोद्धृत संज्ञा का, और इसी प्रकार किसी कृत अथवा अकृत कार्य का बार-बार उल्लेख किया जाता है।

पादसूक्तकर्गर्धर्चनामान्यन्यानि यानि च ।

सर्वे नामानि चैवाहुर् अन्ये चैवं यथा कथा^१ ॥ १८ ॥

सभी (आचार्य) यह कहते हैं कि श्लोकों, सूक्तों, ऋचाओं, अर्ध-ऋचाओं में, और अन्वय भी वही आनावाले नाम, संज्ञा होते हैं; कुछ लोग परिस्थिति के अनुसार भी इन्हें ऐसा कहते हैं।

^१ त्रियाविशेषण 'कथा' का कुछ प्राचीन सा प्रयोग हुआ है, तु० की० निरुक्त ८. ३ और १०. २६ में 'यथा कथा न'।

प्रधानमर्थः शब्दो हि तद्गुणायत्त इष्यते ।

तस्मान्नानान्वयोपायैः शब्दानर्थवशं नयेत् ॥ १९ ॥

आशय ही प्रधान होता है,^१ क्योंकि किसी शब्द को आशय^२ के गुणों पर निर्भर रहना पड़ता है; अतः अन्वय के विविध उपायों द्वारा हमें शब्दों को आशय के अन्तर्गत लाना चाहिये।

^१ तु० की० निरुक्त २. १. 'अर्धनित्य. पराश्वेत' ।

^२ यहाँ श्लोक में 'तद्' से 'अर्थ.' का ही सन्दर्भ होना 'शब्दान् अर्थवश नयेत्' द्वारा स्पष्ट है ।

अतिरिक्तं पदं त्याज्यं हीनं वाक्ये निवेशयेत् ।

विप्रकृष्टं च संदध्याद् आनुपूर्वीं च कल्पयेत् ॥१००॥

अतिरिक्त पदों का त्याग, जब कि अनुपस्थित पद का वाक्य में समावेश करना चाहिये; और ऐसा शब्द जो बहुत दूर हो उसे सन्निकट लाना, तथा उसके बाद शब्दों के क्रम को यथोचित रूप में व्यवस्थित करना चाहिये ।

लिङ्गं धातुं विभक्तिं च संनमेत्तत्र तत्र च ।

यद्यत्स्याच्छान्दसं मन्त्रे तत्तत्कुर्यात्तु लौकिकम् ॥१०१॥

लिङ्ग, धातु और विभक्ति को उनके अपने अपने स्थान पर ही (आशय के अनुकूल) प्रहण^१ करना चाहिये । किसी भी मन्त्र में जो कुछ भी वैदिक हो उसे लौकिक^२ बना लेना चाहिये ।

^१ तु० की० निरुक्त २. १ 'वधार्थं विभक्ती मनमयेत्' ।

^२ तु० की० ऊपर १. ४ और २३ ।

२०-शब्दों का विग्रहः समास के छः प्रकार

यावतामेव धातूनां लिङ्गं रुढिगतं भवेत् ।

अर्थश्चाप्यभिधेयः स्यात् तावद्भिर्गुणविग्रहः ॥१०२॥

रुढिगत विशिष्ट गुणों से युक्त, और जिनसे आशय को व्यक्त किया जा सकता है, उन धातुओं की सहायता से गुणों का विग्रह करना चाहिये ।

^१ 'धातु' से यहाँ प्रकृति^१ अथवा 'प्रधान' रूप का तात्पर्य है, तु० की० नीचे २. १०८, और ५. ९६ ।

धातूपसर्गावयवगुणशब्दं द्विधातुजम् ।

यद्देकधातुजं वापि पदं निर्वाच्यलक्षणम् ॥ १०३ ॥

दो धातुओं, अनेक धातुओं, अथवा एक धातु से ही व्युत्पन्न पद ऐसी ध्वनि (शब्द) से युक्त होता है जिसमें धातु, उपसर्ग अवयव और गुण वर्तमान होते हैं ।

धातुजं धातुजाज्जातं समस्तार्थजमेव वा ।

वाक्यजं व्यतिकीर्णं च निर्वाच्यं पञ्चधा पदम् ॥१०४॥

किसी पद की पाँच प्रकार से व्याख्या की जा सकती है, यथा : किसी धातु से व्युत्पन्न होने, किसी धातु के व्युत्पन्न रूप से व्युत्पन्न होने,^१ किसी समस्तार्थ^२ से व्युत्पन्न होने, तथा किसी वाक्य^३ से व्युत्पन्न होने के रूप में, और उसके आधार पर भी जिसकी व्युत्पत्ति व्यतिकीर्ण^४ (मिश्रित, अस्तव्यस्त) हो ।

^१ नीचे (१०६ वें श्लोक में) और निरुक्त २. २, के 'तद्धित' के समान ।

^२ अर्थात् एक 'समासान्त' प्रत्यय सहित व्युत्पन्न । तु० की० 'तद्धित-समासेषु', निरुक्त २, २ ।

^३ जमे उदाहरण के लिये 'इतिहास' (= इति हास) ।

^४ व्यतिकीर्णः : अर्थात् जश्जों के हेरफेर द्वारा; तु० की० निरुक्त २. १ : 'अन्व-विपर्ययः' ।

द्विगुर्द्वन्द्वोऽव्ययीभावः कर्मधारय एव च ।

पञ्चमस्तु बहुव्रीहिः पष्ठस्तत्पुरुषः स्मृतः ॥ १०५ ॥

द्विगु, द्वन्द्व, अव्ययीभाव और कर्मधारय, तथा पाँचवाँ बहुव्रीहि और छठवाँ तत्पुरुष, समास होता है ।^१

^१ निरुक्त २. २, पर दुर्ग ने अपने भाष्य में इस श्लोक का उद्धरण दिया है । वाजमनेयि महिना प्रातिशाख्य (१ २७ और ५. १, पर भाष्य) में 'द्विगु' अथवा 'कर्मधारय' का उल्लेख न होने से केवल चार का ही विभेद किया गया है ।

विग्रहान्निर्वचः कार्य समासेष्वपि तद्धिते ।

प्रविभज्यैव निर्भ्रूयाद् दण्डाहो दण्ड्य इत्यपि ॥ १०६ ॥

ममस्त तथा तद्धित पदों की विग्रह के आधार पर व्याख्या करनी चाहिये : अर्थात् गण्डों को पृथक्^१ करके व्याख्या करनी चाहिये; इस प्रकार 'दण्ड्य'^२ की 'दण्डाहो' (दण्ड के योग्य) के रूप में व्याख्या करनी चाहिये;

^१ तु० की० निरुक्त २. २ : तद्धित-समासेषु...पूर्वं पूर्वं अपरम् अपरं प्रविभज्य निर्भ्रूयात् ।

^२ तद्धित का एक उदाहरण; तु० की० निरुक्त २. २ : 'दण्ड्य...दण्डम् अर्हति' । देखिये पाणिनि ५. १, ६६, भी ।

२१-शब्दों का विग्रह और अर्थ

भार्या रूपवती चास्य रूपवद्भार्य इत्यपि ।

इन्द्रश्च सोमश्चेत्येवम् इन्द्रासामौ निदर्शनम् ॥ १०७ ॥

और 'रूपवद् भार्य' (रूपवती पत्नी) की 'रूपवती भार्या' (उसकी

पत्नी रूपवती है) के रूप में व्याख्या करनी चाहिये । इसी प्रकार इन्द्र और सोम के लिये प्रयुक्त 'इन्द्रा सोमौ' द्वन्द्व का उदाहरण है ।

^१ बहुव्रीहि के उदाहरण के रूप में । यास्क ने निरुक्त २ २, ३ में केवल न-पुंल्ल मात्र का उदाहरण दिया है और वह भा विना इमगे नाम के उल्लस के हा ।

शब्दरूपं पदार्थश्च व्युत्पत्तिः प्रकृतिर्गुणः ।

सर्वमेतदनेकार्थं दशानवगमे गुणाः ॥ १०८ ॥

शब्द के रूप, पद के अर्थ, व्युत्पत्ति, प्रकृति, गुण, इन सब क बनेक आशय होते हैं अनवगमन (मिथ्या ग्रहण) की दशा में (व्याख्या के) दस गुण होते हैं ।

^१ अर्थात् उक्त वर्गों के अन्तर्गत पाँच शुद्ध और पाँच अशुद्ध ।

सामान्यवाचिनः शब्दा विशेषे स्थापिताः क्वचित् ।

पलायने यथा वृत्तिः को लु मर्या इतीपते ॥ १०९ ॥

कभी कभी सामान्य अर्थवाले शब्द किसी विशेष आशय में व्यवहृत होते हैं, इस प्रकार 'को लु मर्या' (ऋग्वेद ८ ४५, ३७) मन्त्र में 'इपते' (जाता है) का आशय 'पलायन' है ।

^१ ऋग्वेद ८ ४५ ३७ में इपते शब्द की यास्क ने दस स्थल पर अपना टिप्पणा में (निरुक्त ४ २) 'पल्लयत के रूप में व्याख्या का है जब कि नैषण्डिक २ १४ में इसी उक्त क्रियाओं के अन्वयन गणना कराई गई है जिनका अर्थ 'पाना' है ।

विशेषवाचिनस्त्वन्ये सामान्ये स्थापिताः क्वचित् ।

हिमेनाग्निमिति मन्त्रे हिमशब्दो निदर्शनम् ॥ ११० ॥

किन्तु कुछ अन्य विशेषार्थक शब्द कभी कभी सामान्य अर्थ में व्यवहृत होते हैं, 'हिमेनाग्निम्' (ऋग्वेद १ ११६, ८) मन्त्र में 'हिम' शब्द इसका उदाहरण है ।

^१ ऋग्वेद १ ११६, ८ पर अपनी टिप्पणा में यास्क ने (निरुक्त ६ १६) 'हिमेन' की 'उदकेन प्राप्मा ते' द्वारा व्याख्या का है तु० का० २ ११६, ८ पर सायण भा ।

पदमेकं समादाय द्विधा कृत्वा निरुक्तवान् ।

पूरुपादः पदं यास्को वृक्षेवृक्ष इति त्वृचि ॥ १११ ॥

'बृडे वृषे,' (ऋग्वेद १० २७, २२) ऋचा में 'पूरुपाद' जैसे एक पद की यास्क ने दो^२ भागों में विभक्त करके व्याख्या की है ।

^१ इस तथा नीचे के श्लोकों (१११-११४) में अनवगमन के कारण पाँच अनुद्ध विशेषणों का उदाहरण दिया गया है।

^२ निरुक्त २ ३६ में यास्क ने 'पूरुपाद-' की 'पुरुषान् अदनाय' के रूप में व्याख्या की है, किन्तु इस आलोचना का कि उन्होंने 'पूरुपादः' को दो शब्द माना है, बोर त्रुटि नहीं।

२२-यास्क की अनुद्ध व्याख्यायें; घर्णलोप

अनेकं सत्तथा चान्यद् एकमेव निरुक्तवान्।

अरुणो मा सकृन्मन्त्रे मासकृद्विग्रहेण तु ॥११२॥

इसी प्रकार 'अरुणो मा सकृन्' (ऋग्वेद १. १९५, १८) मन्त्र में एक अन्य व्याहृति की, जो एक पद नहीं है, उन्होंने (यास्क ने) 'मास-कृत' के रूप में ग्रहण करते हुये, केवल एक पद के रूप में ही व्याख्या की है।

^१ इस ऋचा पर अपनी टिप्पणी में यास्क (निरुक्त ५. २१) ने इस शब्द की 'मामानां कर्ता' के रूप में व्याख्या की है। प्रस्तुत ग्रन्थकार पदपाठ से मन्त्र ही। देखिये ऋग्वेद १ १९५, १८, पर भाषण भी।

पदव्यवायेऽपि पदे एकीकृत्य निरुक्तवान्।

गर्भं निधानमित्येते न जामय इति त्वृचि ॥ ११३ ॥

'न जामये' (ऋग्वेद ३. ३१. २) मन्त्र में उन्होंने (यास्क ने) दो पदों—'गर्भं निधानम्'—को एक पद बना कर^१, ही व्याख्या की है, यद्यपि इन दोनों के बीच एक अन्य पद^२ भी आता है।

^१ अर्थात् निरुक्त ३ ६, में इनको व्याख्या 'गर्भनिधानीम्' है।

^२ 'मनितुर्' : ऋग्वेद ३. ३१, २, में 'गर्भं मनितुर् निधानम्' है।

पदजातिरविज्ञाता त्वः पदेऽर्थः शितामनि।

स्वरानवगमोऽधायि वने नेत्यृचि दर्शितः ॥११४॥

'त्वः'^१ पद में पद की जाति का पता नहीं और न 'शितामन्'^२ में आशय का ही पता है। 'अधायि' में स्वर का अनवगमन 'वने न'^३ (ऋग्वेद १०. २९, १) ऋचा में व्यक्त होता है।

^१ निरुक्तदेह एक प्राचीन दृष्टिकोण का अनुसरण करते हुये यास्क (निरुक्त १. ७) ने 'त्व' की निपातों के अन्तर्गत गणना कराई है; किन्तु उन्होंने इसे स्पष्टनः एक विकृत शब्द माना है (वही १. ८)। अतः प्रस्तुत ग्रन्थकार ने यास्क के इस वाद के दृष्टिकोण की ही आलोचना की है।

^३ यास्क (निरुक्त ४ ३) का कथन है कि इस वाक्य का अर्थ 'अग्निवाहु' (शेम) है और यहाँ 'न्होने' सामपूर्ति, नञवि, तथा मत्व, के विभिन्न विचारों का उद्घाटन ना दे दिया है।

^४ ऋग्वेद १० २०, १ पर लिप्या कर्म पुने नाम्ब (निरुक्त ० २८) ने वाचा नि अधावि' पाठ माना है, जब कि पदपाठ न ना ने नि अधावि ८।

शुनःशेषं नराशंसं चावा नः पृथिवीति च ।

निरस्कृतेतिप्रभृतिष्व् अर्थादासीत्क्रमो यथा ॥११७॥

जिस प्रकार 'शुन-शेषम्', 'नराशंसम्', 'चावा न पृथिवी', 'निरस्कृतम्' तथा धर्म्य में अर्थ के अनुसार पदों का क्रम व्यवस्थित किया गया है,

^१ ऋग्वेद २ ७ में 'शुनज विष छेवम के लिये लिये ऋग्वेद प्रातिशाख्य ० ४३ और ११ ८।

^२ ऋग्वेद १० ६४, ३ में 'नरा वा शंसम के लिये लिये ऋग्वेद प्रातिशाख्य ० २० १३०।

^३ अथर्व ऋग्वेद ० ४१ २० में इन वाक्यों को वाचापृथिवी न' पदना प्रातिशाख्ये तु० वा० निरुक्त ९ ३८।

^४ ऋग्वेद १० १०७, ३, न निरु ३ स्वमात्म अभृत के लिये तु० वा० ऋग्वेद प्रातिशाख्य १० ४ ११ ५।

^५ नञवि कर्मपाठ में। इस तथा वाक्य के शेष के क्रम का सम्बन्ध इस प्रकार प्रकट होता है जिस प्रकार प्राशन की दृष्टि में शब्दों को उपयुक्त क्रम (पद क्रम) में रखना आवश्यक है, उन्मा प्रकार सुपत्ति के लिये वही शी भा उपयुक्त क्रम (पद क्रम) में व्यवस्थित करना आवश्यक है।

वर्णस्य वर्णधोलोपो बहूनां व्यञ्जनस्य च ।

अत्राणीति कपिर्नाभा दनो यामीत्यघासु च ॥११६॥

उसी प्रकार एक वर्ण, दो वर्ण, और एक व्यञ्जन का लोप भा होता है, जैसे 'अत्राणि', 'कपि', 'नाभा', 'दन', 'यामि', और 'अघासु'।^६

^१ ऋग्वेद १० ७९, ० में 'अत्राणि' के लिये।

^२ ऋग्वेद १० ८६, ५ में 'कपि' के लिये, दाँविये निरुक्त १० ७७।

^३ ऋग्वेद में 'नामी' के अतिरिक्त, व्यञ्जनों के पूर्व मिलनेवाला एक मानान्य रूप।

^४ ऋग्वेद १ १७४, २ पर यास्क (निरुक्त ६ ३१) ने 'दानमदम' के रूप में व्याख्या की है।

^५ इत् त्वा यामि (ऋग्वेद १ २४, ११, अथवा ८ ३, ९) में दानो न वा नास्य (निरुक्त २ १) द्वारा दिया गया उदाहरण। दुर्ग ने इसका 'यानामि' के रूप में व्याख्या की है।

^६ ऋग्वेद १० ८५, १३ में इसे 'मरासु' माना गया है (अथर्ववेद) का पाठ।

२३-शब्द और अर्थ; क्रिया में भावप्रधानता होती है
अर्थात्पदं स्वाभिधेयं पदाद्वाक्यार्थनिर्णयः ।

पदसंघातजं वाक्यं वर्णसंघातजं पदम् ॥११७॥

अर्थ से पद और उसकी अभिधा उत्पन्न होती है; पद से किसी वाक्य के अर्थ का निर्णय होता है। वाक्य का पदों के समूह से, और पदों का वर्णों के समूह से निर्माण होता है।

अर्थात्प्रकरणाच्छिद्वाद् औचित्यादेशकालतः ।

मन्त्रेष्वर्थविवेकः स्याद् इतरेष्विति च स्थितिः ॥११८॥

किसी पद के अर्थ से प्रकरण, लिङ्ग, और औचित्य का, तथा देश और काल के विचार से किसी मन्त्र के सम्पूर्ण अर्थ का विवेचन किया जा सकता है; अन्य (ग्रन्थों) के सम्बन्ध में भी यही निर्धारित नियम है।

इति नानान्वयोपायैर् नैरुक्ते यो यतेत सः ।

जिज्ञासुर्ब्रह्मणो रूपम् अपि दुष्कृत्परं व्रजेत् ॥११९॥

ब्रह्म^१ के रूप की जिज्ञासा रखनेवाला जो अन्वय के विविध उपायों द्वारा व्युत्पत्ति का इस प्रकार अध्ययन करता है, वह दुष्कर्मी होते हुये भी परम^२ (ब्रह्म) के पास गमन करता है।

^१ अर्थात् वेद ।

^२ तु० की० निरुक्त १. १८ . 'योर्धत् इत् सकलं भद्रम् अद्भुतेः नाकम् एति हान-विभूतपाप्मा ।'

यथेदमग्रे नैवासीद् असदप्यथवापि सत् ।

जज्ञे यथेदं सर्वं तद् भाववृत्तं वदन्ति तु ॥१२०॥

किस प्रकार आरम्भ में वह लोक नहीं था—अर्थात् यह अस्तित्वहीन था अथवा अस्तित्व युक्त; किस प्रकार इस विश्व का अस्तित्व हुआ, इस सब सृष्टितत्त्व को 'भाववृत्तम' कहा गया है।

भावप्रधानमाख्यातं पङ्क्तिविकारा भवन्ति ते ।

जन्मास्तित्वं परीणामो वृद्धिर्हानं विनाशनम् ॥१२१॥

भाव प्रधानता आख्यात का प्रमुख लक्षण होता^१ है और इसके छः विकार^२ माने गये हैं : जन्म, अस्तित्व, परीणाम (बदलना), वृद्धि, हानम् (घटाव), और विनाश ।^३

^१ यह परिभाषा निरुक्त १. १ (भावप्रधानम् आग्न्यात्तम्) के समान है। तु० वी० ऋग्वेद प्रातिशाख्य २. १२, ८।

^२ इसे यास्क (निरुक्त १ २) ने वाच्यार्थणि के मन के रूप में उद्धृत किया है (पञ्च भावविकारा भवन्ति)।

^३ निरुक्त १ ० में, जिम पर ही इन पञ्चविकारों के नाम आधारित हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं 'जायतेऽस्ति विपरिणमने वर्धनेऽपक्षीयते विमश्यतीति'।

२४. व्याहृतियों और ॐ के देवता

एतेषामेव षणां तु यञ्ज्ये भावविकारजाः।

ते यथावाक्यमभ्यूह्याः सामर्थ्यान्मन्त्रवित्तमैः ॥१२२॥

किन्तु इन षः^१ भावविकारों से जो अन्य विकार उत्पन्न होते हैं, उनकी, मन्त्रविद् व्यक्तियों को अपने श्रेष्ठतम सामर्थ्य द्वारा प्रत्येक दशा में वाच्य^२ के अनुसार ही कल्पना करनी चाहिये,

^१ निरुक्त का यह श्लोक (१ २) जिम पर यह आधारित है, अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है : 'अन्ये भावविकारा एतेषान् पञ्च विकारा भवन्ति'।

^२ तु० वी० निरुक्त १ ३ ने यथावचनम् अभ्यूहितव्या'।

देवानां च पितॄणां च नमस्कारैस्तथैव च।

अथ व्यस्तं समस्तं वा शृणु व्याहृतिदैवतम् ॥१२३॥

और इसी प्रकार 'उनकी, देवों और पितरों को प्रस्तुत नमस्कारों' की प्रकृति के अनुसार भी, कल्पना करनी चाहिये।

अब वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से व्याहृतियों^१ के देवताओं को सुनें।

^१ अर्थात् भावविकारों की कल्पना केवल वाक्यानुसार ही नहीं बल्कि उसमें निहित नमस्कार के आधार पर भी करना चाहिए।

^२ अर्थात् तीन रश्मिवात्मक शब्द 'भूर, भुव, स्व'।

व्याहृतीनां समस्तानां दैवतं तु प्रजापतिः।

व्यस्तानामचमग्निश्च वायुः सूर्यश्च देवताः ॥१२४॥

अब, सामूहिक रूप से व्याहृतियों के देवता प्रजापति^१ हैं, जब कि पृथक्-पृथक् इनके वैयक्तिक देवता क्रमशः अग्नि, वायु, और सूर्य हैं।

^१ तु० वी० सर्वानुक्रमणी, भूमिका २ १० : 'मन्त्रानां प्रजापति'।

वाग्देवत्योऽथवाप्यैन्द्रो यदि वा परमेष्ठिनः।

ओंकारो वैश्वदेवो वा ब्राह्मो दैवः क एव वा ॥ १२५ ॥

ओंकार का देवता वाच् होता है; अथवा यह इन्द्र को सम्बोधित होता

है; अथवा इसका देवता परमेष्ठिन् होता है; अथवा यह विश्वेदेवों को, अथवा ब्रह्म को, अथवा समान्य रूप से देवों को सम्बोधित होता है; अथवा 'क' इसका देवता होता है।^१

^१ सर्वानुक्रमण, भूमिदा २ ११, इसी श्लोक पर आधारित है, किन्तु इसमें वान् और इन्द्र को सम्मिलित नहीं किया गया है, तथा 'क' के स्थान पर 'आध्वानिकः' (देविने पद्गुणः च) है।

ऋग्वेद के देवता

२५. प्रथम तीन सूक्त; विश्वेदेव-सूक्तों के ऋषि

आग्नेयं प्रथमं सूक्तं मधुच्छन्दस आर्षकम् ।

ज्ञेयाः सर्वेऽन्यदेवत्यास् तृचाः सप्तात् उत्तराः ॥१२६॥

प्रथम सूक्त अग्नि को सम्बोधित है। इसके ऋषि मधुच्छन्दस् हैं। इसके बाद की तीन-तीन ऋचाओं के सात त्रिकों^१ को विभिन्न देवों को सम्बोधित मानना चाहिये।

^१ अर्थात् वह जो ऋग्वेद १ २-३ में आते हैं।

वायव्यः प्रथमस्त्वेपाम् ऐन्द्रवायव उत्तरः ।

मैत्रावरुणोऽथाश्विनोऽप्यैन्द्रोऽतो वैश्वदेवकः ॥१२७॥

इनमें से प्रथम तीन (१. २, १-३) वायु को सम्बोधित हैं; उसके बाद (२, ४-६) इन्द्र तथा वायु को, उसके बाद (२, ७-९) मित्र-वरुण को, तथा फिर (३, १-३) अश्विनों को, और उसके बाद (३, ४-६) इन्द्र, तथा फिर (३, ७-९) विश्वेदेवों को।

तन्नामा विश्वलिङ्गो वा गायत्रोऽन्त्यस्तु यस्तृचः ।

बहुदैवतमन्यत्तु वैश्वदेवेषु शस्यते ॥१२८॥

अब, गायत्री छन्द में रचिन अन्तिम तीन ऋचाओं के त्रिक का (१. ३, ७-९) प्रमुख लक्षण वह नाम^१ अथवा 'विश्व' का उल्लेख है। किन्तु विश्वेदेव-सूक्तों^२ के स्थान पर अनेक देवताओं को सम्बोधित किसी अन्य सूक्त द्वारा भी स्तुति की जा सकती है।

^१ अर्थात् इसमें से प्रत्येक ऋचा में 'विश्वे देवातः' नाम आता है; अथवा, दूसरे शब्दों में 'विश्व' शब्द का प्रयोग इनका प्रमुख लक्षण है।

^२ वात्स (निरुक्त १२. ४०) के अनुसार विश्वेदेवों को सम्बोधित केवल यही ऋचाएँ (१. ३, ७-९) गायत्री छन्द में रचिन हैं। किन्तु इनका यह भी कथन है कि अनेक देवों को सम्बोधित किसी भी सूक्त का विश्वेदेवों की स्तुति के लिए व्यवहार

किया जा सकता है वरतु कि चिद् बहुद्वत तद् वैश्वदेवाना स्थाने युज्यत ।
तु० का० सर्वानुक्रमण १ १३९, पर प० गुरुदिव्य भा ।

लुशे दुवस्यौ शार्याते गोतमेऽथ ऋजिश्वनि ।
अवत्सारे परुछेपे अत्रौ दीर्घतमस्यृपौ ॥१२९॥
वसिष्ठे नाभानेदिष्टे गये मेधातिथौ मनौ ।
कश्चीवति विहव्ये च बहुष्वन्येष्वथर्षिषु ॥१३०॥
अगस्त्ये बृहदुक्थे च विश्वामित्रे च गाथिनि ।
दृश्यन्ते विप्रवादाश्च तासु तासु स्तुतिष्विह ॥१३१॥

लुश^१, दुवस्यु^२, शार्यात^३, गोतम^४, ऋजिश्वन्^५, अवत्सार^६, परुच्छेप^७, अत्रि^८, ऋषि दीर्घतमस्य^९, वसिष्ठ^{१०}, नाभानेदिष्ट^{११}, गय^{१२}, मेधातिथि^{१३}, मनु^{१४}, कश्चीवत्^{१५}, विहव्य^{१६}, तथा अनेक अन्य ऋषियों^{१७}, और अगस्त्य^{१८}, बृहदुक्थ^१, विश्वामित्र^{२०}, तथा गाथिन्^{२१}—इन सब की अपनी-अपनी स्तुतियों (ऋग्वेद की) में निम्न^{२२} दृष्टिगत होते हैं ।^{२३}

^१ ऋग्वेद १० ३५ ३६ का ऋषि ।

^२ ऋग्वेद १० १०० का ऋषि ।

^३ ऋग्वेद १० ९२ का ऋषि ।

^४ ऋग्वेद १ ८९ ९० का ऋषि ।

^५ ऋग्वेद ६ ४९-५२ का ऋषि ।

^६ ऋग्वेद ५ ४४ का ऋषि ।

^७ ऋग्वेद १ १३९ का ऋषि ।

^८ ऋग्वेद ६ ४१-४३ का ऋषि ।

^९ ऋग्वेद १ १६४ का ऋषि ।

^{१०} ऋग्वेद ७ ३४-३७ ३९ ४० ४० ४३ के ऋषि ।

^{११} ऋग्वेद १० ६१ ६२ के ऋषि ।

^{१२} ऋग्वेद १० ६३ ६४ के ऋषि ।

^{१३} ऋग्वेद १ १४ का ऋषि ।

^{१४} ऋग्वेद ८ २७-३० के ऋषि ।

^{१५} ऋग्वेद १ १०१ १०२ के ऋषि ।

^{१६} ऋग्वेद १० १०८ का ऋषि ।

^{१७} यहाँ उल्लिखित वास ऋषियों के

अलिखित ऋग्वेद के विश्वदेव-मूल के इस अन्य ऋषि भी हैं, देखिये आग्नेयन ऋग्वेद भाग दो, पृ० ६६८ पर देवा के नाम ।

^{१८} ऋग्वेद १ १८६ का ऋषि ।

^{१९} ऋग्वेद १० ५६ का ऋषि ।

^{२०} ऋग्वेद ३ ५७ का ऋषि ।

^{२१} ऋग्वेद ३ २० का ऋषि ।

^{२२} अर्थात् इन सब ऋषियों द्वारा अपने अपने विश्वदेव मूलों में सम्बोधित देवों में परस्पर अन्तर मिलता है ।

^{२३} इन तीनों श्लोकों में उल्लिखित वामों ऋषि ऋग्वेद के विश्वदेव-मूलों के प्रणेता हैं । इनमें से तान (अत्रि, गाथिन् और नाभानेदिष्ट) को छोड़ कर शेष सबके नामों को नामे ३ ५१-५९ में पुन दुहराने हुए बीस अन्य का भी उल्लेख है ।

२६-विश्वेदेव-सूक्तों की प्रकृति

बहीनां संनिपातस्तु यस्मिन्मन्त्रे प्रदृश्यते ।

आचार्यो यास्कशाण्डिल्यौ वैश्वदेवं तदाहृतुः ॥१३२॥

यास्क^१ तथा शाण्डिल्य नामक आचार्यों का कथन है कि कोई भी मन्त्र, जिसमें अनेक (देवताओं) का मन्त्रिवेश हो, विश्वेदेवों को सम्बोधित होता है ।

^१ निरुक्त १२. ४० में ।

पादं वा यदि वार्धर्चम् ऋचं वा सूक्तमेव वा ।

वैश्वदेवं वदेत्सर्वं यत्किञ्चिद्बृहदैवतम् ॥१३३॥

अनेक देवताओं को सम्बोधित श्लोक, अर्धऋचा, ऋचा, अथवा सूक्त, चाहे जो कुछ भी हो, उसके सब कुछ को विश्वेदेवों को सम्बोधित कहना चाहिये ।^१

^१ देखिये ऊपर २. १२८. १३२, और निरुक्त १२. ४० ।

ऋषिभिर्देवताः सर्वा विश्वाभि स्तुतिभि स्तुताः ।

संज्ञा तु विश्वमित्येषा सर्वावाप्तौ निपातिता ॥१३४॥

सर्व देवताओं की ऋषिगण विश्व-स्तुतियों द्वारा स्तुति करते हैं; यहाँ इस 'विश्व' संज्ञा से सर्व-व्याप्तता^१ का नैपातिक तात्पर्य है ।

^१ अर्थात् इसका 'विश्वेदेवाः' के आशय में प्रयोग किया गया है ।

२७-सरस्वती को संबोधित ऋग्वेद के स्थल । इन्द्र-सूक्त ।

सारस्वतस्तु सप्तम एताः प्रउगदेवताः ।

सरस्वतीति द्विविधम् ऋक्षु सर्वासु सा स्तुता ॥१३५॥

अब तीन ऋचाओं का सातवाँ त्रिक (१. ३, १०-१२) सरस्वती को सम्बोधित किया गया है । यह प्रउग देवी है ।^१ इसकी सभी मंत्रों में सरस्वती के नाम से दो विधियों से स्तुति की गई है :

^१ ऋग्वेद १. ३, १०-१२ की, जहाँ सरस्वती एक प्रउग देवी के रूप में आती है, निरुक्त ११. २६, २७ में व्याख्या की गई है । ऋग्वेद २. ४१, १६-१८, में सरस्वती पुनः एक प्रउग देवी के रूप में आती है । तु० की० नीचे ४. ९२ ।

नदीवद्देवतावश्च तत्राचार्यस्तु शौनकः ।

नदीवन्निगमाः पट् ते सप्तमो नेत्युवाच ह ॥१३६॥

एक नदी के रूप में और एक देवी के रूप में । इस सम्बन्ध में आचार्य

शौनक का कथन है कि नदी' के रूप में इसकी स्तुति करनेवाले स्थल इ हैं सातवाँ नहीं :

^१ तु० वा० निरुक्त ० २३ 'सरस्वतात् एतस्य नदावद् दधानावच् च तिगमा भवन्ति'।

अभ्येका च ह्यपद्धत्यां चित्र इच्च सरस्वती ।

इयं शुष्मेभिरित्येतं मेने यास्कस्तु सप्तमम् ॥१३७॥

इन छ के अन्तर्गत 'अग्नि तमे' (ऋग्वेद २ ४१, ६),^१ 'एका' (ऋग्वेद ७ ९५, २), 'ह्यपद्धत्याम्' (ऋग्वेद ३ २३, ४), 'चित्र इत्' (ऋग्वेद ८ २१, १८), 'सरस्वती' (ऋग्वेद १० ६४, ९, और ६ ५२, ६) आते हैं । फिर भी यास्क ने 'इयं शुष्मेभि' (ऋग्वेद ६ ६१, २)^२ को सातवाँ माना है ।

^१ २म स्थल पर मरुवता पुन एक प्रजा देवी हे तु० वा० ऊपर २ १३१ पर लिखी ।

^२ ऋग्वेद में 'सरस्वता' से आरम्भ होने वाले तान पाठ हैं 'सरस्वती सरसु सिन्धु' (१० ६४, ९), 'सरस्वता सिन्धुभि पिन्वमाना' (६ ५० ६), और 'सरस्वती माधवन्ती धियन्' (० ३ ८) ।

^३ यास्क ने इस मन्त्र की स्पष्ट नदी के रूप में मरुवता जो सम्बोधित माना है ('अथैन नदावद् निरुक्त ० २३) ।

पशोः सारस्वतस्यैतां याज्यां मैत्रायणीयके ।

प्राधान्याद्धविषः पश्यन् वाच एवैतरोऽब्रवीत् ॥१३८॥

ऐतर् ^१ ने मैत्रायणीय ^२ में मरुवती को समर्पित हवि के लिये इस मन्त्र को 'याज्या' मानते हुये इये 'वाच्'^३ को सम्बोधित माना है, क्योंकि यहाँ हवि की ही प्रधानता^४ है ।

^१ यह नाम अन्यत्र नहीं मिलता ।

^२ ४ १४, ७ ('याज्यानुवाक्या' मन्त्रों के अन्तर्गत) ।

^३ जहाँ मरुवता = वाच तु० वा० निरुक्त ७ २३ नहीं मरुवता भा वाच् के मन्त्रावन नामों में से एक है । नैषण्डुन १ ११ भी देखिये ।

^४ अर्थात् यज्ञ वा इष्टि में देयते हुये यह मानता पत्ता कि यहाँ नदी नदी वरन् देवी को ही सम्बोधित किया गया है ।

सुरूपकृत्तुमित्यैन्द्रं सप्त चान्यान्यतः परम् ।

पञ्चादह स्वधामनु मास्तयोऽनन्तरा ऋचः ॥१३९॥

'सुरूपकृत्तुम्' सूक्त (ऋग्वेद १. ४) तथा इसके बाद के सात अन्य (१.

५-११) इन्द्र को सम्बोधित हैं। इनमें लगातार छः मन्त्र ('आद्दह स्वधा-
मनु', ऋग्वेद १. ६, ४-९, से आरम्भ होनेवाले) मरुतों को सम्बोधित है।

२८-ऋग्वेद १. ६ में इन्द्र, मरुतों के साथ सम्बद्ध हैं

एका वीळु चिदिन्द्राय मरुद्भिः सह गीयते ।

तस्या एकान्तरायास्तु अर्धर्चोऽन्त्यो द्विदेवतः ॥१४०॥

उक्त छः मन्त्रों में से एक ('वीळुचित', ऋग्वेद १. ६, ५) का मरुतों
के साथ इन्द्र की प्रशस्ति में गायन किया गया है। किन्तु वाद् के मन्त्र की
अर्ध-ऋचा (अर्थात् ऋग्वेद १. ६, ७)^१ दो देवों को सम्बोधित है।

^१ अर्थात् तुनीयपाद, क्योंकि यह मन्त्र गावत्री छन्द में है।

मरुद्गणप्रधानो हीत्थं चेन्द्रो विचिकित्सितः ।

मन्दू समानवर्चसा मन्दुना वा सर्वर्चसा ॥१४१॥

क्योंकि, यद्यपि यह (उक्त अर्ध-ऋचा) प्रमुखतः मरुद्गणों को सम्बोधित
है, तथापि इसमें इन्द्र की विशिष्टता इस प्रकार दिखाई गई है : 'दोनों ही एक
समान तेज वाले हैं' (मन्दू समानवर्चसा); अथवा इसका यह अर्थ है :
'उसके साथ जो समान तेज वाला है।'^२

^२ व्याख्याओं के यह दोनों विकल्प निरुक्त ४. १२ (मन्दू मदिष्णु युवात्थः; अपि वा
मन्दुना तेनेति स्यात्, ममानवर्चसेत् एतेन व्याख्यातम्) पर आधारित हैं।

मन्दू इति प्रगृह्णन्ति येषामेव द्विदेवतः ।

एकदेवत्यमाश्राव्यो विज्ञायाध्ययनात्पदम् ॥ १४२ ॥

जिन्हें यह अर्ध-ऋचा दो देवों को सम्बोधित प्रतीत होती है वह 'मन्दू'
की 'प्रगृह्य'^२ के रूप में व्याख्या करते हैं। किन्तु अपने अध्ययन के आधार
पर जो इस पाद ने केवल एक देवता मानता है, उसे भी सुनना चाहिये;

^१ यहाँ दो देवता मरुद्गण तथा इन्द्र होंगे।

^२ पदपाठ में 'मन्दू' की प्रगृह्य माना गया है।

रोदसी देवपत्नीनाम् अथर्वाङ्गिरसे यथा ।

मरुद्गणप्रधानेयम् आचार्याणां स्तुतिर्मता ॥१४३॥

जैसे अथर्ववेद में रोदसी को देवों की पत्नियों में से एक माना गया है।^१

इस स्तुति को आचार्यों ने प्रमुखतः मरुद्गण को ही सम्बोधित माना है।

^१ ऋग्वेद ५. ४६, ८ के पदपाठ में 'रोदसी' को प्रगृह्य माना गया है। वही मन्त्र
, अथर्ववेद ७. ४६, ८ में भी आता है। इस पर टिप्पणी करते हुये यास्क (निरुक्त

१२ ४६) ने 'रोमा का 'न्द्रस्य पत्नी क रूप म व्योमना' है। तु० की० ऋग्वेद ५ ४६ ८ पर सावण भा ।

मरुद्गणप्रधानत्वाद् इन्द्रस्तु विचिकित्सितः ।
मरुद्गणं महेन्द्रस्य सभांशं सरुलं विदुः ॥१४४॥

यद्यपि यहाँ प्रमुखतः मरुतों को ही सम्बोधित किया गया है, तथापि इन्द्र का भी विभेद किया गया है, क्योंकि समस्त मरुद्गण महान इन्द्र के साथ जल के भागी होते हैं ।

२९-ऋग्वेद १ १२, तथा आप्री-सूक्त १ १३ के देवता

अग्निमित्यग्निदैवत्यं पादस्तत्र द्विदैवतः ।

निर्मथ्याह्वनीयार्थाव् अग्निनाग्निः समिध्यते ॥१४५॥

'अग्नि' सूक्त (ऋग्वेद १ १२) के प्रमुख देवता अग्नि है । इस सूक्त का एक पाद (अग्निनाग्नि सम् इध्यते १ १२ ६) दो देवताओं को सम्बोधित किया गया है जिनसे 'निर्मथ्य' और 'आह्वनीय' का ता-पर्य्य है ।

'यह तोना अग्नि के रूप है जिनसे प्रथम मथन द्वारा पत्र अग्नि का नाम है और द्वितीय हरिषी अग्नि ना तु० वा० ऋग्वेद १ १२ पर सर्वांतुवमणी पादो द्वयशिवो निमथ्यावतायौ

द्वितीये द्वादशर्चे तु प्रत्यूचं यास्तु देवताः ।

स्तूयन्ते अग्निना सार्धं तासां नामानि मे शृणु ॥१४६॥

अत्र मुझसे प्रत्येक ऋचा के अनुसार उन देवताओं के नाम सुने जिनकी वारह मंत्रों के दूसरे सूक्त (अर्थात् १ १३) में अग्नि के साथ स्तुति की गई है ।

प्रथमायां स्तुतश्चेध्मो द्वितीयायां तनूनपात् ।

नराशंसस्तृतीयायां चतुर्थ्यां स्तूयते त्विच्छः ॥१४७॥

प्रथम ऋचा में 'इध्म' की स्तुति है, दूसरे में 'तनूनपात्' की, और तीसरे में 'नराशंस' की किन्तु चौथे में 'इच्छा' की स्तुति है ।

बहिरेव तु पञ्चम्यां द्वारो देव्यस्ततोऽन्यथा ।

नक्तोपासा तु सप्तम्याम् अष्टम्यां संस्तुतौ सह ॥१४८॥

दैव्याविति तु होतारौ नवम्यामृचि संस्तुताः ।

तिस्रो देव्यो दशम्यां तु ज्ञेयस्त्वष्टैव तु स्तुतः ॥१४९॥

पँचवें में बर्हिस् की, उसके बाद (की ऋचा में) दिव्य द्वारों की

(६ वीं ऋचा में), सातवें में नक्षोपासा (रात्रि और उपस) की, जबकि आठवें में साथ साथ दो दिव्य होताओं की स्तुति है; नवें में तीन देवियों की स्तुति की गई है; किन्तु दसवें में स्वप्न की स्तुति जानना चाहिये ।

३०-ग्यारह आप्री-सूक्त

एकादश्यां तु सूक्तस्य स्तुतं विद्याद्वनस्पतिम् ।

द्वादश्यां तुस्तुता देवीर् विद्यात्स्वाहाकृतीरिति ॥१५०॥

इस सूक्त की ग्यारहवीं ऋचा में वनस्पति की स्तुति जानना चाहिये; किन्तु बारहवीं में दिव्य स्वाहाकृतियों की स्तुति जानना चाहिये ।

सूक्तेऽस्मिन्प्रत्यृचं यास्तु देवताः परिकीर्तिताः ।

ता एव सर्वास्वाप्रीषु द्वितीया तु विकल्पते ॥१५१॥

इस सूक्त (१. १३) की प्रत्येक ऋचा में जिन-जिन देवताओं की प्रशंसा है वह सब आप्री सूक्तों में भी आते हैं; फिर भी द्वितीय देवता वैकल्पिक है ।^१

^१ यह विकल्प किस प्रकार व्यवहृत हुआ है, इसके लिये देखिये नीचे २. १५५-१५७ ।

प्रैपैः सहाप्रीसूक्तानि तान्येकादश सन्ति च ।

यजूषि प्रैपसूक्तं वा दशैतानीतराणि तु ॥१५२॥

प्रैपों तथा आप्री सूक्तों की संख्या ग्यारह है; अथवा प्रैप सूक्त^१ में यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र (यजूषि) हैं, जब कि इन अन्य (ऋग्वेद के सूक्तों) की संख्या दस है ।^२

^१ इन्हें बारह यजूषि कहते हैं, अर्थात् वाजसनेयि संहिता (२१. २९-४०) में आने वाले सूक्त । यास्क (निरुक्त ८. २२) ने इनको 'प्रैपिकम्' के रूप में व्यक्त किया है और इन्हें ग्यारह आप्री सूक्तों के अन्तर्गत रक्खा है (तान्य् एतान्य् एकादशा-प्रीसूक्तानि) ।

^२ ऋग्वेद के दस आप्री सूक्तों की, सर्वानुक्रमणी के मैकडौनेल के संस्करण की अनुशाकानुक्रमणी (१०-१२, पृ० ४८) में गणना करारि गई है । देखिये आश्वलायन श्रौतसूत्र ३ २, ५ और बाद, भी ।

सौत्रामणानि तु त्रीणि प्राजापत्याश्वमेधिके ।

पुरुषस्य तु यन्मेधे यजुःप्वेव तु तानि पट् ॥१५३॥

इन (आप्री सूक्तों) में से तीन सौत्रामणी^१ से और एक प्रजापति^२ से सम्बन्ध है, तथा एक का अश्वमेध के समय और एक का पुरुषमेध के समय व्यवहार होता है; यह छः यजुर्वेद में आते हैं ।

* अर्थात् वाजसनेयि संहिता २०. ३६-४६ (तु० वा० शतपथ ब्राह्मण १३ ९, ३, १६), २० ५५-६६ (तु० वा० शतपथ ब्राह्मण १२ ८, ०, १०), २१. १२-२२ (तु० वा० शतपथ ब्राह्मण १२ ९, ३, १६) ।

२ अर्थात् वाजसनेयि संहिता २७ ११-२२ (देखिये प्रथम मन्त्र पर भाष्य और तु० वा० शतपथ ब्राह्मण ६ २, २, १ और बाद) ।

३ वाजसनेयि संहिता २९ १-२१ (तु० वा० शतपथ ब्राह्मण १३ २, २, १४) ।

४ शाङ्खायन श्रौतसूत्र १६ १२, ८ में 'अग्निर् गृत्सु.' से आरम्भ होने वाले के रूप में उद्धृत ।

अत्रैव प्रैपसूक्तं स्यान् न यजुःप्वान्द्रियेत तत् ।

तेषां प्रैपगतं सूक्तं यच्च दीर्घतमा जगौ ॥१५४॥

यहाँ केवल प्रैप-सूक्त (वाजसनेयि संहिता २१.२९-४०) पर ही विचार करना है, जिनका यजुर्वेद में उल्लेख है उसके सम्बन्ध में नहीं ।

उक्त (ग्यारह) सूक्तों में से प्रैप से सम्बद्ध, और जिसका दीर्घतमस् ने गायन (ऋग्वेद १.१४२) किया,

३१-आग्नीसूक्तों में तनूनपात् और नराशंस; अग्नि का एक रूप इधम

मेधातिथौ यदुक्तं च त्रीण्येवोभयवन्ति तु ।

ऋषौ गृत्समदे यच्च वाभ्यश्चे च यदुच्यते ॥१५५॥

और जिसका मेधातिथि (१.१३) में उल्लेख है—केवल इन्हीं तीन में दोनों (तनूनपात् और नराशंस) निहित हैं । जिनका गृत्समदे (२.३) और वाभ्यश्चे (१०.७०) में उल्लेख है,

^१ ओ ऊपर १ १४, १५ के अनुसार ऋषि सूक्त है ।

^२ 'उभयवन्ति', देखिये निरुक्त ८ २२ 'मेधातिथिर्द्वैतमम प्रैपिकम् इत्य् उभयवन्ति' ।

नराशंसवदत्रेश्च ददर्श च यदौर्वशः ।

तनूनपादगस्त्यश्च जमदग्निश्च यज्जगौ ॥ १५६ ॥

अग्नि के दो (५.५), और उसमें जिसका उर्वशी-पुत्र (वसिष्ठ) ने दर्शन किया था (७. २), नराशंस निहित है । तनूनपात् उनमें आता है जिनका क्षगस्त्य (१.१८८) और जमदग्नि (१०.११०) ने गायन किया,

^१ तु० वा० शास्त्र निरुक्त ८ ४-०१ ।

विश्वामित्र ऋषिर्यश्च जगौ वै काश्यपोऽसितः ।

मेधातिथेर्ऋचां यास्तु प्रोक्ता द्वादश देवताः ॥ १५७ ॥

और (उनमें भी) जिनका ऋषि विश्वामित्र (३.४) और कश्यप-पुत्र असित (९.५) ने गायन किया।

उन बारह देवताओं के सम्बन्ध में, जिनका मेधातिथि की ऋचाओं (१.१३.१—१२) में आनेवालों के रूप में उल्लेख^१ किया गया है,

^१ ऊपर पृ. १४६—१५०।

संपद्यन्ते यथाग्निं ताः संपदं तां निबोधत ।

इध्मो यः सर्वमेवाग्निर् अयं हीध्मः समिध्यते ॥

ध्मानेर्वैतन्कृतं रूपं ध्मातो हीध्मः समिध्यते ॥१५८॥

उस पद्धति को जानिये जिसके अनुसार यह अग्नि को व्यक्त करते हैं।

इध्म वह अग्नि है जो सब कुछ है; क्योंकि यह अग्नि इंधन^१ के रूप में ही प्रज्वलित होते हैं। अथवा यह रूप 'ध्मा' धातु से बना है; क्योंकि धाँकने से ही इंधन को प्रज्वलित किया जाता है।

^१ यह व्युत्पत्ति वास्क द्वारा निरुक्त ८. ४ (इध्मः समिध्यतात्) में दी हुई परमात्र व्युत्पत्ति के समान है।

॥ इति बृहदेवतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥



१-तनूनपात्, नराशंस, इळ यहिंस,

तनूनपादयं त्वेच नाम्ना यच्छत्यसौ तनुम् ।

नापादिति प्रजामाहुर् अमुतोऽस्य च संभवम् ॥ १ ॥

इन्हीं अग्नि का नाम तनूनपात्^१ भी है । वह (दिव्य अग्नि) अपने शरार को फैलाते^२ है ।

ऐसा कथन है कि 'नपात्' का अर्थ वक्षत्^३ है, और इसका (तनूनपात् की) उमसे^४ (अग्नि स) उ पत्ति हुई है ।

^१ तु० का० ऊपर ० २६ अथ तनूनपात् अग्नि

^२ तु० की० वक्ष अमी हि तननात् तनु

^३ तु० की० ऊपर ० ०७ अनन्तम नाम आत् नपात् गति

^४ तु० की० वक्ष नपात् अमुप उवाच अग्नि

नराशंसमिहैके तु अग्निमाहुरथेनरे ।

नराः शंसन्ति सर्वेऽस्मिन् आसीना इति वाध्वरे ॥ २ ॥

उक्त का कहना है कि नरागस यहाँ अग्नि है ।^१ पुनश्च, कुछ लोग यह कहते हुये कि 'सर्व मनुष्य इस पर आसीन होकर प्रशस्तिर्षों का उच्चारण करते हैं', इसे यज्ञ^२ के आशय में ग्रहण करते हैं ।

^१ यास्य के अनुसार (अग्नि रति शास्त्रपूजि नर प्रशस्तो भवति, निरुक्त ८ ६) यह शास्त्रपूजि का मत है

^२ यह वादुवन का दृष्टिदोष है तु० का० वक्ष नराशंसो यज्ञ रति वादुवन नरा अस्मिन् आसीना जमन्ति ।

एतमेवाहुरन्धेऽग्निं नराशंसोऽध्वरे ह्ययम् ।

नरैः प्रशस्य आसीनैर् आहुश्चैव त्विजो नरः ॥ ३ ॥

अन्य इसे इसलिये अग्नि यताते है कि यज्ञ स्थल पर आसीन होकर मनुष्यों द्वारा प्रशस्ति के विषय के रूप में यही नराशंस होते हैं,^१ अश्विना का भी यही कथन है ।

^१ गत गौ शौनों में व्यक्त दृष्टिदोष निरुक्त ८ ६ के म्म वाक्य के अनुसार (१) नराशंस अग्नि (नरैः प्रशस्य, शास्त्रपूजि) और (२) यज्ञ है ('नरा अस्मिन् आसीना जमन्ति वादुवन) । प्रस्तुत श्लोक में वाक्य नृपय दृष्टिदोष उक्त दोनों का समिश्रण है (नरैः आसीनैर् अध्वर प्रशस्य) । यह ऊपर २ २८ (यज्ञे यच्च अस्मत् नृभिः) के अनुकूल है ।

इळस्त्वृषिकृतं रूपम् ईडेश्च स्तुतिकर्मणः ।

इळावांस्तेन वोक्तोऽग्निर् इडिना वर्द्धिकर्मणा ॥ ४ ॥

इळ ऋषियों द्वारा बनाया गया रूप है जो म्नुतिवाचक 'ईड्' धातु से व्युत्पन्न हुआ है : इस धातु के आधार पर, अथवा वृद्धि-वाचक धातु 'इड्' के आधार पर, अग्नि को 'इळावान्' कहा गया है ।

^१ यास्क (निरुक्त ८ ७) ने इळ को 'ईड्' अथवा 'इध्' से व्युत्पन्न माना है : 'ईडेः स्तुतिकर्मण इन्धतेर वा' ।

वर्हिरेवायमग्निस्तु सर्वं हि परिवृंहितम् ।

अग्नेन यद्भुतो वा सन्न इध्मेन परिवृंहितः ॥ ५ ॥

पुनः, यह अग्नि वर्हिस् हैं, क्योंकि इसका (वर्हिस् का) सर्वस्व अन्न से समृद्ध होता है^१, अथवा इस लिये भी कि यज्ञ के समय यह (अग्नि) इंधन से समृद्ध किये जाते हैं ।

^१ इसकी व्युत्पत्तिशास्त्रीय व्याख्या यास्क (निरुक्त ८. ८) के 'वर्हिः परिवर्हणाद्' के ही समान है ।

^२ अर्थात् हवि आदि इस पर ही रक्षित जाता है ।

२-दिव्य द्वार; रात्रि और उपस्

द्वारस्तु देव्यो याः प्रोक्ता विश्वेषां तास्तु पत्नयः ।

अग्रायीमनुवर्तन्ते तथाग्राय्यग्निमेव च ॥ ६ ॥

जैसा कि इन्हें कहा जाता है, दिव्य द्वार विश्वदेवों की पत्नियों हैं^१; यह भी अग्रायी का उसी प्रकार अनुवर्तन करती हैं जैसे अग्रायी अग्नि का ।^२

^१ ऋग्वेद १०. ११०, ५ (वि शायन्ता पतिभ्यो न जनय. देवभ्यो भवन सुप्रा-यणाः) द्वारा यह स्पष्ट है । इस पर निरुक्त ८ १०, में टिप्पणी की गई है ।

^२ इस उक्ति का प्रयोजन 'देव्यो द्वार-' तथा 'अग्नि' (तु० की० ऊपर १. १०७) का समीकरण व्यक्त करना है : देवों का पत्नियों के रूप में यह अग्नि का पत्नी उस अग्रायी का प्रतिनिधित्व करती है जिसके अन्तर्गत समस्त पारिव देवियों आ जाती हैं (देखिये ऊपर १ १०५, १०६) । निरुक्त ८. १०, में शारङ्गुणि ने इन्हें अग्नि के मान समीकृत किया है : 'यत्रे गृहद्वार इति काश्चकव', अग्निर् इति शारङ्गुणिः' ।

अग्नौ ध्रुवं स्थितास्तास्तु संस्तूयन्तेऽग्निना सह ।

प्राधान्यं तास्तु चैवाग्ने स्तुतिष्वेव हविःपु च ॥ ७ ॥

अग्नि में इद रूप से स्थित होने के कारण इनकी अग्नि के साथ-साथ स्तुति

की जाती है। इनकी दशा में भी स्तुति तथा हवि में अग्नि की प्रधानता रहती है।^१

^१ क्योंकि इन्हें तथा अन्य आग्नी देवों को केवल अग्नि का ही रूप माना गया है।

नक्तोपासौ च ये देव्याव् आग्नेय्यावेव ते स्मृते ।

श्याव्याग्नेयी हि कालस्य तस्यैवोपाः कलेव तु ॥ ८ ॥

जहाँ तक दो देवियों, रात्रि ओर उपस्, का प्रश्न है, इन्हें भी अग्नि से सम्बद्ध माना गया है। क्योंकि अन्धकार (श्यावी)^१ अग्नि के साथ सम्बद्ध है,^२ जब कि उपस् भी उसी काल^३ (समय) की एक कला (सोलहवाँ अंश) है।

^१ नैषण्डुक १ ७ में अह्निरिन्द्र रात्रि के तेशम नामों में से 'श्यावी' प्रथम है।

^२ इस प्रकार, श्यावा - रात्रि एक अग्नि सूक्त (ऋग्वेद १ ७१ १) के प्रथम मन्त्र में आता है।

^३ अर्थात् 'श्यावा' का एक भाग होने के कारण उपस् भी अग्नि के साथ सम्बद्ध है।
तु० की० निरुक्त ० १८ उपा रात्रि अपर वात् ।

तम उद्यत्युपा नक्तानक्तीमां हिमविन्दुभिः ।

अपि वाच्यक्तवर्णोति नञ्पूर्वाश्चेरिदं भवेत् ॥ ९ ॥

उपस् अन्धकार को हलका^१ कर देती है, रात्रि उमे हिम विन्दुओं से मण्डित कर देती है,^२ अथवा यह 'नञ्' उपसर्ग के साथ 'अञ्ज' घातु से व्युत्पन्न है और इसका अर्थ 'अन्यक्त वर्णा'^३ भी हो सकता है।

^१ तु० की० निरुक्त ० १८ 'उपा कस्माद् ? उद्यत्नाति' ।

^२ निरुक्त ८ १० 'नक्तानि अनक्ति भूतान्दुःखवन्त्यायेन', तु० की० 'रात्रि' के लिये 'रातेर्' वा स्याद् दानवर्मण प्रदायन्त्स्वान् अवश्याया (वरा, ० १८) ।

^३ तु० की०, 'अपि वा नक्ताऽयत्तवर्णा', निरुक्त ८ १० ।

सा हि दोषा भवत्यादौ निशीथे सा तमस्वती ।

नाम्ना भवत्युपाश्चैव सैषा प्रागुदयाद्रवेः ॥ १० ॥

क्योंकि आरम्भ में यह 'दोषा'^१ और मध्यरात्रि में 'तमस्वती' होती है, तथा सूर्योदय के पूर्व इसका नाम उपस् होता है।^२

^१ 'दोषा' और 'तमस्वती', तथा साथ ही साथ 'श्यावी' और 'नक्ता' नैषण्डुक १ ७, में 'रात्रि' के पर्याय के रूप में आते हैं।

३-दो दिव्य होता; तीन देवियों, त्वष्टृ

दैव्याविति तु होताराव् अग्नी पार्थिवमध्यमौ ।

दिव्यादग्नेर्हि जज्ञाते दैव्या तेनेह जन्मना ॥ ११ ॥

दो दिव्य होता अग्नि के पार्थिव तथा मध्यम रूप है ।^१ यतः इनका जन्म दिव्य अग्नि से हुआ था, अतः ये दिव्य जन्मा^२ हैं ।

^१ यत्र निम्न ८. ११ में यान्त्र की व्याख्या (देव्यी होनारात् अयं चाग्निर् असौ च मध्यम.) के भी अनुकूल है ।

^२ अर्थात् 'देव' को यहाँ पितृक नाम का रूप प्रदान किया गया है ।

तिस्रस्तु देव्यो याः प्रोक्तास् त्रिस्थानैवेह सा तु वाक् ।
त्रिविधेनोच्यते नाम्ना ज्योतिःपु त्रिपु वर्तिनी ॥१२॥

जिन्हें तीन देवियाँ कहते हैं वह यहाँ तीन स्थानों की वाच् ही हैं । तीन ज्योनियों^१ में निहित इसे त्रिविध नामों^२ से व्यक्त किया जाता है ।

^१ तु० की० ऊपर १. ९० ।

^२ वाच् के तीन रूपों के लिये देविये ऊपर २. ७२ और बाद ।

अग्निमेवानुगेळा तु मध्यं प्राप्ता सरस्वती ।
अमुं स्थिताधि लोकं तु भारती भवति ह्यसौ ॥ १३ ॥

इळा अग्नि का अनुगमन^१ करती है, सरस्वती^२ मध्यम से सम्बद्ध है, जब कि दिव्य लोक में स्थित होने के रूप में वह (वाच् का दिव्य रूप) भारती होती है ।

^१ 'अनुगा' . तु० की० ऊपर ३. ६ में 'अनुवर्तते' ।

^२ तु० की० ऊपर २. ७६ ।

संपा तु त्रिविधा वाग्वै दिवि च व्योम्नि चेह च ।
व्यस्ता चैव समस्ता च भजत्यग्नीनिमानपि ॥१४॥

अब, यही वाच् दिव्य, अन्तरिक्ष, तथा यहाँ (पृथिवी पर) होने के रूपों में त्रिविध है । अकेले और समस्त, दोनों ही रूपों में, यह इन अग्नियों^१ से सम्बद्ध है ।

^१ इस प्रकार न केवल पार्थिव वाच् के रूप में इळा पार्थिव अग्नि के क्षेत्र में स्थित है वरन् तीनों ही देवियों पार्थिव अग्नि में (ऊपर १. १०८) और साथ ही साथ अग्नि के दो अन्य रूपों में भी स्थित है ।

त्वष्टा तु यस्त्वयमेव पार्थिवोऽग्निरिति स्तुतिः ।
पार्थिवस्यास्य वर्चः स्युः कस्याप्यृक् चार्तवेषु च ॥१५॥

अब त्वष्टा के लिये भी पार्थिव अग्नि के समान ही स्तुति है,^१ अथवा,

पार्थिव के रूप में इनकी अर्चना करने वाली ऋचायें हैं^१, तथा ऋतुओं के सूक्तों^३ में भी एक ऋचा है जो एक न एक^४ अग्नि के रूप में इन्हें समर्पित है।

^१ अर्थात् आप्रा सूक्तों में प्रस्तुत अन्वकार निरुक्त ८ १४ में उद्धृत शाक्पूणि के दृष्टिमोक्ष (अग्निर् इति शाक्पूणि) के साथ तथा ननण्डन के उस दृष्टिमोक्ष के साथ भी समान है निम्नके अनुसार 'त्वष्टा का सर्वप्रथम आप्रा ऋचों के अन्तर्गत (२ ०) द्वितीय अन्तरिक्ष देवों के अन्तर्गत (५ ४), तथा तृतीय दिव्य देवों के अन्तर्गत (५ ६) उद्यम है अन्य लोगों के दृष्टिमोक्ष के अनुसार त्वष्टा को मन्वय स्थानाय बना गया है (मायमिवम त्वष्टा इत्य आहू, मन्वये च स्थाने मनाभ्यात् ' निरुक्त ८ १४)। इन्हें नाच (३ ५) रूपवर्ती के रूप में सम्पन्नपणीय कहा गया है।

^२ अर्थात् इन्हें सम्बोधित आप्रा सूक्तों वा ऋचाओं में यह पार्थिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करत है।

^३ तान ऋतु सूक्तों (ऋग्वेद १ १५ ० १६ ० १७) में से दो वा गुणान ऋचा त्वष्टा को सम्बोधित है, यद्यपि इनका नाम केवल ० १६ ३, में ही आता है।

^४ अर्थात् ऋतु-सूक्तों में अग्नि के तानों एवं में से किसी भा एक का नामपय हो सकता है।

४-दिव्य त्वष्टृ; दध्यञ्च और मधु की कथा

त्विषितस्त्वक्षतेर्वा स्यात् तूर्णमश्नुत एव वा ।

कर्मसूत्तारणो वेति तेन नामैतदश्नुते ॥ १६ ॥

त्वष्टा 'त्विष्' से अथवा 'स्वच्' से व्युत्पन्न हो सकता है, अथवा 'वह शीघ्रतापूर्वक प्राप्त करते हैं'^१, या 'वह कर्मों में सहायता देते हैं'^२, इस कारण ही यह नाम प्राप्त करते हैं।

^१ यह तान व्युत्पत्तियों निरुक्त ८ १३ से ली गई है 'त्वष्टा तूर्णं अश्नुत इति निरुक्ता त्विषर् वा स्याद् दीप्तिवर्मणस, त्वक्षतेर् वा स्यात् करोतिकर्मण' ।

^२ यह अनिरुक्त व्युत्पत्ति यास्क के त्वक्षते करोतिकर्मण' से ली गई हो सकता है।

यः सहस्रतमो रश्मी रवेश्चन्द्रमुपाश्रितः ।

सोऽपि त्वष्टारमेवाग्निं परं चेह च यन्मधु ॥ १७ ॥

सूर्य की सहस्र रश्मियों जो चन्द्रमा में आश्रित हैं, तथा वह मधु भी जो ऋषीं पर तथा उसके ऊपर है, उसी त्वष्टा में निहित है जो अग्नि है।^१

^१ यह वह दिव्य त्वष्टा ही है जो चन्द्रमा में स्थित दिव्य सोम के रक्षक है। अग्नि को भी सोम का रक्षक कहा गया है। बाद के पुराणशास्त्र में यह कथन है कि जब देवों द्वारा सोम पान कर लिये जाने के कारण चन्द्रमा घटने लगे तो सूर्य ने उन्हें पुन सम्पन्न किया था। दिव्य मधु के साथ त्वष्टा के सम्बन्ध का इस प्रकार

वर्णन करने के पश्चात् नीचे के श्लोकों में यह बताया गया है कि अभिनों ने किस प्रकार मधु को दध्यञ्ज से प्राप्त किया था।

प्रादाद्ब्रह्मापि सुप्रीतः सुताय तदथर्वणः ।

स चाभवदृषिस्तेन ब्रह्मणा दीक्षिमत्तरः ॥ १८ ॥^१

अगले प्रकार प्रसन्न होकर (इन्द्र ने) अथर्वन् के पुत्र (दध्यञ्ज) को वह ब्रह्म^२ (अभिचार) प्रदान किया; और इस ब्रह्म द्वारा यह ऋषि और भी दीक्ष हो गये।

^१ प्रस्तुत में लेकर २३वें श्लोक में दध्यञ्ज की जो कथा वर्णित है वह ऋग्वेद १. ११६, १७ पर जीतिमजरी में उद्धृत है। ऋग्वेद के इसी स्थल पर भाष्य करते हुये भाष्य ने भी इसका वर्णन किया और यह कहा है कि इसका शाब्दात्मक तथा वाजसनेयक में विस्तार से वर्णन है। यह कथा शतपथ ब्राह्मण (१४. १, १, १८-२५) में भी मिलती है।

^२ जो सोम के जायाम को प्रगट करता है।

तमृषिं निपिपेधेन्द्रो मैवं वोचः क्वचिन्मधु ।

न हि प्राक्तेमधुन्यस्मिञ् जीवन्तं त्वोत्सृजाम्यहम् ॥ १९ ॥

इन्द्र ने ऋषि को निषेध करते हुये कहा 'इस प्रकार उद्घाटित मधु की कहीं भी चर्चा न करना क्योंकि यदि इस मधु की घोषणा कर दी गई तो मैं तुम्हें जीवित नहीं बचने दूँगा।'

तमृषिं त्वश्विनौ देवौ विधित्ते मध्वयाचताम् ।

स च ताभ्यां तदाचष्टे यदुवाच शचीपतिः ॥ २० ॥

अब, दिव्य अश्विनो ने ऋषि से गुप्त रूप से मधु की थाचना की; और उन लोगों से ऋषि ने यह बताया कि शचीपति (इन्द्र) ने क्या कहा था।

५-दध्यञ्ज का अश्व-शिरः; मध्यम त्वष्टृ

तमब्रूतां तु नासत्याव् आश्व्येन शिरसा भवान् ।

मध्वाशु ग्राहयत्वावां मेन्द्रश्च त्वा वर्धात्ततः ॥ २१ ॥

उनसे नासत्यों ने कहा : 'आप हम दोनों को क्षीप्रता से अश्व-शिर धारण करके मधु ग्रहण करायें; इसके लिये इन्द्र आपका वध नहीं करेंगे।'

आश्व्येन शिरसा तौ तु दध्यङ्ङाह घदश्विनौ ।

तदस्येन्द्रोऽहरत्स्वं तन् न्यधत्तामस्य यच्छिरः ॥ २२ ॥

यतः अश्व-शिर के रूप में दध्यञ्ज ने अश्विनद्वय को रहस्य बता दिया था, अतः इन्द्र ने उनके उस शिर को पृथक् कर दिया, किन्तु अश्विनों ने उनके शिर को उन पर पुनः स्थपित कर दिया।^१

^१ शतपथ ब्राह्मण तथा सायण ने केवल शिर के पुनर्स्थापन तत्र की वृथा का वांन किया है, तु० वा० 'अथस्य स्र शिर आह्वय नदधस्य प्रति वधतु', शतपथ ब्राह्मण १४ १, १, २३, 'स्वकीय मानुष शिरः प्रत्यपत्तान्', भाष्येण ।

दधीचश्च शिरश्चाद्भ्यं कृत्तं वज्रेण वज्रिणा ।

पपात सरसो मध्ये पर्वते शर्यणावति ॥ २३ ॥

वज्रधर द्वारा अपने वज्र से धृथरु कर दिया गया दध्यञ्ज का अश्व शिर शर्यणावन् पर्वत पर स्थित एक सगर मं गिर पड़ा ।

तदद्भ्यस्तु समुत्थाय भूतेभ्यो विविधान्वरान् ।

प्रादाय युगपर्यन्तं तास्वेवाप्सु निमज्जति ॥ २४ ॥

जलों से ऊपर उठ कर तथा जीविम प्राणियों को विविध वरदान देने हुये वह युगपर्यन्त उन्ही जलों में डूबा रहता है ।

त्वष्टा रूपविकर्ता च योऽसौ माध्यमिके गणे ।

स्तुतः स च निपातेन सूक्तं तस्य न द्वियते ॥ २५ ॥

वही त्वष्टा, जो मध्य-स्थानीय^१ गणों के अन्तर्गत आते हैं, रूपों के विकर्ता^२ हैं। इनकी भी नैपातिक स्तुति ही होती है, इनको कोई सूक्त समर्पित नहीं है ।

^१ तु० वा० निरुक्त ८ १४ 'माध्यमिन्स् त्वष्टा इत् आदुर, मध्यमे च स्थाने ममाध्वान् ।'

^२ ऋग्वेद में त्वष्टा की अक्सर रथा का निर्माण, तथा नैत्तिरीय महिता में 'रूपदृष्ट' कहा गया है ।

६-वनस्पति; स्वाहाकृतियों

वनस्पति तु यं प्राहुर् अयं सोऽग्निर्वनस्पतिः ।

अयं वनानां हि पतिः पाता पालयतीति वा ॥ २६ ॥

जिसे वनस्पति कहा गया है वह वन के पति के रूप में इसी अग्नि का एक रूप है, क्योंकि रचरु के रूप में अग्नि ही वनों के पति है, अथवा इसलिये भी कि यह वनों का पालन^३ करते हैं ।

^१ एक आग्नी देव के रूप में (ऋग्वेद १. १३, ११) वनस्पति को पार्थिव अग्नि के साथ समीकृत किया गया है; किन्तु ऊपर (१. ६६), जहाँ अग्नि के तीन रूपों का विभेद किया गया है, वनस्पति उसी प्रकार मध्यम अग्नि का प्रतिनिधित्व करता है जिस प्रकार १. ६७ (ऊपर) में जातवेदस् ।

^२ तु० की० निरुक्त ८ ३. 'वनाना पाता वा पालयिता वा ।'

अग्निर्गृत्समदेनायं वनस्पतिरितोळितः ।

मन्दस्वेत्यस्य सूक्तस्य पल्लवस्य तृतीयया ॥ २७ ॥

छः ऋचाओं वाले 'मन्दस्व' (ऋग्वेद २. ३७) (से आरम्भ होने वाले) सूक्त की तृतीय ऋचा^१ में गृत्समद ने इस अग्नि की भी वनस्पति के रूप में स्तुति की है ।

^१ निरुक्त ८. ३ में यास्क ने वनस्पति के उदाहरण के लिए इसी ऋचा की विवेचना की है । एक आग्नी देव के रूप में वनस्पति के सम्बन्ध में यास्क (निरुक्त ८. १७-२०) ने चार अन्य (ऋग्वेद १०. ११०, १०; ३. ८, १; तथा दो ऐसी ऋचाएँ जो ऋग्वेद की नहीं हैं) का उद्धरण दिया है ।

यूपवत्तरुयच्चैव स्तुतिर्यास्य प्रसङ्गजा ।

सर्वेणाञ्जन्तिसूक्तेन तृतीये सा तु मण्डले ॥ २८ ॥

किन्तु एक यज्ञ-यूप,^१ और एक वृक्ष के रूप में उसकी (वनस्पति की) 'अञ्जन्ति' से आरम्भ होने वाले (ऋग्वेद ३. ८) सगुण्य^२ सूक्त द्वारा प्रसङ्गात्मक स्तुति तृतीय मण्डल में मिलती है ।

^१ तु० की० नीचे ४ १०० ।

^२ ऋग्वेद ३. ८, १ पर अपनी टिप्पणी में यास्क (निरुक्त ८. १६) ने वनस्पति के सम्बन्ध में केवल 'अक्षिर् इति शाकपृगिः' मात्र ही कहा है । किन्तु ऋग्वेद १०. ११०, १० पर टिप्पणी करते हुवे (निरुक्त ८. १७) में वह इस प्रकार मन न्वक्त करते हैं : 'तन् को वनस्पतिः ? यूप इति बाहुव्यन्; अक्षिर् इति शाकपृगिः ।'

स्वाहाकृतयोऽनेकाश्च विदुषां मतयोऽभवन् ।

तत्सर्वं त्वयस्मेवाग्निर् भवतीति विनिश्चयः ॥ २९ ॥

स्वाहाकृतियों के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं । फिर भी यह एक निश्चित निष्कर्ष है कि यह^१ केवल इसी अग्नि की रूप हैं ।^२

^१ तु० की० निरुक्त ८. २० में दो हुई इस शब्द की विभिन्न व्याख्याएँ ।

^२ तु० की० निरुक्त ८. २२ में 'प्रवाजास्' और 'अनुवाजास्' के साथ समाकृत विभिन्न देवों के उद्देश के बाद यास्क की यह टिप्पणी : 'शमेया इति तु स्थितिः, भक्ति-भावम् इतरत् ।'

अयं हि कर्ता स्वाहानां कृतिस्तासामिहैकजा ।

अयं प्रसूतिभूतानां सर्वेषामयमव्ययः ॥ ३० ॥

क्योंकि यही स्वाहा का कर्ता है, यहाँ इसके कृतित्व की प्रकृति एक समान (एकज) है : यही सब में अव्यय तथा भूतों का स्रोत है ।

^१ इस व्युत्पत्ति में 'कृति' का 'कर्तृ' द्वारा व्याख्या भी गढ़ है। यहाँ तात्पर्य यह है कि जहाँ अनेक प्रकार के 'स्वाहा' हैं, वहाँ इनका कर्ता केवल एक प्रति ही है जो समस्त भूतों का स्रोत है (तु० भा० ऊपर १ ६१) ।

७-तनूनपात् और नराशंस : ऋग्वेद १. १४ और १५ के देवता

तनूनपाद्विद्वतीया च नराशंसवती च या ।

समस्येते प्रयोक्तव्ये त्रिष्वेवोभयवत्सु तु ॥ ३१ ॥

द्वितीय (ऋचा) में तनूनपात् तथा जिसमें नराशंस भी हो, ऐसा समस्त प्रयोग करने वाले केवल तीन^१ सूक्त ही हैं, जिनमें यह दोनों^२ ही मिलते हैं ।

^१ देखिये ऊपर ० १५५ ।

^२ अर्थात् तनूनपात् और नराशंस ।

नराशंसवती वा स्याद् द्वितीया च प्रजार्थिनाम् ।

वलकामोऽन्नकामो वा भूतिमिच्छेदथापि यः ॥ ३२ ॥

नराशंस तथा साथ ही साथ द्वितीय^१ से युक्त ऋचा उनकी ही सन्तती है जिन्हें सन्तान की कामना, वल की कामना, अथवा अन्न की कामना, या समृद्धि की कामना होती है ।

^१ अर्थात् 'तनूनपात्' से युक्त ।

आग्नेयं सूक्तमैभिर्यद् वैश्वदेवमिहोच्यते ।

तद्विश्वलिङ्गं गायत्रं वैश्वदेवेषु शम्यते ॥ ३३ ॥

अग्नि^१ का आवाहन करने वाला सूक्त 'ऐभि' (ऋग्वेद १ १४) का, जिसे यहाँ विश्वेदेवों को सम्बोधित कहा गया है, विश्वेदेव-सूक्तों के अन्तर्गत उच्चारण किया जाता है क्योंकि गायत्री छन्द में होने के कारण इसमें 'विश्वत्व' का लिङ्ग वर्तमान है ।

^१ सम्बोधन के रूप में इस सूक्त में केवल अग्नि या ही आवाहन किया गया है, किन्तु इसमें ऐसे देवों का, जिनका नाम वार 'विश्वे' लक्ष्य के साथ चर्चा है, अनेक बार उल्लेख है । साथ ही अनेक वैयक्तिक देवों का भा (३ और १० मन्त्रों में) उल्लेख है । तु० भा० नीचे ३. ५१ ।

^२ तु० भा० नीचे ३ ४३ और ऊपर २ १२८, १३३, १३४ ।

इन्द्र सोमं पिबेतीदं यद्वादशकर्मातिवम् ।

तस्मिन्सहर्तुना सप्त प्रत्युचं स्तौति देवताः ॥ ३४ ॥

बाराह ऋचाओं वाले तथा ऋतुओं को सम्बोधित 'इन्द्र सोमं पिबे' (ऋग्वेद १. १५) सूक्त ऋतु के साथ-साथ ऋचाओं में सात देवों की स्तुति करता है ।

^१ अर्थात् 'ऋतुयावम्' के देव; तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण २. ३९ ।

^२ तिनकी गीचे ३७ वें तथा ३८ वें श्लोक में गणना करताई गई है ।

नञ्चतुनेति पदस्वृष्टु चतसृष्वृष्टुभिः सह ।

पुनर्द्रव्योर्ऋतुनेति बहुत्वैकत्वलक्षिताः ॥ ३५ ॥

इसमें देवों को द्रव्यः ऋचाओं (१-६) में 'ऋतु' के साथ, चार में 'ऋतुओं' के साथ तथा पुनः दो में 'ऋतु' के साथ बहुवचन तथा एकवचन में व्यक्त किया गया है ।^१

^१ यहाँ तक ऋग्वेद के इस सूक्त का प्रश्न है, यह वक्तव्य कुछ अनुमानात्मक ही है ('ऋतुना', १-४ और ६ में आता है, जब कि ५ में 'ऋतुर्' है; 'ऋतुभिः' केवल ९ और १० में आता है, और ७ तथा ८ में 'ऋतु' का कोई भी रूप नहीं है- ११ और १२ में 'ऋतुना' आता है); किन्तु ऋतु स्तुति के लिये बाराह 'प्रेषो' का इसमें बिल्कुल ठीक ठीक वर्णन है, देखिये तैत्तिरीय संहिता ६. ५, ३, ऐतरेय ब्राह्मण २. २०, २-४ ।

८-ऋतुओं को समर्पित सूक्तः ऋग्वेद १. १५ ।

ऋतवो देवताभिश्च निपानेनेह संस्तुताः ।

तथर्तुप्रेषसूक्ते च तथा गात्सर्मदेऽपि च ॥ ३६ ॥

यहाँ देवों के साथ ऋतुओं की केवल नैपतिक स्तुति है : ऋतुओं को समर्पित प्रेष-सूक्त तथा गृध्रसर्मद के सूक्त में भी ऐसी ही स्थिति है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद २. ३६; तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ५. ५, १ ।

मुख्यया त्विन्द्रमेवास्तौन् मरुतस्तु द्वितीयया ।

तृतीयया तु त्वष्टारं चतुर्थ्या चाग्निमेव च ॥ ३७ ॥

पञ्चम्या तु पुनः शकं पृथग् देवावृतावृथौ ।

सप्तम्याद्याभिरग्निं च चतुर्भिर्द्रविणोदसम् ॥ ३८ ॥

उपने (ऋषि ने) प्रथम^१ ऋचा से इन्द्र की, द्वितीय से मरुतों की, तृतीय से त्वष्टा की, और चतुर्थ से अग्नि की स्तुति की; पुनः पाँचवें से शक

(इन्द्र) की, छठवें से सप्त में वृद्धि को प्राप्त करने वाले देवों (मित्र-वराह) की, भीरु सप्तवें से आरम्भ होने वाली चार ऋचाओं (७-१०) में अग्नि द्रविणोदस् की स्तुति की ।

^१ 'मुख्यया' के साथ नीचे ५ १ के 'मुखे तु या' की तुलना कीजिये ।

^२ ऋतु सूक्तों में तृष्ठा के लिये तु० की० ऊपर ३ १५ ।

आदेशादैवतं ज्ञेयम् ऋद्धान्त्राणां न लिङ्गतः ।

न शक्यं लिङ्गतो ह्यासां ज्ञातुं तत्त्वेन दैवतम् ॥ ३९ ॥

ऋग्वेद के मन्त्रों के देवताओं को लिङ्ग के आधार पर नहीं बरन् आधिकारिक वक्तव्यों^१ के आधार पर ही जानना चाहिये; क्योंकि मन्त्रों के लिङ्ग^२ के आधार पर उनके देवताओं का तत्त्वतः ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता ।

^१ तु० की० नीचे ३ १०० ।

^२ अर्थात् अग्नि को उनके वास्तविक नहीं बरन् उम लाक्षणिक नाम 'द्रविणोदस्' से ही व्यक्त किया गया है जो किसी अन्य देवता का भावोक्त हो सकता है (यद्यपि यह अग्नि की एक सुविस्तृत उपाधि है, तु० की० ऊपर १ १०६, २ २५, विन्दु देविये नीचे ३ ६१) ।

एकादश्या तु नासत्यौ द्वादश्याग्निमिमं पुनः ।

पृथक्पृथक्स्तुतीदं तु सूक्तमाह रथीतरः ॥ ४० ॥

ग्यारहवें से बह नामव्यों का, तथा बारहवें से पुनः इस अग्नि की स्तुति करता है । फिर भी, रथीतर का कथन है कि इस सूक्त में पृथक्-पृथक् स्तुतियाँ हैं ।^१

^१ दूसरे शब्दों में यह एक 'पृथक्स्तुति' है जो विश्वदेवों को समर्पित तीन प्रकार के स्तुति सूक्तों में से एक है, तु० की० नीचे ४३ नौ श्लोक ।

९-विश्वेदेवों को समर्पित तीन प्रकार के सूक्त

बहुदैवे द्विदैवे वा गुणैर्वा यत्र कर्मजैः ।

स्तूयते देवलैकैका विभक्तस्तुति तद्विदुः ॥ ४१ ॥

जहाँ अनेक देवताओं अथवा दो दो देवताओं वाले सूक्त में प्रत्येक देवता की अकेले^१ उसके कर्म^२ से उत्पन्न गुणों के आधार पर स्तुति की गई हो, उते 'विभक्त-स्तुति'^३ मानते हैं ।

^१ तु० की० नीचे ३ ८२, जहाँ 'एकवत्' (एकवचन) में) का प्रयोग किया है ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ८. १९, पर नीचे ६ ६९ ।

^३ यास्क ने निरुक्त ७ ८ में 'सस्तव' (सम्मिलित स्तुति) के विपरीत 'विमक्ति-स्तुति' के लिये ऋग्वेद १०. १७, ३ का उदाहरण दिया है जहाँ पूषन् और अग्नि की पृथक्-पृथक् एकवचन में स्तुति की गई है ।

वैश्वदेवानि सूक्तानि त्रिविधानि भवन्ति तु ।

सूर्यसंस्तवसंयुक्तं विश्वलिङ्गं पृथक्स्तुति ॥ ४२ ॥

विश्वेदेव-सूक्त तीन प्रकार के होते हैं : जिसमें सूर्य के साथ सम्मिलित स्तवन होता है (सूर्य-संस्तव), जिसमें 'विश्व-लिङ्ग' होता है, और वह जिसमें 'पृथक्-स्तुति' होती है ।

पृथक्स्तुतीति यत्प्रोक्तं तद्विद्याद्ब्रह्मदेवतम् ।

विश्वलिङ्गं तु तद्यत्र विश्वैः स्वैः कर्मजैर्गुणैः ॥ ४३ ॥

जिसे 'पृथक्-स्तुति' कहते हैं उसे अनेक देवताओं को सम्बोधित मानना चाहिये; जो 'विश्व-लिङ्ग' से युक्त होता है उसमें देवों की उनके कर्म^२ से उत्पन्न 'विश्व'^३ गुणों के साथ स्तुति की जाती है ।

^१ 'विश्व-लिङ्ग' शब्द निरुक्त १२. ४० में आता है जहाँ यास्क ने शाकपूणि का यह मत उद्धृत किया है कि केवल उन्हीं मूर्तों को 'वैश्वदेव' कहते हैं जिनमें विशेष लक्षण शब्द 'विश्वे' प्रयुक्त होता है ।

^२ तु० की० नीचे ६. ६९ ।

^३ तु० की० ऊपर २ १२४ ।

विश्वानुद्दिश्य यद्देवान् स्तौति सूर्यमनेकधा ।

देवानेवाभिसंस्तौति तं प्राहुः सूर्यसंस्तवम् ॥ ४४ ॥

जो विश्वेदेवों को उद्दिष्ट करके अनेकधा सूर्य की स्तुति करते हुये इन देवों की भी स्तुति करता है, उसे 'सूर्य-संस्तव' कहते हैं ।

न तु भागस्य सूक्तादौ सूक्तेष्वेवौपसेषु वा ।

न सावित्रे ह्वयामीति न सूर्यायां क्रतां मखे ॥ ४५ ॥

किन्तु यह शब्द (विश्वदेव) भग^१ के सूक्त के आरम्भ में व्यवहृत नहीं होता; और न यह उपस् के या सवितृ के सूक्त 'ह्वयामि'^२ (ऋग्वेद १. ३५) में, या सूर्य के सूक्त^३ में ही यज्ञात्मक दृष्टि से प्रयुक्त होता है ।

^१ 'भागस्य सूक्तादौ' = 'भागस्य सूक्तस्यादौ: ऋग्वेद में भग की मर्मर्पित एक मात्र सूक्त ७. ४१ की प्रथम ऋचा में अनेक अन्य देवों का तो उल्लेख है किन्तु 'वैश्वदेवों' का नहीं ।

^२ इस सूक्त की प्रथम ऋचा में यद्यपि सवितृ को अनेक अन्य देवों के साथ सम्बद्ध किया गया है, किन्तु यह 'वैश्वदेवी' नहा है।

^३ ऋग्वेद १० ८१ की प्रथम ऋचा के सम्बन्ध में भा उपरोक्त टिप्पणी की जा सकती है।

१०-किसी सूक्त के देवता का निर्णय कैसे किया जाय
न चैवैवं प्रवादेषु मन्त्रेष्वन्येषु केपुचित् ।
न च यत्र सजोषेति पदं वा स्यात्सजूरिति ॥ ४६ ॥

और न तो हमी प्रकार किसी अन्य ऐसे मन्त्र में इनका प्रयोग होता है जो प्रवाद' हों, अथवा जिसमें 'सजोषा.' या 'सजू' शब्द आवें हों।

^१ अर्थात् जहाँ केवल नामों का प्रयोग उल्टा हो जिसमें आशय निहित न हो।

यस्मिन्प्रसङ्गादपि तु बहीनां परिकीर्तनम् ।
वैश्वदेवं तदप्याह स्थविरो लामकायनः ॥ ४७ ॥

किन्तु बृह. लामकायन ऐसे सूक्तों तक को विश्वेदेवों को सम्बोधित मानते हैं जिनमें अनेक देवताओं की केवल प्रसङ्गवत् ही प्रशस्ति होती है।

असंस्तुतं स्तुतं वापि प्रदिष्टं दैवतं क्वचित् ।
मन्त्रैस्तद्वपयोऽर्चन्ति तां तु बुध्येत शास्त्रवित् ॥ ४८ ॥

ऐसे देवता की, जिसकी स्तुति हो अथवा नहीं, किन्तु जिसके नाम का सूक्त में कही न कहीं संकेत हो, द्रष्टागण मन्त्रों में अर्चना करते हैं। शास्त्रविद् को ऐसे देवता पर ध्यान देना चाहिये।

^२ तु० की० नीचे का श्लोक, देखिये ऊपर १ २० भा।

आदौ हि मध्ये चान्ते च पृथक्त्वेषु च कर्तृभिः ।
कर्माण्यनपदिष्टानि प्रदिष्टान्यपि तु क्वचित् ॥ ४९ ॥

(देवों के) कर्मों को चाहे उनके प्रतिनिधि नामों' द्वारा ही क्यों न व्यक्त किया गया हो, उनका कहीं न कहीं, आरम्भ में, मध्य में, अन्त में, अथवा पृथक् स्थलों पर निर्देश^२ अवश्य होता है।

^१ अर्थात् इन कर्मों को करने वाले देवों के नाम का उल्लेख नहा भा हो सकता, जैसे ऋग्वेद ८ २९ में है।

^२ अर्थात् इन्हें उन देवों के साथ सम्बद्ध अवदन किया जाता है जिनकी ये विशिष्टतायें होती हैं।

कर्मैव तावत्सावित्र्यां निविदि स्तौति कर्मणा ।

यद्वेनुः सप्त्यनङ्गाहौ वोळ्हा दोग्ध्याशुरेव वा ॥५०॥

सवितृ के निविद्' में स्वयं कर्म ही द्वारा कर्म की स्तुति की गई है^१ क्योंकि घेनु, अनङ्गाह और वल को (क्रमशः) दोहन करने वाला, द्रुतगामी अथवा वाहक^२ कहा गया है ।

^१ ऋग्वेद १. २४, ३ सावितृ वा 'निविद्' है; तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ५. १७, ७ ।

^२ तु० की० नीचे ३ ७८; ऊपर १. ७ ('स्तुतिस् तु कर्मणा', इत्यादि) भी देखिये ।

^३ वाजमनेयि सहिता २२. २० में : 'दोग्ध्री घेनुर् वोदानङ्गान् आशुः मग्निः', इसे कुछ विभेद के साथ नीचे ३ ७९ में उद्धृत किया गया है ।

११-प्रसंगात्मक देवता तथा सूक्त का स्वामित्व । वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टा भागे यत्स्तौति चाग्न्यादीन् मित्रादींश्चाश्वसंस्तुतौ ।

यदैभिरिति चैतस्मिन् वैश्वदेवेऽग्निमर्चति ॥ ५१ ॥

तदाहुरादावन्ते च प्रायशोऽन्या स्तुवन्नृचः ।

प्रतियोगात्प्रसङ्गाद्वा स्तौत्यन्यामपि देवताम् ॥ ५१ ॥

जब कभी कोई (ऋषि) अग्नि तथा अन्य की 'भग' के सूक्त (ऋग्वेद ७. ४१) द्वारा और मित्र तथा अन्य की अश्व की प्रशस्ति (ऋग्वेद १. १६२)^१ द्वारा स्तुति, और विश्वदेव^२ सूक्त 'ऐभि' (ऋग्वेद १: १४) द्वारा अग्नि की अर्चना करता है, तो वहाँ ऐसा कहा गया है यद्यपि वह अपने स्तवन (अधिकांशतः (किसी सूक्त के) आदि तथा अन्त^३ में अन्य ऋचाओं का उच्चारण करता है, तथापि वह साथ ही साथ प्रतियोग से अथवा प्रसंगशः अन्य देवताओं की भी स्तुति करता है ।^४

^१ अर्थात् प्रथम मन्त्र में; देखिये ऊपर ३. ४५ ।

^२ अर्थात् प्रथम मन्त्र में ।

^३ देखिये ऊपर ३. ३३ : 'आग्नेयं सूक्तम्.....वैश्वदेवम् इहोच्यते', तु० की० नीचे ३. १४१ ।

^४ तु० की० ऊपर १. २२, और नीचे ५. १७१ ।

^५ अर्थात् सूक्त के मध्य में प्रयुक्त छन्दों से मित्र ऋचायें । उदाहरण के लिये मग-सूक्त (ऋग्वेद ७ ४१) की प्रथम ऋचा 'जगती' छन्द में तथा शेष 'त्रिष्टुप्' में है; सवितृ-सूक्त वा (ऋग्वेद १. ३५), जिसका इसी सन्दर्भ में ऊपर (४५ वें श्लोक में) उल्लेख किया जा चुका है, प्रथम मन्त्र भी 'जगती' तथा शेष 'त्रिष्टुप्' में है ।

^६ अर्थात् किसी सूक्त की प्रथम और अन्तिम ऋचा में छन्द तथा देवता की दृष्टि से अन्तर विभेद होगा है ।

यस्यां वदत्यर्थवादान् सा ज्ञेया सूक्तभागिनी ।

गं तु स्तौति प्रसङ्गेन सा विज्ञेया निपातिनी ॥ ५३ ॥

उस देवता को, जिसे वह किमी अर्थ प्राप्ति के लिये मन्वोधित करता है, सूक्त का भागी माना जाता है, किन्तु जिसकी वह केवल प्रसंगश स्तुति करता है, उसे निपातिक^१ मानना चाहिये ।

^१ तु० की० ऊपर १ ९ 'अर्थ हुनन्तम्' ।

^२ तु० की० १ १७, १८ ।

१२-वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं की गणना

चतुर्धा भण्यते तस्मिन् सूक्ते वा सूक्तभागिनी ।

यस्मिन्सर्वास्तु राजर्षीन् ऋषीन्वापि स्तुवन्नृषिः ॥ ५४ ॥

मेधातिथिरगस्त्यस्तु बृहदुक्थो मनुर्गयः ।

ऋजिश्वा वसुकर्णश्च शार्यातो गोतमो लुशः ॥ ५५ ॥

स्वस्त्यात्रेयः परछेपः कक्षीवान् गाथिनौर्वशौ ।

नाभाकश्चैव निर्दिष्टो दुवस्युर्ममतासुतः ॥ ५६ ॥

विहव्यः कश्यप ऋषिर् अवत्सारश्च नाम यः ।

वामदेवो मधुछन्दाः पार्थो दक्षसुतादितिः ॥ ५७ ॥

जुहर्गृत्समदश्चर्षिर् देवाः सप्तर्षयश्च ये ।

यमोऽग्निस्तापसः कुत्सः कुसीदी चित एव च ॥ ५८ ॥

बन्धुप्रभृतयश्चैव चत्वारो भ्रातरः पृथक् ।

विष्णुश्च नेजमेपश्च नाम्ना संवननश्च यः ॥ ५९ ॥

यह कहा जा सकता है कि ऐसे सूक्तों में सूक्त के भागी देवता को चार प्रकार से निर्दिष्ट^३ किया जाता है जिनमें कोई द्रष्टा समस्त राजर्षियों अथवा ऋषियों की इन नामों से स्तुति करता है :

मेधातिथि^१, अगस्त्य^२, बृहदुक्थ^३, मनु^४, गय^५, ऋजिश्नु^६, वसुर्ग^७, शार्यात^८, गोतम^९, लुश^{१०}, स्वस्त्यात्रेय^{११}, परछेप^{१२}, कक्षीवद्^{१३}, गाथिन क पुत्र (विधामित्र)^{१४}, और उर्वशी के पुत्र (वसिष्ठ)^{१५}, नाभाक^{१६}, दुवस्यु^{१७}, और ममता के पुत्र (दीर्घतमस्)^{१८}, विहव्य^{१९}, ऋषि परश्यप^{२०}, और वह जिनका नाम अवत्सार^{२१}, है, वामदेव^{२२}, मधुछन्द्स्^{२३}, पार्थ^{२४}, दक्ष की पुत्री

अदिति^{१०}; जुहू^{११}, और ऋषि गृत्समद^{१२}, और वह जो दिव्य ससर्पिं हैं^{१३}, यम^{१४}, अग्नितापस^{१५}, कुत्स^{१६}, कुसीदिन्^{१७}, और त्रित^{१८}; और चार यन्त्रु^{१९}, तथा यही पृथक्-पृथक् भी^{२०}, विष्णु^{२१}, और नेजमेप^{२२}, और वह जिनका नाम संवनन^{२३} है ।

^१ ५०-५९ वें श्लोक में गिनावे गवे सीतास नाम (नाभाक' के अतिरिक्त) वैश्वदेव-सूक्तों के प्रसिद्ध द्रष्टा हैं । ५५-५७ वें श्लोक में आनेवाले चौबीस पुरुष-नामों में से सत्रह का ऊपर (२. १२९-१३१) तीं जुड़ वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं की सूची में नाम आता है ।

- ^२ ऋग्वेद १. १४ का द्रष्टा ।
^३ ऋग्वेद १. १८६ का द्रष्टा ।
^४ ऋग्वेद १०. ५६ का द्रष्टा ।
^५ ऋग्वेद ८. २७-३० के द्रष्टा ।
^६ ऋग्वेद १०. ६३. ६४ के द्रष्टा ।
^७ ऋग्वेद ६. ४९-५२ के द्रष्टा ।
^८ ऋग्वेद १०. ६५. ६६ के द्रष्टा ।
^९ ऋग्वेद १०. ९२ के द्रष्टा ।
^{१०} ऋग्वेद १. ८९. ९० के द्रष्टा ।
^{११} ऋग्वेद १०. ३५. ३६ के द्रष्टा ।
^{१२} ऋग्वेद ५. ५०. ५१ के द्रष्टा ।
^{१३} ऋग्वेद १. १३९ का द्रष्टा ।
^{१४} ऋग्वेद १. १२१-१२२ के द्रष्टा ।
^{१५} ऋग्वेद १. ३, ७-९, १०. १३७, ५, के द्रष्टा; इन्हें किसी सम्पूर्ण वैश्वदेव सूक्त के प्रणयन का श्रेय नहीं दिया गया है ।
^{१६} ऋग्वेद ७. ३४-३७. ३९. ४०. ४२-४३ के द्रष्टा ।
^{१७} नाभाक (ऋग्वेद ८. ३९-४२ का द्रष्टा) को किसी भी वैश्वदेव-सूक्त अथवा ऋचा का द्रष्टा नहीं कहा गया है । दूसरी ओर, नाभानेदिष्ट, जिसका वैश्वदेव-सूक्तों के द्रष्टाओं की एक भूत तालिका (ऊपर २. १२९-१३१) में उल्लेख है, दो वैश्वदेव सूक्तों (ऋग्वेद १०. ६१.

६२) का द्रष्टा है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ 'नेदिष्टो' शब्द कदाचित् 'नेदिष्टो' का ही एक भ्रष्ट पाठ है ।

- ^{१८} ऋग्वेद १०. १०० का द्रष्टा ।
^{१९} ऋग्वेद १. १६४ का द्रष्टा ।
^{२०} ऋग्वेद १०. १२८ का द्रष्टा ।
^{२१} ऋग्वेद १०. १३७, २, और ८. २९ का द्रष्टा ।
^{२२} ऋग्वेद ५. ४४ का द्रष्टा ।
^{२३} ऋग्वेद ४. ५५ का द्रष्टा ।
^{२४} ऋग्वेद १. ३, ७-९ का द्रष्टा ।
^{२५} अर्थात् ऋग्वेद १०. ९३ का द्रष्टा 'तान्व पार्थ' ।
^{२६} अर्थात् 'अदिनि दाक्षायणी' जो ऋग्वेद १०. ७२ की ऋषि है; तु० की० सर्वा-नुक्रमणी; आर्षानुक्रमणी १०. २९ ।
^{२७} ऋग्वेद १०. १०९ का द्रष्टा ।
^{२८} ऋग्वेद २. २९. ३१ के द्रष्टा ।
^{२९} ऋग्वेद १०. १३७ का द्रष्टा ।
^{३०} ऋग्वेद १०. १४ तथा १०. १० के एक अंश के द्रष्टा ।
^{३१} ऋग्वेद १०. १४१ के द्रष्टा ।
^{३२} ऋग्वेद १०६. १०७ के द्रष्टा और १. १०५ के वैकल्पिक द्रष्टा भी ।
^{३३} ऋग्वेद ८. ८३ का द्रष्टा ।
^{३४} ऋग्वेद १०. १-७ के द्रष्टा और १. १०५ के वैकल्पिक द्रष्टा ।
^{३५} ऋग्वेद ५. २४ और १०. ५७-६० के द्रष्टागण ।
^{३६} अर्थात् ऋग्वेद ५. २४ में; तु० की० आर्षानुक्रमणी ५. ११, जहाँ इनके नामों की गणना कराई गई है और

इन्हें 'एकवा.' कहा गया है। सर्वातु ऋग्वेद १० १८४ के बाद यिजु का क्रमणी में भी यही उक्ति दुर्हरादगद है। द्रष्टा ।

२७ ऋग्वेद १० १८४ का द्रष्टा ।

२८ ऋग्वेद १० १९१ का द्रष्टा ।

एते तु सर्व एवास्य विश्वैः स्वैः कर्मजैर्गुणैः ।

समस्तैरथ च व्यस्तैः पृथक्सूक्तेषु तुष्टुवुः ॥ ६० ॥

इन सब ने पृथक् पृथक् सूक्तों में उसकी (विश्वदेव की) कर्मों से उत्पन्न 'विश्वै' गुणों के साथ स्तुति की है, चाहे इन गुणों का सामूहिक रूप से अथवा पृथक् पृथक् ही उल्लेख हो ।

अर्थात् वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टा इन सूक्त में अग्नि का स्तुति वैश्वदेव गुणों के साथ करते हैं, जैसा ऋग्वेद १ १४ में है तु० वा० ऊपर ३ ३३ और ० १३४

१३-द्रविणोदस् की व्याख्या । ऋग्वेद १ १६-२८ के देवता

पार्थिवो द्रविणोदोऽग्निः पुरस्ताद्यस्तु कीर्तितः ।

तमाहुरिन्द्रं दातृत्वाद् एके तु बलवित्तयोः ॥ ६१ ॥

अब 'द्रविणोद' को, जिसे ऊपर (३ ३८) पार्थिव अग्नि कहा गया है, कुछ लोग इसलिये इन्द्र कहते हैं कि यह शक्ति अथवा धन का दाता है ।

१ तु० वा० निरुक्त ८ २, अहाँ यह कहते हुये कि 'मोर्छुक्त के विचार से द्रविणोदम्' द्रष्टा है, इस मत का प्रतिपादन किया गया है ।

२ तु० वा० ऊपर ० २५, जहाँ कुत्स द्वारा अग्नि को द्रविणोदस्तु बड़े जाने का यज्ञ कारण बताया गया है ।

अयं हि द्रविणोदोऽग्निर् अयं दाता बलस्य हि ।

जायते च बलेनायं मध्यत्यृपिभिरध्वरे ॥ ६२ ॥

यह पार्थिव अग्नि ही द्रविणोद है, क्योंकि यह शक्ति के दाता और शक्ति द्वारा उत्पन्न हुये है, अर्थात् यज्ञ के समय ऋषिगण इनका ही मन्थन करते हैं ।

१ तु० वा० ऊपर २ २५ ।

२ तु० वा० निरुक्त ८ २ बलेन मध्यमानो जायते ।

हवींषि द्रविणं प्राहुर हविषो यत्र जायते ।

दातारश्चर्त्विजस्तेषां द्रविणोदास्ततः स्वयम् ॥ ६३ ॥

वह हवि को द्रव्य (द्रविण) कहते हैं क्योंकि यह हवि से ही उत्पन्न होता है, अब, यत्र ऋषि य ही हविदाता होते हैं, अतः वही स्वयं 'द्रविणोद' भी है ।

१ तु० वा० ऊपर २ २५, और निरुक्त ८ १ ।

^१ तु० की० निरुक्त ८. २ : 'ऋत्विजोऽत्र द्रविणोदस उच्यते हविषो दातारः ।'

^३ बहुवचन 'द्रविणोद' ऋग्वेद १. ५३, १ में आता है। यास्क ने केवल 'द्रविणोदस्' रूप ही व्यवहृत किया है।

ऋषीणां पुत्र इत्येषां दृश्यते सहस्रो यहो ।

मध्यमाद्वा यतो जज्ञे तस्माद्वा द्राविणोदसः ॥ ६४ ॥

अथवा यह (अग्नि) इसलिये द्राविणोदस कहे जाते हैं कि यह 'ऋषियों' के पुत्र^१, और 'बल के पुत्र'^२ आदि उक्तियों द्वारा इनके माथ संयुक्त प्रतीत होते हैं; अथवा इसलिये कि यह मध्य^३ (अग्नि) से उत्पन्न हुये थे।

^१ तु० की० निरुक्त ८. २ : "यथो एतद् : अग्नि द्राविणोदसम् आहृतिः ऋत्विजोऽत्र द्रविणोदसम्.....ने चैन जनयन्ति, 'ऋषीणां पुत्रो अग्निराज एष' इत्य अग्नि निगमो भवति ।" 'ऋषिणा पुत्रः' शब्द वाजसनेयि संहिता ५. ४ में आता है।

^२ अग्नि को ऋग्वेद में अक्सर 'सहस्रो यहो' (१. २६, १० इत्यादि) के रूप में सम्बोधित किया गया है। तु० की० निरुक्त ८. २ * 'बलेन मध्यमानो जायते, तस्माद् एतम् आह सदसस् पुत्र, सहसः सूनं, सहस्रो बहुम्'। 'ऋषीणां पुत्रः' की व्याख्या में 'सहस्रो यहो' का इस अर्थ में प्रयोग किया गया है कि ऋत्विजगण शक्ति के द्वारा अग्नि को उत्पन्न करते हैं (देखिये ऊपर ६२वाँ श्लोक)

^३ अर्थात् 'द्रविणोदम्' से व्युत्पन्न होने के कारण उन्हें 'द्राविणोदस' कहते हैं। तु० की० निरुक्त ८. २ : 'अथाप्य् अग्निं द्राविणोदसम् आहः एष पुनर् इतस्माज् जायते ।'

द्रविणोदोऽग्निरेवायं द्रविणोदास्तदोच्यते ।

आग्नेयेष्वेव दृश्यन्ते प्रवादा द्रविणोदसः ॥ ६५ ॥

यह पार्थिव अग्नि ही धन के दाता (द्रविणोद) हैं; इसी लिये इन्हें 'द्रविणोदम्' कहते हैं; केवल अग्नि को सम्बोधित सूक्तों में ही 'द्रविणोदम्' के प्रवाद दृष्टिगत होते हैं।^१

^१ अर्थात् जब यह पार्थिव होते हैं।

^२ तु० की० निरुक्त ८. २ : 'अथम् एवाग्निर् द्रविणोदा इति शक्तपूर्णिर् : आग्नेयेष्व् एव हि सूक्तेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति ।'

१४-ऋग्वेद १. १८ के देवता। प्रजापति के आठ नाम

ऐन्द्रस्य नवकस्येह यदैन्द्रावरुणं भरम् ।

तस्योत्तरं च सोमानं स्तूयते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ६६ ॥

ऋग्भिः पञ्चभिराद्याभिस् तिसृभिः सदसस्पतिः ।

नराशांसोऽन्त्यया चर्चा सोमेन्द्रौ तु निपातितौ ॥ ६७ ॥

चतुर्थ्या सोम इन्द्रश्च पञ्चम्यां दक्षिणाधिका ।

प्रसङ्गाद्विणा प्रोक्ताः सम्बन्धा स्थानलोकयाः ॥ ६८ ॥

यहाँ इन्द्र को समर्पित भी ऋचाओं के सूत्र (ऋग्वेद १. १६) के बाद जो आता है वह इन्द्र-वरुण (१. १७) को भग्नरोधिन है । इसके बाद का 'सोमानम्' (ऋग्वेद १. १८) है जिसमें प्रथम पाँच ऋचाओं में ब्रह्मणस्पति की स्तुति है ।

उसके बाद की तीन ऋचाओं (६-८) में सदसस्पति की, और अन्तिम ऋचा (९वाँ) में मराशंस की स्तुति है, चतुर्थ में सोम-इन्द्र की नैपातिक स्तुति है; और पाँचवीं में सोम और इन्द्र तथा दक्षिणा की भी । ऋषि ने स्थान और लोक^१ के सम्बन्ध की प्रसङ्गवशात् घोषणा की है ।

^१ अर्थात् देवों का अन्तर इतलिये साधमान उत्पन्न होता है कि स्थान और लोक (पार्थिव, अथवा अन्तरिक्षीय, अथवा दिव्य) की दृष्टि से वह सम्बन्ध होते हैं ।

प्रजापत्यं तथेन्द्रः स्याद् इति तस्येह नामनी ।

कथिते द्वे च पट् चान्यान्य् एपां चाद्यः प्रजापतिः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार, प्रजापति का पुरु नाम इन्द्र^१ हो सकता है : इस विद्वान्त के आधार पर इनके^२ दो नामों का यहाँ उल्लेख है । इनके अनिश्चित छ. और भी हैं; प्रजापति इनमें से प्रथम है ।

^१ क्योंकि यहाँ उल्लिखित प्रजापति के आठ नामों में से चार, अर्थात् ब्रह्मणस्पति, वाचस्पति, 'क' और प्रजापति, नैषण्डिन ५. ४ में इन्द्र स्थानीय देवताओं की तालिका में आते हैं ।

^२ अर्थात् ६९ वे में 'ब्रह्मणस्पति' और ६७ वे में 'सदसस्पति' ।

शिष्टानि यानि नामानि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ।

सत्पतिः कश्च कामश्च सदसस्पतिरेव च ॥ ७० ॥

इळस्पतिर्वाचस्पतिस् ततस्तु ब्रह्मणस्पतिः ।

तृतीयान्त्ये तु सूक्तस्य प्रथमं पञ्चमं च यत् ॥ ७१ ॥

अब मैं शेष नामों का उल्लेख करूँगा — सत्पति, क, काम, और सदसस्पति; इळस्पति, वाचस्पति, और फिर ब्रह्मणस्पति : किसी सूक्त में इनमें से तृतीय^३ और अन्तिम^४, तथा प्रथम^५ और पाँचवें^६ आते हैं;

- १ 'मरुति' नघण्टुरू में नहीं आता। ऋग्वेद में यह प्रमुग्गः दन्द्र की उपाधि हा है (तु० की० ऊपर ६९)। प्रजापति के इन नामों में से छ 'पति' से अन्त होते हैं।
- २ यहाँ 'मूक्तन्व' की 'एक सूक्त अथवा सूक्तांश में आनेवाला' के रूप में ही व्याख्या की जानी चाहिये, 'मूक्तभाज' के समानार्थी के रूप में नहीं, क्योंकि 'क' अथवा 'सदसस्वति' को कोई भी सन्पूर्ण सूक्त समर्पित नहीं किया गया है।
- ३ अर्थात् 'क'। प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल एक ऋचा (ऋग्वेद १. २४, १) ही 'क' को समर्पित बनाई गई है।
- ४ अर्थात् 'ब्रह्मणस्पति', जिसे अनेक सूक्त समर्पित हैं।
- ५ अर्थात् 'प्रजापति' जिसे ऋग्वेद १०. १२१ सम्बोधित है।
- ६ अर्थात् 'सदसस्वति', जिसे ऋग्वेद की तीन ऋचायें (१. १८, ६-८) ही सम्बोधित हैं।

१५-प्रजापति के नाम (क्रमशः)। ऋग्वेद १. १९ के देवता।
 चतुर्भिरितरैस्त्वेनं न सूक्तं नाप्यृगश्रुते।
 सर्वाण्येव तु सर्वासां देवतानां प्रजापतेः ॥ ७२ ॥
 नामानि कथयन्त्येते सम्यग्भक्तिदिदृक्षवः।
 नदाहुर्नैतदेवं स्याद् अष्टानामेव हि स्मृतः ॥ ७३ ॥

जय कि अन्य चार नामों से इनका न तो कोई सूक्त है और न कोई ऋचा। अब भक्ति में सम्यग् दृष्टि की इच्छा रखनेवाले कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सभी देवताओं के सभी नाम प्रजापति के ही हैं। इस सम्बन्ध में (अन्य लोगों का) यह कथन है कि ऐसा नहीं होना चाहिये, क्योंकि इनकी (प्रजापति की) केवल आठ नामों वाले के रूप में ही स्मृति की जाती है,

१ क्योंकि यह सर्वा के तीन हैं; तु० की० ऊपर १. ६२।

तैरेव चास्य कल्पन्ते क्रतवश्च हवींषि च।
 मरुद्भिर्मध्यमस्थानैर् अयमग्निस्तु पार्थिवः ॥ ७४ ॥
 नवकेनेह सूक्तेन प्रति त्यमिति संस्तुतः।
 मरुतां साहचर्यात्तु सूक्तेऽस्मिन्नाग्निमारुते ॥ ७५ ॥
 मन्यते मध्यमं चैव यास्कोऽग्निं न तु पार्थिवम्।
 स्यादयं पार्थिवस्त्वेव तथा रूपं हि दृश्यते ॥ ७६ ॥

और केवल इन्हीं नामों से इन्हें यज्ञ तथा हवि समर्पित किये जाते हैं।

अब, उन मरुतों के साथ जो मध्य-स्थानीय हैं, इस पार्थिव अग्नि की यहाँ नौ ऋचाओं वाले 'प्रतित्यम' (ऋग्वेद १. १९) सूक्त से स्तुति की गई है।

किन्तु अग्नि तथा मरुतों की सम्बोधित इस सूक्त में मरुतों के साथ इनका सम्बन्ध के कारण यास्क^१ का विचार है कि यहाँ पार्थिव नहीं वरन् मध्यम अग्नि का तात्पर्य है। किन्तु यह केवल पार्थिव अग्नि ही हो सकते हैं, क्योंकि यहाँ इनका ऐसा ही रूप है।

^१ ऋग्वेद १. १९ की प्रथम ऋचा पर टिप्पणा करत हुए यास्क (निरुक्त १० ३२) यह कहते हैं 'कम अन्य मध्यमाद् एवम अवश्यम् ?'

१६-किसी ऋचा, इत्यादि, के देवता वा किस प्रकार निर्धारण करना चाहिए।

हृयसे पीतये^१ चेति वैद्युते न तदस्ति हि ।

अथ स्यादभिधानस्य देवतायाः पृथक् पृथक् ॥ ७७ ॥

इस प्रकार की स्तुति, जैसे 'मुझे पीने के लिये आहुत करता हूँ, को विद्युत (अग्नि) के लिए नहीं जानना चाहिये। अतः यह आवाहन पृथक्-पृथक् देवताओं के नाम से सम्बद्ध होना चाहिये।^२

^१ 'हृयसे पीतये' शब्दों से सम्बन्ध ऋग्वेद के १. ९. १ के इन शब्दों में न पत्र प्रयात होता है 'गणाधाय प्र हृयसे'।

^२ अर्थात् हमें देवता के नाम से ही सम्बद्ध करना चाहिये। इस लिये यहाँ आज को पार्थिव और मरुतों की अन्तरिक्ष देवता के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

ऋचोऽर्धर्चस्य पादस्य कथं ज्ञायेत दैवतम् ।

यथा निविदि सावित्र्यां स्तृयते कर्म कर्मणा ॥ ७८ ॥

किसी ऋचा, अर्ध ऋचा और पाद के देवता^३ को किस प्रकार जानना चाहिये ? जैसे कि 'सावित्र' के निविद् में है, (किसी देवता के) कर्म का कर्म के आधार पर स्तुति की जाती है,^३

^१ यह स देह (ऊपर ७५, ७६ वे श्लोकों में) कि किस अग्नि से तात्पर्य है मन्त्रुप मन्त्र के लेखक को इस प्रश्न पर विचार करने के लिये प्रश्नित करना है कि किस सम्पूर्ण सूक्त के देवता की तुलना में ऋचा, अर्धऋचा या किमा पाद विरूप के देवता को किस प्रकार जानना या समझना है ? इसका मन्त्रधार यह उत्तर देता है कि किसी देवता विशेष के विशिष्ट कर्म के उल्लेख द्वारा ही उसको उचित स्तुति को जाना जा सकता है।

^२ ऋग्वेद १. २४, ३. 'अभि त्वा देव सावित्राशन वार्यानाम् । सदाऽन्मात्मानिह' । देखिये ऐतरेय ब्राह्मण ५. १७, ७ : 'अभि त्वा देव सावित्रर् इति सावित्रम् ।

^३ देखिये ऊपर ३. ५० ।

दोग्धी धेनुर्वोढान् द्वान् आशुः सप्तिः पुरंधिया ।

यथा च शंनोमित्रिया वरुणः प्राविता भुवत् ॥७९॥

(जैमा क्रि) 'दुग्धा गाय, अनड्वान, तीव्र गतिवाला 'सप्ति' और उद्योग-शील (स्त्री)',^१ तथा 'शं नो मित्रः' (ऋग्वेद १. ९०, ९), तथा 'वरुणः प्राविता भुवत्' (ऋग्वेद १. २३, ६)^२ मंत्रों में है,

^१ यह वाक्य वाजमनेयि सहिता २२ २२, में उद्धृत है । ऊपर ३. ५० में भी इसका मन्दर्भ है ।

^२ अर्थात् इन दो मंत्रों में मित्र और वरुण की क्रमशः 'दयावान' और 'रक्षक' के रूप में स्तुति की गई है ।

सूक्तप्रायेणैभिरग्ने परीक्ष्यास्तत्र देवताः ।

शब्दानां द्वैपदादीनां द्विदैवबहुदैवतम् ॥ ८० ॥

(और) 'ऐभिर् अग्ने' (ऋग्वेद १. १४, १)^१ में है : इन सभी दशाओं में सूक्त के सामान्य प्रयोजन के अनुसार ही देवताओं का परीक्षण करना चाहिये ।

दो अथवा अधिक पद^२ वाले शब्दों से दो अथवा अनेक देवता सम्बद्ध हो सकते हैं ।^३

^१ ऊपर ३. ५१, में इसी मन्दर्भ में इसका उद्धरण दिया जा चुका है ।

^२ अर्थात् 'द्वैपदादीनां' से दो अथवा अधिक देवताओं की स्तुति का तात्पर्य है ।

^३ 'द्विदैव-बहुदैवतम्' सम्भवतः 'द्विदैवत-बहुदैवतम्' का ही संक्षिप्त रूप प्रतीत होता है ।

असंस्तुतं संस्तुतवत् प्रदिष्टं दैवतं क्वचित् ।

यत्र द्विदैवते मन्त्र एकवदेवतोच्यते ॥ ८१ ॥

यदि किसी देवता को किसी स्तुति में सम्बद्ध न किया गया हो तो भी यदि उसका कहीं^१ उल्लेख हो तो उसे स्तुति से सम्बद्ध मानना चाहिये ।

जहाँ दो देवताओं को सम्बोधित किसी मन्त्र में एक देवता का एकवचन में उल्लेख हो,

^१ अर्थात् यदि स्पष्ट रूप से स्तुत्य देवता के साथ दूसरे देवता का सम्बन्ध प्रसंग से व्यक्त हो (तु० की० ऊपर ३. ४९ और १. ११९) तो इस देवता को भी स्तुति से सम्बद्ध मानना चाहिये । इसका उदाहरण ऋग्वेद १. १५४ की अन्तिम ऋचा में देया जा सकता है, जहाँ विष्णु की तो स्तुति है किन्तु 'वान्' द्विवाचक भी आता है । अतः यह निश्चय किया जा सकता है कि यहाँ विष्णु के साथ इन्द्र भी सम्बद्ध है, क्योंकि इन दोनों देवों का ऋग्वेद १. १५५, १-३ में साथ-साथ आवाहन किया गया है ।

विभक्तस्तुति तद्विद्याद् बहुष्वबहुवच्च यत् ।
आशीर्वादिषु संज्ञासु कर्मसंस्थासु देवताः ।
बहुवो ह बहुवत्तत्र द्विपदे यत्र संस्तुते ॥ ८२ ॥

वहाँ यह जानना चाहिये कि उसमें 'विभक्त-स्तुति' है; और यदि ऐसे मन्त्र में अनेक देवताओं का भी 'अ-बहुवत्' उल्लेख हो तो उसे भी इसी प्रकार ग्रहण करना चाहिये ।

आशीर्वादों में, नामों की गणनाओं में, तथा प्रसुर कर्म-काण्डों में, अनेक देवता बहुवचन में आते हैं, जिनमें स्तुति की दृष्टि से दो देवताओं को सम्यक् मानना चाहिये ।

^१ 'विभक्त स्तुति' की परिभाषा के लिये देखिये, ऊपर ३ ४१ ।

^२ यहाँ 'बटु' को 'द्विदैवत' के, तथा 'अबहुवत्' को 'एकवत्' के समानान्तर माना गया है ।

^३ इन अन्तिम दो वाक्यों का सामान्य अर्थ यह प्रतीत होना है कि ऐसी दशाओं में अनेक देवताओं को एकवचन नहीं माना जाता, और स्मृतिये यह 'विभक्त स्तुति' नहीं हो सकती ।

१७-ऋभुओं और त्वष्टा की कथा

सुधन्वन आङ्गिरसस्यासन्पुत्रास्त्रयः पुरा ।
ऋभुर्विभ्वा च वाजश्च शिष्यास्त्वष्टुश्च तेऽभवन् ॥ ८३ ॥

प्राचीन काल में अङ्गिरस-पुत्र सुधन्वन् के, ऋभु, विभ्वन् और वाज नामक तीन पुत्र हुये, और यह सभी त्वष्टा के शिष्य बने ।

^१ त्वष्टा के चमस् से ऋभुओं द्वारा चार चमसों के निर्माण की नीचे बर्णित कथा का ऋग्वेद के ऋभु सूक्त (१ २०) में उल्लेख है ।

^२ तु० की० ऋग्वेद १. ११०, ४ पर निरुक्त ११ १६. "ऋभुर् विभ्वा वाज इति सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः ।"

शिक्षयामास तांस्त्वष्टा त्वाष्ट्रं यत्कर्म किंचन ।
परिनिष्ठिनकर्माणो विश्वे देवा उपाह्वयन् ॥ ८४ ॥

त्वष्टा ने इन लोगों को उन समस्त कलाओं की शिक्षा दी जिनमें वह (त्वष्टा) पारंगत थे । विश्वेदेवों ने, जो स्वयं भी समस्त कलाओं में प्रवीण थे, इन्हें चुनौती दी ।^१

^१ अर्थात् इन्हें त्वष्टा से अर्जित अपनी कला का प्रदर्शन करने की चुनौती दी ।

विश्वेषां ते ततश्चक्रुर् वाहनान्यायुधानि तु ।
 धेनुं सवर्दुघां चक्रुर् अमृतं सवरुच्यते ॥ ८५ ॥
 बृहस्पतेरथाश्विभ्यां रथं दिव्यं त्रिवन्धुरम् ।
 इन्द्राय च हरी देवप्रहितेनाग्निनापि यत् ॥ ८६ ॥

इन लोगों ने विश्वेदेवों के लिये वाहनों और आयुधों का निर्माण किया ।
 इन्होंने सवर्दुघा गाय का निर्माण किया—अमृत को ही बृहस्पति का 'सवर'
 कहते हैं; फिर इन्होंने अश्विनों के लिये तीन आसनों वाले दिव्य रथ, और
 इन्द्र के लिये दो अश्वों का निर्माण किया; देवों द्वारा इनके पास भेजे गये
 अग्नि के माध्यम से भी इन्होंने अपने कौशल का प्रदर्शन किया ।^१

^१ अर्थात् अग्नि को अपना दूत बना कर भेजने वाले देवों के आदेश पर इन्होंने
 त्वष्टा के एक चमस से चार चमसों का निर्माण किया (देखिये ऋग्वेद १.
 १६१, १-२) ।

एकं चमसमित्युक्ते ज्येष्ठ आहेत्यथो दिवि ।

उत्त्वा ततक्षुश्चमसान् यथोक्तं तेन हर्षिताः ॥ ८७ ॥

जब उन्होंने (अग्नि ने) कहा कि 'एक चमस को चार कर दो' ('एक
 चमसं चतुरः', ऋग्वेद १. १६१, २), और जब इन लोगों ने 'ज्येष्ठं आह'
 (ऋग्वेद ४. ३३, ५)^१ ऋचा के अनुसार स्वर्गलोक में परस्पर परामर्श कर
 लिया, तब उनके कथन^२ से हर्षित होकर इन्होंने, जैसा कहा जा चुका है,
 चार चमसों (प्यालों) का निर्माण कर दिया ।

^१ जहाँ ऋभुओं में सबसे ज्येष्ठ ने एक चमस को दो करने की, बीच के ऋभु ने
 तीन करने की, और सब से कनिष्ठ ने चार करने की इच्छा प्रकट की है ।

^२ अर्थात् अग्नि के इस आश्वासन से हर्षित होकर कि एक चमस को चार कर देने
 पर वह लोग (ऋभुगण) भी देवताओं के साथ यज्ञ भाग प्राप्त करेंगे (देखिये
 ऋग्वेद १. १६१, २) ।

१८-ऋग्वेद १. २०-२१ के देवता

त्वष्टा च सविता चैव देवदेदः प्रजापतिः ।

सर्वान्देवान् समामन्त्र्य अमृतत्वं ददुश्च ते ॥ ८८ ॥

और त्वष्टा तथा सविता, और देवों के प्रजापति ने समस्त देवों को
 आमन्त्रित करके ऋभुओं को अमरत्व प्रदान किया (तु० की० ऋग्वेद
 ४. ३३, ३-४) ।

इसके बाद दो अर्थात् (१३, १४) 'लघुलित्वा' की स्थिति करती है, 'साधु' (से) आत्मा हीन जाती १५ वीं अर्थात् की प्रयोगों की संज्ञांतरण, भाग जा सकता है। 'अतः' (१६ वीं अर्थात्) द्वैतियक रूप से वेदों की संज्ञांतरण है, शेष सूत्र (१७-२१ वीं अर्थात्) विष्णु की संज्ञांतरण है।

वाचस्पत्यान्वयव्यतिरिक्तानि वाचस्पत्यान्वयव्यतिरिक्तानि ततः परम ॥ १४ ॥

तत्रो विज्ञेयां देवानां पूजा आद्येषु तेषु ॥

असत्को हि पण्डितस्तस्य दूराः पूर्णा इति ॥ १३ ॥

'तीर्था' (१, २३, १) वाच्य की संज्ञांतरण है क्योंकि यहाँ (इत्थं) वीर, 'तिसृ' अर्थात् (१, २३, १) वाच्य के लिये दो अर्थात् है। इसके बाद यहाँ द्वैतियक रूप से वेदों की संज्ञांतरण है, शेष सूत्र (१७-२१ वीं अर्थात्) विष्णु की संज्ञांतरण है, भाग जा सकता है। 'अतः' (१६ वीं अर्थात्) द्वैतियक रूप से वेदों की संज्ञांतरण है, शेष सूत्र (१७-२१ वीं अर्थात्) विष्णु की संज्ञांतरण है।

आद्यण्डितस्तस्मिन् पूर्णानि करिष्ये ततः ॥

यथा हि मयि न पूर्णानि इतिरिच्यन्ति चाभिषेचो ॥ १२ ॥

अत इतरका गद्यान के रूप में स्थिति की गई है, इसलिये मयकी (करिष्ये) से इतरका प्रशस्ति की है। और यत्र अभिषेचो की स्थिति (चाम-पाठ) मय से पूर्ण है, अतः याचक उतरकी भी इत्थं प्रशस्ति करती है।
 'इतिक गद्यान हीन इति मयि करिष्ये' अतः केवल अतरे से ही मिलता है। अतः इतरका (१३ वीं वाच्य परम, लघुलित्वात्) है।

आ चर्त्तानि मयि न च इतिरेव च इत्येते ॥

अथौटमा अपां श्रेया इत्यथर्वन्तुप्राथिव्यत्वा ॥ ११ ॥

'आ चर्त्तानि मयि न' (अतरेव ४ ४५, ३) में अतरे, इति' भी आती है। 'इसके बाद' (इतिरेव) का ही भाग है, और अतरे का श्रेयात्वं तथा उसके बाद की अतरेव अर्थात् का भाग भाग है, और अतरे का श्रेयात्वं तथा उसके बाद की अतरेव अर्थात् का भाग भाग है।

'यच्चिद् धि सत्य' (ऋग्वेद १. २९) तथा इसके बाद का सूक्त (१. ३०) इन्द्र को सम्बोधित है। 'अधिना' से आरम्भ होने वाली तीन ऋचायें (ऋग्वेद १. ३०, १०-१९) अधिनों को और इसके बाद 'कम्ते' (२०-२२) से आरम्भ होने वाली तीन अन्तिम ऋचायें उपम् को सम्बोधित हैं।

२१-ऋग्वेद १. ३१-४० के देवता

स्तूयमानः शश्वदिति प्रीतस्तु मनसा ददौ ।

शुनःशोपाय दिव्यं तु रथं सर्वं हिरण्यम् ॥१०३॥

'शश्वत्' (ऋग्वेद १. ३०, १६) से आरम्भ होने वाली ऋचा द्वारा स्तुति की जाने पर मन से प्रसन्न होकर इन्द्र ने शुनःशोप को स्वर्ग निमित्त एक दिव्य रथ प्रदान किया।

आग्नेयं यत्त्वमैन्द्रे च त्रिश्चिदित्याश्विनं ततः ।

ऋतेऽर्थवादं कर्मैतद् इन्द्रस्येति तु शंसति ॥१०४॥

'ध्वम्' (ऋग्वेद १. ३१) से आरम्भ होने वाला मूक्त अग्नि को सम्बोधित है; और इसके बाद इन्द्र को सम्बोधित दो सूक्त (३२, ३३) आते हैं। इसके बाद 'त्रिश्चिद्' (१. ३४) अधिनों को सम्बोधित है। 'इन्द्रस्य' (१. ३२) विना किसी अर्थ-वाद^१ के उहंख के ही इन्द्र के कर्मों की प्रशंसा करता है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १. ३२ में इन्द्र को सम्बोधित स्तुति के बिना ही वृष के साथ उनके संघर्ष की पुराकथा का बहल है। 'अर्थवाद' शब्द ऊपर (३. ५३ में) भी आ चुका है।

पादोऽग्नये ह्यामीति मैत्रावरुण उत्तरः ।

तृतीयो रात्रिसंस्तावः सूक्तं सावित्रमुच्यते ॥ १०५ ॥

'ह्यामी' (ऋग्वेद १. ३५) सूक्त में एक पाद अग्नि को और उसके बाद का पाद मित्र-वरुण को सम्बोधित है, तथा तृतीय पाद में 'रात्रि' की स्तुति है, है, जब कि यह सम्पूर्ण सूक्त सवितृ को सम्बोधित कहा गया है।

पञ्चैतानि जगौ दृष्ट्वा सूक्तान्याहिरसो मुनिः ।

हिरण्यस्तृपतां प्राप्य सख्यं चेन्द्रेण शाश्वतम् ॥ १०६ ॥

इन पाँच सूक्तों (३१-३५) का इनके दर्शन के पश्चात् अहिरम् के

पुत्र ऋषि ने हिरण्यस्तूप का पद और इन्द्र के साथ शाश्वत सखत्व प्राप्त करने के उपलक्ष्य से गायन किया था।

^१ तु० की० आपानुकमणी, १. ११।

आग्नेयं प्रेति मरुतां त्रीळं त्रीणि पराण्यतः।

उत्तिष्ठ ब्राह्मणस्पत्यं यं रक्षन्ति त्रयस्तृचाः ॥१०७॥

‘प्र’ (ऋग्वेद १. ३६) अग्नि को सम्बोधित है। ‘त्रीळं’ (ऋग्वेद १. ३७) से आरम्भ होने वाले इसके बाद के तीन सूक्त (३७-३९) मरुतों को सम्बोधित हैं। ‘उत् तिष्ठ’ (ऋग्वेद १. ४०) ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित किया गया है। ‘यं रक्षन्ति’ (ऋग्वेद १. ४१) सूक्त में ऋचाओं के तीन त्रिक मिलते हैं :

२२-ऋग्वेद १. ४१-४७ के देवता

वरुणार्यममित्राणां मध्य आदित्यदैवतः।

पौष्णं सं पूषन्पद्भौद्रधस् तृतीया न तु केवला ॥ १०८ ॥

(उक्त सूक्त के ऋचाओं के तीन त्रिकों में से प्रथम १-३, और तृतीय, ७-९, त्रिक) वरुण, अर्यमन् और मित्र को सम्बोधित है, जब कि आदित्य-गम मध्य त्रिक (४-६) के देवता है। सं पूषन्’ (ऋग्वेद १. ४२) पूषन् को सम्बोधित है। इसके बाद रुद्र को सम्बोधित छ ऋचायें (ऋग्वेद १. ४३, १-६) आती हैं, जिनमें से तृतीय में, यद्यपि, अकेले रुद्र की स्तुति नहीं है।

मित्रेण वरुणेनात्र विश्वेदेवैश्च संस्तवः।

उक्तमत्रर्षिणा पूर्वम् आदेशादैवतं विना ॥ १०९ ॥

जातुं न शक्यते लिङ्गात् तथापि क्वचिदुच्यते।

आदित्या वसवो रुद्रास् त्वमग्न इति संस्तुताः ॥११०॥

यहाँ (उक्त १. ४३, ३ में) मित्र, वरुण तथा विश्वेदेवों के साथ-साथ ही रुद्र की स्तुति की गई है।

ऋषि^१ ने इस बात को पहले ही कह दिया है कि त्रिना किसी आदेश के केवल लिङ्ग अथवा विशिष्ट लक्षण के आधार पर देवता को नहीं जाना जा सकता। फिर भी, कहीं-कहीं देवता का इस प्रकार भी उल्लेख है : जैसे ‘त्वम् अग्ने’ (ऋग्वेद १. ४५, १) में आदित्यों, वसुओं, रुद्रों की एक साथ ही (अग्नि के साथ) स्तुति की गई है।

१ अर्थात् प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता शौनक ।

२ ऊपर व ३९, में 'आदेशाद् दैवत ज्ञेयम्.....न शक्यं लिङ्गतो.....गतुम्' है ।

३ यह सब नाम ऋग्वेद १. ४५, १ में आते हैं; किन्तु सर्वानुक्रमणी में इनके सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं है ।

तिस्रः सौम्योऽग्न आग्नेये प्रगाथेनाश्विनौ स्तुतौ ।

सहोपसा लिङ्गभाजा अयं सोमः सुदानवः ॥१११॥

अर्धर्चो देवदेवत्य एषो इत्याश्विने परे ।

आदित्यं मन्यते यास्को हविषेति सह स्तुतम् ॥११२॥

इसके बाद सोम को सम्बोधित तीन मन्त्र (१. ४३, ७-९) आते हैं । 'अग्ने' (१. ४४, १) से आरम्भ होनेवाले दो सूक्त (४४, और ४५) अग्नि को सम्बोधित किये गये हैं । यहाँ^१ एक 'प्रगाथ' द्वारा उपस् के साथ उन अश्विनों की स्तुति की गई है जो उसके (उपस् के) लिङ्ग-भाज हैं । 'अयं सोमः सुदानवः' (ऋग्वेद १. ४५, १०) एक ऐसी अर्ध-ऋचा है जिसके देवता देवगण हैं ।^२ 'एषो' (१. ४६, १) से आरम्भ होनेवाले दो बाद के सूक्त (४६ और ४७) अश्विनों को सम्बोधित हैं । यास्क^३ का विचार है कि यहाँ 'हविषा' (१. ४६, ४) में आदित्य की भी साथ-साथ स्तुति की गई है ।

^१ अर्थात् १. ४४ १-२ में । तु० की० सर्वानुक्रमणी : 'आयो द्वचोऽश्वय-उपसा च' ।

^२ तु० की० ऋग्वेद १. ४५ पर सायण : 'अयं सोम इत्य् अर्धर्चो देवदेवत्यः'. सर्वानु-
क्रमणी : 'अर्धर्चोऽन्त्यो दैवः' ।

^३ निरुक्त ५. २४ में ।

२३-ऋग्वेद १. ४८-६० । सव्य की कथा । शतर्चिन्-गण

सहोपसे ततः सौर्यम् उद्गु त्यमिति संस्तुतः ।

द्युभक्तिर्येन वरुणो. रोगघ्नस्तृच उत्तमः ॥ ११३ ॥

'सह' (ऋग्वेद १. ४८, १) से आरम्भ होनेवाले दो सूक्त (४८ और ४९) उपस् को सम्बोधित हैं; इसके बाद 'उद्गु त्यम्' (१. ५०) सूर्य को सम्बोधित किया गया है । इसमें 'येन' (१. ५०, ६) में आकाश के साथ सम्बद्ध वरुण की स्तुति की गई है; इसका अन्तिम त्रिक (१. ५०, ११-१३) 'रोगघ्न' है ।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी : 'अन्त्यस् तृचो रोगघ्न उपनिषत्' ।

रोगापनुत्तिराद्याभ्याम् उद्यन्नित्युत्तमे तृचे ।

अर्धर्चे तु द्विपद्द्वेषः ऐन्द्रः सव्यः शतर्चिषु ॥ ११४ ॥

इस सूक्त में 'उद्यन्' से आरम्भ होनेवाली अन्तिम तीन ऋचाओं में से प्रथम को (१. ५०, ११-१२) में रोग को भगाने का विधान है, जब कि अन्तिम की अर्धऋचा में शत्रुओं के प्रति द्वेष व्यक्त किया गया है।

शतर्चिनों में से एक सव्य^१ है जो इन्द्र के ही एक रूप है।

^१ सव्य ऋग्वेद के सात सूक्तों (१. ५१-५७) के द्रष्टा हैं (देखिये आपर्णानुक्रमणी १. १३)।

स्वयमिन्द्रसमं पुत्रम् इच्छतोऽङ्घ्रिस्सो मुनेः ।

वज्रयेव सव्यो भूत्वर्षेर् योगित्वान्पुत्रतां गतः ॥ ११५ ॥

इन्द्र के समान पुत्र की इच्छा करने वाले अङ्घ्रिस् मुनि के, इस ऋचि के योगत्व के परिणाम-स्वरूप, स्वयं इन्द्र ही सव्य का रूप धारण-करके पुत्र बन नये।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी . 'अङ्घ्रिस् इन्द्रतुल्य पुत्रम् इच्छन्न् अभ्यधायन् मव्य शतान्द्र पवास्य पुत्रोऽजायत' ।

प्रथमे मण्डले ज्ञेया ऋपयस्तु शतर्चिनः ।

धुद्रसूक्तमहासूक्ता अन्त्ये मध्येषु मध्यमाः ॥ ११६ ॥

प्रथम मण्डल में ऋचियों को शतर्चिन जानना चाहिये, जबकि अन्तिम (मण्डल) में लघुसूक्तों और महा-सूक्तों के ऋचि, तथा मध्य (के मण्डलों) में मध्यम (ऋचि) जानना चाहिये।^१

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी ० २ ('शतर्चिन आय मण्डलेऽन्त्ये धुद्रसूक्तमहामूक्ता मध्येषु माध्यमाः) । देखिये आपर्णानुक्रमणी १. २, २. १, १० १ ।

नवकं जातवेदस्यं नू चिद् यस्तु वया इति ।

वैश्वानरीयं तत्सूक्तं वह्निमाग्नेयमुत्तरम् ॥ ११७ ॥

नौ ऋचाओं वाला 'नू चिद्' (ऋग्वेद १. ५८) सूक्त जातवेदम् को सम्बोधित है; जब कि 'वयाः' से आरम्भ होनेवाला सूक्त (ऋग्वेद १. ५९) वैश्वानर को, तथा इसके बाद का 'वह्निम्' (ऋग्वेद १. ६०) सूक्त अग्नि को सम्बोधित है।

२४-ऋग्वेद १. ६१-७३ । ग्यारह विल । ऋग्वेद १. ७४-८९

ऐन्द्राण्यस्मै ततस्त्रीणि वृष्णे शर्धाय मारुतम् ।

आग्नेयानि तु पश्वेति नच शश्वद्धि वामिति ॥११८॥

दशाश्विनानीमानीति इन्द्रावरुणयो स्तुतिः ।

सौपर्णयास्तु याः काश्चिन् निपातस्तुतिषु स्तुताः ॥११९॥

इसके बाद 'अस्मै' (ऋग्वेद १. ६१) से आरम्भ होनेवाले इन्द्र को सम्बोधित तीन सूक्त (६१-६३) आते हैं; 'वृष्णे शर्धाय' (ऋग्वेद १. ६४) मरुतों को सम्बोधित है; 'पथा' (ऋग्वेद १. ६५) उन नौ सूक्तों (६५-७३) में में प्रथम है जो अग्नि को सम्बोधित हैं; इसके बाद 'शश्वद् धि वाम्', आदि दस सूक्त अधिनों^१ को सम्बोधित हैं; 'इमानि' (ऋग्वेद ८. ५९)^२ द्वारा इन्द्र-वरुण की स्तुति की गई है। किन्तु जो भी अन्य देवता सौपर्ण-सूक्तों^३ में आते हैं उनकी नैपानिक स्तुति ही की गई है।

^१ यहाँ ग्यारह खिल-सूक्तों का उल्लेख है, जिनमें से दस तो अधिनों को, तथा एक इन्द्र-वरुण को सम्बोधित है।

^२ इति ऐतरेय ब्राह्मण ६. २५, ७ में 'सौपर्ण' कहा गया है।

^३ अर्थात् अश्विनों तथा इन्द्र-वरुण के अतिरिक्त इन ग्यारह सौपर्ण सूक्तों में जो देवता आते हैं उनकी केवल नैपानिक स्तुति की गई है।

उपप्रयन्तः सूक्तानि आग्नेयान्युत्तराणि पद् ।

हिरण्यकेशो रजसस् तृचोऽग्नेर्मध्यमस्य तु ॥१२०॥

'उपप्रयन्तः' (ऋग्वेद १. ७४, १) से आरम्भ होनेवाले बाद के छः सूक्त (७१-७९) अग्नि को सम्बोधित हैं; किन्तु 'हिरण्यकेशो रजसः' से आरम्भ होनेवाला ऋचाओं का एक त्रिक (ऋग्वेद १. ७९, १-३) मध्यम अग्नि को सम्बोधित है।

इत्येति पञ्च त्वैन्द्राणि यामित्यस्यां निपातिताः ।

दध्यङ् मनुरथर्वा च मारुतानि प्र ये ततः ॥१२१॥

चत्वार्या नो वैश्वदेवे द्वे देवानां स्तुतिर्मते ।

आ नो भद्राश्च देवानां भद्रं यावच्छतं पुनः ॥१२२॥

'इत्या' (ऋग्वेद १. ८०, १) से आरम्भ होनेवाले पाँच सूक्त (८०-८४) इन्द्र को सम्बोधित हैं। 'याम्' (ऋग्वेद १. ८०, १६) से आरम्भ होनेवाले मन्त्र में दध्यङ्, मनु, और अथर्वन् का नैपानिक रूप से उल्लेख है।^१ इसके बाद 'प्र ये' (ऋग्वेद १. ८५, १) से आरम्भ चार सूक्त (८५-८८) मरुतों को सम्बोधित हैं, 'आ नः' (ऋग्वेद १. ८९, १) से आरम्भ दो सूक्त (८८, ८९) विश्वेदेवों को समर्पित हैं; यहाँ 'आ नो भद्राः' (ऋग्वेद १-

८९, १) और 'देवानाम्' (ऋग्वेद १. ८९, २) से आरम्भ दोनों ऋचाओं, तथा पुनः 'भद्रम्' (ऋग्वेद १. ८९, ८) में लेकर 'शतम्' (ऋग्वेद १. ८९, ९) तक की ऋचाओं को भी देव मात्र की स्तुति करने वाला माना गया है ।

^१ यहाँ ऋग्वेद १. ८०, २६ पर निरुक्त १०, ३३, ३४ (द्रष्यद् 'अथवा' 'मनु' ... तेषा निपातो भवत् षेन्द्रयाम् ऋवि) का अनुसरण किया गया है ।

२५-ऋग्वेद १. ९०-९३ । प्रथम मण्डल के ७४-१६४ सूक्तों के अन्तर्गत सूक्त समूह ।

मधु वातास्तृचे तस्मिन् परमं मध्वपीप्यते ।
अदितिर्द्यौरिति त्वस्यां विभूतिः कथितादितेः ॥१२३॥

'मधु वाताः' (ऋग्वेद १. ९०, ६) से आरम्भ ऋचाओं के त्रिक में परम मधु को भी इच्छा की गई है; किन्तु 'अदितिर् द्यौ' (ऋग्वेद १. ८९, १०) ऋचा में अदिति की विभूति का कथन है ।

त्वं सोम सौम्यमौपसम् एता उ त्यास्तृचोऽश्विनोः ।
अश्विनाग्नेः ससोमस्य अग्नीषोमाविति स्तुतिः ॥१२४॥

'त्वं सोम' (ऋग्वेद १. ९१) सोम को, 'एता उ त्या' (ऋग्वेद १. ९२) उपसु को, और 'अश्विना' (ऋग्वेद १. ९२, १६-१८) से आरम्भ ऋचाओं का त्रिक अश्विनों को सम्बोधित है । 'अग्नीषोमौ' (ऋग्वेद १. ९३) में सोम के साथ सम्बद्ध अग्नि की स्तुति है ।

गोतमादौशिजः कुत्सः परुच्छेपाह्वयः परः ।
कुत्सादीर्घतमाः शश्वत् ते द्वे एवमधीयते ॥१२५॥

गोतम (सूक्त ७४-९३) के बाद उशिज के पुत्र (कक्षीवत् : सूक्त ११६-१२६) आते हैं; परुच्छेप (सूक्त १२७-१३९) के बाद कुत्स (सूक्त १४-११५) आते हैं; कुत्स के बाद दीर्घतमस्' (सूक्त १४०-१६४) : इन दोनों को सदैव इसी क्रम से पढ़ना चाहिये ।

^१ यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ शक्लों का क्रम गोतम, कुत्स, कक्षीवत्, परुच्छेप, और दीर्घतमस् है, वही बृहदेवता में गोतम, कक्षीवत्, परुच्छेप, कुत्स, और दीर्घतमस् का क्रम रक्षता गया है, जिसमें कुत्स द्वितीय की अपेक्षा चतुर्थ स्थान पर आता है, जो शक्लों का क्रम है ।

२६-ऋग्वेद १. ९४-१११ । भ्रुवपदों से युक्त सूक्तों के ऋषि ।
कश्यप के खिल

इमं कुत्स आङ्गिरसो ददर्श

जातवेदस्यं जगाद पोळशर्चम् ।

पूर्वो देवा इत्यृचो देवदेवास्

त्रयः पादा उत्तमायास्ततोऽर्धम् ॥ १२६ ॥

तस्यैव वा यस्य तत्पूर्वसूक्तं मित्रा-

दिभ्यो वात्र पङ्भ्यः प्रकृताभ्यः ।

अन्त्योऽर्धचस्तु वा पणां स्तुतानां

पूर्वो देवाः पादैस्तु त्रिभि स्तुताः ॥ १२७ ॥

अङ्गिरस् के पुत्र कुत्स ने 'इमम्' (ऋग्वेद १. ९४) का दर्शन किया : इन्होंने जातवेदस् को सम्बोधित सोलह ऋचाओं के इस सूक्त का उच्चारण किया । 'पूर्वो देवाः' (ऋग्वेद १. ९४, ८) ऋचा के तीन पादों के देवता देवगण हैं; इसके बाद अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद १. ९४, १६) का अर्धांश इसके पूर्व आने वाली सम्पूर्ण सूक्त की ऋचाओं की भीति या तो उसी देवता (अर्थात् अग्नि) को समर्पित है, अथवा यह यहाँ उल्लिखित मित्रादि छः देवताओं की सम्बोधित है ।

अन्तिम अर्ध-ऋचा (१. ९४. १६ का उत्तरार्ध) वैकल्पिक रूप से स्तुत्य छः देवताओं को सम्बोधित है, जब कि 'पूर्वः' (ऋग्वेद १. ९४, ८) में तीन पादों द्वारा देवताओं मात्र की स्तुति है ।

भरद्वाजे गृत्समदे वसिष्ठे नोधस्यगस्त्ये विमदे नभाके ।
कुत्से नोदका बहुदैवतेषु तथा द्विदेवेषु समानधर्मिणः ॥

'भरद्वाज,' गृत्समद, वसिष्ठ,^३ नोधस्,^३ अगस्त्य,^४ विमद,^५ नभाक,^६ कुत्स^७ के अनेक देवताओं तथा दो देवताओं को सम्बोधित सूक्तों में समान-धर्मों भ्रुवपद नहीं है ।

^१ अब ग्रन्थकार आठ ऐसे ऋषियों के नाम की गणना कर रहा है जिनके सूक्तों में भ्रुवपद आते हैं ।

^२ प्रथम तीन (भरद्वाज, गृत्समद, वसिष्ठ) ऐसे सम्पूर्ण मण्डलों के ऋषियों के नाम हैं जिनमें अक्सर ही भ्रुवपद मिलते हैं ।

^३ ऋग्वेद १. ५८-६४ का ऋषि : ५८ और ६०-६४ सूक्त समान भ्रुवपद से समाप्त होते हैं ।

^४ ऋग्वेद १ १६६-१६८ का ऋषि ।

^५ ऋग्वेद १० ७१ और २४ का ऋषि ।

^६ ऋग्वेद ८ ३९-४१ का ऋषि ।

^७ ऋग्वेद १ ९४-९८ का ऋषि ।

द्वे विरूपे सूक्तमौपसायाग्रयं स प्रलथेति द्रविणोदमेऽग्रये ।
वैश्वानरस्येति वैश्वानरोयम् अस्मात्पूर्व शुचयेऽग्रये पुनः ।

‘द्वे विरूपे’ (ऋग्वेद १ ९५) अग्नि औपस का सूक्त है, और ‘स प्रलथा’ (ऋग्वेद १ ९६) अग्नि द्रविणोदम को, तथा ‘वैश्वानरस्य’ (ऋग्वेद १ ९८) वैश्वानर को सम्बोधित सूक्त है, किन्तु इसका पूर्व का एक सूक्त (ऋग्वेद १ ९७) अग्नि शुचि को सम्बोधित है ।

जातवेदस्यं सूक्तसहस्रमेक

ऐन्द्रात्पूर्वं कश्यपापं वदन्ति ।

जातवेदसे सूक्तमाद्यं तु तेषाम्

एकभूयस्त्वं मन्यते शाकपूणिः ॥ १३० ॥

बुद्ध का कथन है कि इन्द्र को सम्बोधित सूक्त (ऋग्वेद १ १००) के पूर्व आने वाले जातवेदस् को सम्बोधित एक सहस्र सूक्तों के ऋषि कश्यप हैं इनमें से प्रथम सूक्त ‘जातवेदसे’ (ऋग्वेद १ ९९) है । शाकपूणि का विचार है कि इनमें एक की वृद्धि होती है ।

स यो वृषैन्द्राणि पञ्च वैश्वदेवानि चन्द्रमाः ।

त्रीण्यैन्द्राग्ने य इन्द्राग्नी ततमित्यार्भवे परे ॥ १३१ ॥

‘स यो वृषा’ (ऋग्वेद १ १००) इन्द्र को सम्बोधित पाँच सूक्तों (१००-१०४) में से प्रथम है । इसके बाद ‘चन्द्रमास्’ (ऋग्वेद १ १०५, १) से आरम्भ तीन सूक्त (१०५-१०७) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं । ‘य इन्द्राग्नी’ (ऋग्वेद १. १०८) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित दो (१०८-१०९) में से प्रथम है, ‘ततम्’ (ऋग्वेद १ ११०, १) से आरम्भ दो वाद के सूक्त (११०-१११) ऋभुओं को सम्बोधित हैं ।

२७-ऋग्वेद १. १०५ : त्रित की कथा

त्रितं गास्त्वनुगच्छन्तं क्रूराः सालावृकोसुताः ।

कूपे प्रक्षिप्य गाः सर्वास् तत एवापजहिरे ॥१३२॥

गायों के पीछे चल रहे त्रिन को कृषे^१ में फेंक कर मालावृकी^२ के क्रूर पुत्र वहाँ से ममस्त गायों को अपहृत करके ले गये ।

^१ नृ० कौ० ऋग्वेद १ १०५, १७ : 'त्रिनः कृपेऽवहितः' ।

^२ नृ० कौ० ऋग्वेद १ १०५, १८ : 'अस्मिन्ना सक्तु बृकः पथा यन्न ददर्श हि' ।

स तत्र सुपुत्रे सोमं मन्त्रविन्मन्त्रवित्तमः ।

देवांश्चावाहयत्सर्वास् तच्छुश्राव बृहस्पतिः ॥ १३३ ॥

उम मन्त्रविदों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्रविद ने वहाँ सोम-सवन किया और ममस्त देवताओं का आवाहन किया : बृहस्पति ने उसके इस आह्वान को सुना ।

आगच्छतोऽथ तान्दृष्ट्वा क्व वसत्यस्य तत्त्वतः ।

सर्वदृक्त्वं च वरुणस्यार्यम्णश्चेत्युपालभत् ॥ १३४ ॥

कृपेष्टकाभिर्ब्रणितान्य् अज्ञान्येवाभवन्मम ।

दृष्ट्वा सर्वानहं स्तौमि यद्यप्येको न पश्यति ॥ १३५ ॥

उन सब को आता हुआ देख कर उसने यह कहते हुये उपालम्भ किया : 'इस वरुण और अर्यमा की वह सर्वदर्शी शक्ति कहाँ है ? कृप की ईंटों से मेरे अंग घायल हो गये हैं । सब देवताओं को देखता हुआ मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ किन्तु उनमें से कोई भी मुझे नहीं देख रहा है ।'

बृहस्पतिप्रचोदिता विश्वेदेवगणास्त्रयः ।

जग्मुस्त्रितस्य तं यज्ञं भागांश्च जगृहुः सह ॥ १३६ ॥

बृहस्पति द्वारा प्रेरित विश्वेदेवों के तीनों वर्ग^१ ने त्रिन के यज्ञ में आ कर साथ-साथ यज्ञ-भाग ग्रहण किया ।

^१ अर्थात् दिव्य, अन्तरिक्ष, और पृथिवी, तीनों स्थानों के ।

२८-ऋग्वेद १. ११२-१२१ के देवता

बृहस्पतिस्त्रितस्यैतज् ज्ञानं विज्ञानमेव च ।

तृचेनान्त्येन सूक्तस्य जगादपिरसाविति ॥ १३७ ॥

एक ऋषि के रूप में बृहस्पति ने त्रिन के सम्बन्ध में जिस ज्ञान-विज्ञान की घोषणा की उसको यहाँ 'अमौ' (ऋग्वेद १. १०५, १६) से आरम्भ होने वाले इस सूक्त के अन्तिम त्रिक (१. १०५, १६-१८) में व्यक्त किया गया है ।

द्यावापृथिव्योरीळोति आग्नेयः पाद उत्तरः ।

आश्विनः सूक्तशेषः स्याद् इदं रान्युपसो स्तुतिः ॥१३८॥

‘ईळे’ (ऋग्वेद १ ११२, १) पाद द्यावा पृथिवी को, और इसके बाद का पाद अग्नि को समर्पित है, इस सूक्त का शेषांश (१ ११२ १-२५) आश्विनो को समर्पित मानना चाहिए । इन्म’ (ऋग्वेद १ ११३) में अग्नि और उपसु की स्तुति है ।

इमा रौद्रं परं सौर्यं चित्रं पञ्चाश्विनान्यतः ।

नासत्याभ्यामिति त्वन्त्ये अन्त्या दुःस्वप्ननाशिनो ॥१३०॥

‘इमा’ (ऋग्वेद १ ११४) रुद्र को समर्पित है, और इसके बाद का ‘चित्रम्’ (ऋग्वेद १ ११५) सूर्य को समर्पित है । इसके बाद ‘नासत्याभ्याम्’ (ऋग्वेद १ ११६, १) से आरम्भ पाच वह सूक्त (११६-१२०) आते हैं जो अश्विनो को समर्पित है इनमें अन्तिम सूक्त की अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद २०, १२) दुःस्वप्नो का नाश करने वाली है ।

ऐन्द्रं कद्वैश्वदेवं च प्रौपसे पृथुमत्तरे ।

ऋषिर्दानं च भाव्यस्य प्रातरित्यत्र शंसति ॥ १४० ॥

‘वद्’ (ऋग्वेद १ १२१) इन्द्र को और ‘प्र’ (ऋग्वेद १ १२२) विश्वेदेवो को समर्पित है । ‘पृथु’ (ऋग्वेद १ १२३, १) से आरम्भ बाद के दो सूक्त (१२३, १२४) उपसु को समर्पित हैं । ‘प्रात’ (ऋग्वेद १ १२५) में ऋषि ने ‘भाव्य’ की प्रशंसा की है ।

काक्षीवत् कदित्येति यदैन्द्रमुपदिशयते ।

परोक्षं वैश्वदेवं तत् प्रदिष्टं स्वरसामसु ॥ १४१ ॥

कक्षीवत् के एक सूक्त को, निम्ने परम्परा के अनुसार इन्द्र को समर्पित माना गया है, स्वरसामसु’ में परोक्ष रूप में विश्वेदेवो को समर्पित बताया गया है ।

^१ नीरानिषि ब्राह्मण २४ ९ में इसे परोक्षवैश्वदेव’ कहा गया है तु० की० नाचे ५ ४४, ४५ मा ।

२९-कक्षीवत् और स्यमय की कथा

अधिगम्य गुरोर्विद्यां गच्छन्स्वनिलयं किल ।

कक्षीवानध्वनि श्रान्तः सुप्त्वापारण्यगोचरः ॥ १४२ ॥

जैसा कि कहा गया है, अपने गुरु से विद्या प्राप्त करने के पश्चात् घर जाने समय कक्षीवत् मार्ग में थककर वन में ही सो गये ।

तं राजा स्वनयो नाम भावयव्यसुतो व्रजन् ।

क्रोडार्थं सानुगोऽपश्यत् सभार्यः सपुरोहितः ॥ १४३ ॥

उस समय अपनी सभा, पुरोहित, और भार्या के साथ क्रोडार्थं कहीं जा रहे भावयव्य के पुत्र राजा स्वनय ने उसे देखा ।

अथैनं रूपसंपन्नं दृष्ट्वा देवसुतोपमम् ।

कन्यादाने मतिं चक्रे वर्णगोत्राविरोधतः ॥ १४४ ॥

उसे रूप-सम्पन्न तथा देवपुत्रों के समान देखकर उन्होंने (राजा ने), वर्ण और गोत्र आदि का विरोध न होने पर उसे अपनी पुत्री प्रदान करने का विचार किया ।

संयोध्यैनं स पप्रच्छ वर्णगोत्रादिकं ततः ।

राजन्नाङ्गिरसोऽस्मीति कुमारः प्रत्युवाच तम् ॥ १४५ ॥

पुत्रोऽहं दीर्घतमस औचध्यस्य ऋपेर्नृप ।

अथास्मै स ददौ कन्या दशाभरणभूषिताः ॥ १४६ ॥

तावतश्च रथाञ्छयावान् चोड्वङ्गान्वै चतुर्युजः ।

वधूनां वाहनार्थाय धनकुप्यमजाविकम् ॥ १४७ ॥

तब उसे (कक्षीवत् को) उठाकर उन्होंने उससे उसका वर्ण और गोत्रादि पूछा । उस युवक (कक्षीवत्) ने यह कहते हुये उत्तर दिया : 'हे राजन्, मैं अङ्गिरस् के वंश का हूँ; हे नृप मैं उच्य-पुत्र ऋषि दीर्घतमस् का पुत्र हूँ ।' तब उन्होंने (स्वनय ने) उसे (कक्षीवत् को) आभूषणों से अलंकृत दस कन्यायें प्रदान कीं, और इन कन्याओं को ले जाने के लिये इसी मंत्रया में रथ तथा चार-चार के दल में चलने वाले मुष्ट शरीर के अश्व, और धन तथा हीन धातु के वर्तन, और वकरियों तथा भेड़ आदि भी दिये ।

निष्काणां वृषभाणां च शतं शतमदात्पुनः ।

एतदुत्तरसूक्तेन शतमित्यादिनोदितम् ॥ १४८ ॥

इनके अतिरिक्त उन्होंने उसे एक सौ निष्क (एक प्रकार का कण्ठाभूषण) और एक सौ बेल भी दिये । इसका 'शतम्' (ऋग्वेद १ १२६, २) से आरम्भ भगले सूक्त की ऋचाओं^१ में वर्णन है ।

^१ ऋग्वेद १ १२१, २-३ का इस प्रकार उद्धरण देन के पश्चात् नाचे के श्लोक में ग्रन्थकार इन ऋचाओं के शब्दों का अनुसरण करते हुये ज्ञान में दाग्ध वस्तुओं को पुन गणना कराता है ।

शतमश्वाञ्छतं निष्कान् रथान्दश बधूमतः ।
चतुर्युजो गवां चैव सहस्रं पञ्च्युपाधिकम् ॥१४९॥
स्वनयाद्भावयव्यायः कक्षीवान्प्रत्यपद्यत ।
प्रतिगृह्य च तुष्टाय प्रातः पित्रे शशंस च ॥१५०॥

एक सौ अश्व, एक सौ निष्क, कन्याओं सहित दस रथ, चार के दल में चलनेवाले रथग्राहक अश्व, और एक हजार साठ गायें,^१ इन सब को स्वनय भावयव्य से प्राप्त करनेवाले कक्षीवत् ने इन्हें प्राप्त करने के पश्चात् उनकी (स्वनय की) प्रशंसा की तथा अपने पिता को 'प्रातः' (ऋग्वेद १ १२५) सूक्त समर्पित किया ।

^१ (ऋग्वेद १ १२६, २-३) का मूल इस प्रकार है निष्कान् द्यवम् अश्वान् बधूमन्तो दश रथास षष्टि सहस्रम् ' गव्यम् ।

३०-राजा के उपहार । नाराशंसी ऋचायें । १ १२६, ६-७ सम्बन्धी विचार फलप्रदर्शनं तस्य क्रियते प्रायशस्तिबह ।

द्वितीयां तु पितापश्यत् सुगुरित्यादिकामृचम् ॥१५१॥

अब, यहाँ (ऋग्वेद १ १२५ में) अधिकांशतः उसे दिये गये दान का ही उल्लेख है । फिर भी उसके पिता ने 'सुगु' (ऋग्वेद १ १२५, २) से आरम्भ केवल द्वितीय ऋचा का ही दर्शन किया ।

काक्षीवतं सर्वमिति भगवानाह शौनकः ।

एषा तु दीर्घतमसी सानुलिङ्गा कथं भवेत् ॥ १५२ ॥

श्रद्धेय शौनक का कथन है कि यह सम्पूर्ण सूक्त कक्षीवत् का ही है । किन्तु इसमें लक्षित होने वाले चिह्न के अनुसार यह ऋचा दीर्घतमम् द्वारा कैसे दृष्ट हो सकती है ?

उच्यते प्रातरित्युक्ते सूनोर्दानेन हृषितः ।

राजश्चाशिपमाहाथ सुगुरित्यादिना किल ॥ १५३ ॥

इसका उच्चार यह है कि जब उसने (कक्षीवत् ने) 'प्रातः' (ऋग्वेद १. १२५, १) का उच्चारण किया तब वह (दीर्घतमस्) अपने पुत्र को प्राप्त उपहारों से हर्षित हुये और तब उन्होंने (दीर्घतमस् ने) राजा की स्तुति में 'सुगुः' (ऋग्वेद १. १२५, २) ऋचा का उच्चारण किया ।

कर्माणि याभिः कथितानि राज्ञां
दानानि चोच्चावचमध्यमानि ।

नाराशंसीरित्यूचस्ताः प्रतीयाद्
याभि स्तुतिर्दाशतयीषु राज्ञाम् ॥ १५४ ॥

उन ऋचाओं को, जिनमें राजाओं के कार्यों तथा उनके महान, लघु, तथा मध्यम दानों का उल्लेख है, 'नाराशंसी' के नाम से जानना चाहिये क्योंकि ऋग्वेद के दस मण्डलों में ऐसी ही ऋचाओं द्वारा राजाओं की स्तुति की गई है ।

^१ जिन्हें अन्यथा 'दान-स्तुति' कहने हैं । .

पश्चामन्दान्भावयव्यस्य गीता जायापत्योः संप्रवादो द्रुचेन
संप्रवादं रोमशयेन्द्रराज्ञोर् एते ऋचौ मन्यते शाकपूणिः ॥

“ 'अमन्दान्' (ऋग्वेद १. १२६, १-५) से आरम्भ पाँच ऋचाओं में भावयव्य का गायन है । दो ऋचाओं (१. १२६, ६-७) में एक पति-पत्नी का संवाद है । शाकपूणि का विचार है कि इन दो ऋचाओं में इन्द्र तथा रोमशा सहित राजा के बीच संवाद है ।

इन्द्रेण जायापत्योश्चेतिहासं द्रुचेऽस्मिन्मन्यते शाकटायनः ।
प्रादात्सुतां रोमशां नाम नाम्ना बृहस्पतिर्भावयव्याय राज्ञे ॥

शाकटायन का विचार है कि इन दो ऋचाओं में इन्द्र के सन्दर्भ में एक पति तथा पत्नी की कथा है ।^१ बृहस्पति ने रोमशा नामक अपनी पुत्री^२ राजा भावयव्य को प्रदान की ।

^१ सर्वानुक्रमगी के अनुसार ऋग्वेद १. १२६, ६-७ में पति-पत्नी के रूप में भावयव्य और रोमशा का वार्तालाप है । तु० को० १. १२६ पर सायण ।

^२ ऋग्वेद १. १२६, ७ पर भाष्य करने हुये सायण का कथन है कि रोमशा बृहस्पति की पुत्री थी ।

॥ इति बृहद्देवतायां तृतीयोऽध्यायः ॥



ततस्तमर्थं हरिवान्विदित्वा
प्रियं सखायं स्वनयं दिदृक्षुः ।

अभ्याजगामाशु शचीसहायः
प्रीत्यार्चयत्तं विधिनैव राजा ॥ १ ॥

१-रोमशा और इन्द्र । ऋग्वेद १. १२७-१३६ । युगल-स्तुतियाँ
तब, इस घटना को जानकर और अपने प्रिय मग्रा स्वनय को देखने की
इच्छा में शचीसहाय (इन्द्र) तत्काल उनके (स्वनय ने) पास गये । राजा
ने उनका हर्षपूर्वक विधिवत् स्वागत किया ।

अभ्याजगामाङ्गिरसी च तत्र
हृष्टा तयोः सा चरणौ ववन्दे ।
इन्द्रः सखित्वादथ तामुवाच
रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि ॥ २ ॥

और अङ्गिरस् की पुत्री भी वहाँ आई : हर्षित होकर उसने उन लोगों की
चरण-बन्दना की । तब इन्द्र ने उससे मित्र-भाव से कहा, 'हे रानी तुम्हें रोम
हैं अथवा नहीं हैं ?'

सा बालभावादथ तं जगाद
उपोप मे शक्र परामृशेति ।
तां पूर्वया सान्त्वय नृपः प्रहृष्टो
अन्वव्रजत्साथ पतिं पतिव्रता ॥ ३ ॥

तब बाल-सुलभ भाव से उसने उन्हें सम्बोधित करते हुये 'उपोप मे'
(ऋग्वेद १. १२६, ७) कहा । इसके पूर्व की ऋचा (ऋग्वेद १. १२६, ६)
में उसे सान्त्वना देते हुये राजा हर्षित हुये । तब उसने एक पतिव्रता की
भाँति अपने पति का अनुगमन किया ।

अथाग्नेये अग्निमित्युत्तरे यं
पञ्चैन्द्राणि प्र तदैन्दव्यृगन्न ।

युवं तमिन्द्रापर्वतौ सह स्तुतौ

त्विन्द्रं मेन इह यास्कः प्रधानम् ॥ ४ ॥

इसके बाद 'अग्निम्' (ऋग्वेद १. १२७) से आरम्भ अग्नि को सम्बोधित दो सूक्त (१२७, १२८) आते हैं। इनके बाद 'यम्' (ऋग्वेद १. १२९) से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित पाँच सूक्त (१२९-१३३) आते हैं। इनमें 'प्र तद्' (ऋग्वेद १. १२९, ६) ऋचा इन्द्रु को सम्बोधित है, जब कि 'युवं' (ऋग्वेद १. १३२, ६) में एक साथ ही इन्द्र-पर्वत की स्तुति की गई है। यहाँ यास्क ने इन्द्र को ही प्रधान माना है।

ऋक्षु स्तुतः पर्वतवद्धि वज्रो

द्विवत्स्तुतौ चेन्द्रमाहुः प्रधानम् ।

आ त्वा वायोर्नव पञ्चेन्द्रवाय्वोर्

एका वायोऋत्तरं द्विप्रधानम् ॥ ५ ॥

क्योंकि कुछ ऋचाओं में वज्र की पर्वत के रूप में स्तुति की गई है, और इसीलिये इन दोनों की द्विवत् स्तुति होने पर उन लोगों के कथनानुसार इन्द्र की ही प्रधानता होती है। 'आ त्वा' (ऋग्वेद १. १३४, १) से आरम्भ नी ऋचायें (ऋग्वेद १. १३४, १-६; १३५, १-३) वायु को, इनके बाद पाँच (१. १३५, ४-८) इन्द्र-वायु को, और फिर एक (१. १३५, ९) वायु को सम्बोधित है। बाद के सूक्त (ऋग्वेद १. १३६) में दो प्रधान देवता हैं।

२-विभक्त स्तुतियाँ। ऋग्वेद १. १३७-१३९। वैश्वदेव सूक्त

तत्र पञ्च वरुणमित्रदेवा

दिवादिभ्यः कथिताभ्यः परे द्वे ।

द्वे द्वे पदे संस्तुते रोदसी च

देवाश्चार्धर्चेन विभक्तमन्यत् ॥ ६ ॥

यहाँ पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद १. १३६, १-५) के देवता वरुण और मित्र हैं; बाद की दो ऋचायें (१. १३६, ६-७) द्यौस् तथा अभ्य उल्लिखित देवताओं को सम्बोधित हैं। दोनों लोकों (रोदसी) सहित दो-दो देवताओं की एक ऋचा के विभिन्न पदों में स्तुति है, तथा एक अर्ध-ऋचा में देवों की स्तुति है; ऋचा के शेषार्ध में विभक्त-स्तुति है।

मरुतों को, और तब एक (९) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है, इसके बाद की ऋचा (१०) बृहस्पति को सम्बोधित है; अन्तिम ऋचा (११) देवों की स्तुति करती है ।

ऋषीन्वृषिर्वा स्तौति दध्यङ् ह मेऽ-

स्याम् आत्मानं वा तेषु शंसन्स्वजन्म ।

तस्मादस्यां विप्रवदन्ति केचिद्

इन्द्राग्नी तस्यां तु निपातभाजौ ॥१०॥

‘दध्यङ् ह मे’ (ऋग्वेद १. १३९, ९) ऋचा में ऋषि या तो प्राचीन ऋषियों अथवा उनके बीच अपने जन्म का उल्लेख करते हुये अपनी ही स्तुति करता है । इसीलिये इस ऋचा के सम्बन्ध में असहमत होते हुये कुछ लोगों का कथन है कि इसमें इन्द्र-अग्नि की नैपातिक स्तुति की गई है ।

३-दीर्घतमस् के जन्म की कथा

द्वावुचथ्यवृहस्पती ऋषिपुत्रौ बभूवतुः ।

आसीदुचथ्यभार्या तु ममता नाम भार्गवी ॥ ११ ॥

उचथ्य और बृहस्पति (नाम के) दो ऋषि-पुत्र थे । उचथ्य की ऋग्वंशी पत्नी का नाम ममता था ।

तां कनीयान्बृहस्पतिर् मैथुनायोपचक्रमे ।

शुक्रस्योत्सर्गकाले तु गर्भस्तं प्रत्यभापत ॥१२॥

इहास्मि पूर्वसंभूतो न कार्यः शुक्रसंकरः ।

तच्छुक्रप्रतिषेधं तु न ममर्षं बृहस्पतिः ॥१३॥

इन दोनों में कनिष्ठ बृहस्पति मैथुन के लिये उसके (ममता के) पास गये । उनके शुक्रोत्सर्ग के समय गर्भ ने उनसे इस प्रकार कहा : ‘मे पहले से ही यहाँ संभूत हैं, अतः तुम शुक्र को संकर करने का कार्य न करो ।’ फिर भी, बृहस्पति शुक्र सम्बन्धी इस प्रतिषेध को सहन न कर सके ।

स व्याजहार तं गर्भं तमस्ते दीर्घमस्त्विति ।

स च दीर्घतमा नाम बभूवर्षिरुचथ्यजः ॥१४॥

अतः उन्होंने गर्भ को सम्बोधित करते हुये कहा, ‘तुम दीर्घतमस्त्वती होगे ।’ इसीलिये उचथ्य के पुत्र ऋषि का ‘दीर्घतमस्’ नाम के साथ जन्म हुआ ।

स जातोऽभ्यतपद्देवान् अकस्मादन्धतां गतः ।

ददुर्देवास्तु तन्नेत्रे ततोऽनन्धो बभूव सः ॥ १५ ॥

जन्म लेते ही अकस्मात् अन्धे हो जाने के कारण उसने देवों को दुःखी कर दिया । फिर भी देवों ने उसे उसके नेत्र दे दिये जिससे उसका अन्धापन दूर हो गया ।

४-दीर्घतमस् को प्रकट सूक्त : ऋग्वेद १. १४१-१५६ ।

स वेदिपद इत्यस्तौच् चतुर्भिर्जातवेदसम् ।

समिद्ध आप्रियोऽन्त्यैन्द्री तमित्यग्नेः पराणि षट् ॥ १६ ॥

इन्होंने (दीर्घतमस् ने) 'वेदिपदे' (ऋग्वेद १. १४०) से आरम्भ चार सूक्तों^१ द्वारा जातवेदस् (अग्नि) की स्तुति की । 'समिद्धः' (ऋग्वेद १. १४२) एक आप्री-सूक्त है जिसकी अन्तितम ऋचा (ऋग्वेद १. १४२, १३) इन्द्र को सम्बोधित है । 'तम्' (ऋग्वेद १. १४५, १) से आरम्भ बाद के छः सूक्त (१. १४५-१५०) अग्नि को सम्बोधित हैं ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १. १४०, १४१, १४३, १४४ । जब सूक्तों के किमी क्रम के बीच में कोई आप्री सूक्त आ जाना है तो उसे नीचे ५ १२ में वर्णित कारणों से छोड़ दिया जाता है ।

स्तुतौ तु मित्रावरुणौ सूक्तैर्मित्रमिति त्रिभिः ।

मित्रं मैत्रो वदत्येताम् आ धेनवश्च शंसति ॥ १७ ॥

अदितिं वाथवाप्यग्निं तथा रूपं हि दृश्यते ।

अग्निं मेनेऽदितिं त्वेव कुत्से चेह च शौनकः ॥ १८ ॥

किन्तु 'मित्रम्' (ऋग्वेद १. १५१, १) से आरम्भ तीन (१५१-१५३) सूक्तों द्वारा मित्र-वरुण की स्तुति की गई है । 'मित्रम्' (ऋग्वेद १. १५१, १) से ऐसा व्यक्त होता है कि यह ऋचा केवल मित्र को ही सम्बोधित है । 'आ धेनवः' (ऋग्वेद १. १५२, ६) में या तो अदिति की अथवा अग्नि की प्रशंसा है; क्योंकि इसका ऐसा ही रूप दृष्टिगत होता है । फिर भी शौनक का विचार है कि 'कुत्स' में तथा यहाँ भी अदिति का अर्थ केवल अग्नि ही है ।^२

^१ अर्थात् ऋग्वेद १. ९४, १५ में ।

^२ ऋग्वेद १. ९४, १५ में यास्क ने अदिति को अग्नि माना है । तु० की० निरुक्त ११. २३ : 'अग्निर् अथ् अदितिर् उच्यते ।'

ऋषिरत्र प्रसङ्गाद्वा दर्शनाद्धानुकीर्तयेत् ।
 विष्णोर्नु कमिति त्रीणि वैष्णवानि पराण्यतः ॥१९॥
 प्र वश्च तिसृभिर्ऋग्भिर् इन्द्राविष्णू सह स्तुतौ ।
 गृहाणि वा वैष्णवानि ता वामित्यृचि काङ्क्षति ॥२०॥

ऋषि ने यहाँ अदिति का या तो प्रसङ्गात् उल्लेख किया है जयरा इसलिये कि उसने (अग्नि को) इसी रूप में देखा है । 'विष्णोर्' (ऋग्वेद १. १५४, १) से आरम्भ इसके बाद के तीन मूक्त (१. १५४-१५६) विष्णु को सम्बोधित हैं; और 'प्र वः' (ऋग्वेद १. १५५, १-३ से आरम्भ तीन ऋचाओं में इन्द्र-विष्णु की सह-स्तुति है । 'ता वाम्' (ऋग्वेद १. १५४, ६) ऋचा में ऋषि द्वारा विष्णु के गृह की आर्कांक्षा व्यक्त कही जा सकती है ।

५-दीर्घतमस् की कथा (क्रमशः)

जीर्णं तु दीर्घतमसं खिन्नास्तत्परिचारिणः ।

दासा वद्ध्वा नदीतोये दृष्टिहीनमवादधुः ॥ २१ ॥

दाम परिचारकों ने खिन्न होकर उन बृद्ध और अन्धे दीर्घतमस् को बाँध कर नीचे नदी के जल में फेंक दिया ।

^१ तु० वा० ऋग्वेद १ १५८, ५ 'दासा वद्ध्वा दृष्टानुवाम् अवाधुः' । तु० वा० निरुक्त ४ ४६ : 'वित्त कृपेऽवहितम्' ।

तत्रैकस्त्रैतनो नाम शस्त्रेणैनमपाहनत् ।

शिरश्चांसावुरश्चैव स्वयमेव न्यकृन्तत ॥ २२ ॥

त्रैतन नामक उनमें (परिचारकों में) से एक ने उन पर अपनी तलवार से प्रहार करना चाहा, और (ऐसा करते हुये) उसने स्वयं अपने ही शिर, स्कन्ध, और चक्षु के टुकड़े कर दिये ।'

^१ तु० वा० ऋग्वेद १ १५८, १ : 'शिरो वदत्य त्रैतनो वित्तक्षत्स्वय दान उरो अनावपिन्ध ।'

हत्वा दीर्घतमास्तं तु पापेन महता वृतम् ।

आत्माद्धान्यनुदक्षैव तत्रोदोन्मोहितो भृशम् ॥ २३ ॥

महान पाप में लित उसका (दास का) वध करने के पश्चात् दीर्घतमस् ने जल में अत्यन्त संज्ञायुग्म्य हो रहे अपने अङ्गों को हिलाया ।

अङ्गदेशसमीपे तु तं नद्यः समुदक्षिपन् ।

अङ्गराजगृहे युक्ताम् उशिजं पुत्रकाम्यया ॥ २४ ॥

राज्ञा च प्रहितां दासीं भक्तां मत्वा महातपाः ।

जनयामास चोत्थाय कक्षीवत्प्रमुखानृपोन् ॥ २५ ॥

नदी की धारा ने उन्हें वहा कर अङ्ग देश के निकट पहुँचा दिया । उशिज् अङ्गराज के गृह में नियुक्त थी । पुत्र प्राप्ति की इच्छा से राजा ने इस दासी को उनके (दीर्घतमस् के) पास भेजा । उस महान तपस्वी (दीर्घतमस्) ने उल से बाहर आने पर उसकी (दासी की) भक्ति को देख कर उससे ऋषि कक्षीवत् तथा अन्य को उत्पन्न किया ।

६-ऋग्वेद १. १५७-१६३ के देवता

तुष्टाव चैव सूक्ताभ्याम् अयोधीत्यश्विनावृषिः ।

प्रेति द्यावापृथिव्यौ तु पराभ्यामेतदुत्तरम् ॥ २६ ॥

किमारभवं परे मा नो मेध्यस्याश्वस्य संस्तवः ।

ईर्मान्तास इति त्वस्यां नीयमानं प्रशंसति ॥ २७ ॥

और उस ऋषि ने 'अयोधि' (ऋग्वेद १. १५७. १) से आरम्भ दो सूक्तों (१५७, १५८) द्वारा अश्विनद्वय की, किन्तु 'प्र' (ऋग्वेद १. १५९, १) से आरम्भ वाद के दो सूक्तों (१५९, १६०) से द्यावापृथिवी की स्तुति की । 'किम्' (ऋग्वेद १. १६१, १) से आरम्भ इसके बाद जो सूक्त आता है वह ऋषियों को सम्बोधित है । 'मा नः' (ऋग्वेद १. १६२, १) से आरम्भ दो अगले सूक्त (१६२, १६३) यज्ञाश्व की संस्तुति करते हैं । 'ईर्मान्तासः' (ऋग्वेद १६३, १०) ऋचा में वह अग्रणी किये जाने पर अश्व की प्रशंसा करते हैं ।

स्वयूथ्यास्तस्य चैवात्र बहवः संस्तुता ह्याः ।

नियुक्ताश्चानियुक्ताश्च प्रसङ्गादनुकीर्तिताः ॥ २८ ॥

और यहाँ (ऋग्वेद १. १६३, १० में) भी उनके यूथ के अनेक अर्थों की स्तुति की गई है : संयुक्त और असंयुक्त दोनों का ही प्रसङ्गः उल्लेख है ।

संज्ञप्रवदसंज्ञं भविष्यं चाह भूतवत् ।

या ॥ २० ॥

वासोऽधिवाससोश्चात्र यद्विशस्यं च कीर्तितम् ।

गात्रस्य शूलस्थूणानां स्वधितेश्च प्रकीर्तनम् ॥ ३० ॥

बलि न हुई होने पर भी वह उसके सन्बन्ध में इस प्रकार कहते हैं मानो उसकी बलि हो गई है, और उसके भविष्य को इस प्रकार मानो वह गत हो गया है । उसके मास, उसके वध,^१ पात्रों,^२ तथा हविष्य,^३ और वस्त्रों और उपरी परिधान,^४ उसके शरीर का जिसका इस प्रकार उल्लेख है मानो उसे अर्धा काटा जायगा,^५ शूल^६ और स्थूण,^७ और स्वधिति^८ (कुटार) का, यहाँ उल्लेख है ।

^१ ऋग्वेद १ १६२, १३, में 'मूना' रूप आता है । तु० का० ऋग्वेद १ १६१, २० 'मान' 'सूनवाकृान्' ।

^२ ऋग्वेद १ १६२, १३, में 'चकृणाम्' आता है ।

^३ ऋग्वेद १ १६२, १७ में 'हविषः' रूप है ।

^४ 'वासस्' और 'अधिवास' दोनों ही ऋग्वेद १ २६२, २६ में आते हैं ।

^५ तु० की० ऋग्वेद १ १६२, १८ 'गात्रा' 'पहृषु परु' 'वि शस्त', १९ में 'अश्व्य विशस्ता', और २० में 'मा ते' 'अविशस्ता' 'गात्राण्य असिना मिथु व' ।

^६ तु० की० ऋग्वेद १ १६२, ११ 'ने' 'अभि शूल निहतरव' ।

^७ 'स्थूणा' शब्द सूक्त में नहीं आता किन्तु यह १ १६२, ६, में प्रयुक्त 'अश्व-पूष' और ९ में प्रयुक्त 'स्ववृ' का समानार्थी है ।

^८ 'स्वधिति' शब्द ऋग्वेद १ १६२, ९ १८ २०, में आता है ।

७-ऋग्वेद १. १६४ के देवता : तीन अग्नि, संवत्सर

छागस्य कीर्तनं चात्र इन्द्रापूष्णोः सह स्तुतिः ।

सूक्तं यदस्यवामीयं वैश्वदेवं तदुच्यते ॥३१॥

यहाँ 'छाग'^१ का उल्लेख, और साथ ही इन्द्र-पूषन् की स्तुति भी है ।

'अस्य वामीय'^२ (ऋग्वेद १. १६४) से चारम्भ सूक्त को विश्वेदेवों को सम्बोधित कहा गया है ।

^१ ३१ सूक्त में वरुण का दो बार (२, ४ ऋचाओं में) 'अन' और एक बार (३ ऋचा में) 'छाग' के रूप में उल्लेख है ।

^२ 'अस्यवामीय' (सूक्तम्) का अर्थविधान २. ३६, ३ और मनु ११ २५१ में भी उल्लेख है ।

प्रवादा विविधास्तत्र देवानां चात्र कीर्तनम् ।

सूक्तेऽस्यर्चि परोक्षोक्ता वक्ष्यामि भ्रातरस्त्रयः ॥३२॥

इसमें विविध प्रकार के प्रवाद हैं और यहीं देवों का भी उल्लेख है ।

इस सूक्त (१. १६४) की 'अस्य' ऋचा (१. १६४, १) में तीन भ्राताओं की परोक्ष रूप से चर्चा है, जिनकी मैं व्याख्या करूँगा :

अग्निस्तु वामः पलितो वायुर्भ्राता तु मध्यमः ।

घृतपृष्ठस्तृतीयोऽत्र सप्त वै रश्मयस्तुताः ॥ ३३ ॥

(इनमें से) कृपालु और पके बालों वाले अग्नि हैं, जब कि मध्यम भ्राता वायु हैं । यहाँ तृतीय (भ्राता) 'घृत-पृष्ठ' हैं : इनके सप्तरश्मियों की स्तुति की गई है;^१

^१ तु० की० ऋग्वेद १. १६४, १ : 'तृतीयो भ्राता घृत पृष्ठ', जिनकी वास्क ने पार्थिव अग्नि ('अयम् अग्निः', निरुक्त ४ २६) के रूप में व्याख्या की है ।

^२ ऋग्वेद १. १६४, १ में 'सप्तपुत्रम्' दण्ड की वास्क (वही) ने सूर्य की सप्त रश्मियों के रूप में व्याख्या की है ।

परास्तु कथयन्त्यग्निं यथा वर्पति पाति च ।

अहोरात्रान्दिनान्मासान् ऋतूंश्च परिवर्तिनः ॥ ३४ ॥

किन्तु वाद की ऋचा में इस यात का कि अग्नि किस प्रकार वर्षा और रक्षा करते हैं^१; तथा दिन और रात्रि (अहोरात्र), दिनों, मासों और ऋतु-चक्र का वर्णन है ।^२

^१ मुख्यतः ऋग्वेद १. १६४, ७ में ।

^२ तु० की० वास्कः निरुक्त ४. २७ ।

८-ऋग्वेद १. १६४ के विषय-वस्तु का विवरण (क्रमशः)

पञ्चधा च त्रिधा चैव षोढा द्वादशधैव च ।

संवत्सरं चक्रवच्च पराभिः कीर्तयत्यृषिः ॥ ३५ ॥

क्षेत्रज्ञानं च धेनुं च गौरीं वाचं सरस्वतीम् ।

धर्मं पूर्वयुगीयं च साध्यान्देवगणास्तथा ॥ ३६ ॥

विविधानि च कर्माणि अग्निवायुविवस्वताम् ।

विभूतिमग्नेर्वायोश्च जगति स्थास्तुजङ्गमे ॥ ३७ ॥

हरणं रश्मिभिर्वारो विसर्गं पुनरेव च ।

कर्मानकीर्तनं चात्र पर्जन्याग्निविवस्वताम् ॥ ३८ ॥

अगली श्रृचाओं^१ में ऋषि ने पञ्चधा और त्रिधा, षष्ठधा और द्वादशधा चक्र के रूप में संवत्सर की,^२ और क्षेत्र ज्ञान और गाय^३, भेष^४, वाच्^५, सरस्वती^६, पूर्वयुगीन धर्म, साध्यों और देवों^७ के गर्भों की, और अग्नि, वायु तथा विवस्वत् (सूर्य)^८ के विविध कर्मों, और स्थावर तथा जड़म लोकों में अग्नि तथा वायु के विभूति की, और सूर्य की रश्मियों द्वारा जलों के हरण^९ तथा उनके पुनः वर्षा की, स्तुति की है। यहाँ पञ्चम्य, अग्नि^{१०}, तथा विवस्वत्^{११} (सूर्य) के कर्मों का भी कीर्तन है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १. १६४, १२-१६ में।

^२ अथर्ववेद १९. ५३, २ पर भाष्य करते हुये सायण ने 'तथा च शौनवोऽप्य् आह' शब्दों के साथ इस श्लोक को उद्धृत किया है।

^३ 'धितु' नाम ऋग्वेद १. १६४, २६ में आता है।

^४ ऋग्वेद १. १६४, ४१। ^५ ऋग्वेद १. १६४, ४६।

^६ ऋग्वेद १. १६४, ४९।

^७ ऋग्वेद १. १६४, ५० 'देवाः * * * र्नाणि प्रथमानि * * * पूर्वे साध्याः'।

^८ ऋग्वेद १. १६४, ४४ में 'वपत एव * * * विश्वम् एवो अभिषष्ट भ्राजित इत्ये तद्गुरो न रूपम्'।

^९ ऋग्वेद १. १६४, ५१ 'समानम् एतद् उद्वन् उच्यते चैत्य् अव चाहमिः'।

^{१०} पु० की० ऊपर १. ६८, और २. १९। ^{११} ऋग्वेद १. १६४, ५१ में।

^{१२} ऋग्वेद १. १६४, ५२ में।

मातापुत्रौ तु वाक्प्राणौ माता वागितरः सुनः।

सरस्वन्तमिति प्राणो वाचं प्राहुः सरस्वतीम् ॥३९॥

अब, वाच् और प्राण माता पुत्र हैं * वाच् माता हैं और दूसरा (प्राण) पुत्र। 'सरस्वत्' से प्राण का तात्पर्य है, जब कि वाच् को सरस्वती कहा गया है।

^१ यहाँ 'सरस्वन्तम्' को ऋग्वेद १. १६४, ५२ ('सरस्वन्तम् अक्से जोहवामि') से उद्धृत किया गया है।

शरीरमिन्द्रियैर्युक्तं क्षेत्रमित्यभिधीयते।

वेद तत्प्राण एवैकस् तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥४०॥

इन्द्रियों से युक्त शरीर को 'क्षेत्र' कहा गया है। केवल प्राण ही इसे जानता है अतः प्राण को 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है।

१.-ऋग्वेद १. १६४ (क्रमशः)। ऋग्वेद १. १६५ : इन्द्र तथा मरुद्गण

मेघे शकस्तस्य धूमः सलिलं वास एव वा।

सोम उक्षर भवन्त्यस्य पायकाश्च त्रयोऽधिपाः ॥४१॥

सब युग्म, अन्तिम^३ और ग्यारहवीं तथा प्रथम, ऋचायें इन्द्र की हैं। इसके बाद की तीन ऋचायें (१. १६५, १३-१५) मरुतों को सम्बोधित हैं। किन्तु इन तीन ऋचाओं के कर्तृत्व का यहाँ^४ अन्य^५ को धेय^६ दिया गया है।

^१ इसका तात्पर्य यह है कि इस सूक्त का यह संवाद इन्द्र और मरुतों के बीच सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संवाद है, यद्यपि इस प्रकार के अन्य सूक्त भी हैं (उदाहरण के लिये ऋग्वेद १ १७०)।

^२ तु० की० सर्वानुक्रमणी : 'तृतीयाद्ययुजो मरतां वाक्ये'।

^३ मनाद मम्बन्धी अग्निम, अर्थात् बारहवीं ऋचा। इस सूक्त की अग्निम तीन ऋचाओं (१. १६५, १३-१५) को संवाद का अंग नहीं माना गया है, ऐसा ४५वें श्लोक द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

^४ ऋग्वेद १ १६५ के अन्त में।

^५ अर्थात् १-१२ ऋचाओं से भिन्न को।

^६ यहाँ मम्बन्तः आर्षानुक्रमणी १ २५, २६ से तात्पर्य है, जिसमें युग्म ऋचाओं का इन्द्र को ऋषि बताया गया है और अयुग्म का मरुतों को, जब कि इस सूक्त की अन्तिम तीन ऋचाओं के द्रष्टा अगस्त्य हैं। (सूक्तस्थान्ये तृचेऽगस्त्य ऋषिः)।

इतिहासः पुरावृत्त ऋषिभिः परिकीर्त्यते ।

समागच्छन्मरुद्भिस्तु चरन्व्योम्नि शतक्रतुः ॥ ४६ ॥

ऋषियों द्वारा यहाँ प्राचीन वृत्तान्तों के इतिहास का कथन है।

आकाश में भ्रमण करते हुये शतक्रतु मरुतों के साथ नीचे गिर पड़े।

दृष्ट्वा तुष्टाव तानिन्द्रस् ते चेन्द्रमृषयोऽब्रुवन् ।

तेषामगस्त्यः संवादं तपसा वेद तत्त्वतः ॥ ४७ ॥

इन्हें देख कर इन्द्र ने इनकी तुष्टि की, और इन लोगों ने भी ऋषियों के रूप में इन्द्र को सम्बोधित किया। तप की सहायता से अगस्त्य इनके संवाद से तत्त्वतः अवगत हो गये।

स तानभिजगामाशु निरुप्यैन्द्रं हविस्तदा ।

मरुतश्चाभितुष्टाव सूक्तैस्तन्निवति च त्रिभिः ॥ ४८ ॥

तब इन्द्र के लिये एक हविष्य का निर्माण कर के वह (अगस्त्य) शीघ्रता पूर्वक वहाँ गये, और उन्होंने 'तन जु' (ऋग्वेद १. १६६, १) से आरम्भ तीन सूक्तों (१६६-१६८) द्वारा मरुतों^७ की भी स्तुति की।

^७ अर्थात्, १५५^८ सूक्त की तीन ऋचाओं तथा १६६-१६८ सूक्तों द्वारा।

१०-इन्द्र, मरुद्गण और अगस्त्य ऋग्वेद १. १६९, १७०

महश्चिदिति चैवेन्द्रं सहस्रमिति चैतया ।

निरुप्तं तद्द्विश्चैन्द्रं मरुद्भ्यो दातुमिच्छति ॥ ४९ ॥

‘महश्चिदिति’ (ऋग्वेद १ १६९) से उन्होंने इन्द्र की स्तुति की तथा ‘सहस्रम्’ (ऋग्वेद १ १६७, १) ऋचा द्वारा उन्होंने मरुतों को वह हवि देने की इच्छा की जिसे उन्होंने इन्द्र के लिये निमित्त किया था ।^१

^१ तु० की० निरुक्त १ ५ ‘अगस्त्य इन्द्राय हविर् निरुप्य मरुद्भ्यः मप्रश्निमा चकार, स इन्द्र एत्य परिदेवया चक्रे ।’

विज्ञायावेक्ष्य तद्भावम् इन्द्रो नेति तमब्रवीत् ।

न श्वो नाद्यतनं ह्यस्ति वेद कस्तद्यदद्भुतम् ॥ ५० ॥

उनके भाव^१ को जान कर इन्द्र ने उनसे ‘न’ (ऋग्वेद १ १७० १) से आरम्भ यह वचन कहे ‘वास्तव^२ में न तो आगतकाल के लिये कुछ है न आज के लिये जो कभी रहा ही नहीं^३ उसे कौन जानता है ?

^१ तु० वा० नाद्ये ६ २८ विणित्वा तन्म त भावम् ।

^२ श्वेक के शब्द ऋग्वेद १ १७० १ (‘ना नूनम् अस्ति नो श्व कस न्द वेत् यद् अद्भुतम्’ ?) । तु० वा० निरुक्त १ ६

^३ वास्त (निरुक्त १ ६) ने ‘अद्भुतम्’ की अभूतम् के रूप न बाराया की है ।

कस्यचिन्वर्थसंचारे चित्तमेव विनश्यति ।

किं न इत्यब्रवीदिन्द्रम् अगस्त्यो भ्रातरस्तव ॥ ५१ ॥

‘अर्थ संचार की अनिश्चितता से मनुष्य का चिन्तन किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है ।’ तब अगस्त्य ने इन्द्र से ‘किं न’ (ऋग्वेद १ १७०, २), अर्थात् यह कहा कि ‘मरुद्गण आप के भ्राता है’ ।

मरुद्भिः संप्रकल्पस्व वधीर्मा नः शतक्रतो ।

किंनोभ्रातरितित्वस्याम् इन्द्रो मान्यमुपालभत् ॥ ५२ ॥

‘मरुतों से सहमत हों,’ शतक्रतु हमारा वध न करें ।^१ किन्तु ‘किं नो भ्रात’ (ऋग्वेद १. १७०, ३) ऋचा से इन्द्र ने मान्य^२ (अगस्त्य) का उपालम्भ किया ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १ १७०, २ ‘तेभि कल्पस्व साधुया ।’

^२ तु० की० ऋग्वेद वही, ‘मान समरणे वधी’ ।

^३ ऋषि अगस्त्य के नाम के रूप में ‘मान्य’, ऋग्वेद १ १६-१, १४ २-१ में आया है ।

अगस्त्यस्त्वरमित्यस्यां क्षुब्भमिन्द्रं प्रशामयत् ।

प्रादात्संवननं कृत्वा तेभ्य एव च तद्धविः ॥५३॥

किन्तु 'अरम' (ऋग्वेद १. १७०, ४) में अगस्त्य ने क्षुब्ध इन्द्र को शान्त किया है । उन्हें साम्त्वना देने के पश्चात् उन्होंने (अगस्त्य ने) मरुतों को हवि समर्पित की ।

११-ऋग्वेद १. १७१-१७८ । अगस्त्य और लोपामुद्राः ऋग्वेद १. १७१

सुते चकार सोमेऽथ तानिन्द्रः सोमपोथिनः ।

तस्माद्विद्यान्निपातेन ऐन्द्रेषु मरुत स्तुतान् ॥५४॥

जब सोम दयाया गया, तब इन्द्र ने उन्हें (मरुतों को) भी (अपने साथ) सोम पान करने वाला बनाया । अतः यह जानना चाहिये कि इन्द्र को सम्बोधित सूक्तों में मरुतों की नैपातिक स्तुति होती है ।

प्रीतात्मा पुनरेवर्षिस् तांस्तुष्टाव पृथक्पृथक् ।

मरुतः प्रति सूक्ताभ्याम् इन्द्रं षड्भिः परैस्तु सः ॥५५॥

हृदय से प्रसन्न होकर ऋषिने 'प्रति' (ऋग्वेद १. १७१, १) से आरम्भ दो सूक्तों (१७१, १७२) द्वारा पुनः पृथक् रूप से मरुतों की, किन्तु बाद के छः सूक्तों (१. १७३-१७८) द्वारा इन्द्र की स्तुति की ।

स्तुतश्चतसृभिश्चेन्द्र स्तुतास इति तैः सह ।

मरुद्भिः सह यत्रेन्द्रो मरुत्वांस्तत्र सोऽभवत् ॥५६॥

और 'स्तुतासः' (से आरम्भ) चार ऋचाओं (ऋग्वेद १. १७३, ३-६) में इन्द्र की उनके साथ स्तुति है ।^१ जहाँ कहीं भी इन्द्र मरुतों के साथ थे वहाँ वह मरुत्वत् थे ।

^१ तु० की० सवानुक्रमणी : 'मरुत्वास् त्व इन्द्रो देवता ।'

ऋतौ स्नातामृषिर्भार्या लोपमुद्रां यशस्विनीम् ।

उपजल्पितुमारेभे रहःसंयोगकाम्यया ॥ ५७ ॥

जब वह ऋतुस्नान से निवृत्त हो चुकी तब अपनी यशस्विनी पत्नी लोपामुद्रा से ऋषि^१ ने समागम की इच्छा से वार्ता आरम्भ की ।

^१ अर्थात् अगस्त्य ।

द्वाभ्यां सा त्वब्रवीहग्भ्यां पूर्वोरिति चिकीर्षितम् ।

रिरंसुस्तामथागस्त्य उत्तराभ्यामतोपयत् ॥५८॥

‘पूर्वी’ (से आरम्भ) दो ऋचाओं (ऋग्वेद १ १७९, १-२) में उसने (लोषामुद्रा ने) अपना अभिप्राय व्यक्त किया । तब आनन्द प्राप्त करने की इच्छा से अगस्त्य ने उसे दो वाद की ऋचाओं (ऋग्वेद १ १७९, ३-४) से सन्तुष्ट किया ।

विदित्वा तपसा सर्वं तयोर्भावं रिरंसतोः ।

श्रुत्वैनः कृतवानस्मि ब्रह्मचार्युत्तमे जगौ ॥५९॥

(ऋषि के) शिष्य ने अपने तप के प्रभाव से इन दोनों (अगस्त्य और लोषामुद्रा) की परस्पर आनन्द प्राप्त करने की इच्छा की सम्पूर्ण स्थिति को जान लिया, किन्तु यह विचार करके कि उसने इस प्रकार बातों को सुन कर एक पाप किया है, उसने अन्तिम दो ऋचाओं (१वीं ओर ६वीं) का गायन किया ।

^१ तु० वा० ऊपर ४ ४७ ‘मवाद् तपसा वेद और ४ ५० ‘वशाय तद्भावम् ।

^२ तु० वा० सर्वानुकर्मणा ‘सवा’ श्रुत्वा नेवासी ब्रह्मचाराभ्ये अदस्यत् और ऋग्वेद १ १७९, ५ पर सायण ‘समो गमलाय श्रुत्वा तन्प्रायश्चित्तं निवापुर उत्तराभ्यान् आह ।’

प्रशस्य तं परिष्वज्य गुरु मूर्ध्न्यवजघ्नतुः ।

स्मित्वैनमाहतुश्चोभाव् अनागा असि पुत्रक ॥६०॥

गुरु और उनकी पत्नी दोनों ने उसकी प्रशसा और जालिङ्गन करते हुये उसके माथे का चुम्बन किया, और दोनों ने ही उससे कहा कि ‘हे पुत्र तुम निपाप हो ।’

‘युवो रजांसीति ततः सूक्तैः पञ्चभिरश्विनौ ।

अगस्त्य एव तुष्टाव कतरेति परेण तु ॥६१॥

द्यावापृथिव्यौ सूक्तेन आ नो विश्वान्दिवौकसः ।

पितुमन्नं समिद्धाप्र्यो अग्निमग्ने नयेति च ॥६२॥

तब ‘युवो रजांसि’ (ऋग्वेद १ १८०, १) से आरम्भ पाँच सूक्तों (१८०-१८४) द्वारा अगस्त्य ने अश्विनों की, किन्तु ‘कतरा’ (ऋग्वेद १ १८५, १) से आरम्भ वाद के सूक्त द्वारा द्यावापृथिवी की, ‘आ न’ सूक्त ६ वृ०

(ऋग्वेद १. १८६) द्वारा समस्त आकाश-वासियों^१ की, 'पितुम्' (ऋग्वेद १. १८७) से अन्न की—'समिद्धः' (ऋग्वेद १. १८८) एक आग्नी-सूक्त है— और 'अग्ने नय' (ऋग्वेद १. १८९) द्वारा अग्नि की स्तुति की।

^१ अर्थात् विश्वेदेवों को।

बृहस्पतेरनर्वाणं कङ्कतोपनिपत्परम् ।

अपां तृणानां सूर्यस्य केचिदेतां स्तुतिं विदुः ॥६३॥

'अनर्वाणम्' (ऋग्वेद १. १९०) बृहस्पति को (समर्पित) है। 'कङ्कट' से आरम्भ बाद के सूक्त (ऋग्वेद १. १९१) का औपनिषदिक^१ महत्त्व है। कुछ लोग इसे जल, तृण, और सूर्य^२ की स्तुति मानते हैं।

^१ यहाँ प्रयुक्त 'उपनिषद्' के अर्थ के लिये तु० की० ऋग्वेद १. ५० पर पदपुरनिष्व।

^२ तु० की० सर्वात्मकमणीः 'कङ्कटउपनिषद्.....अप-तृण-सौर्य विश्वशङ्खान् अगस्त्यः प्राणवीन् ।'

ददर्श तदगस्त्यो वा विपन्नं विपशङ्कया ।

अदृष्टाख्यो नष्टरूपः सूक्तस्यान्त्योऽत्र तु द्रुचः ॥ ६४ ॥

अथवा विप की शङ्का से अगस्त्य ने इसका विपन्न के रूप में दर्शन किया फिर भी इस सूक्त की अन्तिम दो ऋचायें 'अदृष्टाख्य' (जिसमें कोई स्पष्ट नाम न हो) और 'नष्टरूप' (अस्पष्ट) हैं।

द्वितीय मण्डल

१३ ऋग्वेद २. १-१२ के देवता। गृत्समद, इन्द्र, और दैत्यगण

अस्तौद्गृत्समदोऽग्निं त्वं जातवेदस्यमाप्रियः ।

यज्ञेनाथ समिद्धोऽग्निर् अतोऽग्निं सप्तभिर्हुवे ॥ ६५ ॥

गृत्समद ने 'त्वम्' (ऋग्वेद २. १) से अग्नि को। इसके बाद 'यज्ञेन' (ऋग्वेद २. २) और 'समिद्धो' (ऋग्वेद २. ३) जातवेदस् को सम्बोधित तथा आग्नी ऋचायें हैं। इनके बाद 'हुवे' (ऋग्वेद २. ४) से आरम्भ सात सूक्तों (४-१०) में उन्होंने अग्नि की स्तुति की।

संयुज्य तपसात्मानम् ऐन्द्रं विश्वन्महद्वपुः ।

अदृश्यत मुहूर्तेन दिवि च व्योम्नि चेह च ॥ ६६ ॥

तप के साथ अ - - - - के तन विश्वात् शरीर

ने उनसे (इन्द्र से) कहा 'हे वक्ताओं मे प्रमुख । हम लोगों को शरीर की, आर हृदयगम हो जाने वाली चाणी की, सुरक्षा प्राप्त हो । हम सुवीरों और सम्पत्ति से सम्पन्न हों ।' हे इन्द्र ! हम अपने विचारों द्वारा तुम्हारा ध्यान करते हैं, और हे इन्द्र ! हम तुम्हें प्रत्येक जन्मों^१ में जान लेते हैं, हमस दूर मत जाओ, तुम श्रेष्ठ रथी हो ।^२

^१ तु० वा० ऋग्वेद २ १२, १५ 'सुवासातो विदधम् आ वदेम', और २ २१, ६. 'षोष रथाणाम्, अष्टिं तनूना स्वाप्मान वाच ।'

^२ अर्थात् इन्द्र द्वारा विक्ता भी रूप में जन्म धारण करने से तात्पर्य है ।

^३ तु० ऋ० ऋग्वेद १ ८४, ६ में इन्द्र के लिये प्रयुक्त यह शब्द 'नकिष्-ट्वद् रथात् ।'

१५-इन्द्र और गृत्समद की कथा (क्रमशः)

निरुक्तं तदिदं वार्यम् इन्द्र श्रेष्ठान्यृचान्त्यया ।

वव्रे वरमिदं सर्वं तदाकर्ण्य शचीपतिः ॥ ७४ ॥

तथेत्युक्त्वा तुरापाद् तु पाणौ जग्राह दक्षिणे ।

ऋपिश्चास्य सखित्वेन पाणिना पाणिमस्पृशत् ॥ ७५ ॥

(गृत्समद के) इस वरण की 'इन्द्र श्रेष्ठानि' (ऋग्वेद २. २१, ६) से आरम्भ अन्तिम ऋचा में (इस प्रकार) व्याख्या की गई है उन्होंने (ऋपि ने) इन सब का वर के रूप में वरण किया। यह सुन कर शचीपती, और शीघ्र विज्रता ने सहमत होते हुये उनको (ऋपि को) अपने दाहिने हाथ से पकड़ा और ऋपि ने भी उनके (इन्द्र के) प्रति अपने मैत्रीभाव के साथ अपने हाथ से उनके (इन्द्र के) हाथ का स्पर्श किया ।

सहितौ जग्मतुश्चैवं महेन्द्रसदनं प्रति ।

तत्रैनमार्हयत्प्रीत्या स्वयमेव पुरंदरः ॥ ७६ ॥

कर्मणा विधिदृष्टेन तमृषिं चाभ्यपूजयत् ।

सखित्वाच्च पुनश्चैनम् उवाच हरिवाहनः ॥ ७७ ॥

और इस प्रकार वह दोनों साथ-साथ इन्द्र के आवास में गये । वहाँ पुरन्दर (इन्द्र) ने स्वयं उनका (ऋपि का) आदर तथा विधिवत क्रमों द्वारा पूजन किया । और अपनी मित्रता के कारण हरिवाहन (इन्द्र) ने उनको (ऋपि को) पुन सम्बोधित किया

गृणन्मादयसे यस्मात् त्वमस्मानृपिसत्तम ।

तस्माद्गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि ॥ ७८ ॥

‘हे ऋषियों में श्रेष्ठ ! यतः तुम अपनी स्तुति’ द्वारा हम लोगों को प्रमत्त करते हो, अतः शुनहोत्र^१ के पुत्र होने के कारण तुम्हारा नाम गृत्समद^२ होगा ।’

^१ तु० की० ‘गृहन्’ के सम्बन्ध में यास्क. निरुक्त १. २ : ‘गृत्स इति मेधाविनाम गृणान्त. स्तुतिकर्मणः ।’

^२ तु० की० आपानुकर्मणो २. २ : ‘औरतः शुनहोत्रस्य’ ।

^३ तु० की० दूमरे मण्डल की सर्वानुकर्मणो की भूमिका पर षडगुणशिष्यः ‘पञ्चाद इद्रेणोक्तगृत्समदनामा ।’

ततो द्वादशभिः सूक्तैस् तुष्टावेन्द्रं श्रुधोत्यृषिः ।

ददर्श संस्तुवन्नेव तत्र स ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ७९ ॥

इसके बाद ‘श्रुधि’ (ऋग्वेद २. ११, १) से आरम्भ चारह सूक्तों द्वारा ऋषि ने इन्द्र की स्तुति की । और जब वह स्तुति कर रहे थे तो उन्होंने वहाँ ब्रह्मणस्पति को देखा ।

१६-ऋग्वेद २. २३-३० के देवता

बृहस्पतिं तु तुष्टाव हृष्टलिङ्गाभिरेव च ।

स तमप्यभितुष्टाव चतुर्भिरित उत्तरैः ॥ ८० ॥

गणानां विश्वमित्यस्यां सहेन्द्राब्रह्मणस्पती ।

बृहस्पतिं प्रसङ्गाद्वा ब्रह्मणस्पतिमेव च ॥ ८१ ॥

उन्होंने उन ऋचाओं में बृहस्पति की स्तुति की जिनमें उनका (बृहस्पति का) नाम दृष्टगत होता है । उन्होंने इसके बाद ‘गणानाम्’ (ऋग्वेद २. २३, १) से आरम्भ बाद के चार सूक्तों (ऋग्वेद २. २३-२६) में भी इनकी, तथा ‘विश्वम्’ (ऋग्वेद २. २४, १२) ऋचा में इन्द्र और ब्रह्मणस्पति की साथ-साथ स्तुति की । अथवा^१ उन्होंने बृहस्पति की प्रसङ्गात् और ब्रह्मणस्पति की स्पष्ट रूप से स्तुति की ।

^१ ८०वें सूक्त में जो कुछ कहा गया है उन्हीं की पर वैकल्पिक उक्ति : अर्थात् ब्रह्मणस्पति तो ‘मूक्तभाज्’ है, जब कि बृहस्पति ‘ऋम्भाज्’ (८० में) अथवा ‘निपातभाज्’ (८१ में) है ।

तुष्टाव कर्मणैकेन प्रभावस्यान्तरं द्वयोः ।

मित्रावरुणदक्षांशतुविजातभगार्यम्णाम् ॥ ८२ ॥

आदित्यानामिमाः सूक्तम् इदं वारुणमुच्यते ।

वारुणी यो म इत्याद्या दुःस्वप्नाद्यप्रणाशिनी ॥ ८३ ॥

उन्होंने एक ही कर्म द्वारा दोनों के भिन्न प्रभाव की स्तुति की।

‘इमा’ (ऋग्वेद २ २७) सूक्त, मित्र, वरुण, दक्ष, अरा, तुविजात, भग, अर्यमा, और आदित्यों को समर्पित है। ‘इदम्’ (ऋग्वेद २ २८) को वरुण को सम्बोधित कहा गया है। ‘यो मे’ (ऋग्वेद २ २८, १०) से आरम्भ वरुण को सम्बोधित ऋचा दु स्वप्नो आदि की विनाशक है।

धृतव्रता वैश्वदेवम् ऋतमैन्द्रं परं तु यत्।

प्र हि ऋतुमिति त्वस्याम् इन्द्रासोमौ सहस्तुतौ ॥ ८४ ॥

धृतव्रता (ऋग्वेद २ २९) विश्वेदेवों को सम्बोधित है, किन्तु इसके बाद ऋतम् (ऋग्वेद २ ३०) इन्द्र को सम्बोधित है। ‘प्र हि ऋतुम्’ (ऋग्वेद २ ३०, ६) ऋचा में इन्द्र सोम की साथ-साथ स्तुति है।

सरस्वति त्वमित्यस्मिन्न अर्धर्चे मध्यमा तु वाक्।

बृहस्पतिस्तुतियों नस् तं व ऋड् मरुतां स्तुतिः ॥ ८५ ॥

किन्तु ‘सरस्वति त्वम्’ (ऋग्वेद २ ३०, ८) अर्धऋचा में मध्यम वाक् की स्तुति है। ‘यो न’ (ऋग्वेद २ ३०, ९) बृहस्पति की स्तुति है, और ‘व व’ (ऋग्वेद २ ३०, ११) मरुतों की स्तुति है।

१७-ऋग्वेद २. ३१-३५ के देवता

अस्माकं वैश्वदेवं स्याद् आदावस्येति चास्य ऋक्।

द्यावापृथिव्योस्त्वापृथौ वा अथवैन्द्र्यौ परे ततः ॥ ८६ ॥

‘अस्माकम्’ (ऋग्वेद २ ३१) को विश्वेदेवों को सम्बोधित मानना चाहिये, और आरम्भ की ‘अस्य’ (ऋग्वेद २ ३२, १) ऋचा आकाश और पृथिवी को समर्पित है इसके बाद की दो ऋचाये (ऋग्वेद २ ३२, २ ३) या तो त्वष्टा को अथवा इन्द्र को समर्पित हैं।

द्वे द्वे राकासिनीवाल्योः पड् गुड्ग्वाद्यास्तथान्तयथा।

तत्पूर्वं द्वे ऋचौ कुहाः कुहमहमिति स्मृते ॥

(इसके बाद) प्रत्येक दो दो ऋचाओं में राका (ऋग्वेद २ ३२, ४ ५) और सिनीवाली (४, ७) की, जबकि अन्तिम (८) में गुड्यू सहित छंदों की स्तुति है इसके पूर्व ‘कुहम् अहम्’ से आरम्भ दो ऋचाओं को कुह को सम्बोधित माना गया है।

^१ तैत्तिरीय संहिता ३. ३, ११, ५ में राका को समर्पित दो ऋचाओं (= ऋग्वेद २. ३२, ४. ५) के बाद कुहू को सम्बोधित उपरोक्त दो ऋचायें आती हैं।

तदुत्तरे द्वेऽनुमतेर् अनु नोऽन्विदिति स्मृते ।

धातुश्चतस्रस्तत्रादौ धाता ददातु नो रयिम् ॥ ८८ ॥

इनके बाद 'अनु नः' और 'अन्व इत्' से आरम्भ दो ऋचायें अनुमति^१ की मानी गई हैं। इसी स्थान पर आरम्भ में 'धाता ददातु नो रयिम्'^२ से आरम्भ चार ऋचायें धातु को सम्बोधित हैं।

^१ देखिये तैत्तिरीय संहिता ३. ३, ११, ३. ४।

^२ देखिये तैत्तिरीय संहिता ३. ३, ११, २. ३।

रौद्रं मादृतं तु परम् आ ते धारावरा इति ।

वामतस्तु मृगं दृष्ट्वा विभ्यदेत्य ऋषिः स्वयम् ॥ ८९ ॥

स्तुहि श्रुतमिति त्वस्यां तमेवास्तौत्प्रसादयन् ।

अपां नपाद्गुपेत्यत्र स्तुतः सूक्ते ततः परे ॥ ९० ॥

'आ ते' (ऋग्वेद २. ३३) रुद्र को और इसके बाद का 'धारावरा' (ऋग्वेद २. ३४) मरुतों को सम्बोधित है।

अपने वायें ओर पशु को देखकर ऋषि ने भयभीत होकर 'स्तुहि श्रुतम्' (ऋग्वेद २. ३३, ११) ऋचा द्वारा उसकी ही स्तुति की। इसके बाद 'उप' (ऋग्वेद २. ३५) से आरम्भ सूक्त में 'अपां नपात्' की स्तुति है।

१८-ऋग्वेद २. ३६-४३ के देवता। कपिल्ल के रूप में इन्द्र तुभ्यमित्यार्तवे सूक्ते सावित्रादाश्विनं परम् ।

सोमः पूषादितिश्चैव सोमापौष्णेऽन्त्यया स्तुताः ॥ ९१ ॥

'तुभ्यम्' (ऋग्वेद २. ३६, १) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद २. ३६-३७) ऋतुओं को सम्बोधित हैं। फिर सवितृ को सम्बोधित एक (ऋग्वेद २. ३८) के बाद अश्विनों को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद २. ३९) आता है। सोम-पूषन् को सम्बोधित सूक्त (ऋग्वेद २. ४०) की अन्तिम ऋचा में सोम, पूषन्, और अदिति की भी स्तुति है।

वायव्ये चैन्द्रवायवो पश्चाथ प्राउगास्तृचाः ।

प्रेत्यृक्स्तौति हविर्धाने अग्निस्तत्र निपालभाक् ।

द्यावापृथिव्यौ द्यावेति हविर्धाने ततः परे ॥ ९२ ॥

दो ऋचायें (ऋग्वेद २. ४१, १. २) वायु का सम्बोधित हैं और एक ऋचा (ऋग्वेद २. ४१, ३) इन्द्र-वायु को, इसके बाद ऋचाओं के पाँच त्रिक (ऋग्वेद २. ४१, ५-१८) प्रउग^१ देवताओं को सम्बोधित हैं। 'प्र' (ऋग्वेद २. ४१, १९) ऋचा में हविर्धान की स्तुति है : अग्नि यहाँ निपातभाज् है। 'धावा' (ऋग्वेद २. ४१, २०) आकाश और पृथिवी की स्तुति करता है, इसके बाद (ऋग्वेद २. ४१, २१ में) हविर्धान आते हैं।

^१ इन देवताओं के लिये देखिये ऊपर २. २७-३५, ऋग्वेद १. ३ और २. ४१ पर सर्वानुक्रमणी भी।

स्तुतिं तु पुनरेवेछन् इन्द्रो भूत्वा कपिञ्जलः।

ऋपेर्जिगमिषोराशां ववाशास्थाय दक्षिणाम् ॥९३॥

पुनः स्तुति प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्र तीतर पक्षी बन गये, और ऋषि जब बाहर^१ जाने को हुये तब उन्होंने (तीतर रूपी इन्द्र ने) ऋषि के दक्षिण स्थित होकर आवाज़ लगाई।

^१ तु० वी० निरुक्त ९ ४ : 'गृत्समदम् अर्धम् अभ्युत्थितं कपिञ्जलोऽभिववाशे', तु० वी० ऋग्वेद २. ४३ पर सर्वानुक्रमणी।

स तमार्षेण संप्रेक्ष्य चक्षुषा पक्षिरूपिणम्।

पराभ्यामभितुष्टाव सूक्ताभ्यां तु कनिक्रदत् ॥९४॥

उन्होंने (गृत्समद ने) आर्ष नेत्रों से पक्षी के रूप में इन्द्र को पहँचानते हुये 'कनिक्रदत्' (ऋग्वेद २. ४२, १) से आरम्भ दो बाद के सूक्तों (ऋग्वेद २. ४२-४३) में उनकी स्तुति की।

तृतीय मण्डल

१९-विश्वामित्र ऋषि। ऋग्वेद ३. १-६ के देवता

प्रशास्य गां यस्तपसाभ्यगच्छद्

ब्रह्मर्षितामेकशतं च पुत्रान्।

स गथिपुत्रस्तु जगाद सूक्तं

सोमस्य मेत्याग्नेयं यत्परे च ॥ ९५ ॥

वैश्वानरीये समित्समिदाप्र्यो

द्वे आग्नेये उत्तरे त्वन्न सूक्ते।

द्यावापृथिव्या उपसो निपाता

आपोऽथ देवाः पितरश्च मित्रः ॥ १६ ॥

पृथिवी पर शासन करने के पश्चात् तप द्वारा ब्रह्मर्षि पद और १०० पुत्र^१ प्राप्त करके गाथि-पुत्र^२ ने अग्नि को सम्बोधित 'सोमस्य मा' (ऋग्वेद ३. १) सूक्त का, और इसके बाद वैश्वानर को सम्बोधित दो सूक्तों (ऋग्वेद ३. २-३) का उच्चारण किया। 'समित्-समित' (ऋग्वेद ३. ४) एक आप्री सूक्त है। इसके बाद यहाँ अग्नि को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद ३. ५-६) आते हैं : आकाश और पृथिवी, उपस्, जल, देव-गण, पितृ-गण और मित्र नैपातिक देवता हैं।

^१ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण ७. १८, १।

^२ अर्थात् तृतीय मण्डल के ऋषि, विश्वामित्र।

आग्नेयेषु दृश्यन्ते स्तुतास्तु
वैश्वानरो वरुणो जातवेदाः।

स्तूयेतैको यत्र यत्रास्तुतिर्वा
निपात्यर्थाश्चोपमार्थाश्च विद्यात् ॥ १७ ॥

अग्नि को सम्बोधित (सूक्तों) में वैश्वानर, वरुण और जातवेदस् की भी स्तुति दृष्टिगत होती है। जहाँ (इनमें से) एक की भी स्तुति हो अथवा कोई स्तुति न हो, वहाँ भी यह जानना चाहिये कि इनकी नैपातिक स्तुति अथवा उद्गमा का तात्पर्य होता है।

राजर्षयो गृत्समदा वसिष्ठा
भरद्वाजाः कुशिका गोतमाश्च।
विश्वेऽश्विनावङ्गिरसोऽन्नयोऽदितिर्
भोजाः कण्वा भृगवो रोदसी दिशः ॥ १८ ॥
सावित्रसौम्याश्विनमारुतेषु
ऐन्द्राग्नेये रौद्रसौर्योपसेषु।

आदावन्ते सूक्तमध्ये स्तुतास्तु
न व्याघ्नन्ति देवताः सूक्तभाजः ॥ १९ ॥

राजर्षिगण, गृत्समद आदि, वसिष्ठगण, भरद्वाजगण, कुशिकगण, और गोतमः विश्वेदेव अश्विन-गण, अङ्गिरस-गण, अत्रिगण, अदिति, भोजगण,

कण्वराण, ऋगुगण, दोनों लोक, और दिशाओं की, जब सवितृ, सोम, अग्नि, अधरा मरुद्गणों, इन्द्र अथवा अग्नि, रुद्र, सूर्य अथवा उपसू को सम्बोधित सूक्त के आरम्भ, अन्त^१ अथवा मध्य में स्तुति हो तो यह सूक्तभाज् देवता के साथ व्याघात उत्पन्न नहीं करते ।

^१ तु० की० ऊपर ३ ५२, और २ २२ तथा, नीचे ५ १०१, भी ।

२०-ऋग्वेद ३. ७-२९ के देवता

अग्नेः सप्तदशोऽध्याय ऊर्ध्व ऊ पु ण ऊतये ।

एते काण्व्यावृचौ यौप्याव् अञ्जन्ति त्वेति पञ्च च ॥१००॥

सप्तहर्षो अध्याय (ऋग्वेद ३ ७-२९) अग्नि से सम्बद्ध है । 'ऊर्ध्व ऊ पु ण ऊतये' (ऋग्वेद १ ३६, १३-१४) से आरम्भ कण्व की दो ऋचायें तथा 'अञ्जन्ति त्वा' (ऋग्वेद ३ ८, १-५) से आरम्भ पाँच ऋचायें यज्ञ-रूप को सम्बोधित हैं ।

शेषा बहुभ्यो यूपेभ्यो वैश्वदेवी त्वगष्टमी ।

अस्यान्त्या व्रश्चनी योक्ता षष्ठमैन्द्रायमुच्यते ॥१०१॥

शेष अनेक यूपों को, जब कि आठवीं ऋचा विश्वेदेवी को सम्बोधित है, इस सूक्त की अन्तिम ऋचा को (यूप को) काटने से सम्बद्ध कहा गया है । छठवाँ (सूक्त) को इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित कहा गया है ।

^१ अर्थात् दस अध्याय (तु० वा० ऊपर १००वाँ श्लोक) का छठवाँ सूक्त ।

अग्निमुपसं वैश्वदेवी दधिक्रामिति चैतया ।

आग्नेन्द्री त्वन्न इन्द्रश्चर्क् परो वैश्वानरस्तृचः ॥१०२॥

'अग्निम् उपसम्' (ऋग्वेद ३. २०, १) विश्वेदेवी को सम्बोधित है, 'दधिक्राम्' (ऋग्वेद ३ २०, ५) द्वारा भी इनका ही आवाहन किया गया है । किन्तु 'अन्न इन्द्रश्च' (ऋग्वेद ३ २५, ४) ऋचा अग्नि इन्द्र को सम्बोधित है । बाद की तीन ऋचायें (ऋग्वेद ३ २६, १-३) वैश्वानर को सम्बोधित हैं ।

प्र यन्तु मारुतश्चान्त्या शतधारं गुरुस्तवः ।

प्र वो वाजा ऋतून्स्तौति ऋत्विज स्तौति मन्थत ॥१०३॥

और 'प्र यन्तु' (ऋग्वेद ३ २६, ४-६) से आरम्भ तीन ऋचायें मरुतों को सम्बोधित हैं । 'शतधारम्' (ऋग्वेद ३ २६, ९) से आरम्भ अन्तिम

उस सूक्त में द्विवचन, बहुवचन^१, और एकवचन में प्रवाद आते हैं : 'अद्' (ऋग्वेद ३. ३३, ३) अर्ध-ऋचा में अथवा 'निते' (ऋग्वेद ३. ३३, १०. ११) से आरम्भ तीन क्रमिक पादों में नदियों के सन्दर्भ में एकवचन में; प्रथम दो ऋचाओं (ऋग्वेद ३. ३३, १. २) में तथा एक अर्ध-ऋचा (तीसरी ऋचा की) में ध्रुति के अनुसार विश्वामित्र^२ का वचन है । अथवा नदियों ने बहुवचन में ऋषि को इन ऋचाओं, अर्थात् छठवीं, आठवीं, चौथी और दसवीं ऋचाओं द्वारा सम्बोधित किया; शेष (ऋचायें) ऋषि की हैं । जिन दो देवों की सातवीं और छठवीं^३ ऋचाओं में प्रशस्ति है

^१ तु० की० निरुक्त २. २४ ।

^२ आपानुक्रमणी ३ ७ (जिसका सर्वानुक्रमणी ने भी अनुसरण किया है) ४, ६, ८ और १० ऋचाओं को 'नर्दावाचः' कहा गया है । शेष नौ ऋचायें 'विश्वामित्र-वचामि' हैं ।

^३ छठवीं ऋचा में इन्द्र और सवितृ का तथा सातवीं में इन्द्र का उल्लेख है । सर्वानुक्रमणी का यह कथन है : 'षष्ठीसप्तम्योस्त्व इन्द्रस्तुतः' ।

२२- ऋग्वेद ३. ३१ : एक पुत्रिका-पुत्री । विश्वामित्र और शक्ति ।
निपातिनौ तु तौ ज्ञेयौ ऐन्द्रापार्वत्यृगुत्तमे ।
करोति पुत्रिकां नाम यथा दुहितरं तथा ॥११०॥
तस्यां सिञ्चतिरेतो वा तच्छासदिति कीर्तितम् ।
रिक्थस्य दुहितुर्दानं नेत्यृचि प्रतिपिध्यते ॥१११॥

उन्हें नैपातिक माना गया है । अन्तिम सूक्त में इन्द्र-पर्वत को सम्बोधित एक ऋचा^१ है । पुत्रिका कही जानेवाली को किस प्रकार अपनी पुत्री बनाया जाता है, अथवा उसे इस आशय में गर्भित किया जाता है, इसका 'शामद' (ऋग्वेद ३. ३१)^२ सूक्त में उल्लेख है । 'न' (ऋग्वेद ३. ३१, २)^३ ऋचा में पुत्री को उत्तराधिकार देने का निषेध है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ३. ५३, १ ।

^२ ऋग्वेद ३. ३१, १, पर यास्क ने निरुक्त ३ ४ में टिप्पणी की है; तु० की० इस पर सावण भी ।

^३ ऋग्वेद ३. ३१, २ पर यास्क ने निरुक्त ३. ६ में टिप्पणी की है ।

तस्याश्चाह यवीयांसं भ्रातरं ज्येष्ठवत्सुतम् ।
सुदासश्च महायज्ञे शक्तिना गाथिसूनवे ॥११२॥

निगृहीतं बलाच्चेतः सोऽवसीदद्विचेतनः ।

तस्मै ब्राह्मीं तु सौरीं वा नाम्ना वाचं ससर्परीम् ॥११३॥

सूर्यक्षयादिहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः ।

कुशिकानां ततः सा वाग् अमतिं तामपाहनन् ॥११४॥

और (ऋषि ने) यह कहा है कि उसका पुत्र, जो उससे छोटा है, ज्येष्ठ भ्राता के समान है ।^१ मुदास् के पुरु महायज्ञ म शक्ति ने गाधि पुत्र को बलान् चेतनारहित कर दिया था । वह अचेतनता से दुःखी हुआ किन्तु जमदग्निर्षी^२ ने उसे सूर्य के आवास से लाकर ब्रह्मा अथवा सूर्य का पुत्री, ससर्परी नामक वाच् प्रदान की । तब उस वाच न कुशिकों के 'अमतिव' (अचेतनत्व) को दूर कर दिया ।

^१ अर्थात् पुत्रिका पुत्र अपने पितामह का सम्पत्ति को अपनी माता के द्वारा इन प्रकार प्राप्त करता है मानो वह अपना इस माता का ज्येष्ठ भ्राता हो

^२ तु० वी० ऋग्वेद ३ ५३, १०-१६ ।

^३ ऋग्वेद ३ ५३, १५ में ससर्परी को 'सूर्यस्य कुशिता' कहा गया है ।

^४ ऋग्वेद ३ ५३, १५ में 'ससर्परी अमतिं वाग्माना आता ह ।

२३-विश्वामित्र और वाच् ससर्परी । वसिष्ठों
के विरुद्ध अभिचार ।

उपेति चास्यां च कुशिकान् विश्वामित्रोऽनुबोधयत् ।

लब्ध्वा वाचं च हृष्टात्मा तानृषीन्प्रत्यपूजयत् ॥

ससर्परीरिति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां वाचं स्तुवन्स्वयम् ।

स्थिराचित्यनसोऽङ्गान्यनडुहश्च गृहान्ब्रजन् ॥ ११६ ॥

और 'उप' (ऋग्वेद ३ ५३, ११) ऋचा द्वारा विश्वामित्र ने कुशिकों को पुन चेतना युक्त कर दिया । वाच् के प्राप्त करके प्रसन्न होकर उन्होंने (विश्वामित्र ने) इन ऋषियों (जमदग्निर्षी) का पूजन किया और स्वयं 'ससर्परी' (ऋग्वेद ३ ५३, १५) से आरम्भ हो ऋचाओं द्वारा वाच की स्तुति की । 'स्थिरौ' (ऋग्वेद ३ ५३, १७-२०) द्वारा उन्होंने घर जाते समय गादी के अडों और बेलों की स्तुति की ।

ततश्च स्वशरीरेण गृहान्गाङ्गन्परीददे ।

पराश्रतस्रो चास्त्वत्र वसिष्ठद्वेषिण्यः स्मृताः ॥११७॥

और तब घर जाकर उन्होंने स्वयं ही इन वस्तुओं को रत्न दिया ।

किन्तु इसके बाद आनेवाली चार ऋचाओं (ऋग्वेद ३. ५३, २१-२४) को वसिष्ठ-द्वेषी माना गया है ।

अर्थात् गाढा, उत्तके अन्न, और बैल । तु० की० ऋग्वेद ३. ५३, २० : 'अद्यग्ना न्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिपत् । स्वस्त्या गृहेभ्य आत्मा आ विमोचनात् ॥'

विश्वामित्रेण ताः प्रोक्ता अभिशपा इति स्मृताः ।

द्विपद्वेषास्तु ताः प्रोक्ता विद्याश्चैवाभिचारिकाः ॥११८॥

इनका विश्वामित्र ने उच्चारण क्रिया था और इन्हें अभिशप माना गया है । इनका दानु-द्वेषी^१ के रूप में उच्चारण क्रिया गया है और यह अभिचारिक विद्यायें हैं ।

तु० की० ऋग्विधान १. १९, ४; १. २०, १ ।

२४-ऋग्वेद ३. ५३, २१-२४ । ऋग्वेद ३. ५४-६० के देवता ।

वसिष्ठास्ता न शृण्वन्ति तदाचार्यकसंमतम् ।

कीर्तनाच्छ्रवणाद्वापि महादोषश्च जायते ॥११९॥

शतधा भिद्यते मूर्धा कीर्तितेन श्रुतेन वा ।

तेषां बालाः प्रमीयन्ते तस्मात्तास्तु न कीर्तयेत् ॥१२०॥

वसिष्ठ-गण इनका श्रवण नहीं करते । यह इनके आचार्यों का सर्वसम्मत मत है : श्रवण अथवा कीर्तन से महादोष भी उत्पन्न होता है; श्रवण अथवा कीर्तन से व्यक्ति का सर टूटकर सौ टुकड़ों में विभक्त हो जाता है । उनके बालक भी मर जाते हैं, अतः इनका कीर्तन नहीं करना चाहिये ।

विश्वांश्च देवांस्तुष्टाव चतुर्भिरिममित्यृषिः ।

अस्तौद्विश्वात्मना सर्वान् मन्यमानः परं पदम् ॥१२१॥

देवानामसुरत्वं तद् एकं महदित्थीरयन् ।

अश्विनौ मित्र ऋभुवो धेनुमित्र इहेह वः ॥१२२॥

'इमम्' (ऋग्वेद ३. ५४, १) से आरम्भ चार सूक्तों (ऋग्वेद ३. ५४-५७) में ऋषि ने विश्वेदेवों की स्तुति की ।

उन्होंने उनके परमपद का विचार करके अपनी सम्पूर्ण आत्मा द्वारा स्तुति करते हुये 'देवानाम् असुरत्वं तद् एकं महत्' का उच्चारण किया ।

अश्विन-गण, मित्र, और ऋभु-गण (ऋमशः) 'धेनुः' (ऋग्वेद ३. ५८) 'मित्रः' (ऋग्वेद ३. ५९) और 'इहेह वः' (ऋग्वेद ३. ६०) के देवता हैं ।

वंश्वदेवीति विज्ञेया मैत्री मित्राय पञ्च तु ।

ऐन्द्रार्भवस्तृचस्त्वत्र आर्भवे सूक्त उत्तमः ॥ १२३ ॥

मित्र को सम्बोधित 'मित्राय पञ्च' (ऋग्वेद ३. ५९, ८) ऋचा न विधेदेवों के लिये मानना चाहिये ।

विष्णु ऋभु के सूक्त में यहाँ अन्तिम तीन ऋचायें (ऋग्वेद ३. ६०, ५-७) इन्द्र और ऋभुओं को सम्बोधित हैं ।

२५-ऋग्वेद ३. ६१-६१ के देवता ।

पूर्वे द्रुचे निपातीन्द्र उषो वाजेन पञ्चमात् ।

औपसादुत्तरास्त्वन्त्ये पट् पृथग्देवतास्तृचाः ।

ऐन्द्रावरुणः प्रथमो वार्हस्पत्यस्तथापरः ॥१२४॥

पौष्णसावित्रसौम्याश्च मैत्रावरुण उत्तमः ।

तुष्टाव जमदग्निश्च तेन देवावृतावृधौ ॥१२५॥

इनके पहले की दो ऋचाओं (ऋग्वेद ३. ६०, ३-४) में इन्द्र नेपातिर है । 'उषो वाजेन' (ऋग्वेद ३. ६१) से आरम्भ उपस् को सम्बोधित पाँचवें सूक्त के बाद अन्तिम सूक्त (ऋग्वेद ३. ६२) में पृथक्-पृथक् देवताओं को सम्बोधित ऋचाओं के छः त्रिक आते हैं : प्रथम (ऋग्वेद ३. ६२, १-२) इन्द्र-वरुण को, और उसके बाद का (त्रिकः ऋग्वेद ३. ६२, ४-६) वृहस्पति को सम्बोधित है; इसके बाद जमदग्नि (ऋग्वेद ३. ६२, ७-९), सवितृ (ऋग्वेद ३. ६२, १०-१२) और सोम (ऋग्वेद ३. ६२, १३-१५) को सम्बोधित हैं, जब कि अन्तिम (ऋग्वेद ३. ६२, १६-१८) मित्र वरुण को सम्बोधित है । और इस अन्तिम से जमदग्नि ने इन दो ऋत-वृध' देवताओं की स्तुति की ।

^१ मित्रावरुण के लिये यह उपाधि ऋग्वेद ३. ६२, १८ में 'ऋतावृधा' के रूप में आती है ।

चतुर्थ मण्डल

२६-ऋग्वेद ४. १-१५ के देवता ।

देवर्षिपितृपूजार्थं पापाचान्त्राणि यच्छुनः ।

यस्य वै श्येनरूपेण आहरद्वृत्रहा मधु ॥ १२६ ॥

सोऽग्निं तु पञ्चदशभिर् इन्द्रं षोडशभिः परैः ।

ऋपिस्त्वामिति तुष्टाव सूक्तैरेति तु गौतमः ॥ १२७ ॥

जब वामदेव ने देवों, ऋषियों और पितरों की पूजा के लिये कुत्ते की अँतड़ियों को ढकाया था तब श्येन के रूप में वृत्रहन् (इन्द्र) उनके लिये मधु लाये थे, और गौतम के वंशज उस ऋषि ने 'श्वाम्' (ऋग्वेद ४. १-१५) से आरम्भ पन्द्रह सूक्तों द्वारा अग्नि की और 'आ' (ऋग्वेद ४. १६-३२) से आरम्भ बाद के सोलह सूक्तों द्वारा इन्द्र की स्तुति की ।

स भ्रातरमिति त्वासु तिसृष्वग्निर्निपातभाक् ।

वरुणेनाभिसंस्तौति आहुरन्ये निपातिनम् ॥ १२८ ॥

'स भ्रातरम्' (ऋग्वेद ४. १, २) से आरम्भ तीन ऋचाओं (२-४) में अग्नि निपातभाक् है; अन्य लोगों का कथन है कि यहाँ (ऋषि ने) नैपातिक अग्नि की वरुण के साथ स्तुति की है ।

लिङ्गोक्तदैवते सूक्ते एके प्रत्यग्निरेव तु ।

ऋषिर्वांधदिति द्वाभ्यां स्तौति सोमकमेव तु ॥ १२९ ॥

कुछ लोगों का कहना है कि 'प्रत्यग्निः' (ऋग्वेद ४. १३) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ४. १३-१४) लिङ्गोक्तदैवत' हैं । किन्तु 'वांधत्' (ऋग्वेद ४. १५, ७-८) से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा केवल सोमक की ही स्तुति की है ।

'तु० की० सर्वानुक्रमणी : 'लिङ्गोक्तदैवतं त्व एके' ।

२७-ऋग्वेद ४. १८-३० । इन्द्र का जन्म और वामदेव के साथ युद्ध तस्यैव चायुषोऽर्थाय पराभ्यामश्विनौ स्तुतौ ।

अज्ञसा न जनिष्येऽहं ब्रुवाणं गर्भमेव तु ॥ १३० ॥

अन्वशाददितिः पुत्रम् इन्द्रमात्महितैपिणी ।

स जातमात्रो युद्धाय ऋषिमेवाजुहाव तु ॥ १३१ ॥

इसके आयुष्य के लिये बाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद ४. १५, ९-१०) में अश्विनों की स्तुति है । अपने गर्भस्थ-पुत्र, इन्द्र, के यह कहने पर कि 'उचित रूप से जन्म नहीं लूँगा', अपने हित के लिये ही अदिति ने उसे शान्त किया, किन्तु जन्म होते ही उसने (इन्द्र ने) ऋषि को युद्ध के लिये ललकारा

^१ तु० वी० ऋग्वेद ४. १८, २ : 'माहमनो निरया दुग्धैतत्' ।

^२ तु० वी० ऋग्वेद ४. १८, १ : 'मा मारुतमुवा पत्तवे कः' ।

योधयन्वामदेवस्तं कृत्वात्मनि बलं तथा ।

दिनानि दश 'रात्रीश्च विजिग्ये चैनमोजसा ॥१३२॥

जब उसने (इन्द्र ने) उनके (ऋषि के) प्रति बल का प्रयोग किया तब वामदेव ने उससे (इन्द्र से) दस दिन और रात्रियों तक युद्ध करते हुए शक्ति द्वारा उसे पराजित किया ।

स तं क इममित्यस्यां विक्रीणन्नृपिसंसदि ।

स्वयं तेनाभितुष्टाव नकिरिन्द्रेति गौतमः ॥१३३॥

किमाहुतासीति चास्यां मन्युमर्धे पराणुदत् ।

अथास्य रूपवीर्याणि धैर्यकार्याणि तान्यृपिः ॥१३४॥

विविधानि च कर्माणि शशंसादितये तथा ।

अहमित्यात्मसंस्तावस् तृचे स्तुतिरिवास्य हि ॥१३५॥

'क इमम्' (ऋग्वेद ४. २४, १०) ऋचा में गौतम ने उसका ऋषियों की सभा में विक्रय करते हुये इस उद्देश्य से 'नकिर् इन्द्र' (ऋग्वेद ४. ३०, १) द्वारा स्वयं उसकी स्तुति की; और 'किम् आद् उतासि' (ऋग्वेद ४. ३०, ७) में उन्होंने बीच में ही उसके क्रोध को समाप्त कर दिया । तब ऋषि ने उसके (इन्द्र के) रूप, वीरता तथा धीरतापूर्ण कार्यों और विविध कर्मों को अद्विती से बताया । 'अहम्' (ऋग्वेद ४. २६) से आरम्भ तीन ऋचाओं में आत्मस्तुति है : क्योंकि इनमें मानों उसकी (इन्द्र की) स्तुति है ।

^१ अर्थात् ऋषि ने इस प्रकार अपनी स्तुति की मानों वह स्वयं इन्द्र हैं, तु० वी० सर्वानुक्रमणी : 'इन्द्रम् इवात्मानम् ऋषिम् तुष्टावेन्द्रो वाग्मानम्' ।

प्र सु प विभ्यो नवभिर ऋग्भिः श्येनस्य संस्तवः ।

पराभिस्त्वेति पञ्चर्चे सौमेनेन्द्र स्तुतः सह ॥ १३६ ॥

'प्र सु प विभ्यः' (ऋग्वेद ४. २६, ४) से आरम्भ वाद की नौ ऋचाओं (ऋग्वेद ४. २६, ४-७; २७, १-५) में श्येन की स्तुति है । 'त्वा' (ऋग्वेद ४. २८) से आरम्भ पाँच ऋचाओं के सूक्त में सोम के साथ इन्द्र की स्तुति है ।

सोमप्रधानामेतां तु क्रौष्टिकिर्मन्यते स्तुतिम् ।
 दिवश्चिदिति चैतेन तृचेनेन्द्रेण संस्तुताम् ॥१३७॥
 उपसं मध्यमां मेने आचार्यः शाकटायनः ।
 वाममृचि स्तुताश्चात्र भगः पूवेति चार्यमा ॥१३८॥
 करुळतीति पूपोक्तोऽदन्तकः स इति श्रुतेः ।
 अस्माकमुत्तमं सूर्यं स्तौतीत्याहाश्वलायनः ॥१३९॥

क्रौष्टिकि इस स्तुति को प्रमुखतः सोम को सम्बोधित मानते हैं; जब कि आचार्य शाकटायन ने 'दिवश् चिद्' (ऋग्वेद ४. ३०, ६) से आरम्भ तीन ऋचाओं द्वारा इन्द्र के साथ मध्यम उपम् की स्तुति माना है । और 'वामम्' (ऋग्वेद ४. ३०, २४) ऋचाओं में यहाँ भग, पूपन्, और अर्यमा की स्तुति है : पूपन् को (यहाँ) 'करुळतिन्' कहा गया है : एक श्रुति^१ के अनुसार यह 'दन्तविहीन' है । आश्वलायन का कथन है कि 'अस्माकम् उत्तमम्' (ऋग्वेद ४. ३१, १५) सूर्य की स्तुति करता है ।

^१ यह शब्द ऋग्वेद ४. ३०, २४ में आता है, जिस पर यास्क ने निम्न ६. ३०. ३१ में टिप्पणी की है ।

^२ अर्थात् याम्क : निरुक्त ६. ३१. में उद्धृत ज्ञानपथ ब्राह्मण १. ७, ४, ७ ।

२९-विभिन्न देवताओं के वाहनाश्व ।

इन्द्रस्य हरयो ह्यश्वा अग्नेरश्वास्तु रोहितः ।
 सूर्यस्य हरितश्चैव वायोर्नियुत एव च ॥ १४० ॥

इन्द्र के अश्व 'हरि' (भूरे, या बादामी, या पीले) हैं, अग्नि के अश्व 'रोहित' हैं; सूर्य के 'हरित' और वायु के 'नियुत' (बहुसंख्यक) हैं ।^१

^१ यह तथा बाद के दो श्लोक नैषण्डुक १. १५ का निकट अनुसरण करते हैं ।

रासभः सहितोऽश्विभ्याम् अजाः पूष्णश्च वाजिनः ।
 पृपत्योऽश्वास्तु मरुतां गावोऽरुण्यस्तथोपसाम् ॥१४१॥

गर्दभ अश्विनों के साथ सम्बद्ध है और पूष्ण के वाजिन् बकरे हैं, किन्तु मरुतों के अश्व पृपती अश्वियाँ हैं, जब कि उपस् की अरुण गावें ।

सवितुर्वाजिनः श्यावा विश्वरूपा बृहस्पतेः ।
 सहैते देवताभिस्तु स्तूयन्तेऽप्यल्पशोऽन्यथा ॥१४२॥

सकृत् के अथ 'श्याव' (धुँधले) हैं, बृहस्पति का (अथ) विभिन्न रूपों वाला है। इन सब की अपने देवताओं के साथ स्तुति होती है, अन्यथा अत्यन्त कम।

आयुधं वाहनं चापि स्तुतौ यस्येह दृश्यते।

तमेव तु स्तुतं विद्यात् तस्यात्मा बहुधा हि सः ॥१४३॥

जहाँ जिस (देवता) के आयुध और वाहन की स्तुति दृष्टिगत होनी है वहाँ उसकी ही स्तुति माननी चाहिये, क्योंकि वही (देवता) अनेक रूप से उसकी आत्मा होता है।^१

^१ अर्थात् आयुधों या वाहनों में वही अपने को व्यक्त करता है। तु० की० ऊपर १. ७२. ७४।

कनीनका सूक्तशेषो हर्यो स्तुतिरिहोच्यते।

चात्वार्यतश्च विज्ञेयान्य् अप्रगृह्याणि विद्रधे ॥१४४॥

एक सूक्त^१ के 'कनीनका' (ऋग्वेद ४. ३२, २३) से आरम्भ शेषांश (दो ऋचायें : ऋग्वेद ४. ३२, २३-२४) को यहाँ (इन्द्र के)^२ दो 'हरि' (अश्वों) की स्तुति कहा गया है। और इसके बाद^३ के चार शब्दों, (अर्थात्) 'विद्रधे' आदि को, 'अप्रगृह्य'^४ मानना चाहिये।

^१ अर्थात्, वह सूक्त जिसे पहले ही (ऊपर १२७वाँ श्लोक) एक इन्द्र मूक्त कहा जा चुका है, और जिसकी हा यह दोनों अन्तिम ऋचायें हैं।

^२ तु० की० निरुक्त ४ १५. 'अश्वयो सगव', तथा सर्वानुक्रमणी 'अन्त्याभ्याम् इन्द्राशौ स्तुतौ'।

^३ अर्थात् 'कनीनका' (ऋग्वेद ४ ३२, २३) के बाद के शब्द।

^४ अर्थात्, 'विद्रधे' नवे द्रुपदे अर्मके शब्दों को दिवाचक नहीं बरन् एकवचन मत्तमी मानना चाहिये, जैसा कि पदपाठ तथा यास्क (निरुक्त ४ १५) द्वारा उद्धृत शाकपूणि के इस मत से प्रकट होता है. 'वन्ययोर् अधिष्ठानप्रवचनानि सप्तम्या एकवचनानीनि शाकपूणि'।

॥ इति बृहदेवतायां चतुर्थोऽध्यायः ॥

१-ऋग्वेद ४. ३३-५२ के देवता ।

प्रेति पञ्चार्भवं त्रीणि दाधिक्राणि पराण्यतः ।

ऋग्व्यावापृथिव्यौ स्तौति दाधिक्राणां मुखे तु या ॥१॥

‘प्र’ (ऋग्वेद ४. ३३, १) से ऋभुओं को सम्बोधित पाँच सूक्तों (ऋग्वेद ४. ३३-३७) का आरम्भ होता है । इसके बाद तीन सूक्त (ऋग्वेद ४. ३८-४०) दधिका को सम्बोधित हैं; किन्तु दधिका को सम्बोधित सूक्तों की मुख-ऋचा (ऋग्वेद ४. ३८, १) में आकाश और पृथिवी की स्तुति है ।

परौक्षैरमुतो वाग्भिर् नामभिश्च स्तुतास्त्रयः ।

अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च हंसः शुचिपदित्यूचि ॥ २ ॥

फिर, परोक्ष वचनों और नामों द्वारा अग्नि, वायु, सूर्य, इन तीनों की ‘हंसः शुचिपत्’ (ऋग्वेद ४. ४०, ५) ऋचा द्वारा स्तुति की गई है ।

नियुक्ता सूर्यदेवत्या हंस इत्यैतरेयके ।

द्वे त्वैन्द्रावरुणे सूक्ते ततस्त्रीण्याश्विनानि कः ॥ ३ ॥

ऐतरेय (ब्राह्मण) में ‘हंसः’ (ऋग्वेद ४. ४०, ५) में सूर्य को देवता नियुक्त किया गया है ।^१ इसके बाद इन्द्र-वरुण को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद ४. ४१-४२) आते हैं; इसके बाद ‘कः’ (ऋग्वेद ४. ४३, १) से आरम्भ तीन (ऋग्वेद ४. ४३-४५) आश्विनों को सम्बोधित हैं ।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ४. २०, ५ में इस ऋचा को सूर्य से सम्बद्ध किया गया है ।

अग्रं वायो विहीत्येषु वायव्याः सप्त कीर्तिताः ।

नव चैन्द्रवायव्या इन्द्रस्तिस्त्रः शतेन पट् ॥ ४ ॥

‘अग्रम्’ (ऋग्वेद ४. ४६, १), ‘वायो’ (ऋग्वेद ४. ४७, १), और ‘विहि’ (ऋग्वेद ४. ४८, १-५), इन सात ऋचाओं को वायु को सम्बोधित कहा गया है; और नौ ऋचायें इन्द्र-वायु को सम्बोधित हैं, जिनमें से ‘इन्द्रः’ (ऋग्वेद ४. ४७, २-४) से आरम्भ तीन तथा ‘शतेन’ (ऋग्वेद ४. ४६, २-७) से आरम्भ छः ऋचायें आती हैं ।

इदं कथितदेवत्यं यस्तस्तम्भोत्तमो द्रुचः ।

स्तुतिरिन्द्रावृहस्पत्योर् अष्टावेता ऋचः स्मृताः ॥ ५ ॥

'इदम्' (ऋग्वेद ४ ४९), और 'यस् तस्तम्भ' (ऋग्वेद ४ ५०) की अन्तिम दो ऋचायें, इनमें ही उल्लिखित देवताओं को सम्बोधित हैं^१—इन आठ^२ ऋचाओं में इन्द्र बृहस्पति की स्तुति मानी गई है ।

^१ अर्थात् इन्द्र और बृहस्पति ।

^२ अर्थात् ऋग्वेद ४ ४९, २-६ और ५० १० १२ ।

सूक्तं तु तद्दार्हस्पत्यम् इदमित्यौषसे परे ।

पुरोधतुः कर्मशांसा स इन्द्राजोच्यते तृचे ॥ ६ ॥

फिर भी, यह 'सूक्त बृहस्पति को सम्बोधित है, 'इदम्' (ऋग्वेद ४ ५१, १) से आरम्भ दो वाद के सूक्त (ऋग्वेद ४ ५१-५२) उपस् को सम्बोधित हैं । 'स इद् राजा' (ऋग्वेद ४ ५०, ७-९) से आरम्भ तीन ऋचाओं में पुरोधाता के कर्मों की प्रशंसा है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ४ ५० ।

^२ तु० का० ऐतरेय ब्राह्मण ८ २४-२६ ।

२-ऋग्वेद ४. ५३-५८ के देवता

तत्सावित्रे द्वे तु को वैश्वदेवं मही

द्यावापृथिवीयं परं तु यत् ।

क्षेत्रस्येति तिस्रस्तु क्षेत्रपत्याः

शुनं वाहाः शुनदेवी त्वृगुत्तरा ॥ ७ ॥

'तत्' (ऋग्वेद ४. ५३, १) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ४ ५३-५४) सवितृ को सम्बोधित हैं, 'क' (ऋग्वेद ४ ५५) विश्वेदेवों को सम्बोधित है, जबकि इसके बाद आने वाला 'मही' (ऋग्वेद ४ ५६) आकाश और पृथ्वी को सम्बोधित है । किन्तु 'क्षेत्रस्य' (ऋग्वेद ४ ५७) सूक्त में प्रथम तीन ऋचायें क्षेत्रपति को सम्बोधित हैं, जबकि 'शुन वाहा' (ऋग्वेद ४ ५७, ४) से आरम्भ वाद की ऋचा के देवता शुन हैं ।

वायुः शुनः सूर्य एवात्र सीरः

शुनासीरौ वायुसूर्यौ वदन्ति ।

शुनासीरं यास्क इन्द्रं तु मेने

सूर्येन्द्रौ तौ मन्यते शाकपूणिः ॥ ८ ॥

शुन यहाँ वायु हैं, सीर सूर्य हैं क्योंकि उनका कहना है कि शुन और सीर, वायु और सूर्य हैं । फिर भी, यास्क ने शुनासीर को इन्द्र माना है^१,

और शाकपूणि का विचार है कि यह दोनों (शुन और सीर) सूर्य और इन्द्र हैं।^१

^१ यास्क के मन के लिये देखिये निरुक्त ९. ४० ।

^२ इस श्लोक को ऋग्वेद ४. ५७ पर षड्गुरुशिष्य ने उद्धृत किया है ।

शुनासीरौ पञ्चम्यां तु स्तुतौ तौ
द्वे तु सीतायै पष्ठो सप्तमी च ।

शुनं नः फालाः कृपिं स्तौति पादः

शुनं कीनाशाः कृपिजीवान्मनुष्यान् ॥ ९ ॥

अब इन दोनों, शुन और सीर, की पॉचवीं ऋचा (ऋग्वेद ४. ५७, ५) में स्तुति है, जब कि दो, छठवीं और सातवीं, ऋचायें (ऋग्वेद ४. ५७, ६-७) सीता की हैं। 'शुनं नः फालाः' (ऋग्वेद ४. ५७, ८) पाद कृपि की स्तुति करता है; और 'शुनं कीनाशाः' (ऋग्वेद ४. ५७, ८) पाद कृपिजीवी मनुष्यों की।

स्तुतः पादेऽत्र पर्जन्यस्तृतीये
अन्त्यं त्वृपिर्धनकामो जगाद ।

कृपिं वा स्तौति सर्वं हि

सूक्तं समुद्रादित्यग्नेर्मध्यमस्य ॥ १० ॥

पर्जन्य की यहाँ तृतीय पाद (ऋग्वेद ४. ५७, ८) में स्तुति है, जब कि ऋषि ने अन्तिम पाद (ऋग्वेद ४. ५७, ८) को धन की कामना से कहा है। अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण सूक्त कृपि की स्तुति करता है। 'समुद्रात्' (ऋग्वेद ४. ५८) मध्यम अग्नि का है।

आदित्यं वा ब्राह्मणोक्तं प्रदिष्टम्

आग्नेयं वाप्याज्यसूक्तं हि दृष्टम् ।

अपां स्तुतिं वा यदि घृतस्तुतिं

गव्यमेके सौर्यमेतद्वदन्ति ॥ ११ ॥

जैसा कि एक ब्राह्मण में उल्लेख है, इसे या तो आदित्य अथवा अग्नि को भग्योहित कहा गया है; क्योंकि यह एक आज्य-सूक्त प्रतीत होता है^१; अथवा

कुछ लोग इसे जलों की स्तुति करने वाला, अथवा घृत की स्तुति करने वाला, अथवा गायों, अथवा सूर्य को सम्बोधित कहते हैं ।^१

^१ ऐनरेय ब्राह्मण ५. १६, ६ में ऋग्वेद ४. ५८ को सानवें दिन का आज्य दक्ष कहा गया है ।

^२ तु० की० सर्वानुक्रमणी ।

पञ्चम मण्डल

३-ऋग्वेद ५. १-२८ के देवता । व्यरुण और वृश जान की कथा
स्वर्मानुदृष्टं सूर्यस्य अपहृत्य तमोऽत्रयः ।

सप्तविंशतिभिः सूक्तैर् अवोधोत्यग्निमस्तुचन् ॥१२॥

स्वर्मानु द्वारा अदृष्ट किये गये सूर्य के अन्धकार को दूर करके अत्रियों ने 'अवोधि' (ऋग्वेद ५. १, १) से आरम्भ सत्तार्ईस सूक्तों (ऋग्वेद ५. १-२८) से अग्नि की स्तुति की ।^१

^१ ऋग्वेद ५. ५ को आधीसूक्त होने के कारण छोड़ दिया गया है, अतः सत्तार्ईस की संख्या के अन्तर्गत अद्वारईसों सूक्त भी गणित हैं ।

त्रैवृष्णान्त्रसदस्युश्च अश्वमेध ऋणंचयः ।

स्तूयमानाः परीक्ष्याः स्युर् अत्रिष्वेने क्वचित्क्वचित् ॥१३॥

अत्रियों के सूक्तों के विभिन्न स्थलों पर त्रैवृष्ण (व्यरुण), त्रसदस्यु, अश्वमेध, ऋणंचय की भी स्तुति देखी जा सकती है ।

ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो रात्रा त्रैवृष्णो रथमास्थितः ।

संजग्राह्राश्वरश्मोश्च वृशो जानः पुरोहितः ॥१४॥

इक्ष्वाकुवंशी, त्रैवृष्ण के पुत्र, राजा व्यरुण अपने रथ पर जा रहे थे, और जन के पुत्र वृश नामक उनके पुरोहित ने अश्वों की रश्मियों (बल्लार्शों) को अपने हाथ में लिया ।

स ब्राह्मणकुमारस्य रथो गच्छञ्छिरोऽछिनत् ।

एनस्वीत्यब्रवीचैव स राजैनं पुरोहितम् ॥ १५ ॥

चलते समय रथ ने एक ब्राह्मण कुमार के शिर को काट दिया, और तब राजा ने अपने पुरोहित से कहा कि 'तुम हत्यारे हो' ।

सोऽथर्वाङ्गिरसान्मन्त्रान् हृष्ट्वा संजीव्य तं शिशुम् ।

प्रोधात्संत्यज्य राजानम् अन्यदेशं समाश्रितः ॥१६॥

वह (वृश) राजा को अथर्वन् मन्त्रों का दर्शन कराकर और बालक को पुनरुज्जीवित करके क्रोध में उनका परित्याग करके अन्य देश में चला गया ।

हरोऽप्यग्नेर्ननाशास्य तस्यापक्रमणाद्वपेः ।

अग्नौ प्रास्तानि हव्यानि न ह्यपच्यन्त कानिचित् ॥१७॥

अग्नि के चले जाने से उनके (राजा के) अग्नि का ताप नष्ट हो गया, क्योंकि उसमें डाली हुई कोई भी हवि पकती नहीं थी ।

४-व्यरुण की कथा (क्रमशः)

ततः प्रव्यथितो राजा सोऽभिगम्य प्रसाद्य तम् ।

आनीत्वा स वृशं जानं पुनरेव पुरोदधे ॥१८॥

तब अत्यन्त व्यथित होकर राजा वृश जान के पास गये और उन्हें प्रसन्न करके लौटा लाये तथा पुनः अपना पुरोहित बना लिया ।

स प्रसन्नो वृशोऽन्वैच्छद् धरमग्नेर्नृपक्षये ।

अविन्दत पिशाचीं तां जायां तस्य च भूपतेः ॥१९॥

प्रसन्न होकर वृश ने राजा के घर में अग्नि के ताप को हूँदा, और राजा की पत्नी को पिशाची के रूप में पाया ।

निपणः स तथा सार्धम् आसन्त्यां कशिपावपि ।

तामुपामन्त्रयां चक्रे कमेतं त्वमिति त्वृचा ॥२०॥

उसके साथ विस्तरे से युक्त आसन्दी पर बैठकर उसने (वृश ने) उसे (पिशाची को) 'कम् एतं खम्' (ऋग्वेद प. २, २) मन्त्र द्वारा सम्बोधित किया ।

हरः कुमाररूपेण द्रुवंस्तामभ्यभापत ।

विज्योतिषेति चोक्तायां सहसाग्निरुदज्वलत् ॥ २१ ॥

सहमानः समायान्तं प्रकाशं च प्रकाशयन् ।

पिशाचीमदहत्तां स यत्र चोपविवेश सा ॥ २२ ॥

अग्नि के ताप को एक कुमार के रूप में बताते हुये उन्होंने उसे (पिशाची को) सम्बोधित किया । और जब उन्होंने 'वि ज्योतिषा' (ऋग्वेद प. २, ९) का उच्चारण किया तब पास आते हुये को दूर भगाते हुये और प्रकाश को

प्रकाशित करते हुये अग्नि सहसा प्रगट हुये; और पिशाची को, जहाँ वह घैठो थी वहीं, भस्म कर दिया।

५-अन्य कृतियों में ऋग्वेद ५. २, २. ९ के सन्दर्भ।

ऋग्वेद ५. २९. ४० के देवता।

एष एव परामृष्टो भाल्लविद्यात्मणे द्रवृचः।

निदानसंज्ञके ग्रन्थे छन्दोगानामिति श्रुतिः ॥ २३ ॥

इन दो ऋचाओं^१ का भाल्लविनों के ब्राह्मण में उल्लेख है : यह श्रुति-स्थल सामवेदिनों के निदान नामक ग्रन्थ में भी (उद्धृत) है।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ५. २, २. ९।

भवेदेव परामर्शः सूक्तस्यास्य व्यपेक्षया।

भवन्ति बाह्या मन्त्रा हि विधिदृष्टेन चोदिताः ॥ २४ ॥

इनका उल्लेख सम्भरतः इस सूक्त के सन्दर्भ में ही हुआ है, क्योंकि एक विधि में बाह्य मंत्रों को संयुक्त होते हुये देखा गया है।

दृश्यन्ते ब्राह्मणे मन्त्रा एकदेशे प्रदर्शिताः।

जामदग्न्यस्तथैवाग्र्य स्तोकीयाश्चैतरेयके ॥ २५ ॥

ब्राह्मणों के किसी स्थल पर मन्त्र प्रदर्शित दिखाई देते हैं : इसी प्रकार जामदग्नि^१ के जाम्नी मंत्र तथा स्तोत्र^२ से सम्बन्धित मंत्र ऐतरेय में आते हैं।

^१ अर्थात् ऋग्वेद १०. ११० को तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ ६, ३, १, और वाग्तनेपि महिता २९. २५ में उद्धृत किया गया है।

^२ ऋग्वेद १ ७१ और ३. २१ को तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ ६, ७, १ और ऐतरेय ब्राह्मण २. १२, ३. ६ में उद्धृत किया गया है।

आप्रियः सुसमिद्धाय पञ्चमं सूक्तमत्र तु।

एदमृग्वैश्वदेवी वा अन्त्या चैन्द्राग्न्युपोत्तमे ॥ २६ ॥

'सुसमिद्धाय' (ऋग्वेद ५. ५, १) से आरम्भ पाँचवों सूक्त जाम्नी मंत्रों से बना है। 'पद्म' (ऋग्वेद ५. २६, ९) ऋचा वैश्वदेवी के रूप से विश्वदेवी को सम्बोधित है; और अन्तिम से पहले के सूक्त की अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ५. २७, ६) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है।

ऐन्द्राणि द्वादश त्रीति उशाना त्वत्र संस्तुतः।

उशनेति तु पादेन सं ह यद्वामनेन च ॥ २७ ॥

'त्री' (ऋग्वेद ५. २९, १) से आरम्भ बारह सूक्त (ऋग्वेद ५. २९-४०) इन्द्र को सम्बोधित हैं; किन्तु यहाँ 'उशना' (ऋग्वेद ५. २९, ९) तथा 'सं ह यद् वाम्' (ऋग्वेद ५. ३१, ८) से आरम्भ पादों में उशना की स्तुति है।

६-अग्नि की दान-स्तुति ।

इन्द्राकुत्सेति चैतस्यां कुत्सेनेन्द्र स्तुतः सह ।

यत्त्वा सूर्येति चात्रीणां पञ्चर्ये कर्म कीर्त्यते ॥ २८ ॥

और 'इन्द्राकुत्सा' (ऋग्वेद ५. ३१, ९) ऋचा में इन्द्र की कुत्स के साथ स्तुति है; और 'यत्त्वा सूर्य' (ऋग्वेद ५. ४०, ५) से आरम्भ पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद ५. ४०, ५-९) में अग्नियों के कर्मों का कीर्तन है।

अनस्वन्तेति सूक्तेऽस्मिन् आग्नेयेऽत्रिर्ऋषिः स्वयम् ।

दानतुष्टः शशंसैतान् राजर्षीनिति केचन ॥ २९ ॥

'अनस्वन्ता' (ऋग्वेद ५. २७) से आरम्भ अग्नि को सम्बोधित सूक्त में, दान से तुष्ट होकर स्वयं अग्नि ऋषि ने इन राजर्षियों की प्रशंसा की है ऐसा कुछ लोग कहते हैं।

आशीरध्येपणाच्चैभ्यो अग्निं प्रति च दृश्यते ।

अयुतं च गवां त्रीणि शतान्यथ च विंशतिम् ॥ ३० ॥

सौवर्ण शकटं गोभ्यां च्यरुणोऽदान्नपोऽत्रये ।

अश्वमेधः शतं चोक्षणां त्रसदस्युर्धनं बहु ॥ ३१ ॥

यहाँ उनकी प्रार्थना पर उनकी ओर से की गई अग्नि की एक स्तुति भी दिखाई देती है। दस हजार, तीन सौ और बीस गायें, और दो बैलों सहित एक सुवर्ण रथ, राजा च्यरुण ने अग्नि को दिया। अश्वमेध ने सौ बैल, और त्रसदस्यु ने प्रचुर धन दिया।

७-ऋणंचय का वधु को दान । ऋग्वेद ५. ४१-५१ के देवता

राज्ञः प्रति च तत्सूक्तं वभाष इति केचन ।

आत्मा हि नात्मने दद्याद् अग्रहीन्हृपतेर्ऋषिः ॥ ३२ ॥

अन्य लोगों का कहना है कि उन्होंने (अग्नि ने) यह सूक्त राजाओं को सम्बोधित किया, क्योंकि कोई व्यक्ति स्वयं अपने को कुछ नहीं दे सकता, जब कि ऋषि ने राजा से दान ग्रहण किया।

अत्रेः सुतमृपिं वभ्रुम् आत्विज्याय ऋणंचयः ।

सहस्रदक्षिणे सोमे ववे तं सोऽप्ययाजयत् ॥ ३३ ॥

ऋणंचय ने अत्रि के पुत्र वभ्रु को अपने उस सोमयज्ञ के ऋत्विज् के रूप में चुना जिसमें एक सहस्र दक्षिणायें प्रदान की गईं। अतः उन्होंने (वभ्रु ने) उनके (ऋणंचय के) लिये यज्ञ किया।

ददौ च रौशमो राजा सहस्राणि शतानि च ।

तस्मै चत्वारि चत्वारि महावीरं च काश्चनम् ॥ ३४ ॥

और रुशमों^१ के राजा ने उन्हें चार सहस्र, चार सौ गायें^२ और एक सुवर्ण यज्ञीय पात्र-विशेष^३ दिया।

^१ तु० वी० ऋग्वेद ५. ३०, १४. 'ऋणंचये राजानि रुशमानम्'

^२ तु० वी० ऋग्वेद ५. ३०, १२. 'गवा चत्वारि ददन मुदसा ऋणंचयस्य ।'

^३ तु० वी० ऋग्वेद ५. ३०, १५।

प्रवर्ग्येषु महावीराः सौवर्णास्तस्य चाभवन् ।

प्रतिगृह्य ऋषिर्गच्छन् मध्यमेनाग्निना पथि ॥ ३५ ॥

पृष्ट इन्द्रेण चाचरुयौ भद्रं चतसृभिश्च तत् ।

को नु वां वैश्वदेवानि एकादश पराणयतः ॥ ३६ ॥

और उन्होंने प्रवर्ग्य के लिये सुवर्ण यज्ञपात्रों को प्राप्त किया। इन्हें प्राप्त करके जाते हुये मार्ग में ऋषि से मध्यम अग्नि तथा इन्द्र ने प्रश्न किया, और उन्होंने इन सयका 'भद्रम्' (ऋग्वेद ५. ३०, १२) से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ५. ३०, १२-१५) द्वारा वर्णन किया।

इसके बाद 'को नु वाम्' (ऋग्वेद ५. ४१, १) से आरम्भ ग्यारह सूक्त (ऋग्वेद ५. ४१-५१) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं।

८-ऋग्वेद ५. ४१-४३ का विस्तृत वर्णन।

मारुतानि दश प्रेति इच्छाभीत्यृचि तु स्तुता ।

उदित्यृचि तृतीयायां सविता शानकोऽद्रवीत् ॥ ३७ ॥

'प्र' (ऋग्वेद ५. ५२, १) से आरम्भ दस सूक्त (ऋग्वेद ५. ५२-६१) मरुतों को समर्पित हैं। फिर भी, 'अभि' (ऋग्वेद ५. ४१, १९) से आरम्भ ऋचा में इच्छा की स्तुति है। 'उत्' (ऋग्वेद ५. ४२, ३) में गविवृ की स्तुति है, ऐसा शानक ने कहा है।

उपेति बार्हस्पत्यस्तु तृचो मारुत्यृगुत्तरा ।

तसु घृहीति रौद्री तु प्र सुष्टुतिरिति त्वृचि ॥ ३८ ॥

शौनकादिभिराचार्यैर् देवता बहुधेरिता ।

इळस्पतिं शाकपूणिः पर्जन्याग्नी तु गालवः ॥ ३९ ॥

यास्कस्तु पूषणं मेने स्तुतमिन्द्रं तु शौनकः ।

वैश्वानरं भागुरिस्तु मारुत्येष समाश्विनी ॥ ४० ॥

‘उप’ (ऋग्वेद प. ४२, ७) से आरम्भ तीन ऋचार्ये (ऋग्वेद प. ४२, ७-९) बृहस्पति को सम्बोधित हैं; याद की ऋचा (ऋग्वेद प. ४२, १०) मरुतों को सम्बोधित है; ‘तम् उ घृहि’ (ऋग्वेद प. ४२, ११) रुद्र को सम्बोधित है । किन्तु ‘प्र सुष्टुतिः’ (ऋग्वेद प. ४२, १४) ऋचा में शौनक तथा अन्य आचार्यों द्वारा देवता को विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है । शाकपूणि ने इळस्पति, गालव ने पर्जन्य-अग्नि, यास्क ने पूषन्, शौनक ने इन्द्र और भागुरि ने वैश्वानर की स्तुति माना है । ‘एषः’ (ऋग्वेद प. ४२, १५) मरुतों को सम्बोधित है; ‘सम्’ (ऋग्वेद प. ४२, १८) अश्विनों को सम्बोधित है ।

वायव्याध्वर्यवः सौमी दशेत्यैन्द्री परा तु या ।

अग्निं धर्म पराञ्जन्ति अश्विनौ स्तौत्यृगच्छ च ॥ ४१ ॥

‘अश्वर्युवः’ (ऋग्वेद प. ४३, ३) वायु को सम्बोधित है; ‘दश’ (ऋग्वेद प. ४३, ४) सोम को सम्बोधित है, जब कि जो इसके बाद आता है (ऋग्वेद प. ४३, ५) इन्द्र को सम्बोधित है ।

इसके बाद (ऋग्वेद प. ४३, ६) और ‘अञ्जन्ति’ (ऋग्वेद प. ४३, ७) क्रमशः अग्नि और धर्म की स्तुति करते हैं; और ‘अक्ष’ (ऋग्वेद प. ४३, ८) ऋचा अश्विनों की स्तुति करती है ।

९-ऋग्वेद प. ४३ (क्रमशः), ४४-४५ के देवता ।

प्रेति वायुं पूषणं च अर्धर्चेऽग्निरिहोच्यते ।

प्रथमेऽथ द्वितीये च स्तुता एति दिवोकसः ॥ ४२ ॥

‘प्र’ (ऋग्वेद प. ४३, ९) वायु और पूषन् की स्तुति करता है । ‘त्रा’ (ऋग्वेद प. ४३, १०) से आरम्भ अर्ध-ऋचा में यहाँ अग्नि की और ऋचा के द्वितीयार्ध में दिवोकसों की स्तुति है ।

आ वाचं मध्यमां स्तौति ततोऽन्या तु बृहस्पतिम् ।

ज्यायांसमिति चादित्यं प्र दो वायुरिहोच्यते ॥ ४३ ॥

‘आ’ (ऋग्वेद ५. ४३, ११) मध्यम वाच् की स्तुति करता है और उसके बाद (ऋग्वेद ५. ४३, १२) में बृहस्पति की स्तुति है ।

‘ज्यायांसम्’ (ऋग्वेद ५. ४४, ८) आदित्य की स्तुति करता है । वायु की यहाँ ‘प्र व.’ (ऋग्वेद ५. ४४, ४) में स्तुति है ।

तं प्रलथेति सौमी वा दैव्यैन्द्री वा प्रजापतेः ।

परोक्षचैश्वदेवं तद् आह कौपीतकिः स्वयम् ॥ ४४ ॥

‘तं प्रलथा’ (ऋग्वेद ५. ४४, १) या तो सोम अथवा देवों को, अथवा इन्द्र को सम्बोधित है, अथवा यह प्रजापति का है । स्वयं कौपीतकि’ ने इस सूक्त को परोक्ष रूप से विश्वदेवों को सम्बोधित बताया है ।

^१ अर्थात् कौपीतकि मात्स्य २४. ९ ‘प्रजापत्यान्व अनिहन्तानि परोक्ष वैश्वदेवान् अवपीयन्ते ।’

तेषु तृतीयमित्युक्तं देवान्हुव इदं परम् ।

देवानां पत्नीरिति तु देवपत्न्यो ब्रूचे स्तुताः ॥ ४५ ॥

इनमें इसे तृतीय कहा गया है : इसके बाद ‘देवान् हुवे’ (ऋग्वेद १०. ६६) से आरम्भ सूक्त आता है ।

‘देवानां पत्नीः’ (ऋग्वेद ५. ४७, ७-८) से आरम्भ दो ऋचाओं में देव-पत्नियों की स्तुति है ।

१०-ऋग्वेद ४. ५१-६० के देवता ।

अयं चतुर्णामिति चेन्द्रवायू त्रिभि

स्तुतौ वायवा याहि वायुम् ।

रथं त्वृचा रोदसी स्तूयनेऽत्र

यस्या स्तुता मरुतो रुद्रपत्न्याः ॥ ४६ ॥

‘अयम्’ (ऋग्वेद ५. ५१, ४) से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ५. ५१, ४-७) में से तीन द्वारा इन्द्र-वायु की स्तुति की गई है, जब कि ‘वायव् आ याहि’ (ऋग्वेद ५. ५१, ५) केवल वायु की स्तुति करना है । ‘रथम्’ (ऋग्वेद ५. ५६, ८) ऋचा द्वारा उस रोदसी की स्तुति है जिसके पति मरुतों—यह रुद्र की भी पत्नी है—की इस सम्पूर्ण सूक्त में स्तुति है ।

आ रुद्रास इति त्वस्यां रुद्राणां संस्तुतो गणः ।

मरुतां तु गणस्यैतन् नाम रुद्रा इति स्मृताः ॥ ४७ ॥

किन्तु 'आ रुद्रासः' (ऋग्वेद ५. ५७, १) ऋचा में रुद्रों के गणों की स्तुति है । मरुतों के गणों का यही नाम है, जिन्हें रुद्र कहा गया है ।

असावन्निरयं चोभाक् अग्नी पार्थिवमध्यमौ ।

अग्ने मरुद्भिरित्यस्यां मरुद्भिः सह संस्तुतौ ॥ ४८ ॥

(अग्ने मरुद्भिः' (ऋग्वेद ५. ६०, ८) ऋचा में उस तथा इस, अर्थात् मध्यम और पार्थिव, दोनों अग्निव्यों की मरुतों के साथ स्तुति है ।

मध्यमा वाक् स्त्रियः सर्वाः पुमान् सर्वश्च मध्यमः ।

गणाश्च सर्वे मरुतो गुणभेदात्पृथक् पृथक् ॥ ४९ ॥

अपने-अपने पृथक् गुण-भेद के आधार पर, वाक् मध्यम हो सकती है, समस्त स्त्रियाँ मध्यम हो सकती हैं, और समस्त पुरुष मध्यम हो सकते हैं तथा साथ ही साथ, समस्त गण भी जैसे मरुतादि ।

११-श्यावाश्च की कथा ।

रांजर्षिरभवद्दाभ्यो रथवीतिरिति श्रुतः ।

स यक्ष्यमाणो राजात्रिम् अभिगम्य प्रसाद्य च ॥ ५० ॥

रथवीति दार्भ्य नाम का एक प्रसिद्ध राजर्षि हुआ है, ऐसा सुनते हैं । यज्ञ की इच्छा से वह राजा अत्रि के पास गया और उनको प्रसन्न किया ।

आत्मानं कार्यमर्थं च ख्यापयन्प्राञ्जलि स्थितः ।

अवृणोतर्षिमात्रेयम् आर्त्विज्यायार्चनानसम् ॥ ५१ ॥

अपना तथा अपने कार्य का प्रयोजन बताकर जब वह हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तब उसने अपने ऋत्विज के रूप में अत्रि-पुत्र^१ अर्चनानस को बुना ।

१ ऋग्वेद ५. ६१ पर सावण ने इसे 'अत्रि-कुलनन्दन' कहा है ।

स सपुत्रोऽभ्यगच्छत् राजानं यज्ञसिद्धये ।

श्यावाश्वश्चात्रिपुत्रस्य पुत्रः खल्वर्चनानसः ॥ ५२ ॥

साङ्गोपाङ्गान्सर्ववेदान् यः पित्राध्यापितो मुदा ।

अर्चनानाः सपुत्रोऽथ गत्वा नृपमयांजयत् ॥ ५३ ॥

अपने पुत्र को साथ लेकर वह यज्ञ की सिद्धि के लिये राणा के पास गये । अत्रि के पुत्र अर्चनानस के पुत्र का नाम श्यावाश्व था, जिसे उसके पिता ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जों और उपाजों सहित वेदों की शिक्षा दी थी । तब अपने पुत्र के साथ जाकर अर्चनानस ने राणा का यज्ञ पूर्ण किया ।

यज्ञे च विततेऽपश्यद् राजपुत्रीं यशस्विनीम् ।

रूपामे राजपुत्री स्याद् इति तस्य मनोऽभवत् ॥ ५४ ॥

जब यज्ञ चल रहा था तब उसने राजा की यशस्विनी पुत्री को देखा । उसके मन में यह विचार आया कि वह राजपुत्री उमकी पुत्रवधू बन सकती है ।

श्यावाश्वस्य च तस्यां वै सक्तमामोत्तदा मनः ।

संयुज्यस्व मया राजन् इति याज्यं च सोऽब्रवीत् ॥

तब श्यावाश्व का मन भी उस पर आमल्ल हो गया और उसने यज्ञक से कहा 'हे राजन् ! तुम मेरे साथ सम्बद्ध हो जा-ओ ।'

१२-श्यावाश्व की कथा (क्रमशः)

श्यावाश्वाय सुतां दित्सुर् महिषीं स्वां नृपोऽब्रवीत् ।

किं ते मतमहं कन्यां श्यावाश्वाय ददामि हि ॥ ५६ ॥

श्यावाश्व को अपनी पुत्री देने की इच्छा से राजा ने अपनी महारानी से कहा 'तुम्हारा क्या मत है ? मैं कन्या को श्यावाश्व को देना चाहता हूँ ।

अत्रिपुत्रोऽदुर्बलो हि जामाता त्वावयोरिति ।

राजानमब्रवीत्सापि नृपर्विकुलजा ह्यहम् ॥५७॥

नानृपिर्नो तु जामाता नैप मन्त्रान् हि दृष्टवान् ।

ऋषये दीयतां कन्या वेदस्याम्बा भवेत्तथा ।

ऋपिर्मन्त्रदृशं वेदपितरं मन्यते यतः ॥५८॥

'क्योंकि अत्रि पुत्र हमलों के लिये एक हीन जामाता नहीं होगा ।' तब उसने (रानी ने) राजा से अपने लिये कहा कि 'मैं राजर्षियों के कुल में उत्पन्न हुई थी, जो ऋषि नहीं है उसे हमारा जामाता नहीं होना चाहिये, इस युवक ने मन्त्रों का दर्शन नहीं किया है । कन्या किसी ऋषि को ही दी जाय इस प्रकार वह वेद माता होगी, क्योंकि एक ऋषि ने मन्त्र द्रष्टा को वेद का पिता माना है ।'

प्रत्याचष्टे स तं राजा सह संमन्त्रय भार्यया ।

अनृपिनैव जामाता कश्चिद्भवितुमर्हति ॥५९॥

अपनी पत्नी के साथ परामर्श करने के बाद उसे (यह कहते हुये) अस्वीकृत कर दिया कि 'जो ऋषि नहीं है वह इसारा जामाता होने के योग्य नहीं है ।'

प्रत्याख्यात ऋपिस्तेन वृत्ते यज्ञे न्यवर्तत ।

श्यावाश्वस्य तु कन्याया मनो नैव न्यवर्तत ॥६०॥

उसके (राजा के) द्वारा अस्वीकृत ऋषि यज्ञ समाप्त होने पर लौट आये; किन्तु श्यावाश्व का हृदय कन्या के पास से नहीं लौटा ।

ततस्तौ तु निवर्तताम् उभावेवाभिजग्मतुः ।

शशीयसीं तरन्तं च पुरुमीळहं च पार्थिवम् ॥६१॥

इस प्रकार दोनों लौटे; यह दोनों शशीयसी और तरन्त, और राजा पुरुमीळह से मिले ।

तरन्तपुरुमीळहौ तु राजानौ वैददश्व्यूषी ।

ताभ्यां तौ चक्रतुः पूजाम् ऋपिभ्यां नृपती स्वयम् ॥

यह दोनों राजा, तरन्त तथा पुरुमीळह, ऋषि तथा विददश्व के पुत्र थे । इन दोनों राजाओं ने स्वयं भी उन दोनों ऋषियों का पूजन किया ।

ऋषिपुत्रं महिष्याश्च दर्शयामास तं नृपः ।

तरन्तानुमता चैव प्रादाद्बहुविधं वसु ॥६३॥

अजाविकं गवाश्च च श्यावाश्वाय शशीयसी ।

अत्रिं याज्यार्चिलौ गत्वा पितापुत्रौ स्वमाश्रमम् ॥६४॥

और राजा (तरन्त) ने ऋषि-पुत्र का अपनी महारानी को दर्शन कराया; और तरन्त की अनुमति से उस (महारानी) शशीयसी ने प्रचुर धन, भेड़-बकरियों, गायें और अश्व श्यावाश्व को प्रदान किया । इस प्रकार याजकों द्वारा सम्मानित होकर पिता और पुत्र अपने अत्रि-आश्रम चले गये ।

१३-श्यावाश्व की कथा (कर्मशः)

अभ्यवाद्यतामत्रिं महर्षिं दीप्ततेजसम् ।

श्यावाश्वस्य मनस्यासीन् मन्त्रस्यादर्शनादहम् ॥६५॥

न लब्धवानहं कन्यां हन्त सर्वाङ्गशोभनाम् ।
अप्यहं मन्त्रदर्शी स्यां भवेद्धर्षो महान्मम ॥६६॥

और उन्होंने प्रदीप्त तेजवाले महर्षि अत्रि का अभिजादन किया । किन्तु श्यावाश्व ने विचार किया कि 'यत हमने किसी मन्त्र का दशन नहीं किया, अतः मैं सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या को न प्राप्त कर सका । यदि मैं मन्त्र द्रष्टा हाऊँ तो मुझे महान् हर्ष होगा ।'

इत्यरण्ये चिन्तयतः प्रादुरासीन्मरुद्गणः ।
ददर्श संस्थितान्पार्श्वे तुल्यरूपानिवात्मनः ॥६७॥
समानवयसश्चैव मरुतो रुक्मवक्षसः ।
तांस्तुल्यवयसो हृष्ट्वा देवान्पुरुषविग्रहान् ॥६८॥
श्यावाश्वो विस्मितोऽपृच्छत के ष्टेति मरुतस्तदा ।
ततस्तु मरुतो देवान् रुद्रस्तूनवुध्यत ॥६९॥

जब उसने वन में इस प्रकार चिन्तन किया तब उसके सम्मुख मरुद्गण प्रकट हुये ।

उसने अपने पार्श्व में अपने ही समान रूपवाले रुक्म वक्ष मरुतों को देखा । पुरुषरूपी तथा वय में समान देवों को देख कर विस्मित श्यावाश्व ने मरुतों से पूछा 'के ष्ट' (ऋग्वेद ५. ६१, १) । फिर भी, तब तक वह यह जान गया कि यह रुद्र के पुत्र दिव्य मरुद्गण हैं ।

१४-श्यावाश्व की कथा (क्रमशः)

य ईं वहन्त इत्याभिर् बुद्ध्वा तुष्टाव तांस्तथा ।
अतिक्रमं हि तं मेने ऋपिर्विपुलमात्मनः ॥ ७० ॥
यन्न हृष्ट्वैव तुष्टाव यच्च के ष्टेति पृष्टवान् ।
स्तुता स्तुत्या तथा प्रीता गच्छन्तः पृश्निमातरः ॥७१॥
अवमुच्य स्ववक्षोभ्यो रुक्मं तस्मै तदा ददुः ।
मरुत्सु तु प्रयातेषु श्यावाश्वः सुमहायशाः ॥ ७२ ॥

इसे देख कर उसने 'य ईं वहन्ते' (ऋग्वेद ५. ६१, ११) मन्त्र द्वारा उनकी स्तुति की । ऋषि ने यह विचार किया कि मरुतों को देखते ही उनकी स्तुति न करके यह पूछने से कि 'आप लोग कौन हैं', उसने मर्यादा का उल्लंघन किया

है। स्तुति की जाने पर और उन स्तुतियों से प्रसन्न हो कर पृथिन के पुत्र (मरुद्गण) जब चलने लगे तब उन्होंने अपने वज्र से स्वर्ण उतार कर उसे (ऋषिको) दे दिया। जब मरुद्गण वहाँ से चले गये तब महायशस्वी श्यावाश्व,

रथवीतेर्दुहितरम् अगच्छन्मनसा तदा ।
 स सद्य ऋषिरात्मानं प्रवक्ष्यन् रथवीतये ॥ ७३ ॥
 एतं मे स्तोममित्याभ्यां दौत्ये रात्रिं न्ययोजयत् ।
 रथवीतिमपश्यन्तीं संप्रेक्ष्यार्पेण चक्षुषा ॥ ७४ ॥
 रम्यं हिमवतः पृष्ठे एष क्षेतीति चाब्रवीत् ।
 ऋपेर्नियोगमाज्ञाय देव्या रात्र्या प्रचोदितः ॥ ७५ ॥
 आदाय कन्यां तां दार्भ्यं उपेयायार्चनानसम् ।
 पादौ तस्योपसंगृह्य स्थित्वा प्रहः कृताञ्जलिः ॥ ७६ ॥
 रथवीतिरहं दार्भ्यं इति नाम शशंस च ।
 मया संगतिमिच्छन्तं त्वां प्रत्याचक्षि यत्पुरा ॥ ७७ ॥
 तत्क्षमस्व नमस्तेऽस्तु मा च मे भगवन्क्रुधः ।
 ऋपेः पुत्रः स्वयमृषिः पितासि भगवन्नृपेः ॥ ७८ ॥

विचारों में रथवीति की पुत्री के पास पहुँच गये। तत्काल ही ऋषि हुये उन्होंने रथवीति को अपने सम्बन्ध में बताने की इच्छा से 'एतं मे स्तोम' (ऋग्वेद ६. ६१, १७) से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ६. ६१, १७-१८) द्वारा रात्रि को दूत-कार्य के लिये नियुक्त किया; और रथवीति को न देखने वाली उसे (रात्रि को) आर्पण नेत्रों से देखकर उन्होंने 'एष क्षेति' (ऋग्वेद ५. ६१, १९) द्वारा कहा कि वह हिमवत के रम्य पृष्ठ पर रहते हैं। ऋषि की आज्ञा को मानकर रात्रि द्वारा प्रेरित दर्भ के पुत्र कन्या को साथ लेकर अर्चनानस के पास गये और उनका चरण पकड़ने के बाद करवद्ध झुककर यह कहते हुये उन्होंने अपना नाम बताया, "मैं दर्भ का पुत्र रथवीति हूँ; मेरे साथ सम्बन्ध करने की आपकी इच्छा को जो मैंने अस्वीकृत किया था उसके लिये मुझे क्षमा करें। हे भगवान्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आप मुझसे क्रुद्ध न हों। आप ऋषि के पुत्र हैं, स्वयं भी ऋषि हैं; और हे भगवन्! आप ऋषि के पिता हैं।

१५-श्यावाश्व की कथा (समाप्त)

हन्त प्रतिगृहाणंमां रुपामित्येवमब्रवीत् ।

पाद्यार्घ्यमधुपर्केश्च पूजयित्वा स्वयं नृपः ॥ ७९ ॥

शुक्लमश्वशतं दत्त्वा अनुजज्ञे गृहान्प्रति ।

शशीयसीं तरन्तं च पुरुमीळहं च पार्थिवम् ॥ ८० ॥

पद्भिः सनदिति स्तुत्वा जगामपिरपि क्षयम् ।

ऋतेन मैत्रावरुणान्य् एकादश पराणि तु ॥ ८१ ॥

आइये इत्से (कन्या को) पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार करिनेये ।" राजा ने ऐसा कहा और स्वयं ही पाथ, अर्घ्य, और मधुपर्क द्वारा उमका पूजन किया, साथ ही उन्हें एक सौ शुक्ल अश्व प्रदान करके घर जाने की आज्ञा दी । और ऋषि ने भी 'मनत्' (ऋग्वेद ५. ६१, ५) से आरम्भ छे ऋचाओं (ऋग्वेद ५. ६१, ५-१०) द्वारा शशीयसी, और तरन्तं, और राजा पुरुमीळह की स्तुति की और अपने घर गये ।

अब 'ऋतेन' (ऋग्वेद ५. ६२) से आरम्भ ग्यारह सूक्त (ऋग्वेद ५. ६२-७२) मित्र वरुण को सम्बोधित हैं ।

१६-ऋग्वेद ५. ७३-७८ । सप्तर्षि की कथा ।

पळाश्विनानि गर्भार्थं पञ्चर्षीपनिपत्स्तुतिः ।

सप्त कृत्वापराधान्वै विफले दारसंग्रहे ॥ ८२ ॥

ऋषिः कृतोऽश्वमेधेन भारतेनेति वै श्रुतिः ।

तमष्टमेऽपराधे तु वृश्नद्रोण्यां स पार्थिवः ॥ ८३ ॥

ऋषीसे ह विनिक्षिप्य स्क्रन्नं रात्रौ न्यधारयत् ।

सोऽश्विनायिति सूक्तेन तुष्टावर्षिः शुभस्पतो ॥ ८४ ॥

ए सूक्त (ऋग्वेद ५. ७३-७८) ऋषियों को सम्बोधित हैं । यहाँ पंच गर्भार्थक ऋचाओं की एक उपनिषद स्तुति है (ऋग्वेद ५. ७८, ५-९) ।

एक ऐसी धृति है कि सात बार विफल हो जाने के बाद भी भारतवशी राजा अश्वमेध ने ऋषि की पुन नियुक्त किया, क्योंकि उनका वैवाहिक जीवन व विहीन था । फिर भी, आठवीं बार विफल हो जाने पर राजा ने उसे पृथङ्गो में रख एक रात में फेंक कर वहाँ पड़ा रहने दिया जहाँ वह ररि

के समय पढा रहा। तब उस ऋषि ने 'अश्विनौ' (ऋग्वेद ५. ७८) सूक्त द्वारा शुभस्पती (प्रकाश के अधिपति) की स्तुति की।

तौ तं तस्मात्समुद्भूत्य चक्रतुः सफलं पुनः ।

तृचः स्वस्यैव गर्भार्थं स्वपतस्तस्य गर्भवत् ॥८५॥

यथा वात इति ज्ञेये त्वश्विभ्यामितरे ऋचौ ।

स्रवतामपि गर्भाणां हृष्टं तदनुमन्त्रणम् ॥८६॥

उसे गर्त से ऊपर उठाते हुये उन्होंने (मरुतों ने) पुनः सफल कर दिया। 'यथा वातः' (ऋग्वेद ५. ७८; ७) से आरम्भ तीन ऋचाओं (७-९) से उसके लिये गर्भ का प्रयोजन है जो गर्भवत् सो गया। किन्तु अन्य दो ऋचाओं (ऋग्वेद ५. ७८, ५-६) को अश्विनों के लिये जानना चाहिये।

इसे, बाहर निकलते हुये गर्भों के लिये आमन्त्रण-स्तुति भी कहा गया है!

१७-ऋग्वेद ५. ७९-८७ के देवता। खिल

भाववृत्तं तु तद्वत्स्यात् तथारूपं हि दृश्यते ।

जरायुगर्भशब्दाभ्याम् एतद्रूपं हि दृश्यते ॥८७॥

किन्तु इसे, इसी प्रकार, भाववृत्त से सम्बद्ध कहा जा सकता है, क्योंकि इसका ऐसा रूप भी दृष्टिगत होता है : 'जरायु' और 'गर्भ' शब्दों से इसका ऐसा ही रूप स्पष्ट होता है।

^१ यह ऋग्वेद ५. ५८, ८ में आता है।

^२ यह ऋग्वेद ५. ७८, ७ में आता है।

महे उपस्ये सावित्रे युज्जतेऽद्येति वै स्तुतः ।

पर्जन्यो वळिति त्वस्मिन् पृथिवी मध्यमा स्तुता ॥८८॥

'महे' (ऋग्वेद ५. ७९, १) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ५. ७९-८०) उपसु को सम्बोधित हैं; और 'युज्जते' (ऋग्वेद ५. ८१; १) से आरम्भ दो (ऋग्वेद ५. ८१-८२) सवितु को सम्बोधित हैं। 'अद्य' (ऋग्वेद ५. ८१) में पर्जन्य की स्तुति है; किन्तु 'वट्' (ऋग्वेद ५. ८४) में मध्यम पृथ्वी की स्तुति है।

^१ निरुक्त ११. ३७ (ऋग्वेद ५. ८४, १ पर) पृथिवी को एक मध्यम स्थानीय देवी बताया है। देविये नैषण्डक ५. ५ भी।

अथा नो देव सवितर् इयं दुःस्वप्ननाशनी ।

चारुणं तु प्र सम्राजे इन्द्राग्न्येन्द्राग्नमुत्तरम् ॥ ८९ ॥

‘अथा सो देव सवित’ (ऋग्वेद ५ ८२, ४) शब्दा दुःस्रम निनाशिनी है।

‘प्र सत्राजे’ (ऋग्वेद ५ ८५) वरुण को सम्बोधित है। इसके बाद का ‘इन्द्राग्नी’ (ऋग्वेद ५ ८६) सूक्त इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है।

विष्णुन्यङ्गं परं प्रेति माहृतं सूक्तमुत्तमम् ।

एवयामरुदाख्यातं यौर्नेन्द्रे प्रतिपूर्वरुम् ॥९०॥

इसके बाद, इस मण्डल का अन्तिम ‘प्र’ (ऋग्वेद ५ ८७) सूक्त मरुतों को सम्बोधित है, जब कि इसमें विष्णु का भी नैपातिक उल्लेख है। इसे ‘यौर् न’ (ऋग्वेद ६ २०) से आरम्भ शब्द सूक्त का प्रतिपूरक होने के कारण ‘एवयामरुत्’ कहा गया है।

श्रीसूक्तमाशीर्वादस्तु श्रीपुत्राणां पराणि पट् ।

तत्स्याद्वालक्ष्म्यपनुदम् अग्निस्तत्र निपातभाक् ॥९१॥

किन्तु श्रीसूक्त एक आशीर्वाद है। इसके बाद के छ, श्री जीर पुत्रों के साथ सम्बद्ध है। अथवा इस सूक्त का प्रयोजन दुर्भाग्य को दूर भगाना है। इसमें अग्नि निपातभाक् है।

१८-प्रजायत् और जीवपुत्र के खिल। मन्त्रों का व्यवहार

प्रजायजीवपुत्रौ वा गर्भकर्मणि संस्तुतौ ।

नानारूपा पयस्विन्यः संस्रवन्तीति संस्तुताः ॥९२॥

अथवा प्रजायत् और जीवपुत्र के दो सूक्तों का गर्भकर्म में सम्मिलित स्तुति के रूप में व्यवहार किया जा सकता है। ‘स संस्रवन्ति’ सूक्त में विभिन्न प्रकार की पयस्विनियों की स्तुति की गई है।

‘एत खिल वा पौच ऋचाये अथर्ववेद २ २६, १-५ में आती है।

आशीर्वादिषु संज्ञापु कर्मसंस्थासु देवता ।

निपातभाक् लिङ्गवाक्यात् परीक्षेतेह मन्त्रवित् ॥९३॥

आशीर्वादों में, संज्ञाओं में, कर्मकाण्डों में, किसी देवता का नैपातिक उल्लेख होता है। मन्त्रप्रेता को यहाँ लिङ्ग-वाक्य की परीक्षा कर लेनी चाहिये।

मन्त्रप्रयोगमन्त्रयोः प्रयोगो बलवत्तरः ।

विधेस्तयोः परीक्षा स्यान् मन्त्राः स्युरभिधायकाः ॥

मन्त्रों और मन्त्रों के प्रयोग में प्रयोग अधिक बलवान होता है। इन दोनों की विधि की परीक्षा कर लेनी चाहिये। मन्त्रों को केवल अभिधायक ही मानना चाहिये।

^१ अर्थात् इनमें केवल देवताओं के सम्बन्ध में उक्तियों मात्र होती हैं। ब्राह्मणों तथा सूक्तों की भाँति यह अपने विनियोग के सम्बन्ध में किसी विधि का उल्लेख नहीं करते।

तस्मात्तेन विसंवादो मन्त्राणां तद्गतानि तु ।

गुणाभिधायकानि स्युः संविज्ञानपदानि तु ॥ ९५ ॥

अतः मन्त्र और उसके प्रयोग में असहमति हो सकती है। किन्तु उनमें आनेवाले सामान्य रूप से अर्थ-विशेष के बोधक पद किसी गुण^१ के परिचायक हो सकते हैं।

^१ उदाहरण के लिए किसी मन्त्र में जातवेदस् को अग्नि के अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है, जब कि किसी संस्कार में इसका विशिष्ट आशय ही प्रयुक्त हो सकता है। तु० की० निरुक्त ७. १३ : 'यत् तु संविज्ञान-भूतं स्वात् प्राधान्यं स्तुति ।'

मन्त्रेषु गुणभूतेषु प्रधानेषु च कर्मसु ।

प्रधानगुणभूताः स्युर् देवता इति गम्यते ॥ ९६ ॥

मंत्र के गौण और कर्म के प्रधान होने पर देवता भी गौण अथवा प्रधान हो सकते हैं, ऐसा जानना चाहिये।

१९-भृगु, अङ्गिरस्, और अत्रि के जन्म की कथा

त्रिसांवत्सरिकं सत्त्रं प्रजाकामः प्रजापतिः ।

आहरत्सहितः साध्यैर् विश्वैर्देवैः सहेति च ॥ ९७ ॥

ऐसा कहा गया है कि प्रजाकाम की इच्छा से प्रजापति ने साध्यों और विश्वदेवों के साथ तीन वर्ष का यज्ञ-सत्र किया है।

तत्र वाग्दीक्षणीयायाम् आजगाम शरोरिणी ।

तां दृष्ट्वा युगपत्तत्र कस्याथ वरुणस्य च ॥ ९८ ॥

शुकं चस्कन्द तद्वायुर् अग्नौ प्रास्यद्यदृच्छया ।

ततोऽर्चिभ्यो मृगुर्जज्ञे अङ्गारेष्वङ्गिरा ऋषिः ॥ ९९ ॥

उस समय दीक्षा के अवसर पर वाच् सशरीर वहाँ आई। उसे वहाँ देखकर एक साथ ही 'क' (प्रजापति) और वरुण का शुक स्खलित हो गया। उनकी

दृष्टा से वायु ने उसे (शुक्र को) अग्नि में छोड़ दिया । तब ज्वालाओं से भृगु उत्पन्न हुये और अङ्गारों^१ से ऋषि अङ्गिरस् ।

^१ कु० को० निरुक्त ३. १७ और ऐतरेय ब्राह्मण ४. २४, १ ।

प्रजापतिं सुतौ दृष्ट्वा दृष्ट्वा वागभ्यभापत ।

आभ्यामृषिस्तृतीयोऽपि भवेदत्रैव मे सुतः ॥ १०० ॥

दो पुत्रों को देखकर और स्वयं भी दृष्ट होकर वायु ने प्रजापति से कहा 'इन दो के अतिरिक्त मुझे ऋषि के रूप में यही एक तृतीय पुत्र भी उत्पन्न हो ।'

प्रजापतिस्तथेत्युक्तः प्रत्यभापत भारतोम् ।

ऋषिरत्रिस्ततो जज्ञे सूर्यानलसमद्युतिः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार सम्बोधित होने पर प्रजापति ने भारती से कहा 'पिता ही होगा' । तब सूर्य और अग्नि के समान द्युतिवाले अत्रि ऋषि उत्पन्न हुये ।

षष्ठ मण्डल

२०-भरद्वाज की उत्पत्ति । ऋग्वेद ६. १-४६ के देवता

योऽङ्गारेभ्य ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः ।

बृहस्पतेर्भरद्वाजो विदधीति य उच्यते ॥ १०२ ॥

मरुत्स्वासीद्गुरुयश्च स एवाङ्गिरसो नपात् ।

सपुत्रस्य तु तस्यैतन् मण्डलं षष्ठमुच्यते ॥ १०३ ॥

बृहस्पति उस ऋषि के पुत्र थे जो अङ्गारों से उत्पन्न हुये थे । बृहस्पति-पुत्र भरद्वाज, जिन्हें विदधिन् भी कहते हैं और जो मरुतों में गुरु थे, अङ्गिरस् के पौत्र हुये । अब षष्ठ मण्डल को इनका तथा इनके पुत्रों का बताया गया है ।

त्वं ह्यग्ने इति तत्रादाव् आग्नेयानि त्रयोदश ।

सूक्तानि त्रीणि मूर्धानम् अग्नेर्वैश्वानरस्य तु ॥ १०४ ॥

इसमें 'त्वं ह्य् अग्ने' (ऋग्वेद ६. १, १) से आरम्भ तेरह सूक्त (ऋग्वेद ६. १-६ और १०-१६) अग्नि को सम्बोधित हैं, जब कि 'मूर्धानम्' (ऋग्वेद ६. ७, १) से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ६. ७-९) अग्नि वैश्वानर की ।

एकान्नत्रिंशदेवात्र पित्रेत्यैन्द्राण्यतः परम् ।

अग्ने स क्षेपदित्यस्यां देवौ यौ तु निपातितौ ॥ १०५ ॥

इसके बाद (अर्थात् ऋग्वेद ६. १६ के बाद) यहाँ 'पित्र' (ऋग्वेद ६. १७, १) से आरम्भ पूरे उनतीस सूक्त इन्द्र को सम्बोधित हैं। 'अग्ने स शेपत्' (ऋग्वेद ६. २, १) में आनेवाले दो देवताओं का नैपथिक उल्लेख है।

प्रोतये नू म इत्येते वैश्वदेव्यावृचौ स्तुते ।

ऋग्द्वितीया पदं चान्त्यम् ऐन्द्रमेति गवां स्तुतिः ॥ १०६ ॥

किन्तु 'प्रोतये' (ऋग्वेद ६. २१, ९), और 'नू मे' (ऋग्वेद ६. २१, ११), इन दो ऋचाओं को विश्वेदेवों को सम्बोधित माना गया है। 'अ' (ऋग्वेद ६. २८) सूक्त में गायों की स्तुति है : इसकी द्वितीय ऋचा और अन्तिम पाद इन्द्र को सम्बोधित है।

तु० बी० सर्वानुकर्मणी : 'द्वितीयेन्द्रो वाऽन्त्यश्च पादः ।'

२१-ऋग्वेद ६. ३७. ४४. ४५. ४७ के देवता ।

आसन्वाणास इत्यस्यां वायुरिन्द्रश्च संस्तुतौ ।

इन्द्रः प्राधान्यतो वात्र स्तुतो वायुर्निपातभाक् ॥ १०७ ॥

'आसन्वाणासः' (ऋग्वेद ६. ३७, ३) में वायु और इन्द्र की साथ-साथ स्तुति है।

अथवा यहाँ इन्द्र की प्रधान स्तुति है और वायु निपातभाज है।

अयं देवस्तृचं सौम्यम् ऐन्द्रमेके प्रचक्षते ।

य आनयदिति त्वस्य तृचोऽधीति वृषुस्तुतिः ॥ १०८ ॥

'अयं देव' (ऋग्वेद ६. ४४, २२) से आरम्भ जो तीन ऋचायें सोम को सम्बोधित हैं उन्हें कोई इन्द्र को सम्बोधित कहते हैं।

किन्तु 'य आनयत्' (ऋग्वेद ६. ४५) सूक्त की 'अधि' (ऋग्वेद ६. ४५, ३१) से आरम्भ तीन ऋचाओं में वृषु की स्तुति है।

तु० बी० सर्वानुकर्मणी : 'तृचेऽन्त्ये वृषुस्तुत्या देवतम् ।'

पितरं स्तौति शंयुश्च तृचस्यान्त्ये पदे स्वकम् ।

स्वाद्गुण्किलायमिति तु सौम्यः पञ्चर्च उत्तरः ॥ १०९ ॥

और शंयु ने इन तीन ऋचाओं के अन्तिम पाद में अपने पिता की स्तुति की है। 'स्वाद्गुण्किलायम्' (ऋग्वेद ६. ४७, १) से आरम्भ पाँच वाद की ऋचायें (ऋग्वेद ६. ४७, १-५) सोम को सम्बोधित हैं।

१. ऋग्वेद ६. ४४-४६ और ४७ के ऋचि ।

इन्द्रः प्रधानतो वात्र स्तुतः सोमो निपातभाक् ।

इन्द्रस्यैन्द्रयोऽनुपानीयाः श्रूयन्ते छौतरेयके ॥११०॥

अथवा यहाँ इन्द्र की प्रधान स्तुति है जबकि सोम निपातभाक् है क्योंकि ऐतरेय (ब्राह्मण)^१ में इन्हें इन्द्र की सम्बोधित अनुपानीया ऋचायें कहा गया है ।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ३ ३८, १ में यह ज्ञान है कि ऋग्वेद ६ ४७ की प्रथम चार ऋचाओं को इन्द्र का अनुपानामा ऋचाओं के रूप में दुहराना चाहिये

अगव्यूति स्तौति देवान् पादो भूमिमथोत्तरः ।

बृहस्पतिं तृतीयस्तु इन्द्रमेवोत्तमं पदम् ॥१११॥

'अगव्यूति' (ऋग्वेद ६ ४७, २०) में एक पाद देवों की, दूसरा पृथिवी की, तीसरा बृहस्पति की, और अन्तिम इन्द्र की स्तुति करना है ।

२२-ऋग्वेद ६ ४७ (क्रमशः), और ६ ४८ के देवता ।

वनस्पते वीड्वद्भिः परं यत्

तदाचार्या भाववृत्तं वदन्ति ।

ऋचस्तु तिस्रस्तु रथाभिमर्शना

उपेति तिस्रो दुन्दुभेः संस्तवोऽत्र ॥११२॥

'वनस्पते वीड्वद्भिः' (ऋग्वेद ६ ४७ २६) से आरम्भ वाद में जान वाला पाद को आचार्यों ने भाववृत्त कहा है । किन्तु तीन सम्पूर्ण ऋचायें (ऋग्वेद ६, ४७, २६-२८) रथाभिमर्शना से सम्बद्ध हैं, जब कि 'उप' (ऋग्वेद ६ ४७, २९) से आरम्भ यही तीन ऋचायें दुन्दुभि की स्तुति करती हैं ।

^१ देखिये ऐतरेय ब्राह्मण ७ ९, २ अधिषादन पृथिव्यं २ ६ ५ ऋग्वेद ६ ४७

^२ पर १३३ गृहसिन्धु ।

समश्वपर्णा इति चार्धमैन्द्रं दशादितोऽग्नेस्तृणपाणिकस्य ।

तृचः परो मारुतः पृथ्विस्तृक्ते द्वृचः परो वैश्वदेवः पुनश्च ॥

और 'समश्वपर्णा' (ऋग्वेद ६ ४७, ३१) से आरम्भ अर्धवाचा इन्द्र की सम्बोधित है । तृणपाणि सूक्त^१ (ऋग्वेद ६ ४८) के आरम्भ की दस ऋचायें (ऋग्वेद ६ ४८, १-१०) अग्नि की सम्बोधित हैं, इसी पृथ्वि के सूक्त की तीन धाद की ऋचायें (६ ४८, ११-१३) मरुतों की सम्बोधित

हैं, और पुनः, वाद की दो ऋचायें (ऋग्वेद ६. ४८, १४-१५), विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं ।

तु० की० सवर्णिकमणी : 'एतानिर्गं पृथिसूक्तम्' । देखिये ऋग्वेद ५. ४९ और ६. ४८ पर षड्युक्तशिष्य ।

आदित्यो वा मारुत एव वा स्याद्

आ मा पूषन्निति पौष्णीश्चतस्रः ।

द्वृचं परं मारुतं तत्र विद्याद्

अन्त्या शुभ्योः कीर्तना पृथये वा ॥ ११४ ॥

अथवा इसे आदित्यों अथवा मरुतों को सम्बोधित किया जा सकता है । 'आ मा पूषन्' (ऋग्वेद ६. ४८, १६) से आरम्भ द्वः ऋचाओं (ऋग्वेद ६. ४८, १६-१९) को पूषन् को, और वाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद ६. ४८, २०-२१) को मरुतों को सम्बोधित जानना चाहिये; अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ६. ४८, २२) में आकाश और पृथिवी का कीर्तन है अथवा यह पृथिवी के लिए उद्दिष्ट है ।

२२-ऋग्वेद ६. ४९-६२ के देवता ।

स्तुपे सूक्तानि चत्वारि वैश्वदेवान्यतः परम् ।

द्वितीयाग्निं चतुर्थी च वायुं पञ्चम्यथाश्विनौ ॥ ११५ ॥

स्तौत्युक्त्वा तु सप्तमी वाचम् अत्र पूषणमष्टमी ।

त्वष्टारं नवमी रुद्रं सुवनस्येत्यथोत्तरे ॥ ११६ ॥

मारुत्यौ यो रजांसीति विष्णुमेव जगावृषिः ।

अभ्यन्द्रयेति च सावित्री रौद्रस्याग्नेय्युताश्विनी ॥ ११७ ॥

इसके बाद 'स्तुपे' (ऋग्वेद ६. ४९, १) से आरम्भ चार सूक्त (ऋग्वेद ६. ४९-५२) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं : यहाँ द्वितीय ऋचा (ऋग्वेद ६. ४९, २) अग्नि की, और चौथी (ऋग्वेद ६. ४९, ४) वायु की, फिर पाँचवीं (ऋग्वेद ६. ४९, ५) अश्विनों की, किन्तु सातवीं (ऋग्वेद ६. ४९, ७) वाच् की, आठवीं (ऋग्वेद ६. ४९, ८) पूषन् की, नववीं (ऋग्वेद ६. ४९, ९) त्वष्टा की, 'सुवनस्य' (ऋग्वेद ६. ४९, १०) रुद्र की, और वाद की दो (ऋग्वेद ६. ४९, ११-१२) मरुतों की स्तुति करता है । 'यो रजांसि', (ऋग्वेद ६. ४९, १३) में ऋषि ने विष्णु का गायन किया ।

'अभि' (ऋग्वेद ६. ५०, ६) इन्द्र को सम्बोधित है और 'अ' (ऋग्वेद ६. ५०, ८) सवितृ को सम्बोधित है । फिर एक रोदसी को (ऋग्वेद ६. ५०, ५), तथा 'उत्' (ऋग्वेद ६. ५०, ९. १०) से आरम्भ दो ऋचाओं में से एक (९ वीं ऋचा) अग्नि को और एक (१० वीं ऋचा) अश्विनों का सम्बोधित है ।

अग्नीपर्जन्यावनयोः सौर्यौ चोडु त्यदित्पृचौ ।

वयं चत्वारि पौष्णानि त्वैन्द्रापौष्णस्य चोत्तरम् ॥११८॥

'अग्नीपर्जन्यौ' (ऋग्वेद ६. ५२, १६) इन्हीं दो देवताओं की है, और 'उद् उ त्यत्' (ऋग्वेद ६. ५१, १. ०) से आरम्भ दो ऋचायें सूर्य को सम्बोधित हैं । 'वयम्' (ऋग्वेद ६. ५३, १) से आरम्भ चार सूक्त (ऋग्वेद ६. ५३-५६), तथा वह जो इन्द्र-पूषन् को सम्बोधित सूक्त (ऋग्वेद २. १७) के बाद आता है (अर्थात्, ऋग्वेद ६. ५८), पूषन को सम्बोधित है ।

२४-ऋग्वेद ६. ६३-७४ के देवता । सात रत्न

रथीतमं कपर्दिनं रौद्रमेके प्रचक्षते ।

ऐन्द्राग्रे प्र नु वोचेति इयं सारस्वतं स्तुवे ॥ ११९ ॥

आश्विने चौपसे चैव मारुतं तु वपुर्न्विति ।

उपेति च त्वृचेऽश्विभ्याम् आराधनं च शंसति ॥१२०॥

कुछ 'रथीतमं कपर्दिनम्' (ऋग्वेद ६. ५५, २) ऋचा को रत्न को सम्बोधित बताते हैं ।

'प्र नु वोचा' (ऋग्वेद ६. ५९, १) से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ६. ५९-६०) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित हैं । 'इयम्' (ऋग्वेद ६. ६१) सरस्वती को सम्बोधित है; 'स्तुवे' (ऋग्वेद ६. ६२) से आरम्भ दो सूक्त (६. ६२-६३) अश्विनों को सम्बोधित है, और तब इसके बाद दो (ऋग्वेद ६. ६४-६५) उपम् को सम्बोधित है; किन्तु 'वपुर् नु' (ऋग्वेद ६. ६६) मरुतों को सम्बोधित है ।

और 'उप' से आरम्भ दो ऋचाओं में ऋषि ने अश्विनों का आराधन किया है ।

^१ ऋग्वेद ६. ६६ अथवा इसके निम्न के किसी भी सूक्त में 'उप' से आरम्भ कोई ऋचा नहीं है ।

मैत्रावरुणमेवैकं विश्वेषां वः सतामिति ।

श्रुष्टीति चैन्द्रावरुणं समैन्द्रावैष्णवं परम् ॥ १२१ ॥

एक (अर्थात्) 'विश्वेषां वः सताम्' (ऋग्वेद ६. ६७) मित्र-वरुण को सम्बोधित है । 'श्रुष्टी' (ऋग्वेद ६. ६८) इन्द्र-वरुण को सम्बोधित है; वाद का 'सम्' (ऋग्वेद ६. ६९) इन्द्र-विष्णु को सम्बोधित है ।

द्यावापृथिव्यौ सविता इन्द्रासोमो बृहस्पतिः ।

पृथक्पृथक् परैः सूक्तैः सोमाहृद्रेति तौ स्तुतौ ॥ १२२ ॥

वाद के सूक्तों में क्रमशः आकाश-पृथिवी (७०, वें मं.), सविन् (७१ वें मं.), इन्द्र-सोम (७२ वें मं.) और बृहस्पति (७३, वें मं.) की स्तुति है; 'सोमाहृद्रा' (ऋग्वेद ६. ७४) में इन्हीं दो देवताओं की स्तुति है ।

चक्रं रथो मणिभार्या भूमिरश्वो गजस्तथा ।

एतानि सप्त रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥ १२३ ॥

चक्र, रथ, मणि, भार्या, भूमि, अश्व और गज—यह सवे चक्रवर्ती-राजाओं के सत्वर हैं ।

२५-ऋग्वेद ६. ७५ : अभ्यावर्तिन् और प्रस्तोक सार्ज्य की कथा
अभ्यावर्ती चायमानः प्रस्तोकश्चैव सार्ज्यः ।

आजग्मतुर्भरद्वाजं जितौ चारशिखैर्युधि ॥ १२४ ॥

युद्ध में चारशिखों^१ द्वारा पराजित हो जाने पर अभ्यावर्तिन् चायमान^२ और सृज्य^३ के पुत्र प्रस्तोक, भरद्वाज के पास आये ।

^१ ऋग्वेद ६. २७, ४५ में इस नाम का यही रूप है ।

^२ तु० की० ऋग्वेद ६. २७, ५. ८ ।

^३ तु० की० ऋग्वेद ६. २७, ७; ६. ४७, २२. २५ ।

अभिगम्योचतुस्तौ तं प्रसाद्याख्याय नामनी ।

युधि चारशिखैर्ब्रह्मन् आवां विद्धि विनिर्जितौ ॥ १२५ ॥

पास आकर स्तुति कर लेने तथा अपना नाम बताने के बाद इन दोनों ने उनसे (भरद्वाज से) कहा : 'हे ब्रह्मन्, आप यह जाने कि हम लोग युद्ध में चारशिखों द्वारा पराजित हो गये हैं ।

भवत्पुरोहितावावां क्षत्रबन्धुञ्जयेवहि ।

क्षत्रं तदपि विज्ञेयं ब्रह्म यत्पाति शाश्वतम् ॥ १२६ ॥

आप को अपना पुरोहित बनाकर हम लोग योद्धाओं को विजित कर सकते हैं । उसे ही क्षत्र (योद्धा) जानना चाहिये जो शाश्वत ब्रह्मकी रक्षा करता है ।

ऋपिस्नौ तु तथेत्युक्त्वा पायुं पुत्रमभापन ।

अधर्षणोयौ शत्रूणां कुरुष्वेतौ नृपाविति ॥ १२७ ॥

उन लोगों से 'हौं' कह कर ऋषि ने अपने पुत्र, पायु, को सम्बोधित किया : 'इन दो राजाओं का अपने शत्रुओं द्वारा पराभूत न होनेवाला बना दो ।

पितरं स तथेत्युक्त्वा युद्धोपकरणं तयोः ।

जीमूतस्येति सूक्तेन पृथस्त्वेनान्वमन्त्रयत् ॥ १२८ ॥

अपने पिता से 'हौं' कह कर उसने (पायु ने) उनके आयुषों को पृथक् पृथक् 'जीमूतस्य' (ऋग्वेद ६ ७५) द्वारा अभिषिक्त कर दिया ।

२६-ऋग्वेद ६. ७५ के देवताओं का विस्तृत उल्लेख

प्रथमा त्वस्य सूक्तस्य योद्धारं स्तौति वर्मिणम् ।

धनुषश्च द्वितीया तु तृतीया ज्याभिमन्त्रिणी ॥ १२९ ॥

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में ऋच सहित योद्धा की स्तुति है, दूसरी में धनुष की स्तुति है, तथा तीसरी में प्रत्यज्ञा को अभिषिक्त किया गया है ।

स्तौत्यृगार्वा चतुर्थी तु इषुधिं स्तौति पञ्चमी ।

अर्धेन सारथिः पृच्छ्या रद्मयोऽर्धेन संस्तुताः ॥ १३० ॥

चतुर्थी ऋचा धनुष के किनारों की स्तुति करती है और पाचवीं तरकम १ । छठवीं ऋचा का एक अर्ध-भाग सारथिकी तथा दूसरा अर्ध-भाग वल्गाओं की स्तुति करता है ।

अश्वांस्तु सप्तमी स्तौति आयुधागारमष्टमी ।

नवमी रथगोपांस्तु दशमी रणदेवताः ॥ १३१ ॥

सातवीं ऋचा अश्वों की, आठवीं आयुधागार को, नवीं रथ रथों की और दशवीं रण देवताओं की स्तुति करती है ।

इपुं चैकादशी स्तौति द्वादशी कवचस्तुतिः ।

त्रयोदशी कशां स्तौति हस्तत्राणं चतुर्दशी ॥ १३२ ॥

ग्यारहवीं कवच-स्तुति है; तेरहवीं में कशा की तथा चौदहवीं में हस्त-त्राण की स्तुति है ।

प्रथमे पञ्चदश्यास्तु पादे दिग्ध इपु स्तुतः ।

अयोमुखी द्वितीये तु अर्धेऽस्त्रं चारुणं परे ॥ १३३ ॥

पन्द्रहवीं (ऋचा) के प्रथम पाद में दग्ध (विप से) बाण की स्तुति है, दूसरे पाद में अयोमुखी बाण की; किन्तु ऋचा के शेषार्ध में चारुण की स्तुति है ।

२७-ऋग्वेद ६. ७५ (क्रमशः)

पोळश्यां त्वस्य सूक्तस्य धनुर्मुक्त इपु स्तुतः ।

सप्तदश्यां तु युद्धादेः कवचस्य तु बध्यतः ॥ १३४ ॥

स्तुतिरष्टादशी ज्ञेया युयुत्सो स्तुतिरुत्तमा ।

आशास्ते चोत्तमे पादे ऋषिरात्मन अशिपः ॥ १३५ ॥

इस सूक्त की सोलहवीं ऋचा में धनुष से छुटे हुये बाण की स्तुति है और सत्रहवीं में युद्ध के आरम्भ की, जब कि अष्टारहवीं को उस व्यक्ति के कवच की स्तुति करनेवाला जानना चाहिये जो उसे बाँधता है । अन्तिम ऋचा में उसकी स्तुति है जो युद्ध करने ही वाला हो; और इसके अन्तिम पाद में ऋषि ने अपनी ओर से आशिस दिया है ।

सूक्तेनानेन तु स्तुत्वा संग्रामाङ्गान्यृषिस्तयोः ।

ततः प्रस्थापयामास पुनर्वारशिखान्प्रति ॥ १३६ ॥

इस सूक्त द्वारा इन दो राजाओं के युद्ध के आयुषों की स्तुति करने के बाद ऋषि ने इन्हें पुनः वारशिवों के पास भेज दिया ।

एतस्यत्ते चतसृषी राज्ञो साहाय्यकाम्यया ।

भरद्वाजोऽभितुष्टाव प्रीतस्तेन पुरंदरः ॥ १३७ ॥

अभ्यावर्तिनमभ्येत्य हर्युपीयानदीतटे ।

सहितश्चायमानेन जघानैनाञ्छचोपतिः ॥ १३८ ॥

‘पुनत् त्यत् ते’ (ऋग्वेद ६. २६, ४) से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद २७, ४-७) में भरद्वाज ने राजा (चायमान) की सहायता की इन्द्र (इन्द्र की) स्तुति की । इससे प्रसन्न होकर राक्षसपति, गुरन्दर, ह्युपीचा दी के तट पर अभ्यावर्तिन के पास जाय, ओर चायमान को साथ लेकर नका बध किया ।

१८-चायमान और प्रस्तोक की कथा (कमश.)

तौ तु वारशिखाञ्चित्वा ततोऽभ्यावर्तिसार्ज्यौ ।

भरद्वाजाय गुरवे ददतुर्विविधं वस्तु ॥ १३९ ॥

इस दोनों, अभ्यावर्तिन और सार्ज्य ने, वारशिखों को विजिन करके अपने गुरु भरद्वाज को प्रचुर धन दिया ।

भरद्वाजश्च गर्गश्च दृष्टाविन्द्रेण वै पथि ।

द्वयान् प्रस्तोक इत्याभिर् दानं तद्वै शशंसतुः ॥ १४० ॥

पथ पर इन्द्र द्वारा देखे जाने पर भरद्वाज और गर्ग ने ‘द्वयान्’, (ऋग्वेद ६. २७, ८) और ‘प्रस्तोक.’ (ऋग्वेद ६. ४७, २२) से आरम्भ ऋचाओं द्वारा उस दान की स्तुति की ।

^१ गर्वानुक्रमणा में भरद्वाज पुत्र गर्ग को ऋग्वेद ६ ४७, और भरद्वाज पुत्र पातु को ऋग्वेद ६ ७५ का ऋषि बनाया गया है । तु० की० भार्यानुक्रमणा ६ ६, ८ ।

ऋषिरप्यभितुष्टाव दानं तत्र च तस्य तु ।

ऋचैकया द्वयौ अग्ने दत्तं संकीर्तयन् स्वयम् ॥ १४१ ॥

‘द्वयान् अग्ने’ (ऋग्वेद ६ २७, ८) ऋचा द्वारा ऋषि ने अपनी ओर से उनके दान की स्तुति की, और स्वयं ही, प्रदान की गई वस्तुओं का उल्लेख किया ।

प्रसङ्गात्त्विह याः सूक्ते देवताः परिकीर्तिताः ।

ता एव सूक्तभाजस्तु मेने रथीतर स्तुतौ ॥ १४२ ॥

जिन देवताओं का इस सूक्त^१ में प्रसङ्गात्मक^२ वर्णन है उनको ही रथीतर ने स्तुति में सूक्तभाज माना है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ६ ७५ ।

^२ अर्थात् आकाश और पृथिवी, पूषन्, सोम, अग्नि, पर्जन्य, प्रादण्यत्पति, वरुण ।

सप्तम मण्डल

२९-वसिष्ठ की वंशावली । कश्यप की पत्नियाँ,
 प्राजापत्यो-मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः ।
 तस्य देव्योऽभवज्जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश ॥ १४३ ॥
 अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका मुनिः ।
 क्रोधा विश्वा वरिष्ठा च सुरभिर्विनता तथा ॥ १४४ ॥
 कद्रुश्चैवेति दुहितृः कश्यपाय ददौ स च ।
 ताम्बु देवासुराश्चैव गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ १४५ ॥
 वयांसि व पिशाचाश्च जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ।
 तत्रैका त्वदितिर्देवी द्वादशाजनयत्सुतान् ॥ १४६ ॥

प्रजापति के पुत्र मरीचि थे, मरीचि के पुत्र कश्यप मुनि । दत्त की पुत्रियाँ,
 उनकी (कश्यप की) तेरह दिव्य पत्नियाँ थीं : अदिति, दिति, दनु, काला,
 दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा और वरिष्ठा, सुरभि और विनता और कद्रु,
 इनके नाम थे : इन पुत्रियों को उन्होंने (दत्त ने) कश्यप को दिया था । इनमें
 ही देव, असुर, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी, पिशाच तथा अन्य जातियाँ उत्पन्न
 हुई । इन पुत्रियों में से एक, देवी अदिति, ने चारह पुत्रों को जन्म दिया ।

भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च ।
 धाता चैव विधाता च विवस्वांश्च महाद्युतिः ॥ १४७ ॥
 त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
 द्वन्द्वं तस्यास्तु तज्जज्ञे मित्रश्च वरुणश्च ह ॥ १४८ ॥

इनके नाम यह हैं : भाग, अर्यमन्, और अंश, मित्र और वरुण, धातृ
 और विधातृ, और महातेजस्वी विवस्वान्, त्वष्टा, पूषन् तथा इन्द्र; और
 चारहवें का नाम विष्णु है । इस प्रकार वरुण और मित्र का युग्म उनसे
 (अदिति से) उत्पन्न हुआ ।

३०-मित्र-वरुण और उर्वशी की कथा

तयोरदित्ययोः सत्त्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ।
 रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे ॥ १४९ ॥

इनमें से दो आदित्यों ने जब अप्सरा उर्वशी को एक यज्ञ-मंत्र में देवा-
तत्र उगमा वीर्यं स्कन्दिन^१ हो गया और उस जल से भरे कुम्भ में गिर पड़ा
जो रात भर वहाँ पड़ा रहा ।

^१ तु० वा० निरुक्त ५ १३ . तस्या दर्शनान् मित्रावरुणयो रेतश् चन्द्र ।' देखिये
सर्वानुक्रमणी १ १६६ . मित्रावरुणयोर् शोक्षितयोर् उर्वशीम् अप्सरास इष्ट्वा
वासनीमरे कुम्भे रेतोजनत् ।

तेनैव तु मुहूर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ ।

अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षौ संवभृवतुः ॥ १५० ॥

उसी रात वहाँ दो वीर्यवान् तपस्वी, ऋषि अगस्त्य और वसिष्ठ, उत्पन्न
। गये ।

बहुधा पतीते शुक्रे कलशेऽथ जले स्थले ।

स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः ॥ १५१ ॥

कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः ।

उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्भ्यामात्रो महायशः ॥ १५२ ॥

यतः वह वीर्यं निविध रूपों से कुम्भ, जल, और स्थल पर गिरा था, अतः
वसिष्ठे मुनि वसिष्ठ स्थल पर उत्पन्न हुये; जब कि अगस्त्य कुम्भ में और
महाद्युतिमान् मत्स्य जल में उत्पन्न हुये ।

तय महायशस्वी अगस्त्य खूँटे के आवार के बराबर उदित हुये ।

३१-अगस्त्य और वसिष्ठ का जन्म

मानेन संमितो यस्मात् तस्मान्मान्य इहोच्यते ।

यद्वा कुम्भादपिर्जातः कुम्भेनापि हि मीयते ॥ १५३ ॥

कुम्भ इत्यभिधानं तु परिमाणस्य लक्ष्यते ।

ततोऽप्सु गृह्यमाणासु वसिष्ठः पुरष्करे स्थितः ॥ १५४ ॥

यतः उनको एक मान से सीमित किये जाने के कारण उनका यहाँ मान्य
नाम पड़ा, अथवा इमलिये कि इम ऋषि का कुम्भ से जन्म हुआ था, और
कुम्भ द्वारा भी नापा जाता है; कुम्भ नाम में भी एक परिमाण लक्षित होता है ।

जब जलों को ग्रहण किया जा रहा था तब वसिष्ठ एक पुष्कर (डूँप)
पर खड़े पाये गये ।

सर्वत्र पुष्करं तत्र विश्वे देवा अधारयन् ।

उत्थाय सलिलात्तस्माद् अथ तेपे महत्तपः ॥ १५५ ॥

वर्हो विश्वेदेव चारों ओर से उस पुष्कर^१ को धारण किये हुये थे। जब से निकलने के बाद उन्होंने (वसिष्ठ ने) महान तप किया।

^१ तु० वी० ऋग्वेद ७. ३३, ११ : 'विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददनन्'; जिसकी वास्तव में निरुक्त ५. १४ में 'सर्वे देवाः पुष्करे त्वाऽधारयन्' दार्शनी द्वारा व्याख्या की है।

नामास्य गुणतो जज्ञे वसतेः श्रेष्ठयकर्मणः ।

अदृश्यमृपिभिर्हीन्द्रं सोऽपश्यत्तपसा पुरा ॥ १५६ ॥

इनका नाम इनके गुणों के आधार पर श्रेष्ठ कर्मों को उत्पन्न करनेवाली 'वस्' धातु से उत्पन्न हुआ है : क्योंकि एक समय इन्होंने तप के द्वारा इन्द्र को देखा था जो अन्य ऋषियों के लिये अदृश्य थे।

सोमभागानथो तस्मै प्रोवाच हरिवाहनः ।

ऋपयो वा इन्द्रमिति ब्राह्मणात्तद्वि दृश्यते ॥ १५७ ॥

तब हरिवाहन (इन्द्र) ने इन्हें सोम-भागों को प्राप्त करने के लिये कहा, क्योंकि 'ऋपयो वा इन्द्रम्'^१ ब्राह्मण वाक्य से ऐसा स्पष्ट होना है।

^१ तैत्तिरीय संहिता ३. ५, २, १ : 'ऋपयो वा इन्द्र प्रत्यक्षं नापश्यन्; तं वसिष्ठं प्रत्यक्षम् अपश्यत्' "तस्मै एतान्द सोमभागान् अत्रवीत् ।'

३२-वसिष्ठ और उनके वंशज । ऋग्वेद ७. १-३२ के देवता

वसिष्ठश्च वसिष्ठाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मकर्मणि ।

सर्वकर्मसु यज्ञेषु दक्षिणीयतभास्तथा ॥ १५८ ॥

इस प्रकार वसिष्ठ और वसिष्ठगण हर प्रकार के कर्मों से सम्बद्ध यज्ञों में दक्षिणा प्राप्त करने के लिये सर्वाप्युक्त ब्रह्मकर्मों^१ ब्राह्मण बन गये।

^१ ऋग्वेद ७. ३३, ११ : 'उनास्ति मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्दया ब्रह्मन्मनसोऽधि जगत्', तु० वी० तैत्तिरीय संहिता ३. ५, २, १ : 'तस्माद् वसिष्ठो ब्रह्मा कार्यः'।

तस्माद्येऽद्यापि वासिष्ठाः सदस्याः स्युस्तु कर्हिचित् ।

अर्हयेदक्षिणाभिस्तान् भाह्यवेयी श्रुतिस्त्वयम् ॥ १५९ ॥

अतः प्रत्येक व्यक्तियों को वसिष्ठ के उन सभी वंशजों को दक्षिणा से सम्मानित करना चाहिये जो आज भी किसी यज्ञ-सत्र पर उपस्थित हों—देना भाह्यविनों की एक श्रुति का कथन है।

ऋषिस्तु मैत्रावरुणिः सूक्तैः पोळशभिः परैः ।

तुष्टावाग्निमिति त्वग्निम् आप्र्यस्तत्र जुषस्व नः ॥१६०॥

मित्र वरुण के पुत्र ऋषि (वसिष्ठ) ने 'अग्निम्' (ऋग्वेद ७ १, १) से आरम्भ सोलह अगले सूक्तों में अग्नि की स्तुति की, यहाँ 'जुषस्व नः' (ऋग्वेद २) आप्री मन्त्रों से युक्त है ।

प्राग्नयेऽथ प्र सत्राजो द्वितीयं प्राग्नये तृचम् ।

वैश्वानरीयाण्येतानि त्वे हैन्द्राणि पराण्यतः ॥ १६१॥

दश पञ्च च सूक्तानि निपातो मरुतां स्तुतिः ।

नक्तिः सुदास इत्यस्यां दानं पैजवनस्य तु ॥ १६२ ॥

वसिष्ठेन चतुर्भिस्तु द्वे नप्तुरिति कीर्तितम् ।

संवादं सूक्तमैन्द्रं वा श्वित्यश्चस्तु प्रचक्षते ॥ १६३ ॥

तत्र 'प्राग्नये' (ऋग्वेद ७ ५), 'प्र सत्राज' (ऋग्वेद ७ ६) और एक परा 'प्राग्नये' (ऋग्वेद ७.१३) भी जिसमें तीन ऋचायें हैं—इनकी वैधानर सम्बोधित किया गया है । इसके बाद 'त्वे ह' (ऋग्वेद ७ १८) से आरम्भ पत्र इन्द्र को सम्बोधित है जिनके अन्तर्गत पञ्चदश सूक्त (ऋग्वेद ७ १८-३२) में हैं, यहाँ मरुतों की नेपातिक स्तुति है । 'नक्ति सुदास' (ऋग्वेद ७ ३२, ३) ऋचा में तथा 'द्वे नप्तु' (ऋग्वेद ७ १८, २२-२५) से आरम्भ चार चायों में वसिष्ठ द्वारा पैजवन (सुदास) के दान का उल्लेख है । 'धि मत्र' (ऋग्वेद ७ ३३) को उन लोगों ने इन्द्र को सम्बोधित मूक्त अथवा एक शब्द कहा है ।

३३-ऋग्वेद ७ ३३-३८ के देवता ।

सिष्टागस्त्ययोरत्र कीर्त्यते तनयैः सह ।

इन्द्रेण चैव संवादो महिमा जन्म कर्म च ॥ १६४ ॥

यहाँ वसिष्ठ और अगस्त्य का अपने पुत्रों तथा इन्द्र के साथ संवाद का उल्लेख, और महिमा, जन्म और कर्म की प्रशंसा है ।

पराणि प्रेति चत्वारि वैश्वदेवानि तत्र तु ।

सौत्युगञ्जामहिं तत्र मा नोऽहिं युध्न्यमेव च ॥१६५॥

'प्र' (ऋग्वेद ७ ३४, १) से आरम्भ चार वाद के सूक्त (ऋग्वेद ७ ३४-३७) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं । फिर भी, यहाँ 'अञ्जाम्' (ऋग्वेद

७. ३४, १६) ऋचा में अहि की, और 'मानः' (ऋग्वेद ७. ३४, १७) अहि बुध्न्य की स्तुति है।

अहिराहन्ति मेवान्स एति वा तेषु मध्यमः।

योऽहिः स बुध्न्यो बुध्ने हि सोऽन्तरिक्षेऽभिजायते ॥ १६३ ॥

अहि मेघों पर प्रहार करता है अथवा उनके मध्य में चला जाता है। यह अहि ही बुध्न्य है, क्योंकि यह बुध्न अथवा अन्तरिक्ष^२ में उत्पन्न हुआ है।

^१ निरुक्त २ १७ में 'अहि' को 'अयन्' अथवा 'अहन्ति' से 'सु'पत्र बनाया गया है।

^२ तु० वा० निरुक्त १० ४४ : 'योऽहिः स बुध्न्योः बुध्नम् अन्तरिक्षं, तत्रिवायम्।

उदु प्य सवितुः सूक्तं शं नो वाजिनदैवतः।

दृचोऽर्धर्चश्च भागोऽत्र भगनुग्र इति श्रुतिः ॥ १६७ ॥

'उदु उ प्यः' (ऋग्वेद ७. ३८) सवितृ का सूक्त है। यहाँ 'सं' (ऋग्वेद ७.८) से आरम्भ दो ऋचाओं के देवता वाजिन हैं, और 'नग्न उग्रः' (ऋग्वेद ७. ३८, ६) से आरम्भ अर्ध-ऋचा भग को सम्बोधित है, ऐसा एक श्रुति का कथन है।

३४-ऋग्वेद ७. ३८-४३ के देवता

पादश्चैव तृतीयोऽत्र पञ्चम्यामहिदैवतः।

यथार्धर्चो भगनुग्रस् तथा नूनं भगोऽपि च ॥ १६८ ॥

स हि रत्नानि सविता नुयातीति भगः स वा।

वैश्वदेवानि पञ्चोर्ध्वः पञ्चर्चो भगदैवतः ॥ १६९ ॥

प्रातर्जितमुपस्यान्त्या द्रष्टृभ्योऽत्राशिरेव वा।

एके तु द्रातरित्यस्यां भगमेव प्रचक्षते ॥ १७० ॥

यहाँ पाँचवीं ऋचा के तृतीय पाद (ऋग्वेद ७. ३८, ५) का देवता अहि है। जिस प्रकार 'भगम् उग्रः' (ऋग्वेद ७. ३८, ६) अर्ध-ऋचा है उस प्रकार 'नूनं भगः' (ऋग्वेद ७. ३८, १) भी है; 'स हि रत्नानि सविता' (ऋग्वेद ५. ८२, ३) ऋचा के अनुसार उस ही (सवितृ को) भग माना जा सकता है।

'उर्ध्वः' (ऋग्वेद ७. ३९, १) से आरम्भ सूक्त विश्वेदेवों को सम्बोधित पाँच सूक्तों (ऋग्वेद ७. ३९-४३) में से प्रथम हैं। 'प्रातर्जितम्' (ऋग्वेद ७. ४१, २-६) से आरम्भ पाँच ऋचाओं के देवता भग हैं। इसकी अन्ति

इजा (ऋग्वेद ७. ४१, ७) उपरु को सम्बोधित है, यद्यपि इसमें षडपियों की स्तुति है। फिर भी किसी का कथन है कि 'प्रातः' (ऋग्वेद ७. ४१, १) का केवल भाग ही देवता है।

आदायन्ते तु ऋषयः कीर्तयन्ति प्रसङ्गतः ।
सूक्तेऽस्मिन्देवतास्त्वन्या अन्यास्तत्र भवन्ति च ॥

ऋषिगण किसी सूक्त के नादि और अन्त में किसी धरना या प्रसङ्ग से वर्णन करते हैं अतः इस सूक्त में इन स्थानों पर उक्त देवता यहाँ और कुछ उहाँ हैं।

सालोक्यात्साहचर्याद्वा संस्तवादथवा पुनः ।
गणस्थानाद्भक्तितो वा कीर्त्यन्तेऽन्यास्तु देवताः ॥

अन्य देवताओं का इसलिये उल्लेख है कि वे एक ही लोक के जयराह्वर हैं, अथवा पुनः, इसलिये कि अपने स्थान, गण, अथवा समान भक्तिगुण) के कारण उनकी सम्मिलित स्तुति होती है।

३५-ऋग्वेद ७. ४४-४९ के देवता

दाधिक्रमथ सावित्रं रौद्रमित्यनुपूर्वशः ।
दाधिके प्रथमायास्तु देवताः परिकीर्तिताः ॥१७३॥
ता ज्ञेया आप आप्यं स्याद् आर्भवः प्रथमस्तृचः ।
उत्तमा वैश्वदेवी वा आर्भवा वा निगद्यते ॥१७४॥

इसके बाद कम से एक सूक्त (ऋग्वेद ७. ४४) दधिका को, एक ऋग्वेद ७. ४५) सवित्र को, और एक (ऋग्वेद ७. ४६) रुद्र को संबोधित है। किन्तु दधिका को सम्बोधित सूक्त (७. ४४) की प्रथम वा में सम्बोधित देवताओं को जाना जा सकता है। 'आप' (ऋग्वेद ४७) को जलों को सम्बोधित जानना चाहिये। बाद के सूक्त की प्रथम वा कच्यते (ऋग्वेद ७. ४८, १-३) क्रमुओं को सम्बोधित है। अभिनवा (ऋग्वेद ७. ४८, ४) को या तो विश्वदेवों को अथवा क्रमुओं को संबोधित कहा गया है।

वैश्वदेवे तथा शास्त्रे आर्भवं शस्यते हि तत् ।
वशमेऽहि समस्तं समुद्रज्येष्ठा अपां स्तुतिः ॥१७५॥

इसी कारण ऋभुओं को सम्योहित इस सम्पूर्ण सूक्त का विश्वेदेवों^१ स्तवन के दसवें दिन स्तवन किया जाता है। 'समुद्रज्येष्ठाः' (ऋग्वेद ७. ४ में जलों की स्तुति है।

^१ देखिये ऋग्वेद ७. ४८, ४ पर सावण द्वारा उद्धृत आश्वलायन श्रौतसूत्रः 'इशने वैश्वदेवश्च आर्भवंनिविधानं, नूयते हि ऋमुक्षण इत्यार्भवं इति ।'

॥ इति बृहदेवतायां पञ्चमोऽध्यायः ॥



१-ऋग्वेद ७ ५०-६६ क देवता

आ मामिति तु सूक्तेन प्रत्यृचं देवता स्तुताः ।

मित्रावरुणावग्निश्च देवा नद्यस्तथैव च ॥ १ ॥

'आ माम्' (ऋग्वेद ७ ५०) सूक्त की प्रत्येक ऋचा में इन देवों की स्तुति की गई है मित्रवरुण (१), और अग्नि (२) देव गण (३), तथा साथ ही साथ नदियाँ (४) ।

तृचावादित्यदेवत्यो रोदसीः प्रेति यस्तृचः ।

वास्तोष्पत्याश्चतन्नस्तु सप्त प्रस्थापिन्यः स्मृता ॥ २ ॥

ऋचाओं के दो त्रिकों (ऋग्वेद ७ ५१-५२) के देवता आत्स्य हैं । 'प्र' (ऋग्वेद ७-५३, १) से आरम्भ तीन ऋचाय (ऋग्वेद ७ ५३ १-३) रोदसी को सम्बोधित है । इसके बाद चार ऋचाय (ऋग्वेद ७ ५४ १-३ ५५, १) वास्तोष्पति को सम्बोधित है, और बाद की सात ऋचा ॥ (ऋग्वेद ७ ५५, २-८) को प्रसुप्त करनेवाली कहा गया है ।

^१ तु० का० ऋग्वेद ७ ५५ पर सर्वानुक्रमणा ।

परं चत्वारि सूक्तानि मारुतानि क ईमिति ।

तेषां तु पितरं देवं श्यम्वक्रं स्तोत्यृगुत्तमा ॥ ३ ॥

इसके बाद 'क ईम्' (ऋग्वेद ७ ५६-५९) से आरम्भ चार सूक्त मारुतों को सम्बोधित है, इनकी अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ७ ५९, १२) में दिव्य पितर श्यम्वक्र की स्तुति है ।

स्तुता तु मित्रावरुणौ सूक्तैर्यदिति सप्तभिः ।

अश्विनौ तु परैर्देवाव् अष्टभिः प्रति वामिति ॥ ४ ॥

'यत्' (ऋग्वेद ७ ६०, १) से आरम्भ सात सूक्तों (ऋग्वेद ७ ६०-६६) में मित्र-वरुण की स्तुति है । किन्तु इसके बाद 'प्रति वाम्' (ऋग्वेद ७ ६७, १) से आरम्भ आठ (ऋग्वेद ७ ६७-७४) में दिव्य अश्विनों की स्तुति है ।

यद्यैकोत्सूर्यस्तिस्र उद्वेतीत्यर्धपञ्चमाः ।

सौर्यस्तचक्षुरिति तु गीयते चक्षुर्देवता ॥ ५ ॥

‘यद् अद्य’ (ऋग्वेद ७. ६०) से एक (प्रथम ऋचा), ‘उत् सूर्यः’ (ऋग्वेद ७. ६२) से तीन (१-३), और ‘उद् वृ एति’ (ऋग्वेद ७. ६३) में साढ़े चार (१-५) सूर्य को सम्बोधित हैं, जब कि ‘तच् चक्षुः’ (ऋग्वेद ७. ६६, १६) में चक्षु-देवता का गायन है।

२-ऋग्वेद ७. ६६-८५ के देवता

आदित्यानां तद्धो अद्य द्वे ऋचौ शौनकोऽब्रवीत् ।

अन्याः सर्वा ऋचः सौर्या यदद्याद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥

शौनक ने कहा है कि ‘तद् वो अद्य’ (ऋग्वेद ७. ६६, १२) से आरम्भ दो ऋचायें (१२-१३) आदित्यों की हैं, जब कि अन्य सब ऋचाओं, (‘यद् अद्य’ : ऋग्वेद ७. ६६, ४-११) तथा शेष को सूर्य को सम्बोधित कहा गया है।

इमे चेतार इत्याद्याः सत्रं मित्रो मितः स्तुतः ।

अर्यमणो वरुणस्यापि मित्रस्यैता नव स्मृताः ॥ ७ ॥

‘इमे चेतारः’ (ऋग्वेद ७. ६०, ५), तथा अन्य नौ में अर्यमन्, वरुण और मित्र की स्तुतियाँ हैं।

यदद्य सूर इत्याद्या दशादित्या ऋचः स्मृताः ।

सविता वादितिर्मित्रो वरुणश्चार्यमा भगः ॥ ८ ॥

स्तुता उदु त्यदित्येतास् तिस्रः सौर्यस्ततः पराः ।

आशीस्तचक्षुरित्येताम् आचार्यः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

‘यद् अद्य सूरः’ से आरम्भ दस ऋचाओं (ऋग्वेद ७. ६६, ४-१३) को आदित्यों को सम्बोधित माना गया है; अथवा इनमें सवितृ, अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमन्, और भग की स्तुति है। ‘उद् उ त्यत्’ से आरम्भ वाद की तीन ऋचायें (ऋग्वेद ७. ६६, १४-१६) सूर्य को सम्बोधित हैं। आचार्य शौनक ने ‘तच् चक्षुः’ (ऋग्वेद ७. ६६, १६) को आशीस बताया है।

उपास्तु सप्तभिव्युपाः सूक्तान्येभ्यः पराणि तु ।

चत्वारिन्द्रावरुणेति इन्द्रावरुणयो स्तुतिः ॥ १० ॥

इसके बाद ‘वृ उषाः’ से आरम्भ सात सूक्तों (ऋग्वेद ७. ७५-८१) में

उपस की, किन्तु इसके बाद 'इन्द्रावरुणा स आरम्भ चार सूक्तों (ऋग्वेद ७ ८२-८५) में इन्द्र वरुण की स्तुति है ।

३-वसिष्ठ और वरुण का कुत्ता ऋग्वेद ७ ८६-८९
उद्बु ज्योतिरिति त्वस्मिन् अर्धर्चं मध्यम स्तुतः ।
वरुणस्य गृहानात्रौ वसिष्ठः स्वप्न आचरत् ॥ ११ ॥

'उद्बु उ ज्योति' से आरम्भ अर्ध ऋचा (ऋग्वेद ७ ७७, १) में मध्यम अग्नि की स्तुति है ।

रात्रि के समय स्वप्न में वसिष्ठ, वरुण के घर पर जाये ।

१ गु० का ऋग्वेद ७ ८६ ६ और ७ ८८ ५

प्राविशेशथ तं तत्र न्वा नदन्नभ्यधावत ।
ऋन्दन्तं सारमेयं स धावन्तं दण्डुमुद्यतम् ॥ १२ ॥
यदर्जुनेति च द्वाभ्यां सान्त्ययित्वा व्यसुष्वपत् ।
स तं प्रस्थापयामास जनमन्यं च वारुणम् ॥ १३ ॥

तब उन्होंने अन्दर प्रवेश किया । वहाँ एक कुत्ता भौंकता हुआ उन पर दौड़ा । काटने के लिये दौड़ते और भौंकते हुए उस कुत्ते को शान्त करके उन्होंने 'यद् अर्जुन' (ऋग्वेद ७ ५५, २-३) से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा सुला दिया ।

उन्होंने उसे तथा वरुण के अन्य सेवकों को भी सुला दिया ।

ततस्तु वरुणो राजा स्वैः पाशैः प्रत्यवध्यत ।
स बद्धः पितरं सूक्तैश् चतुर्भिरित उत्तरैः ॥ १४ ॥
अभितुष्टाव धीरेति सुमोचैनं ततः पिता ।
ध्रुवासु त्वेति चोक्तायां पाशा अस्मात्प्रमोचिरे ॥ १५ ॥

तब राजा वरुण ने उन्हें अपने पाश से आरब्ध कर लिया । इस प्रकार आवद्ध हो जाने पर उन्होंने (वसिष्ठ ने) अपने पिता (वरुण) की 'धीर' से आरम्भ बाद के चार सूक्तों (ऋग्वेद ७ ८६-८९) में स्तुति की । तब उनके पिता ने उन्हें मुक्त कर दिया ।

'ध्रुवासु स्था' (ऋग्वेद ७ ८८, ७) ऋचा का ज्यों ही उच्चारण किया गया, त्यों ही उनके पाश गिर पड़े ।

४- ऋग्वेद ७. ९०-९६ के देवता ।

पराणि त्रीणि सूक्तानि वायव्यानि प्र वीरया ।

अत्र तास्त्रैन्द्रवायव्या स्तुतौ चासु द्विवत्स्तुतिः ॥ १६ ॥

'प्र वीरया' से आरम्भ वाद के तीन सूक्त (ऋग्वेद ७. ९०-९२) वायु को सम्बोधित है । इस स्तुति में तिन ऋचाओं में द्विवत्^१ स्तुति है वे इन्द्र-वायु को सम्बोधित हैं ।

^१ देखिये ऋग्वेद ७. ९० पर सर्वानुक्रमणी, तु० की० पङ्क्तिसंज्ञा भी ।

प्र वीरयोक्ता वायव्या प्राउगीत्यैतरेयके ।

पदस्य व्यत्ययं कृत्वा वायोः प्राधान्यमुच्यते ॥ १७ ॥

'प्र वीरया' (ऋग्वेद ७. ९०, १) को ऐतरेय (ब्राह्मण) में वायु को सम्बोधित एक 'प्राउगी' ऋचा कहा गया है : यहाँ वायु की प्रधानता को इसके एक पाद के व्यतिक्रम द्वारा व्यक्त किया गया है ।

^१ अर्थात् ऐतरेय ब्राह्मण ५. २०, ९ ।

ते सत्येन तृचो यावत् तरश्चतुर्ऋचः पुनः ।

उशन्तैका प्र सोता चर्ग्व्वयरेता नव स्मृताः ॥ १८ ॥

'ते सत्येन' (ऋग्वेद ७. ९०, ५-७) से आरम्भ ऋचाओं का एक विक्र है, 'यावत् तरः' (ऋग्वेद ७. ९१, ४-७) पुन चार ऋचाओं का समूह है, 'उशन्ता' (ऋग्वेद ७. ९१, २) और 'प्र सोता' (ऋग्वेद ७. ९२, २) एक-एक ऋचाएँ हैं : इन नौ ऋचाओं को दो (इन्द्र-वायु) को सम्बोधित माना गया है ।

एन्द्राग्ने शुचिमित्येते प्रेति सारस्वते परे ।

ऋचा सरस्वान् स इति जनीयन्तश्च तिसृभिः ॥ १९ ॥

'शुचिम्' (ऋग्वेद ७. ९३, १) से आरम्भ दो सूक्त (९३-९४) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित हैं; इसके बाद 'प्र' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ७. ९५-९६) सरस्वती को सम्बोधित हैं । सरस्वती की 'सः' (ऋग्वेद ७. ९५, ३) ऋचा द्वारा और 'जनीयन्तः' (ऋग्वेद ४. ९६, ४-६) से आरम्भ तीन ऋचाओं में स्तुति की गई है ।

५-नाहुप और सरस्वती की कथा : ऋग्वेद ७. ९५-९६

राजा वर्षसहस्राय दीक्षिष्यन्नाहुपः पुरा ।

चचारैकरथेनेमां द्रुवन् सर्वाः समुद्रगाः ॥ २० ॥

यक्ष्ये ब्रह्म भागान्मे द्वन्द्वशो वाथवैकशः ।

प्रत्यूचुस्तं नृपं नव्यः स्वल्पवीर्याः कथं वयम् ॥ २१ ॥

बहेम भागान्सर्वास्ते सूत्रे वार्षसहस्रिके ।

सरस्वतीं प्रपद्यस्व सा ते वक्ष्यन्ति नाहुष ॥ २२ ॥

प्राचीन काल में अपने को एक महान वर्ष तन के लिये दीक्षित कराने की इच्छा में राजा नाहुष हम पृथिवी पर सभी नदियों से इस प्रकार कहते हुये यहो (पृथिवी पर) एक रथ पर बठकर भ्रमण करने लगे : 'मैं यज्ञ करने वाला हूँ, इसके लिये या तो पृथक् पृथक् अथवा द्वन्द्व रूप से अपना भाग दो । नदियों ने राजा को उत्तर दिया : 'अत्यन्त अल्प शक्ति वाले हमलोग किस प्रकार आपके एक महान वर्ष के यज्ञ-मंत्र के लिये सभी भाग ला सकते हैं ? हे नाहुष ! तुम सरस्वती के पास जाओ : वही सुगहारे लिये उमे लाने में समर्थ हो सकती हैं ।'

तथेत्युक्त्वा जगामाशु आपगां स सरस्वतीम् ।

सा चैनं प्रतिजग्राह दुदुहे च पयो घृतम् ॥२३॥

'ऐसा ही होगा', यह कहकर वह शीघ्रनापूर्वक सरस्वती नदी के पास गये, जहाँ उसने (सरस्वती नदी ने) उनका स्वागत किया और उन्हें दुग्ध और घृत दिया ।

एतदत्यद्भुतं कर्म सरस्वत्या नृपं प्रति ।

वारुणिः कीर्तयामास प्रथमस्य द्वितीयया ॥ २४ ॥

राजा के प्रति सरस्वती के इस अद्भुत कार्य की बरण के पुत्र (धर्मिष्ठ) ने (उक्त दो सूक्तों, अर्थात् ऋग्वेद ७. ९५-९६) में से प्रथम की द्वितीय ऋचा में स्तुति की है ।

६-ऋग्वेद ७. ९७-१०४ के देवता ।

यजे वारुणस्पत्यमैन्द्रं वैष्णवे तु परे ततः ।

उरुमैन्द्रयश्च तिस्रः स्युः पार्जन्ये तिस्र उत्तरे ॥ २५ ॥

'यजे' (ऋग्वेद ७. ९७) वृहस्पति को समर्पित है, इसके बाद इन्द्र को समर्पित एक सूक्त (ऋग्वेद ७. ९८) आता है, किन्तु इसके बाद दो सूक्त (ऋग्वेद ७. ९९-१००) विष्णु को समर्पित हैं, 'उरुम्' में आरम्भ

तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ७. ९९, ४-६) को इन्द्र को भी सम्बोधित मानना चाहिये । 'तिस्तः' से आरम्भ वाद के दो सूक्त (ऋग्वेद ७. १०१-१०२) पर्जन्य को सम्बोधित हैं ।

स्तौतीन्द्रं प्रथमा त्वन्न द्वितीयाद्या बृहस्पतिम् ।

यज्ञ आद्येन्द्रमेवास्तौद् अन्त्या त्विन्द्रावृहस्पती ॥२६॥

यहाँ प्रथम ऋचा (ऋग्वेद ७. ९७, १) इन्द्र की, तथा द्वितीय और तीसरी ऋचायें (ऋग्वेद ७. ९७, २. ४-८) बृहस्पति की स्तुति करती हैं ।

'यज्ञे' (ऋग्वेद ७. ९७) की प्रथम ऋचा में केवल इन्द्र की, किन्तु अन्तिम में इन्द्र और बृहस्पति दोनों की स्तुति है ।

तृतीया नवमी चैव स्तौतीन्द्राद्ब्रह्मणस्पती ।

संवत्सरं तु मण्डूकान् ऐन्द्रासोमं परं तु यत् ॥ २७ ॥

तीसरी और नवीं ऋचायें (ऋग्वेद ७. ९७, ३. ९) इन्द्र और ब्रह्मणस्पति की स्तुति करती हैं । 'संवत्सरम्' (ऋग्वेद ७. १०३) में मण्डूकों की स्तुति है, किन्तु जो इसके बाद (ऋग्वेद ७. १०४) आता है वह इन्द्र-सोम को सम्बोधित है ।

ऋपिर्ददर्श राक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः ।

हते पुत्रशने तस्मिन् सौदासैर्दुःखितस्तदा ॥ २८ ॥

जब सुदास द्वारा उसके सौ पुत्रों का वध कर दिया गया, तब अपने पुत्रों के शोक से पूर्ण और सन्तप्त होकर ऋषि ने राक्षसों का विनाश करने के लिये इस सूक्त का दर्शन किया ।

७-ऋग्वेद ७. १०४ का विस्तृत विवरण ।

ये पाकशंसमृक्सौम्या आग्नेयी तत् उत्तरा ।

एकादशी वैश्वदेवी सौम्यस्तस्याः परो बृचः ॥ २९ ॥

'ये पाकशंसम्' (ऋग्वेद ७. १०४, ९) ऋचा सोम को सम्बोधित है; उसके बाद की (१०वीं ऋचा) अग्नि को सम्बोधित है; ग्यारहवीं विश्वेदेवी को सम्बोधित है; इसके बाद जो दो ऋचायें (१२-१३वीं) आती हैं वह सोम को सम्बोधित हैं ।

यदि वाहमृगाशोया ऐन्द्री यो भेति तु स्मृता ।

ग्राव्णी प्र या जिगातीति वि तिष्ठध्वं तु मारुती ॥ ३० ॥

‘यदि वाहम्’ (ऋग्वेद ७ १०४, १४) अग्नि को सम्बोधित है, जत्र कि ‘यो मा’ (ऋग्वेद ७ १०४, १६) को इन्द्र को सम्बोधित माना गया है, ‘प्र या जिगाति’ (ऋग्वेद ७ १०४, १७) पत्थरों को सम्बोधित है, जत्र कि ‘वि तिष्ठध्वम्’ (ऋग्वेद ७ १०४, १८) महतों को सम्बोधित है ।

प्र वर्तयेति पञ्चैन्द्र्य ऐन्द्रासोमो त्वृगुत्तमा ।

ऋपिस्त्वाग्निपमाशास्ते मा नो रक्ष इति त्वृचि ॥ ३१ ॥

दिवि चैव पृथिव्यां च तथा पालनमात्मनः ।

उत्कृष्यातुं जह्येतान् नानारूपाग्निशाचरान् ॥ ३२ ॥

‘प्र वर्तय’ से आरम्भ पाँच ऋचायें (ऋग्वेद ७ १०४, १९-२२ २४) इन्द्र को सम्बोधित है, जत्र कि अन्तिस ऋचा इन्द्र सोम को सम्बोधित है । ‘मा नो रक्षम्’ (ऋग्वेद ७ १०४, २३) ऋचा में ऋषि ने अपनी जोर से आकाश और पृथिवी पर रहित रहने का आशिम् दिया है । ‘उत्कृष्यातुम्’ (ऋग्वेद ७ १०४, २२) में ‘नानारूपी निशाचरों का वध करो’ ऐसी स्तुति है ।

पञ्चदश्यां तु सूक्तस्य अष्टम्यां चैव वारुणिः ।

दुःखशोकपरीतात्मा शपते विलपन्निव ॥ ३३ ॥

इस सूक्त की पन्द्रहवीं और आठवीं ऋचा में वरुण के पुत्र (वसिष्ठ) ने उस समय शोक और दुःख से पूर्ण होकर विलाप करते हुये शप का उच्चारण किया है ।

हते पुत्रशते तस्मिन् वसिष्ठो दुःखितस्तदा ।

रक्षोभूतेन शापात्तु सुदासेनेति वै श्रुतिः ॥ ३४ ॥

उस समय वसिष्ठ अपने उन सौ पुत्रों के सुदास द्वारा वध कर दिने जाने पर दुःखित थे जो एक शप के कारण राक्षस बन गये थे—ऐसी श्रुति है ।

अष्टम मण्डल

८-कण्व और प्रगाथ की कथा

कण्वश्चैव प्रगाथश्च घोरपुत्रौ बभूवतुः ।

गुरुणा तावमुज्ञाताव् ऊपतुः सहितौ बने ॥ ३५ ॥

कण्व और प्रगाथ, घोर के दो पुत्र थे। जब इनके गुरु ने आज्ञा दे दी तब ये एक साथ वन में रहने लगे।

वसतोस्तु तयोस्तत्र कण्वपत्न्याः शिरः स्वपत् ।

कृत्वा कनीयान्कण्वस्य उत्सङ्गे नान्वबुध्यत ॥३६॥

जब यह दोनों बहाँ रह रहे थे, तब कण्व के कनिष्ठ भ्राता (प्रगाथ) कण्व की पत्नी की गोद में सर रखकर सो रहे थे, और उठे नहीं।

शशुकामस्तु तं कण्वः क्रुद्धः पापाभिशाङ्कया ।

बोधयाभास पादेन दिधक्षन्निव तेजसा ॥ ३७ ॥

पाप की शङ्का से क्रुद्ध हो कर और शाप देने की इच्छा से कण्व ने उन्हें अपने पैर से इस प्रकार जगाया मानो वह उसे अपने तेज से भस्म कर देंगे।

विदित्वा तस्य तं भावं प्रगाथः प्राञ्जलि स्थितः ।

मातृत्वे च पितृत्वे च वरयामास तावुभौ ॥३८॥

उनके भाव^१ को जानकर प्रगाथ ने करबद्ध सड़े होकर उन दोनों का अपनी माता और पिता के रूप में वरण किया।

^१ तु० की० ऊपर ४ ५०, ५९।

स घौरो वाथ काण्वो वा वंशजैर्वहुभिः सह ।

दशशान्यैश्च सहित ऋपिर्मण्डलमष्टमम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार, घोर अथवा कण्व के पुत्र के रूप में ऋषि ने अपने परिवार के अनेक सदस्यों तथा अन्य के साथ अष्टम मण्डल का दर्शन किया।

^१ तु० की० ऋग्वेद ८. १ पर सर्वानुकमणीः 'स घौरः सन् भ्रातुः कण्वस्य पुत्रनाम् अगात्'; आर्षानुकमणी ८ ३ : 'प्रगाथो घोरजो मुनिः, स हि घोरस्य कण्वस्य भ्राता सन् पुत्रतां गतः।'

९-ऋग्वेद ८. १-२१ के देवता

माचिदैन्द्राणि चत्वारि अन्वस्य स्थूरमित्यूचि ।

तुष्टावाङ्गिरसी नारी वसन्ती शश्वती पतिम् ॥ ४० ॥

'मा चित्' से आरम्भ चार सूक्त (ऋग्वेद ८. १-४) इन्द्र को सम्बोधित हैं : 'अन्वस्य स्थूरम्' (ऋग्वेद ८. १, ३४) ऋचा में अङ्गिरम की पुत्री शश्वती ने स्त्री के रूप में रहते हुये अपने पति की स्तुति की है।^१

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'पञ्ची चास्याद्विरसी शशना पुस्तम् उपलभ्येन प्राप्ता भन्त्या तुष्टाव ।'

स्त्रियं सन्तं पुमांसं तम् आसङ्गं कृतवानृषिः ।

स्वस्य दानं स्तुहीत्पृग्भिश् चतुर्भिः परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

ऋषि ने उस आसङ्ग को पुन पुरुष बना दिया^१ जो खी हो गया था । 'स्तुहि' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १, ३०-३३) में आसङ्ग ने स्वयं अपने ही दान का कीर्तन किया है ।

^१ तु० की० ऋग्वेद ८ १ पर सर्वानुक्रमणाय आसङ्गो य आसृत्वा पुमान् अभूत् स मेघानिधये दानं दत्त्वा ग्नुः स्तुद्धानि चतुर्भिर् आत्मानं तुष्टाव । सारा ने ऋग्वेद ८ १, १ और ३४ पर भाष्य के लिये आसङ्ग का कथा का बर्णन दिया है ।

शिक्षेत्यृग्भ्यां तु काश्यस्य विभिन्दोः परिकीर्तितम् ।

पाकस्थानस्तु भोजस्य चतुर्भिर्यमिति स्तुतम् ॥

किन्तु 'शिक्ष' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ७ २, ४१-४२) में काशि^१ के राजा विभिन्दु का कीर्तन है, जब कि 'यम्' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ३, २१-२४) में उदार पाकस्थामन् (के दान) की स्तुति है ।

^१ तु० की० ऋग्वेद ८ २ पर सर्वानुक्रमणी 'अन्त्याम्या मेभानिविर् विभिन्दोर् प्राप्ता तुष्टाव ।'

पौष्णौ प्रेति प्रगाथौ द्वौ मन्यते शाकटायनः ।

ऐन्द्रमेवाथ पूर्व तु गालवः पौष्णमुत्तरम् ॥ ४३ ॥

'म' से आरम्भ चार प्रगाथ ऋचाये (ऋग्वेद ८ ४, १५-१८) शाकटायन के विचार से पूषन् को सम्बोधित है, फिर भी गालव के विचार से प्रथम दो (१५-१६) केवल इन्द्र को और बाद की दो (१७-१८) पूषन् को सम्बोधित है ।

ऐन्द्राणामिह सूक्तानाम् उत्तमस्योत्तमे तृचे ।

दानं राशः कुरुङ्गस्थं स्थूरं राध इति स्तुतम् ॥ ४४ ॥

यहाँ इन्द्र सूक्ता में स अग्निम की 'स्थूर राध' (ऋग्वेद ८. ४, १९) से आरम्भ अन्त की तीन ऋचाओं (१९-२१) में राध कुरुङ्ग के दान की स्तुति है ।

१०-ऋग्वेद ८. ५-१८ के देवता

दूरादित्याश्विने सूक्ते सप्तत्रिंशत्तमी यथा ।

इत्यर्धर्चो द्रुचश्चान्त्यः कशोर्दानस्तुतिः स्मृता ॥ ४५ ॥

'दूरात्' (ऋग्वेद ८. ५) से आरम्भ अश्विनों को सम्बोधित सूक्त में सैंतीसवीं ऋचा में 'यथा' से आरम्भ अर्ध-ऋचा और अन्तिम दो ऋचाओं (८. ५, ३८-३९) को कशु^१ की दानस्तुति माना गया है ।

^१ तु० ङी० ऋग्वेद ८. ५ पर सर्वानुक्रमणी. 'अन्त्वा' पञ्चार्धर्चाश् चैदस्य कशोर् दानस्तुतिः ।'

महानैन्द्रं प्रब्रवत्याम् अग्निं वैश्वानरं स्तुतम् ।

मन्यते शाकपूणिस्तु भार्म्यश्वश्चैव मुद्गलः ॥ ४६ ॥

'महान्' (ऋग्वेद ८. ६) इन्द्र को सम्बोधित है : जिस ऋचा में 'प्रह' (ऋग्वेद ८. ६, ३०) आता है उसमें शाकपूणि तथा भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल के विचार से वैश्वानर की स्तुति है ।

तृचे तु शतमित्यस्मिन् दानं तैरिन्दिरं स्मृतम् ।

परं तु मारुतं प्रेति आ नखीण्याश्विनानि च ॥ ४७ ॥

किन्तु 'शतम्' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ६. ४६-४८) में तिरिन्दिर के दान की स्मृति है । 'प्र' (ऋग्वेद ८. ७) से आरम्भ वाद का सूक्त मरुतों को सम्बोधित है, और 'आ नः' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८. ८-१०) अश्विनों को सम्बोधित हैं ।

त्वमाग्नेयं य इन्द्रेति पळैन्द्राण्युत्तमस्य तु ।

उपोत्तमायामर्धर्चे देवो वास्तोष्पति स्तुतः ॥ ४८ ॥

'त्वम्' (ऋग्वेद ८. ११) अग्नि को सम्बोधित है । 'य इन्द्र' (ऋग्वेद ८. १२, १) से आरम्भ छः सूक्त (ऋग्वेद ८. १२-१७) इन्द्र को सम्बोधित हैं, किन्तु इस अन्तिम की अन्तिम से पहले की एक अर्ध-ऋचा (ऋग्वेद ८. १७, १४) में वास्तोष्पति देवता की स्तुति है ।

इदमादित्यदेवत्यं तिसृभिस्त्वदिति स्तुता ।

पष्ठया चतुर्ध्या सप्तम्या उतेत्याश्विन्यृगष्टमी ॥ ४९ ॥

'इदम्' (ऋग्वेद ८ १८) के देवता आदित्य हैं इसकी छन्दों, वीथी, और सातवीं, इन तीन ऋचाओं में अदिति की स्तुति है, 'उत' से आरम्भ आठवीं ऋचा आश्विनों को सम्योधित है।

११-ऋग्वेद ८ १९ असदस्यु के दानों की स्तुति
 स्तुताः शमिति पच्छस्तु अग्निस्वर्यानिदान्त्रयः ।
 वरुणार्यममित्राणां प्रगाथो यमिति स्तुतिः ॥ ५० ॥
 आग्नेये स्तुती राजर्षेस् असदस्योरदादिति ।
 पञ्चाशत् वधूनां च गवां तिम्वश्च सप्ततीः ॥ ५१ ॥
 अश्वोष्ट्राणां तथैवासौ वासांसि विविधानि च ।
 रत्नानि वृषभं श्यावं तासामग्रेसरं पतिम् ॥ ५२ ॥

'शम्' (ऋग्वेद ८ १८, ९) में प्रत्येक पाद में क्रमशः अग्नि, सूर्य, और अनिल, इन तीन की स्तुति है। 'यम्' से आरम्भ दो प्रगाथ ऋचाओं (ऋग्वेद ८. १९, ३४-३५) में वरुण, अर्यमन् और मित्र की, अग्नि को सम्योधित सूक्त में स्तुति है। 'अदात्' में आरम्भ दो ऋचार्ये (ऋग्वेद ८ १९, ३६-३७) राजर्षि असदस्यु की स्तुति करती है।

इन्होंने पचास वधुयें^१, और मत्तर गायों, अश्वों, तथा ऊँटों के तीन घृथ, और विभिन्न प्रकार के वस्त्र, रत्न भूरे बैल और इन घृथों की अग्रसर करने वाला एक अभिपति भी दिया।^२

^१ तु० की० ऋग्वेद ८ १९ ३६ 'अदात् पञ्चाशत् असदस्युः वधूनाम् ।'
^२ देखिये ऋग्वेद ८ १९ ३७ 'तिम्वशा मत्तानाना न्याव प्रणेत दियाना पति', तु० की० ऋग्वेद ८ ४९, २२-२३ में दानों की गणना।

कृत्वा दारानृपिर्गच्छन् इन्द्रापैतच्छशांस च ।
 वर्यं सूक्तेन शक्रं च प्रीतस्तेन शचीपतिः ॥ ५३ ॥
 ऋषे वरं घृणीष्वेति प्रहस्तमृपिरब्रवीत् ।
 काकुत्स्थकन्याः पञ्चाशद् युगपद्रमये प्रभो ॥ ५४ ॥
 कामतो बहुरूपत्वं यौवनं चाक्षयां रतिम् ।
 शङ्खनिधिं पद्मनिधिं मद्गृहेष्वनपायिनम् ॥ ५५ ॥

विवाह करने के पश्चात् जाते हुये मार्ग में ऋषि ने इसका इन्द्र से वर्णन, और 'वयम्' (ऋग्वेद ८ २१) से शक्र की स्तुति की।

इससे प्रसन्न होकर शचीपति ने कहा : 'हे ऋषि ! वर माँगो !' तब विनम्रतापूर्वक ऋषि ने उन्हें उत्तर दिया : 'प्रभो ! मैं ककुत्स्थ जातीय पचास कन्याओं का एक साथ ही रमण करूँ और इच्छापूर्वक अनेक रूप धारण कर सकूँ, और यौवन, अक्षय रति, शङ्खनिधि तथा पद्मनिधि, मेरे गृह में सदैव वर्तमान रहें ।

१२-ऋषि द्वारा मांगे गये वर । सोभरि और चित्र की कथा ।

प्रासादान् विश्वकर्मासौ सौवर्णास्त्वत्प्रसादतः ।

कुर्वीत पुष्पवाटीं च पृथक्तासां सुरद्रुमैः ॥ ५६ ॥

मा भूत्सपत्नीस्पर्धासां सर्वमस्त्विति चात्रवीत् ।

आ गन्त मारुतं सूक्तं वयमित्यैन्द्रमुत्तरम् ॥ ५७ ॥

आपकी कृपा से प्रसिद्ध विश्वकर्मा मेरे लिये सुवर्ण के प्रासादों का, और उनमें से प्रत्येक में पृथक्-पृथक् देव-वृक्षों की पुष्प-वाटिकाओं का निर्माण करें; और इन सहपत्नियों के बीच परस्पर कोई स्पर्धा न रहे ।' और उन्होंने (इन्द्र ने) कहा : 'यह सब पूर्ण होगा ।'

'आ गन्त' (ऋग्वेद ८. २०) मरुतों को सम्बोधित एक सूक्त है । दूसरा 'वयम्' (ऋग्वेद ८. २१) इन्द्र को सम्बोधित है ।

काण्वस्य सोभरेश्चैव यजतो वंशजैः सह ।

कुरुक्षेत्रे यवाञ्जक्षुर् हवींषि विविधानि च ॥ ५८ ॥

आखवः सोऽभितुष्टाव इन्द्रं चित्रं सरस्वतीम् ।

इन्द्रो वेत्यनयर्चा स दानशक्तिं प्रकाशयन् ॥ ५९ ॥

जब कण्व-पुत्र सोभरि अपने वंश के लोगों के साथ कुरुक्षेत्र में यज्ञ कर रहे थे तब चूहों ने उनके अन्न और विविध हविष्यों का भक्षण कर लिया ।

तब 'इन्द्रो वा' (ऋग्वेद ८. २१, १७) ऋचा से सोभरि ने दान-शक्ति का प्रकाशन करते हुये इन्द्र, चित्र, और सरस्वती की स्तुति की ।

१३-सोभरि और चित्र की कथा (क्रमशः) ।, ऋग्वेद ८. २२-२५

आखुराजोऽभिमानाच्च प्रहर्षितमनाः स्वयम् ।

संस्तुतो देववचित्र ऋपये तु गवां ददौ ॥ ६० ॥

अयुतानां सहस्रं वै निजग्राह स्तुवन्नृपिः ।

ऋपिं चोवाच हृष्टात्मा नाहमर्हाम्यृपे स्तुतिम् ॥ ६१ ॥

तिर्यग्योनौ समुत्पन्नो देवता स्तोतुमर्हसि ।

तमन्त्यया पुनश्चास्तौद् ओ त्यं सूक्तेन चाश्विनौ ॥६२॥

और तब चूहों के राजा (चित्र) ने आत्मसंतुष्टि से प्रसन्न होकर स्वयं—
चित्र की यहाँ देववत् स्तुति की गई है—ऋपि को अनेक प्रकार की सहस्रों
गायें दीं । उनकी स्तुति करके ऋपि ने दान को ग्रहण किया । हृदय से प्रसन्न
होकर उसने (चित्र ने) ऋपि को सम्बोधित किया 'मैं पशु-योनि में उत्पन्न
होने के कारण ऋपि द्वारा स्तुति के योग्य नहीं हूँ । अतः आप देवताओं की
स्तुति करें ।' किन्तु, फिर भी, ऋपि ने अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ८ २१, १८)
से पुनः उसकी स्तुति की । और 'ओ त्यम्' (ऋग्वेद ८. २२) से उन्होंने
अश्विनों की स्तुति की ।

ईळिष्वेत्येनदाग्नेयं सन्वायश्चन्द्रमुत्तरम् ।

यथा वरो सुपाग्णे इत्युत्तमस्त्वौपसस्तृचः ॥ ६३ ॥

'ईळिष्व' (ऋग्वेद ८ २३) अग्नि को सम्बोधित है, और 'सन्वाय'
(ऋग्वेद ८ २४) से आरम्भ दूसरा इन्द्र को, किन्तु 'यथा वरो सुपाग्णे' से
आरम्भ तीन ऋचायें (ऋग्वेद ८ २४, २८-३०) उपस् को सम्बोधित हैं ।

अष्टौ तु सहितास्त्वेता देवता विभिदुर्वलम् ।

उपाश्चेन्द्रश्च सोमश्च अग्निः सूर्यो बृहस्पतिः ॥ ६४ ॥

अङ्गिराः सरमा चैव ता वामित्युत्तरस्य तु ।

आदौ मैत्रावरुण्यस्तु नव द्वादश तूत्तराः ॥ ६५ ॥

वैश्वदेव्यो वरु राजा यज्ञादाहपये वसु ।

कीर्तितं तत्तृचे त्वस्मिन्न ऋग्नुक्षण्यायने ॥ ६६ ॥

जिन्होंने एक साथ मिलकर बल को विदीर्ण किया था यह जाठ देवता
यह हैं : उपस् और इन्द्र और सोम, अग्नि, सूर्य, बृहस्पति, अङ्गिरम् और
सरमा । 'ता वाम्' (ऋग्वेद ८. २५) से आरम्भ वाद के सूक्त के आरम्भ की
नी ऋचायें मित्र-वरुण को सम्बोधित हैं, किन्तु इनके बाद बारह विश्वेदेवों को
सम्बोधित हैं, और राजा वरु द्वारा ऋपि को दी गई सम्पत्ति का 'ऋग्नुम्

उत्तण्यायने' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८. २५, २२-२४) में कीर्तन है ।

१४-ऋग्वेद ८. २६-३१ के देवता । ८. २९ पृथक्-कर्म-स्तुति है ।

अश्विनौ ददतुः प्रीतौ तदिहोक्तं सुपामणि ।

आश्विनं तु युवोर्युक्ष्व त्रागव्या उत्तरास्तु याः ॥ ६७ ॥

प्रसन्न होकर अश्विनों ने सुपामन् को जो कुछ दिया उसका यहाँ वर्णन है : 'युवोः' (ऋग्वेद ८. २६) अश्विनों को सम्बोधित है । 'युक्ष्व' (ऋग्वेद ८. २६, २०-२५) तथा इसके बाद की ऋचायें वायु को सम्बोधित हैं ।

यं सवर्णां मनुर्नाम लेभे पुत्रं विवस्वतः ।

वैश्वदेवानि पञ्चैतान्यु अग्निरुक्थे जगाद सः ॥ ६८ ॥

उस मनु ने, जिसे सवर्णां ने पुत्र के रूप में विवस्वत से प्राप्त किया था, अपने नामकरण के समय 'अग्निर् उक्थे' (ऋग्वेद ८. २७) से आरम्भ विश्वेदेवों को सम्बोधित पाँच सूक्तों (ऋग्वेद ८. २७-३१) का उच्चारण किया ।

वध्नुरेक इति त्वेता लिङ्गतो द्विपदा दश ।

स्तूयन्ते देवता ह्यासु कर्मभिः स्वैः पृथक्पृथक् ॥ ६९ ॥

'वध्नुर एकः' (ऋग्वेद ८. २९) दस लिङ्ग-युक्त द्विपद हैं, क्योंकि इनमें देवताओं की पृथक्-पृथक् उनके अपने-अपने कर्मों के आधार पर स्तुति की गई है ।^१

^१ तु० की० ऊपर ३. ४०-४३ ।

स्तुताः कर्मगुणैः स्वैः स्वैर् देवता यत्र तत्र तु ।

पृथक्कर्मस्तुतिर्नाम वैश्वदेवं तदेव तु ॥ ७० ॥

जहाँ देवताओं की अपने-अपने कर्मों और गुणों के आधार पर स्तुति होती है, उसे 'पृथक्कर्म-स्तुति' कहते हैं । ऐसा सूक्त विश्वेदेवों को सम्बोधित होता है ।

१५-ऋग्वेद ८. २९ और ३१ का विस्तृत विवरण ।

ऋग्वेद ८. ३२-३४ के देवता ।

तासां वध्नुरिति त्वाद्या सौम्याग्नेयी त्वृगुत्तरा ।

त्वाष्ट्री चैन्द्री च रौद्री च पौष्णी वैष्णव्यृगाश्विनी ॥७१॥

नवमी मैत्रावरुणी ऋग्दशम्यत्रिसंस्तवः ।

यजमानप्रसङ्गाच्च य इज्यात्र प्रकीर्तिता ॥७२॥

इन द्विपदों में से 'वधुः' (ऋग्वेद ८. २९, १) से आरम्भ प्रथम सोम को सम्बोधित है, किन्तु इसके बाद की ऋचा (२) अग्नि को सम्बोधित है, इससे बाद एक खषा को (३), और इन्द्र को (४), और रुद्र को (५), पूषन् को (६), विष्णु को (७), और एक (८) अधिनों को सम्बोधित है, नवीं ऋचा मित्र गुरु को (९) सम्बोधित है, और दमत्री में अत्रियों की स्तुति है । और 'यः' (ऋग्वेद ८. ३१) द्वारा यहाँ यजमान के सन्दर्भ में यज्ञ की स्तुति है ।

यो यजाति दृचे शक्रो यजतां पतिरीळितः ।

तस्य युमान् दृचे यज्वा चतसृष्वपि मक्षिवति ॥ ७३ ॥

'यो यजाति' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ३१, १-२) में यज्ञ के अधिपति शक्र की स्तुति है । 'तस्य युमान्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ३१, ३. ४), तथा 'मधु' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ३१, १५-१८) में भी यज्ञ-कर्ता की स्तुति है ।

यज्वनोरेव दंपत्याः पञ्च या दंपती ऋचः ।

आ शर्माशौरैतु पाण्यौ परे मित्रोऽर्यमा यथा ॥ ७४ ॥

वरुणश्च स्तुतास्त्वत्र आदित्या अग्निमग्नये ।

सूक्तानि प्र कृतानीति त्रीण्यैन्द्राणि पराण्यतः ॥ ७५ ॥

'या दंपती' से आरम्भ पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ३१, ५-९) में यज्ञ-कर्ता के रूप में पति और पत्नी की स्तुति है । 'आ शर्म' (ऋग्वेद ८. ३१, १०) आशीस है । 'ऐतु' से आरम्भ बाद की दो ऋचायें (ऋग्वेद ८. ३८, ११-१२) पूषन् को सम्बोधित हैं, जब कि 'यथा' (ऋग्वेद ८. ३१, १३) में मित्र, अर्यमन्, और वरुण, तथा आदित्यों की स्तुति है । 'अग्निम' (ऋग्वेद ८. ३१, १४) अग्नि को सम्बोधित है ।

इसके बाद 'प्र कृतानि' से आरम्भ बाद के तीन सूक्त (ऋग्वेद ८. ३२-३४) इन्द्र को सम्बोधित हैं ।

१६-इन्द्र और व्यंस की वहन । ऋग्वेद ८. ३५-४६ के देवता
अथ इत्यत्र कन्या तं स्त्रीलिङ्गेनेन्द्रमध्रवीत् ।
स हि तां कामयामास दानवीं पाकशासनः ॥ ७६ ॥
ज्येष्ठां स्वसारं व्यंसस्य तस्यैव युवकाम्यया ।
अग्निनेत्याश्विनं सूक्तम् ऐन्द्रसूक्ते परे ततः ॥ ७७ ॥

‘अधः’ (ऋग्वेद ८. ३६, १९) में एक कन्या ने स्त्रीलिङ्ग से युक्त इन्द्र को सम्बोधित किया है; क्योंकि पाकशासन (इन्द्र) ने अपने युवा-काम के कारण व्यंस की ज्येष्ठ वहन, उस दानप कन्या के साथ प्रेम किया था । ‘अग्निना’ (ऋग्वेद ८. ३५) अश्विनों को सम्बोधित मूक्त है । इसके बाद इन्द्र को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद ८. ३६-३७) आते हैं ।

ऐन्द्राग्रं परमाग्नेयम् ऐन्द्राग्नं वारुणे परे ।
उत्तरे वारुणे त्वन्त्य आ वामित्याश्विनस्तृचः ॥ ७८ ॥

इसके बाद का सूक्त (ऋग्वेद ८. ३८) इन्द्र-अग्नि को, फिर एक (ऋग्वेद ८. ३९) अग्नि को, एक (ऋग्वेद ८. ४०) इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है; बाद के दो (ऋग्वेद ८. ४१-४२) वहन को सम्बोधित हैं; किन्तु बाद के वरुण सूक्त (ऋग्वेद ८. ४२) की ‘आ वाम्’ से आरम्भ अन्तिम तीन ऋचायें अश्विनों को सम्बोधित है ।

सूक्ते इमे समाग्नेये ताभ्यामैन्द्रे ततः परे ।
वशायाइव्याय यत्प्रादात् कानीतस्तु पृथुश्रवाः ॥ ७९ ॥
तदत्र संस्तुतं दानम् आ स इत्येवमादिभिः ।
आ नः प्रगाथौ वायव्यौ सूक्तस्योपोत्तमा च या ॥ ८० ॥

‘इमे’ (ऋग्वेद ८. ४३), और ‘सम्-’ (ऋग्वेद ८. ४४), यह दो सूक्त अग्नि को सम्बोधित हैं; इनके बाद जो दो सूक्त (ऋग्वेद ८. ४५-४६) आते हैं वह इन्द्र को सम्बोधित हैं ।

अब, कानीत पृथुश्रवस् ने वश अश्व्य को जो कुछ दान में दिया था उसकी ‘आ स’ (ऋग्वेद ८. ४६, २१-२४) से आरम्भ ऋचाओं में स्तुति की गई है । ‘आ नाः’ से आरम्भ प्रगाथ ऋचायें (ऋग्वेद ८. ४६, २५-२८), तथा इस सूक्त की अन्तिम के पूर्व की एक ऋचा (ऋग्वेद ८. ४६, ३२) भी वायु को सम्बोधित है ।

१७-ऋग्वेद ८ ४५-५६ के देवता

मित्रार्यमाणौ मरुतः सुनीथो घ द्वृचे स्तुताः ।

द्विचत्वारिंशकात्प्रीतस् त्रिशोकाय पुरंदरः ॥ ८१ ॥

गिरिं निकृत्य वज्रेण गा ददावसुरैर्हृताः ।

यः कृन्तदिति चैतस्याम् ऋपिस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ ८२ ॥

‘सुनीथो घ से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ४६, ४-५) में मित्र अर्यमन् और मरुतों की स्तुति है ।

प्रयालीम ऋचा-ओं से युक्त सूक्त (ऋग्वेद ८ ४५) स प्रसन्न होकर पुरंदर (इन्द्र) ने अपने वज्र से पर्वत को तोड़ते हुये असुरों द्वारा अपहृत गायें त्रिशोक को दे दीं । स्वय इम ऋपि ने ही इसका ‘य कृन्तत्’ (ऋग्वेद ८ ४५ ३०) ऋचा में वर्णन किया है ।

स्तुता नवम्या त्वदितिर् महोत्यादित्यदैवते ।

अन्त्याः पञ्चोपसेऽपि स्युः सौम्यं स्वादोरिति स्मृतम् ॥

‘महि’ सूक्त (ऋग्वेद ८ ४७) के जिसके देवता आदित्य हैं, नवीं ऋचा में अदिति की स्तुति है । अन्तिम पाँच ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ४७, १४-१८) को उपस को भी सम्बोधित मानना चाहिये । ‘स्वादो’ (ऋग्वेद ८ ४८) को सोम को सम्बोधित माना गया है ।

पराण्यष्टौ तु सूक्तानि ऋषीणां तिग्मतेजसाम् ।

ऐन्द्राण्यत्र तु पञ्चिंशः प्रगाथो बहुदैवतः ॥ ८४ ॥

अथ याद के अति तेजस्वी ऋषियों के आठ सूक्त (ऋग्वेद ८ ४७-५६) इन्द्र को सम्बोधित हैं, किन्तु यहाँ छद्म्यीसर्वा प्रगाथ द्विऋचायें (ऋग्वेद ८ ५४, ३-४) अनेक देवताओं को सम्बोधित हैं ।

१८-ऋग्वेद ८ ६०-६७ के देवता ।

ऋगन्त्याग्नेरचेत्यग्निः सूर्यमन्त्यं पदं जगौ ।

प्रस्कण्वश्च पृषध्रस्य प्रादावद्वसु किंचन ॥ ८५ ॥

तद्गुरीदिति सूक्ताभ्याम् अखिलं त्विह संस्तुतम् ।

ऐन्द्राण्युभयमित्यत्र पञ्चाग्नेयात्पराणि तु ॥

निपातमाह देवानां दाता म इति भागुरिः ॥८६॥

ऋचं यास्कस्तृचं त्वेतं मन्यते वैश्वदेवतम् ।

आदित्यदैवतं सूक्तं त्यान्निवत्यत्र परं तु यत् ॥८७॥

अन्तिम 'अचेर्य अग्निः' (ऋग्वेद ८. ५६, ५) ऋचा अग्नि को सम्बोधित है, जिसके अन्तिम पाद में सूर्य का गायन है। प्रस्कण्व ने जो कुछ भी धन पृषप को दिया उस सब की 'भूरीत्' से आरम्भ दो सूक्तों (ऋग्वेद ८. ५५-५६) में स्तुति है।

अब अग्नि को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद ८. ६०) के बाद यहाँ 'उभयम्' से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित छः सूक्त (ऋग्वेद ८. ६१-६६) आते हैं।

भागुरि का कथन है कि 'दाता मे' (ऋग्वेद ८. ६५, १०) में देवताओं का नैपतिक उल्लेख है; फिर भी, यास्क ने इन तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ६५, १०-१२) को विश्वदेवों को सम्बोधित माना है। किन्तु यहाँ अब जो 'व्यान् तु' (ऋग्वेद ८. ६७) से आरम्भ सूक्त आता है उसके देवता आदित्य-गण हैं।

धीवराः सहसा मीनान् हृष्ट्वा सारस्वते जले ।

जालं प्रक्षिप्य तान्वद्भोद् अक्षिपन्सलिलात्स्थलम् ॥८८॥

धीवरो ने सरस्वती के जल में मछलियाँ देखकर उसमें जाल डाला और मछलियों को पकड़कर उन्हें जल के बाहर सूती भूमि पर फेंक दिया।

शरीरपातभीतास्ते तुष्टुबुश्वादितेः सुतान् ।

सुमुबुस्तांस्ततस्ते च प्रसन्नास्तान् समुदरे ॥ ८९ ॥

धीवराः क्षुद्भयं मा वो भूत् स्वर्गं प्राप्स्यथेति च ।

उतेति माता तत्रैषां तृचेनाभिष्टुतादितिः ॥ ९० ॥

और उन्होंने (मछलियों ने) शरीर के गिरने से भयभीत होकर अदिति के पुत्रों की स्तुति की। तब आदित्यों ने उन्हें मुक्त कर दिया और धीवरों से प्रसन्नतापूर्वक यह कहते हुये वार्तालाप किया कि 'हे धीवरों! दुःखा से भयभीत मत होओ, तुम लोग स्वर्ग प्राप्त करोगे'।

'तत्र' से आरम्भ सूक्त (ऋग्वेद ८. ६७) में 'उत्' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ६७, १०-१२) में इन आदित्यों की माता अदिति की स्तुति है।

मातृत्वादभिसंबन्धात् स्तूयेतैषां स्तुतौ स्तुतौ ।

ऐन्द्राण्या त्वा रथं त्रीणि स्तौत्यृतूनुप मेति पट् ॥१॥

यत' यह उसकी माता है अतः इस सम्बन्ध के कारण उनसे (आदित्यों से) सम्बद्ध प्रत्येक स्तुति में इनकी (अदिति को) भी स्तुति हो सकती है। 'आ त्वा रथम्' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८. ६८-७०) इन्द्र को सम्बोधित हैं; 'उप मा पट्' ऋचा (ऋग्वेद ८. ६८, १४) में ऋतुओं की स्तुति है।

ऋक्षाश्वमेधयोरत्र पञ्च दानस्तुतिः पराः ।

अपादिन्द्रस्य चाग्नेश्च विश्वेषां चैव संस्तवः ॥ १२ ॥

वृचस्य प्रथमोऽर्धर्चः शेषो वरुणदैवतः ।

त्वमाग्नेयेऽथवा सूक्तम् उत्तरं हविषां स्तुतिः ॥ १३ ॥

पयः पश्वोपधीनां च तथारूपं हि दृश्यते ।

उदित्याश्विनमाग्नेये परे सूक्ते विशोविशः ॥ १४ ॥

इस सूक्त की पाँच वाद की ऋचायें (ऋग्वेद ८. ६८, १५-१९) ऋतु और अश्वमेध की दान-स्तुतियाँ हैं। 'अपात्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ६९, ११-१२) की प्रथम अर्ध-ऋचा में इन्द्र, अग्नि, और विश्वदेवों की स्तुति है; इन ऋचाओं के शेषांश के देवता वरुण है। 'श्वम्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ८. ७१-७२) अग्नि को सम्बोधित हैं; अथवा यह वाद का वा सूक्त (७२ वाँ) हवि, वृध, पय और ओपधि की स्तुति करता है; क्योंकि इसकी ऐसी ही प्रकृति दृष्टिगत होती है। 'उत्' (ऋग्वेद ८. ७३) अश्विनों को सम्बोधित है। 'विशो-विश.' से आरम्भ दो वाद के सूक्त (ऋग्वेद ८. ७४-७५) अग्नि को सम्बोधित है।

ऋग्भ्यामहमिति द्वाभ्यां स्तौत्यात्मानमृषिः स्वयम् ।

आत्मानमात्मना स्तुत्या स्तौति दानं श्रुतर्वणः ॥१५॥

आत्मादानाभिसंबन्धात् परुष्णीं च महानदीम् ।

परया परुष्णीमिन्द्रं त्रिभिः सूक्तैरिमं न्विति ॥१६॥

'अहम्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८. ७४, १३-१४) में ऋषि ने अपनी स्तुति की है।

अपनी स्तुति करके वह श्रुतर्षन् के दान की, और उसने जो कुछ पाया है उसके सन्दर्भ में महान नदी परुष्णी की स्तुति करता है।

बाद को ऋचा (ऋग्वेद ८. ७४, १५) से परुष्णी की स्तुति करता है और 'इमं नु' से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद ८. ७६-७८) में इन्द्र की स्तुति है।

अयं कृत्वरिदं सौम्यं त्रीण्यैन्द्राणि पराप्यतः ।

नहीति तेषां प्रथमे वैश्वदेभ्यृगवीवृधत् ॥ ९७ ॥

'अयं कृत्वरिदः' (ऋग्वेद ८. ७९) सोम को सम्बोधित है। इसके बाद 'नहि' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८. ८०-८२) इन्द्र को सम्बोधित हैं। इनमें से प्रथम की 'अवीवृधत्' से आरम्भ ऋचा (१०वीं) विश्वेदेवों को सम्बोधित है।

देवानामिति देवानां प्रेष्टमाग्नेयमुत्तरम् ।

त्रीण्याश्विनान्या म इति ऐन्द्राणि तमितीति च ॥ ९८ ॥

'देवानाम्' (ऋग्वेद ८. ८३) देवों को सम्बोधित है; इसके बाद 'प्रेष्टम्' (ऋग्वेद ८. ८४) अग्नि को सम्बोधित है। 'आ मे' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद ८. ८५-८७) अश्विनों को सम्बोधित हैं; और इसी प्रकार 'तम्' से आरम्भ तीन (ऋग्वेद ८. ८८-९०) इन्द्र को सम्बोधित हैं।

२१-अपाला की कथा

अपालात्रिसुता त्वासीत् कन्या त्वग्दोषिणी पुरा ।

तामिन्द्रश्चकमे दृष्ट्वा विजने पितुराश्रमे ॥ ९९ ॥

एक समय अत्रि की पुत्री अपाला नामक कन्या हुई जो चर्मरोग से ग्रस्त थी। उसके पिता के निर्जन आश्रम में उसे देखकर इन्द्र उस पर आसक्त हो गये।

तपसा वुवुधे सा तु सर्वमिन्द्रचिकीर्षितम् ।

उदकुम्भं समादाय अपामर्थे जगाम सा ॥ १०० ॥

वह तप के द्वारा इन्द्र की समस्त इच्छाओं को जान गई। जलकुम्भ लेकर वह पानी लाने के लिये गई।

दृष्ट्वा सोममपामन्ते तुष्टावर्चा वने तु तम् ।

कन्या वारिति चैतस्याम् एपोऽर्थः कथितस्ततः ॥ १०१ ॥

जल के किनारे सोम को देकर उसने वन में एक ऋचा से उनकी स्तुति की। 'कन्या वा' (ऋग्वेद ८ ९१, १) में इस विषय का वर्णन है।

सा सुपाव मुखे सोमं सुत्वेन्द्रं चाजुहाव तम् ।

असौ य एपीत्यनया पपाविन्द्रश्च तन्मुखात् ॥१०२॥

अपूर्पांश्चैव सक्तंश्च भक्षयित्वा स तद्गृहात् ।

ऋग्भिस्तुष्टाव सा चैनं जगादैनं तृचेन तु ॥१०३॥

सुलोमामनवद्यार्हीं कुरु मां शक्र सुत्वचम् ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतस्तेन पुरन्दरः ॥१०४॥

उसने सोम को अपने मुख में दयाया, और उसे दयाकर 'असौ य एषि' (ऋग्वेद ८ ९१, २) ऋचा से इन्द्र का आवाहन किया, और इन्द्र ने उसके गृह पर अपूप और सक्तु खाने के बाद उसके मुख से उमका (सोम का) पान कर लिया। और उसने (अपाला ने) उनकी एक ऋचा से स्तुति की, किन्तु तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ ९१, ४-६) द्वारा उन्हें सम्बोधित करते हुये इस प्रकार कहा 'हे शक्र ! मुझे सुलोम और दोपरहित अर्द्धों तथा श्रेष्ठ व्यचा वाला वचाओ ।' उसके इस वचन को सुनकर पुरन्दर उसने प्रसन्न हुये।

१२-अपाला की कथा (शेषांश)। ऋग्वेद ८ ९२-९३ के देवता

रथछिद्रेण तामिन्द्रः शकदस्य युगस्य च ।

प्रक्षिप्य निश्चर्क्य त्रिः सुत्वक्सा तु ततोऽभवत् ॥१०५॥

गाड़ी और जूये के बीच के छिद्र से उमे प्रक्षिप्त करते हुये इन्द्र ने उमे तीन बार बाहर खींचा जिससे यह सुन्दर बच्चावाली हो गई।

तस्यास्त्वगपहता या पूर्वा सा शल्यकोऽभवत् ।

उत्तरा त्वभवद्गोधा कृकलासस्त्वगुत्तमा ॥१०६॥

उसकी प्रथम अपहृत ऋचा शल्यक बन गई, किन्तु दूसरी गोधा (घडियाल) और अन्तिम कृकलास (नेवला)।

इतिहासमिदं सूक्तम् आहतुर्यास्कभागुरी ।

कन्येति शौनकस्त्वेन्द्रं पान्तमित्युत्तरे च ये ॥१०७॥

यास्क और भागुरी इस सूक्त को एक इतिहास कहते हैं, जब कि शौनक

‘कन्या’ (ऋग्वेद ८. ९१) सूक्त को तथा ‘पान्तम्’ से आरम्भ वाद में आने वाले दो सूक्तों (ऋग्वेद ८. ९२-९३) को इन्द्र को सम्बोधित मानते हैं ।

उत्तमा त्वार्भवी प्रोक्ता उत्तरस्यैतरेयके ।

छान्दोमिके तृतीये तद् आर्भवं शस्यते यतः ॥१०८॥

किन्तु वाद वाले सूक्त की अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद ८. ९३, ३४) को ऐतरेय (ब्राह्मण)^१ में ऋभुओं को सम्बोधित कहा गया है; क्योंकि छन्दोम के तृतीय दिन इस ऋचा का ऋभुओं को सम्बोधित होने के रूप में गायन किया जाता है ।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ५. २१, १२; तु० की० सर्वात्तुरुमणी : ‘अन्यैन्द्रार्भवी’ ।

२३-देवों के पास से सोम के पलायन की कथा ।

मारुतंगौः परं सूक्तम् आ त्वैन्द्राणि पराणि पट् ।

सूक्ते द्वितीय एतेषाम् इतिहासं प्रवक्षते ।

अपक्रम्य तु देवेभ्यः सोमो वृत्रभयादितः ॥१०९॥

नदीमंशुमतीं नाम्ना अभ्यतिष्ठत्कुरुन्प्रति ।

तं बृहस्पतिनैकेन अभ्ययाद्वृत्रहा सह ॥११०॥

योत्स्यमानः सुसंहष्टैर् मरुद्भिर्विविधायुधैः ।

दृष्ट्वा तानायतः सोमः स्वचलेन व्यवस्थितः ॥१११॥

मन्वानो वृत्रमायान्तं जिघांसुमरिसेनया ।

व्यवस्थितं धनुष्मन्तं तमुवाच बृहस्पतिः ॥११२॥

मरुत्पतिरयं सोम एहि देवान्पुनर्विभो ।

श्रुत्वा देवगुरोर्वाक्यम् अनर्थं वृत्रशङ्कया ॥११३॥

सोऽब्रवीन्नेति तं शक्रः स्वर्ग एव बलाद्वली ।

इयाय देवानादाय तं पपुर्विधिवत्सुराः ॥११४॥

(‘गौः’ से आरम्भ वाद का सूक्त (ऋग्वेद ८. ९४) मरुतों को संबोधित है; इसके बाद ‘आ त्वा’ से आरम्भ छः (ऋग्वेद ८. ९५-१००) इन्द्र को सम्बोधित हैं । इनमें से द्वितीय सूक्त (ऋग्वेद ८. ९६) में इन लोगों के कथनानुसार एक इतिहास (कथा) है :

‘अयम्’ से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, १-३) में भृगु के पुत्र नेम ने रिमा देवे ही इन्द्र की स्तुति की है।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण ६ ३६, १२।

तुष्टावेन्द्रो द्रुचेनायम् अहं पश्य च मामृषे।

स हि स्तुवन्नेम एको नेन्द्री अस्तीति चाब्रवीत् ॥११८॥

और इन्द्र ने तब ऋचाओं (ऋग्वेद ८. १००, ४-५) में कहा ‘मैं यहाँ हूँ, हे ऋषि^१, मुझे देखो।’

क्योंकि (इन्द्र की) स्तुति करते समय अकेले होने के कारण नेम ने यह भी कहा था कि ‘इन्द्र नहीं हैं।’

^१ तु० की० ऋग्वेद ८ १००, ४ ‘अयम् अरिम चरित पश्य माह’।

२५-ऋग्वेद ८ १०० संयन्धी विवरण। विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता तदाकर्ण्येन्द्र आत्मानम् ऋग्भ्यां तुष्टाव दर्शयन्।

ऋपिस्तं दृष्ट्वा सुप्रीतो विश्वेत्ता त इति द्रुचे ॥११९॥

विविधानि च कर्माणि दानमैन्द्रं च शंसति।

मनोजवास्तु सौपर्णा समुद्रे वज्रसंस्तवः ॥१२०॥

उत्ते सुनवर इन्द्र ने अपने को प्रकट करते हुए दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, ४-५) द्वारा स्वयं अपनी स्तुति की।

उनको देखकर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और ‘विश्वेत्ता ते’ से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, ६-७) में इन्द्र के दान और उनके विविध कर्मों की प्रशंसा की। किन्तु ‘मनोजवा’ (ऋग्वेद ४ १००, ८) सुपर्ण को सम्बोधित है, जब कि ‘समुद्रे’ (ऋग्वेद ८ १००, ९) में वज्र की स्तुति है।

वाचं सर्वगतां देवीं स्तौति यद्वागिति द्रुचे।

त्राँल्लोकानभितप्येमान् वृत्रस्तस्थौ स्वया त्विषा ॥१२१॥

‘यद् वाक् से’ आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद ८ १००, १०-११) में उन्होंने दिव्य और सर्वव्यापी वाक् की स्तुति की है।

इन तीनों लोकों को प्रस्त करते हुये अपने क्रोध के कारण वृत्र अविजित रहा।

तं नाशकद्धन्तुमिन्द्रो विष्णुमभ्येत्य सोऽब्रवीत्।

वृत्रं हनिष्ये तिष्ठस्व विक्रम्याद्य ममान्तिके ॥१२२॥

इन्द्र उसका वध करने में समर्थ नहीं हो सके। विष्णु के पास जाकर उन्होंने कहा, 'मैं वृत्र का वध करना चाहता हूँ; पराक्रम से युक्त होकर आप समीप खड़े हो।

उद्यतस्यैव वज्रस्य द्यौर्ददातु ममान्तरम् ।

तथेति विष्णुस्तवमे द्यौश्चास्य विवरं ददौ ॥ १२३ ॥

'द्यौम् (आकाश) मेरे उद्यत हुये वज्र को स्थान दें।' तब 'हौं' कहते हुए विष्णु ने वैसा ही किया और द्यौम् ने उन्हें स्थान दिया।

२६-ऋग्वेद ७. १०१ के देवताओं से संबन्धित विवरण

तदेतदखिलं प्रोक्तं सखे विष्णविति त्वृचि ।

मित्रावरुण्यः सूक्ताद्याश् चतस्रस्त्वृषगित्यृचः ॥ १२५ ॥

प्रेति मित्राय पादाश्च अर्यम्णो वरुणस्य च ।

अयश्चतुर्थः सर्वंपाम् आदित्यानामिति स्तुतिः ॥ १२६ ॥

इत सबका 'सखे विष्णो' (ऋग्वेद ८. १००, १२) शब्दा में वर्णन है। किन्तु 'ऋग्वेद' से आरम्भ सूक्त की प्रथम चार श्लोकों (ऋग्वेद ८. १०१, १-४) मित्र-वरुण को सम्बोधित हैं, और 'म' से आरम्भ शब्दा (ऋग्वेद ८ १०१, ५) के तीन पाद मित्र, अर्यमन्, और वरुण को, तथा चतुर्थ पाद समस्त भावित्यों को सम्बोधित है : यहाँ ऐसी स्तुति है।

^१ सर्वानुक्रमणो के अनुसार केवल मित्र और वरुण को सम्बोधित।

परा त्वादित्यदेवतया आ म इत्यश्विनो द्रुचः ।

वायव्ये सौर्ये उपस्या प्रभां या चन्द्रसूर्ययोः ॥ १२६ ॥

किन्तु वाद की शब्दा (ऋग्वेद ८. १०१, ६) के देवता अश्विन-गण हैं। 'आ मे' से आरम्भ दो श्लोकों (ऋग्वेद ८. १०१, ७-८) अश्विनो को सम्बोधित है, इसके बाद दो (९-१०) वायु को, दो (११-१२) सूर्य को, एक (१३) उपस्य को सम्बोधित है, अथवा यदि यहाँ सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश की स्तुति करता है।

पावमानी प्रजा हेति मातेत्यृग्भ्यां तु गौ स्तुता ।

त्वमग्ने बृहदाग्नेये परंऽग्निस्त्वृचि संस्तुतः ॥१२७॥

मरुद्भिः सह रुद्रैश्च आग्ने याहीति मध्यमः ।

प्रजा हेत्यपि वार्धर्चं प्रथमेऽग्निरिहोच्यते ॥१२८॥

पादे तृतीये आदित्यस् तुरीये मध्यम स्तुतः ।

रहस्ये ब्राह्मणेऽप्येवं व्याख्यतं ह्यैतरेयके ॥१२९॥

‘प्रजा ह’ (ऋग्वेद ८. १०१, १४) पवमान को सम्बोधित है, जब कि ‘माता’ से आरम्भ दो ऋचाओं (१५-१६) में गाय की स्तुति है । ‘त्वम् अग्ने बृहत्’ से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद ८ १०२-१०३) अग्नि को सम्बोधित हैं । किन्तु इस वाद के सूक्त की एक ऋचा, ‘अग्ने याहि’ (ऋग्वेद ८ १०३, १४) में मरुतों और रुद्रों के साथ मध्यम अग्नि की स्तुति है ।

अथवा ‘प्रजा ह’ (ऋग्वेद ८ १०१, १४) की प्रथम अर्थ ऋचा में यहाँ अग्नि का नाम है, तथा तृतीय पाद में सूर्य और चतुर्थ में मध्यम अग्नि की स्तुति है क्योंकि ऐतरेय^१ में इसकी ऐसी ही व्याख्या है ।

^१ अर्थात् ऐतरेय भारण्यक २ १ ।

नवम मण्डल

२७-ऋग्वेद ९. १-८६ के देवता

पवमान स्तुतः सोमो नवमे त्विह मण्डले ।

पवमानवदाप्र्यस्तु समिद्ध इति संस्तुताः ॥१३०॥

जब यहाँ नवम मण्डल में सोम पवमान की स्तुति है । ‘समिद्ध’ (ऋग्वेद ९ ५) में पवमान की ही भोति आग्नी देवों की स्तुति है ।

^१ तु० वी० सर्वानुक्रमणा ‘नवम मण्डल पवमान सौम्यम् ।’

अग्न आग्यूपीति चासु तिसृष्वसिर्निपातभाक् ।

अविता न इति त्वस्मिन्स् तृचे पूषणा सह स्तुतः ॥१३१॥

और ‘अग्न आग्यूपि’ से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ९. १६, १९-२१) में अग्नि निपातभाक् है, जब कि ‘अविता न’ से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद ९ ६७, १०-१२) में उनकी (पवमान की) पूषन् के साथ स्तुति है ।

आग्नेय्यौ द्वे ऋचावन्न यत्त इत्युत्तरे ततः ।

उभाभ्यामिति सावित्री आग्निसावित्र्युत्तरा ॥१३२॥

फिर इस सूक्त में ‘यत्त ते’ से आरम्भ दो वाद की ऋचाये (ऋग्वेद ९

६७, २३-२४) अग्नि को सम्बोधित है; 'उभाभ्याम्' (ऋग्वेद ९. ६७, २५) सवितृ को सम्बोधित है और इसके बाद की श्रुति (२६) अग्नि तथा सवितृ को ।^१

^१ मर्वातुरुभयो के अनुसार २५ वीं श्रुति के देवता अग्नि अथवा सवितृ, और २६ वा के अग्नि तथा अग्नि और सवितृ है ।

पुनन्तु मां वैश्वदेवी आग्नेयो त्वृगुप प्रियम् ।

उत्तरे च य इत्येते स्वाध्यायाध्येतृसंस्तवः ॥१३३॥

'पुनन्तु मा' (ऋग्वेद ९. ६७, २७) विश्वदेवीं को सम्बोधित है, जब कि 'उप प्रियम्' (ऋग्वेद ९. ३७, २९) अग्नि को सम्बोधित है, और 'यः' से आरम्भ दो वाक् की श्रुतियों (ऋग्वेद ९. ६७, ३१-३२) में स्वाध्यायाध्येतृ की स्तुति है ।

^१ तु० की० मर्वातुरुभयो 'ते पाथमान्-अध्वेतृ सुतां ।'

सूक्ते निरुक्ते स्रक्तेऽग्नी रक्षोहा धर्मसंस्तवः ।

सूर्यवच्चात्मवच्चापि पवित्रमिति चोच्यते ॥१३४॥

'स्रक्ते' (ऋग्वेद ९. ७३) सूक्त को निरुक्त में रक्षोहन्^१ अग्नि को सम्बोधित बताया गया है; और 'पवित्रम्' (ऋग्वेद ९. ८३) को सूर्य तथा आत्मा को व्यक्त करने वाले के रूप में धर्म की स्तुति करनेवाला कहा गया है ।

^१ ऋग्वेद ९. ७३, ५ पर भाष्य करते हुए सायन ने 'अथ धमनि' 'त्वचन् असिक्वीन्' की 'राक्षसम्' 'अपह्नानि' के रूप में व्याख्या की है ।

२८-ऋग्वेद ९. ८७. ९६. ११२, के देवता

आर्भवस्तु भवेत्पाद ऋभुधीर् इति स्मृतः ।

निपातैस्तु त्रिभिः पादैस् त्रयो देवा इहोदिताः ॥१३५॥

ब्रह्मा देवानां तिस्रोक्तास् त्रिभिस्त्वेतैर्दूर्वृचैर्दूर्वृचैः ।

सूर्यवच्चात्मवच्चापि स्तूयते सोम एव वा ॥१३६॥

श्रभुर् धीर.' (ऋग्वेद ९. ८७, ३) पाद को श्रभुओं को सम्बोधित मानना चाहिये । यहाँ^१ तीन पादों में तीन देवताओं का निपातिक उल्लेख है । 'ब्रह्मा देवानाम्' (ऋग्वेद ९. ९६, ६) से आरम्भ दो-दो (शब्दों)^१ के तीन पादों में तीन देवताओं का उल्लेख है; अथवा यहाँ सूर्य और आत्मा को व्यक्त करने वाले के रूप में सोम की ही स्तुति है ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद ९. ९६, ६ ।

^२ ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ प्रत्येक पाद में दो-दो शब्दों से तात्पर्य है, जैसे 'ब्रह्मा देवानाम्', 'पदवी वनानाम्', ऋषिर् विप्राणाम्', 'महिषो मृगणाम्', 'दशेनो गृध्राणाम्', 'स्वपिति वनानाम्'।

अनावृष्ट्यां तु वर्तन्त्यां पप्रच्छपीञ्छचीपतिः ।

काले दुर्गे महत्पस्मिन् कर्मणा केन जीवथ ॥ १३७ ॥

अनावृष्टि के समय शचीपति ने ऋषियों से पूछा, 'इस महान सकट के समय तुम किस कर्म से जीवित हो ?'

^३ तु० की० गिरुक्त ६ ५ 'इन्द्र ऋषीन् पप्रच्छ, दुर्भिक्षे केन जीवतीति, तेषा एक प्रत्युवाच।

शकटं शाकिनी गावः कृपिरस्यन्दनं वनम् ।

समुद्रः पर्वतो राजा एवं जीवामहे वयम् ॥१३८॥

'गाड़ी, खेत, पशु, कृषि, न बहनेवाले जल, वन, समुद्र, पर्वत, राजा,— इन माध्यमों से हम जीवित हैं।'

स्तुवन्नेव शशांसास्य ऋपिराङ्गिरसः शिशुः ।

नानानीयेन सूक्तेन ऋषीणामेव संनिधौ ॥१३९॥

इन्द्र की स्तुति करते हुये अङ्गिरस् के पुत्र शिशु ने अन्य ऋषियों की उपस्थिति में 'नानानाम्' (ऋग्वेद ९ ११२) सूक्त द्वारा उनसे यह बताया।

२९-इन्द्र और ऋषि-गण । तप का माहात्म्य ।

तानिन्द्रस्त्वाह सर्वास्तु तपध्वं सुमहत्तपः ।

न ह्यृते तपसः शक्यम् इदं कृच्छं व्यपोहितुम् ॥१४०॥

उन सबसे इन्द्र ने कहा 'आप सब महान तप करें क्योंकि बिना तप के इस कष्ट का निवारण नहीं किया जा सकता।'

अथ ते वै तपस्तेषुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः ।

ततस्ते तपसोप्रेण पावमानीर्कचोऽब्रुवन् ॥१४१॥

स्वर्ग की आकांक्षा रखनेवाले उन सब ने तप किया। तप उग्र तप के परिणाम स्वरूप उन लोगों ने (सोन) पवमान से सम्बन्धित श्रुतियों का उच्चारण किया।

अनसूयुरधीयानः शुश्रूषुस्तपसान्वितः ।
दश पूर्वापरान् वंश्यान् पुनात्यात्मानमेव च ॥१४२॥

जो ईर्ष्यालु नहीं है, जो अध्यवसायी, सेवी और तप करनेवाला है वह अपने दस पूर्वजों और वंशजों को तथा अपने को भी पवित्र कर देता है ।

पापं घञ्जाकरोत्किञ्चिन् मनोवाग्देहभोजनैः ।
पूतः स तस्मात्सर्वस्मात् स्वाध्यायफलमश्नुते ॥१४३॥

और मन, वाणी, शरीर, और भोजन से उमने जो भी किया होता है—उस सबसे पवित्र होकर वह स्वाध्याय का फल प्राप्त करता है ।

पावमान्यः परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् ।
गायत्र्योऽन्तेऽत्र यश्चासां प्राणानायम्य तन्मनाः ॥१४४॥
पावमानं पितृन्देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम् ।
पितृस्तस्योपवर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥१४५॥

पावमानी गायत्रियों^१ ही उज्ज्वल और सनातन ज्योतिरूप^२ परमब्रह्म हैं । जो अपने अन्त समय में प्राणायाम^३ करते हुये इनका ध्यान करता है और जो पावमान, पितरों, देवताओं और सरस्वती^४ का ध्यान करता है—उसके पितरों के समीप दूध, घृत, मधु, और जल की धारा बहती है ।

^१ तु० को० ऋग्विधान ३. १, १ : 'स्नादिष्टयेति गायत्रीः पावमानीर् जवेद् दिवः'; तु० की० निरुक्त ५. २, ३ ।

^२ तु० को० ऋग्वेद ९. ११३. ६-७ : 'यत्र ब्रह्मा यत्र ज्योतिर् अजलम्' ।

^३ तु० को० ऋग्विधान ३. ३, ५ : 'प्राणान् आयम्य च ध्यायेद् अन्ते देवान् पितृन् ऋचीन्'; तु० की० २. ४, २-३ भी ।

^४ तु० को० ऋग्विधान ३. ३, ६ : 'सरस्वतीं चार्चयति पवोऽम्बुमधुमपिपा'; और ३. २. ३ : 'अशुभ्यं च नवेद् दत्तं पितृभ्यः परम मधु ।'

एतत्सूक्तशतं सौम्यं मण्डलं सचतुर्दशम् ।
पावमानमिति ख्यातम् अनुवाकास्तु सप्त वै ॥१४६॥

मोम को सम्बोधित एक सौ चौदह सूक्तों वाले इस मण्डल को पावमान कहा गया है, और इसमें सान अनुवाक हैं ।

दशम मण्डल

३०-ऋग्वेद १०. १-८ के देवता । त्रिशिरस् और इन्द्र ।

सप्तान्नेयानि सूक्तानि ददर्शाग्र इति त्रितः ।

प्र केतुनेति त्वाष्ट्रस्तु त्रिशिराः सूक्तमुत्तरम् ॥१४७॥

त्रित ने 'अग्ने' से आरम्भ अग्नि को सम्बोधित सात सूक्तों (ऋग्वेद १०. १-७) का दर्शन किया, किन्तु त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरस् ने 'प्र केतुना' (ऋग्वेद १०. ८) से आरम्भ बाद के सूक्त का ।

ऋचस्त्वस्य पलाग्नेयस्तृचस्त्वस्येति यः परः ।

तेनेन्द्रमभितुष्टाव स्वप्नान्त इति नः श्रुतिः ॥१४८॥

इस सूक्त की छः ऋचाये (ऋग्वेद १०. ८, १-६) अग्नि को सम्बोधित है, जब कि 'अस्य' से आरम्भ बाद की तीन ऋचाओं (७-९) से इन्होंने एक स्वप्न के अन्त में इन्द्र की स्तुति की है—ऐसी हमारी श्रुति है ।

अभवत्स हि देवानां पुरीधाः प्रियकाम्यया ।

असुराणां स्वसुः पुत्रस् त्रिशिरा विश्वरूपधृक् ॥१४९॥

असुरों की एक बहन के पुत्र होने के कारण विश्वरूप धारण कर सकने वाले त्रिशिरस् असुरों का लाभ चाहने की इच्छा से देवों के पुरोहित बन गये ।

तमृषिं प्रहितं त्विन्द्रो देवेषु बुबुधेऽसुरैः ।

सोऽस्य बज्रेण तान्याशु शिरांसि त्रीण्यथाच्छिदत् ॥

इन्द्र यह जान गये कि ऋषि (त्रिशिरस्) को असुरों ने ही देवों के बीच भेजा है । तब उन्होंने शीघ्रतापूर्वक उसके तीन शिरों को अपने बज्र से काट कर गिरा दिया ।

तस्य यत्सोमपानं तु मुखं सोऽभूत्कपिञ्जलः ।

कलविद्धः सुरापाणम् अन्नादं तित्तिरिस्त्वभूत् ॥ १५१ ॥

जिस मुख से उसने सोमपान किया था वह कपिञ्जल बन गया, जिससे सुरापाण किया था वह कलविद्ध बन गया, जब कि वह जिससे उसने भोजन किया था तित्तिरि बन गया ।

३१-ऋग्वेद १०. ९-१४ के देवता

तं यागन्यवदद्वाही ब्रह्महासि शतक्रतो ।

प्रपन्नं हतवान्यस्माद् विश्वरूपं पराद्भुखम् ॥ १५२ ॥

उन्हें (इन्द्र को) आही वाक् ने सम्बोधित किया : 'तुम ब्रह्म-हासारे हो, हत दानकणु ! क्योंकि तुमने उस विश्वरूप का वध किया है जो पराङ्मुख होकर अरणागत था ।

तमन्यसिञ्जत्सूक्तेन ऋषिराप इति स्वयम् ।

सिन्धुद्वीपोऽपनुत्पर्यं तस्याऽशीलस्य पाप्मनः ॥ १५३ ॥

उन्हें (इन्द्र को) स्वर्यं अपि सिन्धुद्वीप^१ ने 'आप' (ऋग्वेद १०. ९) के साथ, उनके अशील पाप का निवारण करने के लिये, जल से अभिमिश्रित किया ।

^१ऋग्वेद १०, ९ के द्वारा ऋषि का नाम; देखिये आपानुक्रमणी १०. २; ऋग्वेद १०. ९, पर सवांनुक्रमणी ।

मैथुनार्थमभीप्सन्तीं प्रत्याचष्टे यमीं यमः ।

तदो चिदिति संवादो विवस्वत्सुतयोस्तयोः ॥ १५४ ॥

मैथुनार्थं निवेदन करनेवाली यमी को यम ने अस्वीकृत कर दिया : 'लो चिद' (ऋग्वेद १०. १०) में निहित विवस्वत् के उन दो पुत्रों के बीच संवाद इसका वर्णन करता है ।

वृषाग्नेये हविर्घानि युजे वामत्र संस्तुते ।

परेषिवांसमित्पत्र स्तूयते मध्यमो यमः ॥ १५५ ॥

'वृषा' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. ११-१५) अग्नि को सम्बोधित हैं । 'युजे वाम' (ऋग्वेद १०. १३) सूक्त में दो हविर्घानों की साथ-साथ स्तुति है । 'परेषिवांसम्' (ऋग्वेद १०. १४) में मध्यम यम^१ की स्तुति है ।

^१तु० की० निरुक्त २१ २८ त्ही ऋग्वेद १०. १५. १ के 'म'पनाः पितरः' शब्दों पर लिप्यना टावे दुये वाम्ब ह्य मध्यर मा त्यक्त करते हैं : माप्यनिको यम इत्य् जाटुम्. त्वनात् माप्यनिकान् विभून् यन्तवे ।'

अथर्वाणोऽथ भृगवोऽङ्गिरसः पितरः सह ।

पृष्ठवां देवगणास्तत्र संस्तूयन्ते शुभक्तयः ॥ १५६ ॥

इसके बाद वहाँ (ऋग्वेद १० १४, ६) इठवी ऋचा में अथर्वनों, भृगुओं, अङ्गिरसों और पितरों की स्वर्गलोक से सम्बद्ध देवों के रूप में स्तुति है।

३२-ऋग्वेद १० १४ के देवता (क्रमशः), और १५ और १६। तीन अग्नि पितृभिश्चाङ्गिरोभिश्च संस्तुतो दृश्यते यमः।

मन्त्रेषु बहुशः पादे विवस्वन्तं पिता हि सः ॥ १५७ ॥

मन्त्रों में यम की अवसर पितरों और अङ्गिरसों के साथ स्तुति दिखाई देती है, क्योंकि 'विवस्वन्तम्' (ऋग्वेद १० १४, ५) से आरम्भ पाद में यह स्वयं एक पिता है।

संस्कार्यप्रेतसंयुक्तैः पितृभिः स्तूयते यमः।

प्रेहि प्रेहीति तिसृषु प्रेताशिष उदाहृताः ॥ १५८ ॥

यम की संस्कार्य प्रेता मा के साथ संयुक्त पितरों के साथ स्तुति होती है। 'प्रेहि प्रेहि' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १४, ७-९) में प्रेतों की स्तुतियाँ उद्धृत हैं।

पितृणां हि पतिर्देवो यमस्तस्मात्स सूक्तभाक्।

अति द्रव तृचे श्वानौ परं पित्र्यमुदीरताम् ॥ १५९ ॥

यम देवता पितरों का अधिपति है, अतः यह सूक्तभाक् है।

'अति द्रव' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १४, १०-१२) में दो कुत्तों की स्तुति है। 'उद् ईरताम्' (ऋग्वेद १० १५) सूक्त पितरों को सम्बोधित है।

उत्तरेण तु सूक्तेन श्मशाने कर्म शंसति।

पितृदेवासुराणां च अभवन्नग्रयस्त्रयः।

हव्यकव्यवहौ चोभौ सहरक्षश्च नाम यः ॥ १६० ॥

किन्तु बाद के सूक्त में ऋषि ने श्मशान कर्म की प्रशस्ति की है।

पितरों, देवों और अमुरों से सम्बद्ध तीन अग्नि थे दो वह जो हव्य और कव्य के वाहक हैं और एक वह जिसे सहरक्षस कहते हैं।

तत्र मैनमिति त्वेतत् कव्यचाहनसंस्तुतिः।

इतराणि त दैवस्य स्ततिर्नास्यामरस्य च ॥ १६१ ॥

इनके सम्बन्ध में 'मैवम्' (ऋग्वेद १०. १६) सूक्त कल्पवाहक को स्तुति करता है । फिर भी, अन्य सूक्त इस (पितरों से सम्बद्ध) अथवा आसुर अग्नि को नहीं बरन् दिव्य अग्नि की स्तुति करते हैं ।

३३-सरण्यू की कथा : ऋग्वेद १०. १७

अभवन्मिथुनं त्वष्टः सरण्यूस्त्रिशिराः सह ।
स वै सरण्यूं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते ॥१६२॥

एषा के दो यमज, सरण्यू तथा त्रिशिरस्, नामक समताने थीं । स्वयं उन्होंने (त्वष्टा ने) ही सरण्यू को विहाह में विवस्वत् को दे दिया था ।

ततः सरण्यूर्वा जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वतः ।
तौ चाप्युभौ यमावेव ज्यायांस्ताभ्यांतु वै यमः ॥१६३॥

तब सरण्यू से विवस्वत् हुआ यम और यमी का जन्म हुआ । यह दोनों भी यमज थे, किन्तु इन दोनों में यम परेष्ठ थे ।

॥ इति बृहदेवतायां षष्ठोऽध्यायः ॥



१-सरण्यू की कथा (क्रमशः)

सृष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्यूः सदृशीं स्त्रियम् ।

निक्षिप्य मिथुनं तस्याम् अश्वा भूत्वापचक्रमे ॥ १ ॥

अब, अपने पति की अनुपस्थिति में सरण्यू ने अपने समान ही एक स्त्री की सृष्टि करके तथा उसे ही यमजों को दे कर अपने को अश्वी बना-लिया और चली गई ।

अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु तस्यामजनयन्मनुम् ।

राजर्षिरभवत्सोऽपि विवस्वानिव तेजसा ॥ २ ॥

किन्तु, अनभिज्ञतावश विवस्वन् ने इसी (स्थानापन्न) से मनु को उत्पन्न किया । (मनु) भी विवस्वत् के समान तेजवाले एक राजर्षि बने ।

स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्यूमश्वरूपिणीम् ।

त्वाष्ट्रीं प्रति जगामाशु वाजी भूत्वा सलक्षणः ॥ ३ ॥

फिर भी, जब वह (विवस्वत्) यह जान गये कि सरण्यू एक अश्वी के रूप में चली गई है, तब वह भी अपने को सलक्षण अश्व के रूप में परिणत करके शीघ्रतापूर्वक त्वष्टा की पुत्री के पीछे चले ।

सरण्यूश्च विवस्वन्तं विदित्वा ह्यरूपिणाम् ।

मैथुनायोपचक्राम तां च तत्रारोह सः ॥ ४ ॥

और अश्व के रूप में विवस्वत् को पहचान का सरण्यू ने उनसे मैथुन का आग्रह किया, और उन्होंने (विवस्वत् ने) उस पर वहीं आरोहण किया ।

ततस्तयोस्तु वेगेन शुक्रं तदपतद्भुवि ।

उपाजिघ्रच्च सा त्वश्वा तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ॥ ५ ॥

तब उन लोगों के उद्योपन के कारण शुक्र भूमि पर गिर पडा, और सन्तान की इच्छा के कारण उस अश्वी ने शुक्र को सूँघा ।

२-सरण्यू की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १०. १७ के देवता

आघ्रातमात्राच्छुक्रात्तु कुमारौ संवभूवतुः ।

नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ स्तुतावश्विनाविति ॥ ६ ॥

वृद्धदेवता ७. ७-११

तव उस शुक से, जिसे उसी समय सँघा गया था, दो कुमार, नासत्य और दल, प्रकट हुये जिनकी 'अभिनों' के रूप में स्तुति की जाती है।

इतिहासनिर्मं यास्कः सरण्यूदेवते वृचे ।

विष्वतश्च त्वष्टुश्च त्वष्टेति सह मन्यते ॥ ७ ॥

यास्क ने 'वृष्टा' से आरम्भ उन दो ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १०, १-२) में इसे विष्वत् और त्वष्टृ की कथा' माना है जिनकी देवता सरण्यू है।
 * १० की० यास्क : निरुक्त १२. १० : 'त्वेतिहासन् आचक्षते' ।

पूषेति पादौ पौष्णौ द्वाव् आग्नेयावुत्तरो तु यौ ।

स्यात्तृतीयोऽपि वा पौष्णस् तिस्रश्चान्याः परास्तु याः ॥

'पूषा' (ऋग्वेद १०. १७, ३) से आरम्भ दो पाद पूषन् को सम्बोधित हैं, किन्तु इसके बाद के दो अग्नि को; तृतीय पाद को भी वैकल्पिक रूप से पूषन् को सम्बोधित किया जा सकता है; और जो तीन ऋचायें (ऋग्वेद १०. १७, ४-६) बाद में आती है वह भी इन्हें ही सम्बोधित हैं।

अपां स्तुतिस्त्वृगत्रैका तृचात्सारस्वतात्परा ।

स्तुतः परोक्षः सोमस्तु द्रप्स इत्युत्तरे तृचे ॥ ९ ॥

किन्तु सरस्वती को सम्बोधित तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १७, ७-९) के बाद इस शुक में जो ऋचा आती है उसमें जलों की स्तुति है, जब कि 'द्रप्सः' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १७, ११-१३) में सोम की परोक्ष स्तुति है।

अब्देयताशीर्वादो वा पयस्वत्युत्तरा तु या ।

चतस्रस्तास्तुतिर्मृत्योर्अन्त्ये क्लृप्ताश्च कर्मणि ॥ १० ॥

किन्तु 'पयस्वती' से आरम्भ बाद की ऋचा (ऋग्वेद १०. १७, १४) के देवता जल हैं, अथवा यह आशीर्वाद है। बाद की चार' ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १८, १-४) में मृत्यु की स्तुति है, और ये अन्त्येष्टि कर्म में व्यवहृत हो सकती हैं।

* १० की० सर्वांशुकमशी : 'चतस्रो मृत्युदेवताः'; आथलायन शुद्धान् ४. ६, १० ।

३-ऋग्वेद के १०. १८, अन्त्येष्टि सूक्त का विस्तृत विवरण

मृतशिष्टेभ्य आशास्ते इमे ज्योग्जीवनं पुनः ।
 इमं जीवेभ्य आशास्ते तेभ्यः परिधिकर्मणि ॥ ११ ॥

'इमे' (ऋग्वेद १०. १८, ३) ऋचा एंसों के लिये दीर्घायुष्य का आशीस है जो मृत्यु से बच गये हों, 'इम जीवेभ्य' (ऋग्वेद १०. १८, ४) पुन इन्हीं लोगों को परिधि कर्म में आशीस देता है ।^१

^१ ऋग्वेद १० १८, ४ 'इम जीवेभ्य परिधिं दधामि', तु० की० सत्यन, आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ ६, ९ ।

यथा धात्र्युत्तरा त्वाष्ट्री ततो यान्या इमास्त्विति ।

स्त्रीणामाशिपमाशास्ते तथैवाञ्जनकर्मणि ॥ १२ ॥

'यथा' (ऋग्वेद १० १८, ५) धात्रु को सम्बोधित है, इसके बाद की ऋचा (६ वीं) त्वष्टा को, इसके बाद 'इमा' (ऋग्वेद १०. १८, ७) द्वारा ऋषि अञ्जनकर्म में स्त्रियों को आशीस देता है ।

^१ तु० वा० ऋग्वेद १० १८, ७ 'इमा भारीर् आञ्जनेन सपिषा सविशन्तु', आश्वलायन गृह्यसूत्र ४ ६ ११ १२ ।

उदीर्ष्व नारीत्यनया मृतं पत्न्यनुरोहति ।

भ्राता कनीयान्प्रेतस्य निगद्य प्रतिषेधति ॥ १३ ॥

'उद् ईर्ष्व नारि' (ऋग्वेद १०. १८, ८) ऋचा के साथ अपने पति की मृत्यु के बाद पत्नी (चिता पर) नारोहण करती है । मृत व्यक्ति का कनिष्ठ भ्राता (ऋचा को) दुहराते हुते उसको (स्त्री को) रोकता है ।^१

^१ तु० की० ऋग्विधान ३ ८, ४ 'देवरोऽन्वारुक्षन्तीम् उद् ईर्ष्वेति निवर्तयेत्', आश्वलायन गृह्यसूत्र ४. २, २८ । देखिये नीचे ७ १३० भा ।

कुर्यादेतत्कर्म होता देवरो न भवेद्यदि ।

प्रेतानुगमनं न स्याद् इति ब्राह्मणशासनात् ॥ १४ ॥

यदि देवर न हो तो इस कर्म को होता को करना चाहिये, क्योंकि एक ब्राह्मण का कहना है कि (विधवा द्वारा) प्रेतानुगमन नहीं होना चाहिये ।

वर्णानामितरेषां च स्त्रीधर्मोऽयं भवेन्न वा ।

शान्त्यर्थं धनुरादाने प्रेतस्यर्चं धनुर्जपत् ।

यस्मादेताः प्रयुज्यन्ते इमशाने चान्त्यकर्मणि ॥ १५ ॥

तस्माद्भेदतृचस्यास्य देवतां मृत्युमेव तु ।

मन्त्रेषु ह्यनिरुक्तेषु देवतां कर्मतो वदेत् ॥ १६ ॥

शिवों से सम्बद्ध यह नियम अन्य वर्णों के लिये अपहृत हो भी सकता है और नहीं भी।

सुन व्यक्ति से घनुष लेने समय धाम्नि के लिये 'घनुः'^१ (ऋग्वेद १०. १८, ९) श्रचा द्वारा अर्चना करनी चाहिये। और यतः इन श्रचाओं का रममाण पर अन्वेषिकर्म में प्रयोग होता है, अतः इन तीन श्रचाओं (ऋग्वेद १०. १८, ४-९) का सत्यु को ही देवता मानना चाहिये, क्योंकि जिन मन्त्रों में स्पष्ट न कहा गया हो वहाँ कर्म के आधार पर ही देवता को बताना चाहिये।

^१ तु० श्री० आपत्तपत्र गृह्यसूत्र ४. २, २०।

४-देसे मंत्र जिनमें किसी देवता का उल्लेख नहीं होता

मन्त्रतः कर्मतश्चैव प्रजापतिरसंभवे।

पराश्रतत्रो यास्त्वत्र उप सर्पति पार्थिवी ॥ १७ ॥

सम्ब और कर्म दोनों के आधार पर देवता के न होने पर उमका देवता प्रजापति होता है।^१

अब यहाँ 'उप सर्प' (ऋग्वेद १०. १८, १०) से आरम्भ वाद की चार श्रचायें (१०-१३) पृथिवी को सम्बोधित हैं।

^१ तु० श्री० ऋग्वेद १०. १८ की अन्तिम श्रचा पर सरातुक्रमणी 'अनया'... 'शान्त-पत्न्या वा साऽभिरक्ष्णा'; जिस पर पदशुद्धिश्च सह विष्ण्या करते हैं: 'म च अनिरक्षा अमन्त्राश्रितविताना'।

तासां प्रयोगः प्रेतस्य अस्थिसंचपकर्मणि।

प्रतीचीने यथाहानि अपहृत्येतराणि तु ॥ १८ ॥

अहःसु पितरो दधुर् इत्याशास्तेऽन्त्यपाशियः।

अहः स्वागामिषु च मां प्रयन्तं समर्जीवयन् ॥ १९ ॥

इनका व्यवहार प्रेत की अस्थियों के संघट्ट में होता है। 'प्रतीचीने' (ऋग्वेद १०. १८, १४) से आरम्भ अन्तिम श्रचा में श्रुति यह आशिल स्पष्ट करता है: 'जिस प्रकार मेरे अन्य दिनों को अपहृत करके पितरों ने (हमें अर्कत) दित प्रदान किये हैं, उसी प्रकार, मरने के निकट हमें जीवने के आगामी दित भी प्रदान किये हैं।'

^१ तु० श्री० आपत्तपत्र गृह्यसूत्र ४. ५, ७।

नि वर्तध्वमितीदं तु गवां केचिदपां विदुः ।

अर्धर्चः प्रथमायास्तु अग्नीषोमीय उत्तरः ॥ २० ॥

अब 'नि वर्तध्वम्' (ऋग्वेद १०. १९) में गायों की स्तुति है, कुछ लोग इसमें जलों की स्तुति मानते हैं। फिर भी, प्रथम ऋचा की वाद की अर्ध ऋचा अग्नि-सोम को सम्बोधित हैं।^१

^१ तु० वी० सर्वानुक्रमणी 'अपा गन्व वा ****अग्नीषोमायो दितायोर्ध्वं च ।'

५-ऋग्वेद १०. १९-२७ के देवता

ऐन्द्री पृष्ठी द्वितीयायाम् उभौ देवौ निपातितौ ।

दशाक्षरं तु शान्त्यर्थं मानसं सूक्तमुच्यते ॥ २१ ॥

छठवीं ऋचा (ऋग्वेद १०. १९, ६) इन्द्र को सम्बोधित है, जब कि दूसरे में उभय देवताओं का नैपातिक उल्लेख है। अब जिस सूक्त में दस अक्षर हैं (ऋग्वेद १०. २०, १) उसे मानसिक शान्ति से सम्बन्धित सूक्त कहते हैं।

त्रीण्यैन्द्राणि कुहेत्यत्र आग्नेयाभ्यां पराणि तु ।

तृचोऽत्रास्त्याश्विनस्त्वेक ऐन्द्राणामुत्तमे युवम् ॥ २२ ॥

अब यहाँ अग्नि को सम्बोधित दो सूक्तों (ऋग्वेद १०. २०-२१) के वाद 'कुह' से आरम्भ तीन इन्द्र को सम्बोधित सूक्त (ऋग्वेद १०. २२-२४) आते हैं। इन सूक्तों में से अन्तिम में 'युवम्' से आरम्भ तीन ऋचायें (ऋग्वेद १०. २४, ४-६) अश्विनों को सम्बोधित हैं।

भद्रं सौम्यं प्र हि पौष्णं त्रीण्यैन्द्राणि पराण्यसत् ।

तेषामाद्येन मत्तः सन् स्वानि कर्माणि शंसति ॥ २३ ॥

यथा चरति भूतेषु यथा वर्षति पाति च ।

सूक्ते तदस्मिन्नष्टाभिर् ऋग्भिरुक्तमभूर्विति ॥ २४ ॥

'भद्रम्' (ऋग्वेद १०. २५) सोम को सम्बोधित है, 'प्र हि' (ऋग्वेद १०. २६) पूषन् को सम्बोधित है। 'असत्' से आरम्भ तीन वाद के सूक्त (ऋग्वेद १०. २७-२९) इन्द्र को सम्बोधित हैं, इनमें से प्रथम (२७वें) में आह्लादित होकर इन्द्र ने अपने कर्मों की प्रशस्ति की है, यह भूतों के बीच

में कैसे चकते हैं, कैसे वर्षा और रक्षा करते हैं, इत्यादि 'वभूर् ३' से आरम्भ हुयी सूक्त की आठ श्रचाओं (श्रवेद १०. २७, ७-११) में वर्णन है ।

६-अग्नेद १०. २७ (कामशाः) । अग्नेद १०. २८ : इन्द्र और
धनुक का संवाद

सप्तेति भरुत स्तौति स्तौति वज्रमृगुत्तरा ।
अग्निमिन्द्रं च सोमं च पीवानं भेषमर्चति ॥ २५ ॥
पूर्वांऽर्ध्वांऽपरस्तस्याः पर्जन्यं वायुना सह ।
वि क्रोशानास इत्यग्निम् उत्तरा सूर्यमेव तु ॥ २६ ॥

'सप्त' (श्रवेद १०. २७, १५) महलों की स्तुति करता है; बाद की श्रचा (११) वज्र की स्तुति करती है; 'पीवानं भेषम' (अग्नेद १०. २७, १७) श्रचा, अग्नि, इन्द्र और सोम की अर्चना करती है; अर्थात् प्रथम अर्ध-श्रचा (१७ वां श्रचा की) में देखा ही है, जब कि इसकी द्वितीय अर्ध-श्रचा में पर्जन्य और वायु की स्तुति है । 'वि क्रोशानास' (श्रवेद १०. २०, १८) अग्नि की, किन्तु बाद की श्रचा (१५ वां) सूर्य की स्तुति करती है ।

एतौ मेऽयं ष इत्येते स्तुतिश्चैवेन्द्रवज्रयोः ।
वृक्षेवृक्षे धनुश्चैन्द्रं देवानामिति तु त्रयः ॥ २७ ॥
शीतोष्णवर्षदातारः पर्जन्यानिलभास्कराः ।
अन्त्ये सूर्यानिलौ चोभौ स्तूयेते च पदे सह ॥ २८ ॥

'एतौ मे' (अग्नेद १०. २०, २०) और 'अयं ष' (अग्नेद १०. २७, २१) में इन्द्र और वज्र की, और 'वृक्षे-वृक्षे' (अग्नेद १०. २०, २२) में इन्द्र के धनुष की स्तुति है । किन्तु 'देवानाम' (अग्नेद १०. २०, १३) में शीत, उष्णता, और वर्षा के दाता, पर्जन्य, वायु, और सूर्य की स्तुति है, और इससे अन्तिम पाद में सूर्य और वायु की साथ-साथ स्तुति है ।

सा ते जीवातुरित्यस्याम् इन्द्रो वा सूर्य एव वा ।
विम्बो ह्यन्यस्तु संवाद प्रापेः शक्तस्य चैव हि ॥ २९ ॥

'सा ते जीवातुः' (अग्नेद १०. २७, १४) श्रचा में इन्द्र अथवा सूर्य की स्तुति है । किन्तु 'विम्बो ह्य अन्यः' (अग्नेद १०. २८) शक्र और प्रापि क संवाद है ।

युग्माः शक्रस्य विज्ञेया वसुकस्येतरा ऋचः ॥

स्तुपेन्द्रस्यागतान्देवान् दृष्ट्वा शक्रमनागतम् ॥ ३० ॥

यज्ञं परोक्षवत्प्राह श्वशुरो नागतो मम ।

यद्यागच्छेद् भक्षयेत्स धानाः सोमं पिवेदपि ॥ ३१ ॥

युग्म ऋचाओं को शक्र को जानना चाहिये और अन्य को वसुक^१ की । इन्द्र की पुत्र-वधू ने देवताओं को आया हुआ देखकर, किन्तु यह देखकर कि यज्ञ के लिये शक्र नहीं आये, उन्हें (शक्र को) परोक्ष रूप से सम्बोधित किया : 'मेरे श्वशुर नहीं आये हैं, यदि आयें तो अन्न का भक्षण और सोम का पान भी करें ।'^२

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी 'इन्द्रस्व स्तुषा परोक्षवद् इन्द्रम् प्राह ।'

^२ तु० की० ऋग्वेद १० २८, १ : 'मम "श्वशुरो ना अगाम जशीयाद् धाना उत सोम पपीयात् ।'

७-ऋग्वेद १०. ३०-३३ के देवता

इति तस्या वचः श्रुत्वा तत्क्षणादेत्य वज्रधृक् ।

तिष्ठन्वेद्यामुत्तरस्याम् उच्चैराह स रोरुवत् ॥ ३२ ॥

उसके इस वचन को सुनकर वज्रधर उसी क्षण आये और उत्तरा वेदि पर खड़े होकर उच्च स्वर से 'स रोरुवत्' (ऋग्वेद १०. २८, २) कहा ।

तृतीयया चतुर्थ्या च प्र देवत्रेत्यपां स्तुतौ ।

अपांनपादित्यनेन नाम्नाग्निर्मध्यम स्तुतः ॥ ३३ ॥

'प्र देवत्र' (ऋग्वेद १० ३०) से आरम्भ जलों की स्तुति में, तृतीय ऋचा में मध्यम अग्नि की अपा नपात् के रूप में स्तुति है ।

एति यद्वैश्वदेवं तु तस्य प्रेत्यैन्द्रमुत्तरम् ।

वैश्वदेवी प्र मेत्येका सं मेत्यैन्द्रो वृचः परः ॥ ३४ ॥

अथ जो सूक्त 'आ' (ऋग्वेद १०. ३१) से आरम्भ होता है वह विश्वेदेवों को सम्बोधित है, इसके बाद 'प्र' (ऋग्वेद १० ३२) इन्द्र को सम्बोधित है । एक 'प्र मा' (ऋग्वेद १०. ३३, १) ऋचा विश्वेदेवों को सम्बोधित है, 'सं मा' (ऋग्वेद १०. ३३, २. ३) से आरम्भ दो वाद की ऋचायें इन्द्र को सम्बोधित हैं ।

वृत्ता ७. ३५-३९

८-अक्ष-सूक्तः १०. ३४। ऋग्वेद १०. ३५-४४ के देवता
 कुरुश्रवणमर्चतः परे द्वे त्रासदस्यवम्।
 मृते मित्रातिथौ राज्ञि तन्नपातमृषिः परैः ॥ ३५ ॥
 उपमश्रवसं यस्य चतुर्भिः स व्यशोकयत्।
 प्रावेपा इति सूक्तं यत् तदक्षस्तुतिरुच्यते ॥ ३६ ॥

शब्द की दो ऋचायें (ऋग्वेद १०. ३३, ४-५) कुरुश्रवण त्रासदस्यव की
 अर्चना करती हैं। राजा मित्रातिथि की मृत्यु पर ऋषि ने 'यस्य' से आरम्भ
 चार ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ३३, ६-९) द्वारा (मित्रातिथि के) पौत्र
 उपमश्रवस को सम्बन्धना दी है। 'प्रावेपाः' (ऋग्वेद १०. ३४) से आरम्भ
 सूक्त को अक्षस्तुति कहा गया है।

अत्राक्षान्द्वादशी स्तौति नवम्याथा च सप्तमी।
 त्रयोदशी कृषिं स्तौति कितवं चानुशासति।
 अक्षांस्तु शेपा निन्दन्ति अबुध्रं वैश्वदेवते ॥ ३७ ॥
 यहाँ बारहवीं, नवीं, प्रथम और सातवीं ऋचायें अक्ष की स्तुति करती
 हैं (ऋग्वेद १०. ३४, १. ७. ९. १२)। तेरहवीं ऋचा में कृषि की स्तुति
 और अक्ष की स्तुति का अनुशासन है।
 किन्तु शेप ऋचायें अक्ष की निन्दा करती हैं। 'अबुध्रम्' से आरम्भ दो
 सूक्त (ऋग्वेद १०. ३५-३६) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं।

सावित्रमेके मन्यन्ते महो अग्ने स्तवं परम्।
 आचार्याः शौनको यास्को गालवश्चोत्तमामृचम् ॥ ३८ ॥
 कोई यह मानता है कि अन्त की 'महो अग्नेः' (ऋग्वेद १०. ३६, १२-
 १४) से आरम्भ स्तुति सावित्र को सम्बोधित है। शौनक, यास्क, और गालव
 आदि आचार्य केवल अन्तिम (१४ वीं) को ही ऐसा मानते हैं।

नमः सौर्यमैन्द्रमस्मिन् सौर्ये पृथया तु या स्तुताः।
 निपातिन्यस्ताः सूक्तान्ते वैश्वदेवोऽत्र तु वृचः ॥ ३९ ॥
 'नमः' (ऋग्वेद १०. ३७) सूर्य को और 'अस्मिन्' (ऋग्वेद १०. ३८)
 इन्द्र को सम्बोधित है। किन्तु सूर्य को सम्बोधित सूक्त की छठवीं ऋचा
 (ऋग्वेद १०. ३७, ६) में त्रिन देवताओं की स्तुति है वह नैपातिक है।

इस सूक्त के अन्त में दो ऋचाएँ (ऋग्वेद १०. ३७, ११-१२) विश्वदेवों को सम्बोधित हैं ।

आश्विनानि तु यन्त्राणि ऐन्द्राण्यस्तेव सु प्र च ।

ऐन्द्राणामुत्तमायास्तु स्तुतोऽर्धर्चं बृहस्पतिः ॥४०॥

अब, 'य' से आरम्भ तीन सूक्त (ऋग्वेद १०. ३९-४१) अश्विनों को सम्बोधित है, और 'आस्तेव सु प्र' से आरम्भ तीन (ऋग्वेद १०. ४२-४४) इन्द्र की, किन्तु इन्द्र सूक्तों (४२-४४) की अन्तिम ऋचा की एक अर्ध ऋचा (११ वीं ऋचा की) में बृहस्पति की स्तुति है ।

९-ऋग्वेद १०. ४५-४६ के देवता । घोषा की कथा ।

परे दिवस्परीयन्नेये प्रथमस्योत्तमेन तु ।

द्यावापृथिव्यौ विश्वे च पृच्छोऽर्धर्चं संस्तुताः ॥४१॥

'दिवस् परि' (ऋग्वेद १० ४५, ४६) से आरम्भ बाद के सूक्त अग्नि को सम्बोधित हैं । किन्तु प्रथम की अन्तिम अर्ध ऋचा (ऋग्वेद १० ४५, १२) में दो पादों में पृथिवी और आकाश, और विश्वदेवों की स्तुति है ।

आसीत्काक्षीवती घोषा पापरोगेण दुर्भगा ।

उवास पट्टिं वर्षाणि पितुरेव गृहे पुरा ॥४२॥

कक्षावत् की पुत्री घोषा एक पाप रोग से अपङ्ग हो गई । प्राचीनकाल में वह साठ वर्षों तक अपने पिता के गृह में रही ।

आतस्थे महर्तां चिन्तां न पुत्रो न पतिर्मम ।

जरां प्राप्तां मुधा तस्मात् प्रपद्येऽहं शुभस्पती ॥४३॥

उस अल्पमत्त चिन्ता हुई कि 'विना पुत्र अथवा पति के मैं वृधा ही जरा अवस्था को प्राप्त हो गई, अतः मैं शुभस्पती की शरण में जाऊँगी ।

यथैतौ मामकस्तात आराध्यावाप यौवनम् ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं सर्वभूतहने विपम् ॥४४॥

रूपवत्तां च सौभाग्यम् अहं तस्य स्तुता यदि ।

ममापि मन्त्राः प्रादुःस्युर् यै स्तोप्येते नयाश्विनौ ॥४५॥

यतः मेरे पिता ने उनकी आराधना करके यौवन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य

ब्रह्मेवता ७. ४६-५०

और सर्वभूतहन् विष प्राप्त किया था, अतः मैं, उनकी पुत्री' भी, रूप और सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ यदि मुझे अभिनों को सन्तुष्ट करनेवाले मन्त्र प्राप्त हो जाय ।'

१०-घोषा की कथा (शोषांश) ।

चिन्तयन्तीति सूक्ते द्वे यो वां परि ददर्श सा ।
स्तुतौ तावश्विनौ देवौ प्रीतौ तस्या भगान्तरम् ॥४६॥
प्रविश्य विजरारोगां सुभगां चक्रतुश्च तौ ।
भर्तारं ददतुस्तस्यै सुहस्त्यं च सुतं मुनिम् ॥४७॥

जब वह इस प्रकार चिन्तन कर रही थी, तब उसने 'यो वां परि-' से आरम्भ हो सूक्तों (ऋग्वेद १०. ३९-४०) का दर्शन किया । स्तुति की जाने के कारण दिव्य अश्विनद्वय प्रसन्न हुये । उसके अग्रों में प्रवेश करके उन्होंने उसे जरा-विहीन, रोगरहित, और सुन्दर बना दिया । उन लोगों ने उसे एक पति, और पुत्र के रूप में ऋषि सुहस्य, प्रदान किया ।

ददतुस्तत्सुपर्णाभ्यां यन्नासत्येति कीर्त्यते ।
काक्षीवत्यै च घोषायै न तस्यामाजुरोऽनया ॥४८॥

'नासत्यो' ने अपने सुपर्ण अश्वों के माध्यम से कक्षीवत् की पुत्री घोषा को जो कुछ दिया उसका 'न तस्य' (ऋग्वेद १०. ४०, ११) और 'अमाजुरः' (ऋग्वेद १०. ३९, ३) ऋचाओं द्वारा वर्णन किया गया है ।

प्राजापत्यासुरी त्वासीद् विकुण्ठा नाम नामतः ।
सेछन्तोन्द्रसमं पुत्रं तेषेऽथ सुमहत्तपः ॥४९॥

प्राजापति की विकुण्ठा नामक एक असुरी पुत्री थी । इन्द्र के समान पुत्र की इच्छा से उसने महान तप किया ।'
'तु० की० सर्वांशुक्रमणी : 'विकुण्ठा नामासुरीत्यत्रुत्वं पुत्रम् इच्छन्ती मदय तपस् तेषे ।'

११-इन्द्र वैकुण्ठ की कथा ।

सा प्राजापतिः कामांहेभेऽथ विविधान् वरान् ।
तस्यां चेन्द्रः स्वयं जज्ञे जिघांसुर्देत्यदानवान् ॥५०॥
तब उसने विभिन्न वरदानों के रूप में प्राजापति से सभी इच्छाओं को प्रा.

किया, और दैत्यों तथा दानवों का वध करने की इच्छा से स्वयं इन्द्र ने उससे जन्म लिया ।^१

^१ तु० वी० सर्वांगुक्रमणी 'तस्या स्वय एवेन्द्र पुत्रो जज्ञे ।'

एकदा दानवैः सार्धं समरे समसज्यत ।

जघान तेषां नवतीर् नव सप्त च सप्तकान् ॥५१॥

एक बार वह दानवों के साथ समर भूमि में युद्ध कर रहे थे । उनमें से उन्होंने नौ मन्वे और सात सात के सात का वध किया ।^१

^१ 'जघान तथा नवतीर् नव', के साथ ऋग्वेद १ ८४, १३ के 'जघान नवतार् नव' की तुलना कीजिये । देखिये महाभारत २ २४, १९ भो, और तु० वी० ऊपर ६ ५१ ११५ ।

भित्त्वा स्वबाहुवीर्येण हैमरौप्यायसीः पुरीः ।

हत्वा सर्वान् यथास्थानं पृथिव्यादिव्यवस्थितान् ॥५२॥

अपने बाहुबल से उनके स्वर्ण, रजत, और लौह दुर्गों को ध्वस्त करके, और पृथिवी तथा अन्य दो लोकों में व्यवस्थित उन सबका यथास्थान वध करके,

पृथिव्यां कालकेयांश्च पौलोमांश्चैव धन्विनः ।

तांश्च व्युत्सादयामास प्रह्लादतनयान्दिवि ॥ ५३ ॥

पृथिवी पर उन्होंने कालकेय और पुलोम जाति के लोगों, धनुर्धरों, और स्वर्ग में प्रह्लाद की दुष्ट सन्तानों का उन्मूलन कर दिया ।

१२-इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (क्रमशः) ।

राज्यं प्राप्य स दैत्येषु स्वेन वीर्येण दर्पितः ।

देवान्वाधितुमारभे मोहितोऽसुरमायया ॥५४॥

दैत्यों का साम्राज्य प्राप्त करके और अपनी वीरता के दर्प में उन्होंने असुरों की माया से मोहित होकर देवों को व्रस्त करना आरम्भ किया ।

बाध्यमानास्तु तेनापि असुरेणामितौजसा ।

उपाधावन्नृपिश्रेष्ठं तत्प्रयोधाय सप्तगुम् ॥५५॥

जब उस असीम शक्तिवाले असुर से वह लोग व्रस्त हो रहे थे तब उससे मुक्ति के लिये वह लोग ऋषि श्रेष्ठ सप्तगु के पास इसलिये भागकर गये कि वह (सप्तगु) उसे (इन्द्र को) रोके ।

ऋपिस्तु सप्तगुर्नाम तस्यासीत्सुप्रियः सखा ।
स चैनमभितुष्टाव जग्भ्मेति करे स्पृशन् ॥५६॥

अब वह ऋषि सप्तगु उनके मिय सखा थे, और इसलिये उनके हाथ का स्पर्श करते हुये उन्होंने 'जग्भ्मे' (ऋग्वेद १०. ४७) सूक्त से उनको सन्तुष्ट किया ।^१

^१ गु० की० सर्वांगुक्रमणी : 'जग्भ्मे' सप्तगु, वैकुण्ठग इन्द्र तुष्टाव ।

१३-इन्द्र वैकुण्ठ की कथा (शोपांश) । अग्नि तथा उनके
भ्राताओं की कथा : ऋग्वेद १०. ५१-५३ ।

ततः स बुद्ध्वा चात्मानं सप्तगुस्तुतिर्हर्षितः ।
आत्मानमेव तुष्टाव अहं भुवमिति त्रिभिः ॥५७॥
कीर्तयन्स्वानि कर्माणि यानि स्म कृतवान्पुरा ।
यथाकरोच वैदेहं व्यंसं सोमपतिं नृपम् ॥५८॥
वसिष्ठशापादभवद् वैदेहो नृपतिः पुरा ।
इन्द्रप्रसादादीजे च सत्रैः सारस्वतादिभिः ॥५९॥
प्रभूतां शक्तिमत्तां च शत्रूणामप्यपाक्रियाम् ।
नृपु सर्वेषु चैश्वर्यं प्रभुत्वं भुवनेषु च ।
प्र वो मह इति त्वस्याम् आत्मनो वीर्यमक्षयम् ॥६०॥

तब आत्मबोध करके और सप्तगु की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्होंने 'अहं भुवम्' से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद १०. ४८-५०) में अपनी स्तुति की; अपने उन कर्मों का वर्णन करते हुये जो उन्होंने प्राचीन काल में किये थे, उन्होंने किस प्रकार विदेह के राजा व्यंस को सोमपति बनाया था—प्राचीन काल में वसिष्ठ के शाप से यह (व्यंस) विदेह के राजा बन गये थे और इन्द्र की कृपा से उन्होंने सारस्वती तथा अन्य नदियों के तट पर यज्ञ-सत्र आयोजित किये थे—और अपनी महान शक्ति तथा शत्रुओं को पट्टे-चाई गई शक्ति, और सम्पूर्ण मनुष्यों के बीच अपने ऐश्वर्य तथा भुवनों पर अपने प्रभुत्व का वर्णन किया; किन्तु 'प्र वो मह' (ऋग्वेद १०. ५०, १) से अपनी अक्षय शक्ति की स्तुति की ।

वैश्वानरे गृहपतौ यद्विष्टेऽग्नौ च पाचके ।
वपद्कारेण वृक्केषु भ्रातृष्वग्नौ सहःस्रुते ॥६१॥

अपचक्राम देवेभ्यः सौचीकोऽग्निरिति श्रुतिः ।

स प्राविशदपक्रम्य ऋतूनपो वनस्पतीन् ॥६२॥

वैश्वानर, अग्नि गृहपति और यविष्ट, पावक, और अग्नि सह-सुत आदि भ्राताओं के वपट्कार द्वारा विघ्न-भिन्न होने पर अग्नि सौचीक देवों के पास से चले गये, ऐसी एक श्रुति है। इस प्रकार चले जाने के बाद वह ऋतुओं, जलों, और वनस्पतियों में प्रवेश कर गये।

ततोऽसुराः प्रादुरासन् नष्टेऽग्नौ हव्यवाहने ।

तेऽग्निमेवान्ववैक्षन्त देवा हत्वासुरान्युधि ॥६३॥

जब हव्यवाहन अग्नि नष्ट हो गये तब असुर-गण प्रगट हुये। असुरों का युद्ध में वध करके देव-गण अग्नि की खोज में इधर-उधर देतने लगे।

१४-अग्नि के पलायन की कथा (क्रमशः)

तं तु दूराद्यमश्चैव वरुणश्चान्वपश्यताम् ।

उभावेनं समादाय देवानेवाभिजग्मतुः ॥ ६४ ॥

तब यम और वरुण ने उन्हें दूर से देख लिया। वह दोनों उन्हें अपने साथ लेकर देवों के पास गये।

दृष्ट्वा देवास्त्वेनमूचुर् अग्ने हव्यानि नो वह ।

वरान् गृहाण चास्मत्तश् चित्रभानो भजस्व नः ।

देवयानान् सुगान् पथः कुरुष्व सुमनाः स्वयम् ॥६५॥

उन्हें देखकर देवों ने कहा : 'हे अग्नि हमारी हवियों को वहन करो, हमसे वर ग्रहण करो; हे चित्रभानु ! हमारी सेवा करो; जिस पथ से देव-गण गये हैं उस पथ को तुम श्रेष्ठ भाव से स्वयं सुगम करो।'

प्रत्युवाचाथ तानग्निर् विश्वे देवा यदूच माम् ।

तत्करिष्ये जुपन्तां तु होत्रं पञ्च जना मम ॥६६॥

शालामुख्यः प्रणीतश्च पुत्रो गृहपतेश्च यः !

उत्तरो दक्षिणाश्चाग्निर् एते पञ्च जनाः स्मृताः ॥६७॥

तब अग्नि ने उत्तर दिया : 'आप सब देवों ने मुझसे जो कुछ कहा है

उत्ते में कहेंगा; किन्तु गुप्ते पञ्चमर्षी का होता बनायें—अब शालामुख्य, प्रणीत, गृहपति के पुत्र, उत्तर और दक्षिणाग्नि, इनको पञ्चजन माना गया है।

१५-‘पञ्च जनाः’ का अर्थ

मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वारगराक्षसाः ।

गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः ॥६८॥

यास्कौपमन्यवावेतान् आहतुः पञ्च वै जनान् ।

निपादपञ्चमान् वर्णान् मन्यते शाकटायनः ॥६९॥

मनुष्य-गण, पितृगण, देवगण, गन्धर्वगण, सर्पगण, राक्षसगण; अथवा गन्धर्वगण, पितृगण, देवगण, असुरगण, यक्ष और राक्षसगण : यास्क और औपमन्यव ने इन्हे ही पञ्चजन माना है। शाकटायन के विचार से यह चार वर्ण और पाँचवें निपादगण है।

ऋत्विजो यजमानं च शाकपूणिस्तु मन्यते ।

होताध्वर्युस्तथोद्गाता ब्रह्मा चेति वदन्ति तान् ॥७०॥

फिर भी शाकपूणि का विचार है कि यह (चार) ऋत्विज् और यजमान हैं। इन्हें (ऋत्विजों को) होतृ, अध्वर्यु, उद्गातृ, और ब्रह्मन् कहते हैं।

चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् च प्राणश्चेत्यात्मवादिनः ।

गन्धर्वाप्सरसो देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥ ७१ ॥

सर्पाश्च ब्राह्मणे चैव श्रूयन्ते ह्यैतरेयके ।

ये चान्ये पृथिवीजाता देवाश्चान्येऽथ यज्ञियाः ॥ ७२ ॥

आत्मवादिनों के कथनानुसार यह चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक् और प्राण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें गन्धर्व और अप्सरायें, देवता, मनुष्य और पितर, और सर्प; कहा गया है, और ऐसे अन्य पार्थिव जीवों तथा अन्य देवों को भी (इनके अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है) जो यज्ञ-भाग प्राप्त करते हैं।

१६-अग्नि के पलायन की कथा (क्रमशः)

आयुरस्तु च मे दीर्घं हवींषि विविधानि च ।

अरिष्टिः पूर्वजानां च भ्रातृणामध्वरेऽध्वरे ॥ ७३ ॥

प्रयाजाश्चानुयाजाश्च घृतं सोमे च यः पशुः ।

मद्देवत्यानि वै सन्तु यज्ञो मद्देवतोऽस्तु च ॥ ७४ ॥

और मुझे दीर्घायु और विविध हवियों प्राप्त हों, तथा मेरे ज्येष्ठ भ्रातागण प्रत्येक यज्ञ में सुरक्षित रहें, और प्रयाज तथा अनुयाज, घृत, और सोम-यज्ञ के बलि पशु के देवता हम ही हों, और यज्ञ के देवता हम ही हों ।

तवाग्ने यज्ञ इत्येतत् प्रत्यार्थिं स्विष्टकृच्च सः ।

यस्य त्रीणि सहस्राणि नव त्रीणि शतानि च ॥ ७५ ॥

त्रिंशच्चैव तु देवानां सर्वानेव वरान्ददुः ।

ततोऽग्निः सुमनाः प्रीतो विश्वैर्दवैः पुरस्कृतः ॥ ७६ ॥

विभूयाद्गानि यज्ञेषु चक्रे होत्रमतन्द्रितः ।

भ्रातृभिः सहितः प्रीतो दिव्यात्मा हव्यवाहनः ॥ ७७ ॥

'तवाग्ने यज्ञ' (ऋग्वेद १० ५१, ९) शब्दों द्वारा इसकी स्वीकृति दी गई, और वह स्विष्टकृत् बन गये, जिनको तीन सहस्र, तीन सौ अनतालीस देवों ने यह सब वर दिये । नव प्रकृतस्थ, प्रसन्न, और विश्वेदेवों द्वारा पुरस्कृत, दिव्यात्मा हव्यवाहन अग्नि अपने ब्रह्मों को हिलाते हुये भ्राताओं सहित प्रसन्न हुये और अतन्द्रित होकर यज्ञों में होतृ का कार्य सम्पन्न करने लगे ।

१७-अग्नि के पलायन की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १०. ५४-५७

तस्यास्थि देवदार्वसीन् मेदो मांसं च गुग्गुलुः ।

सुगन्धितेजनं स्नायु शुक्रं रजतकाञ्चने ॥ ७८ ॥

रोमाणि काशाः केशास्तु कुशाः कूर्मानखानि च ।

अन्त्राणि चैवाप्यवका मज्जा सिकतशर्कराः ॥ ७९ ॥

असृक् पित्तं च विविधा घातवो गैरिकादयः ।

एवमग्निश्च देवाश्च सूक्तैर्महदिति त्रिभिः ॥ ८० ॥

समूदिरे परे त्वस्माद् ऐन्द्रे सूक्ते तु तां सु ते ।

विधुं दद्राणमित्यस्यां सूर्याचन्द्रमसौ स्तुतौ ॥ ८१ ॥

उनकी अस्थियाँ देवदारुवृक्ष बन गईं, उनका मेदा और मांस गुग्गुलु, उनके स्नायु सुगन्धित तेजन, और उनका शुक्र रजत और कञ्चन । उनके शरीर के रोग काश, उनके केश कुश, उनके नख कूर्म, उनकी अतर्कियाँ अवका, उनकी

मजा वात्स और शर्करा; तथा उनके रक्त और पित्त गेरु आदि जैसी विविध धातुयें घन गये। इस प्रकार 'महत्' से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद १०. ५१-५३) में अग्नि और देवताओं ने वार्तालाप किया। अब इसके बाद 'तां सु ते' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. ५३-५५) इन्द्र को सम्बोधित हैं।

'विषुं दद्राणम्' (ऋग्वेद १०. ५५, ५) ऋचा में सूर्य और चन्द्रमा की स्तुति है।

प्राणवच्चात्मवच्चापि स्तुतिरप्यत्र दृश्यते।

इदं द्वे वैश्वदेवे च द्वितीये मनसस्तृचः ॥ ८२ ॥

यहाँ प्राण और आत्मा की भी स्तुति दृष्टिगत होती है।

'इदम्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. ५६-५७) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं। द्वितीय सूक्त (५७) में तीन ऋचायें मनस् को सम्बोधित हैं।

१८-सुबन्धु की कथा : ऋग्वेद १०. ५७-५९।

प्रथमैन्द्री द्वितीयाग्नेद्य् अन्त्या तत्सोमदेवता।

अपि स्तौति पितृनेतद् आर्त्विजं यत्तदुत्तरम् ॥ ८३ ॥

सूक्तमारुयानसंयुक्तं वक्तुकामस्य मे शृणु।

संमोहान्नष्टसंज्ञस्य शत्रुणाभिहतस्य तु ॥ ८४ ॥

जीवावृत्तिः सुबन्धोर्वा यदि वा मनस स्तवः।

राजासमातिरैक्ष्वाकू रथप्रोष्ठः पुरोहितान् ॥ ८५ ॥

व्युदस्य बन्धुप्रभृतीन् द्वैपदा येऽत्रिमण्डले।

द्वौ किराताकुली नाम ततो मायाविनौ द्विजौ ॥ ८६ ॥

असमातिः पुरोऽथत्त वरिष्ठौ तौ हि मन्यते।

तौ कपोतौ द्विजौ भूत्वा गत्वा गोपायनानभि ॥ ८७ ॥

मायाबलाच्च योगाच्च सुबन्धुमभिपेततुः।

स दुःखादभिघाताच्च सुमोह च पपात च ॥ ८८ ॥

प्रथम ऋचा (ऋग्वेद १०. ५७, १) इन्द्र को, और द्वितीय (२) अग्नि को सम्बोधित है, अन्तिम (६) में उसके देवता के रूप में सोम का उल्लेख है। यह सूक्त पितरों की स्तुति करता है अतः ऋत्विजों द्वारा इसका इस आशय में भी स्तवन करना चाहिये। इसके बाद आनेवाला 'यद्' (ऋग्वेद १०. ५८) से आरम्भ सूक्त एक इतिहास से सम्बन्धित है : वर्णन

करने की इच्छावाले मुझसे उसे सुनो यहाँ शत्रु द्वारा अभिहत होने के कारण जब सम्मोहन के परिणामस्वरूप उसकी सजा नष्ट हो गई तब उस समय के सुवन्धु के जीवन के जावृत्ति की, अथवा मनस् की स्तुति है ।

इच्छाकुवशी, रथप्रोष्ठ, राजा असमाति ने वन्धु तथा अन्य उन पुरोहितों को विकाल^१ दिया जो अत्रियों (ऋग्वेद ५. २४) के मण्डल में द्विपदों^२ के ऋषि हैं । असमाति ने किरात और आकुलि^३ नामक दो मायावियों को अपना पुरोहित बना लिया, क्योंकि इसने इन्हें ही सर्वश्रेष्ठ^४ समझा । कपोत बनकर और गौपायनों के विरुद्ध गानेवाले यह दोनों पुरोहित अपने माया और योगबल से सुवन्धु पर गिर पड़े । उनके आघात के कष्ट से वह (सुवन्धु) मोहित होकर गिर पड़े ।

^१ तु० की० सर्वानुकमणा पुरोहितास त्वक्त्वा ।

^२ तु० की० सर्वानुकमणा 'उक्ता ऋषयो द्वैपदे त्व अत्रिमण्डल' ।

^३ इन दो नामों के लिये तु० की० शतपथ ब्राह्मण १ १, ४, १४ ।

^४ तु० की० सर्वानुकमणा 'मायाविनी श्रेष्ठतमौ मत्वा पुरोदधे', तु० की० वन्धुखशिष्य ।

१९-सुवन्धु की कथा (क्रमशः) ।

तौ ततोऽस्यासुमालुच्य राजानमभिजग्मतुः ।

ततः सुवन्धौ पतिते गतासौ भ्रातरस्त्रयः ॥८९॥

जेपुः स्वस्त्ययनं सर्वं मेति गौपायनाः सह ।

मनआवर्तनं तस्य सूक्तं यदिति तेऽभ्ययुः ॥९०॥

जब उन्होंने उसके प्राण को नोंच लिया तब वे राजा के पास गये । जब प्राण विहीन होकर सुवन्धु भूमि पर गिर पड़े, तब तीन, भ्राताओं, गौपायनों ने एक साथ कल्याण के लिये 'मा' (ऋग्वेद १० ५७) का जप किया, उनकी आत्मा को पुन लौटा लाने के लिये इन लोगों ने 'यत्' (ऋग्वेद १० ५८) से आरम्भ सूक्त का आश्रय लिया ।

^१ तु० की० सर्वानुकमणा 'सुवन्धो प्राणान् आचिक्षिपत्' ।

^२ तु० की० सर्वानुकमणा 'मा स्वस्त्ययनं जप्त्वा यत् मन आवर्तनं जेपुः' ।

जेपुश्च भेषजार्थं यं प्र तारीति परं ततः ।

सूक्तस्याद्यस्तृचस्तत्र निऋतेरपनोदनः ॥९१॥

और 'प्र तारि' (ऋग्वेद १० ५९) से आरम्भ जिन तीन ऋचाओं का इन लोगों ने उनके उपचार के लिये जप किया, वही इस सूक्त की प्रथम तीन ऋचाएँ (१-३) हैं यहाँ इनसे निऋति^१ को दूर भगाने से तात्पर्य है ।

'तु० वी० सर्वानुक्रमणोः 'प्र तारि' निर्वृत्ते अपनोदनार्थं जेषुः' ।

त्रयः पादा मो प्विति तु सौम्या नैर्ऋत उत्तमः ।

ऋक् सौम्या नैर्ऋती चैषा असुनीते स्तुतिः परे ॥९२॥

अत्र 'मो पु' (ऋग्वेद १०. ५९, ४) से आरम्भ तीन पाद सोम को, और अन्तिम निर्वृति को सम्बोधित है : यह सम्पूर्ण ऋचा सोम और निर्वृति को सम्बोधित है । पाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ५९, ५-६) में असुनीति की स्तुति है ।

दृचे त्वानुमतं पादम् अन्त्यं यास्कस्तु मन्यने ।

भूद्यौः सोमश्च पूषा च खं पथ्या स्वस्तिरेव च ॥९३॥

अत्र यास्क का विचार है कि इन दो ऋचाओं में से अन्तिम पाद (ऋग्वेद १०. ५९, ६) अनुमति को सम्बोधित है ।

पृथिवी, आकाश, सोम और पूषण, वायु, पथ्या और स्वस्ति—

२०-ऋग्वेद १०. ५९. ६० का विस्तृत विवरण

सुवन्धोरेव शान्त्यर्थं पुनर्न ऋचि तु स्मृताः ।

तृचः शमिति रोदस्योर् पन्द्रोऽर्धर्चः समित्यृचि ॥ ९४ ॥

इन सबको 'पुनर् नः' (ऋग्वेद १०. ५९, ७) ऋचा में सुवन्धु की शान्ति करनेवाला माना गया है । 'शम' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ५८, ८-१०) दो लोकों को सम्बोधित है, जब कि 'सम्' (ऋग्वेद (१०. ५९, १०) ऋचा की प्रथम अर्ध-ऋचा इन्द्र को सम्बोधित है ।

रपसो नाशनार्थं वै तुष्टुवुस्त्वथ रोदसो ।

रप इत्यभिधानं तु गदितं पापकृष्टयोः ॥ ९५ ॥

उन लोकों ने दुर्बलता के नाश के लिये रोदसो की स्तुति की : 'दुर्बलता' को शारीरिक कष्ट अथवा पाप की अभिधा माना गया है ।'

'तु० वी० निरुक्त ४. २१ : 'रपो रिपन् इति पापनामानि भवन्तः' ।

ऋग्भिरेति चतसृभिस् तत गेक्ष्वाकुमस्तुवन् ।

इन्द्र क्षत्रेत्यृचा चास्य स्तुत्वाशांसिपुराशिपः ॥ ९६ ॥

'तव 'आ' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ६०, १-४) से उन्होंने

इक्ष्वाकु के वंशज की स्तुति की, और उसकी स्तुति करने के बाद उन्होंने 'इन्द्र चक्रा' से आरम्भ ऋचा (ऋग्वेद १०. ६०, ५) में उसके लिये आशीस कहा ।

अगस्त्यस्येति माता च तेषां तुष्टाव तं नृपम् ।

स्तुतः स राजा सवीळस् तस्यौ गोपायनानभि ॥ ९७ ॥

और उनकी माता^१ ने 'अगस्त्यस्य' (ऋग्वेद १०. ६०, ६) से राजा की स्तुति की । इस प्रकार स्तुति की जाने पर वह राजा लज्जापूर्वक गौपायनों के पास गये ।

^१ तु० की० आपानुक्रमणा १० २४ 'स्वसाऽगस्त्यस्य माता एषाम्' ।

२१-सुबन्धु की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १०. ६१-६६ के देवता

सूक्तेनाप्यस्तुवन्नग्निं द्वैपदेन यथात्रिषु ।

अग्निरप्यन्नवीदेतान् अयमन्तः परिध्यसुः ॥ ९८ ॥

सुबन्धोरस्य चैक्ष्वाकोर् मया गुप्तो हितर्थिना ।

सुबन्धवे प्रदायासुं जीवित्युक्त्वा च पावकः ॥ ९९ ॥

स्तुतो गौपायनैः प्रीतो जगाम त्रिदिवं प्रति ।

अयं मातेति हृष्टास्ते सुबन्धोरसुमाह्वयन् ॥ १०० ॥

यत अत्रियों ने द्विपद सूक्तों से अग्नि की स्तुति की है, अतः अग्नि ने अपनी ओर से उन लोगों से कहा 'सुबन्धु की आत्मा इस अन्त परिधि में है, अर्थात् हित की इच्छा रखनेवाले मेरे द्वारा इक्ष्वाकु का यह वंशज रक्षित है' । सुबन्धु को उसका प्राण लौटा देने और 'जीवित रहो' कहने के बाद गौपायनों द्वारा स्तुति की जाने पर पावक प्रसन्न होकर स्वर्ग को चले गये । प्रसन्न होकर इन लोगों ने 'अयं माता' (ऋग्वेद १० ६०, ७) ऋचा द्वारा सुबन्धु के प्राण का आह्वान किया ।

शरीरमभिनिर्दिश्य सुबन्धोः पतितं भुवि ।

सूक्तशेषं जगुश्चास्य चेतसो धारणाय ते ॥ १०१ ॥

भूमि पर पड़े सुबन्धु के शरीर का निर्दिष्ट करते हुये उन लोगों ने उनकी चेतना के धारणार्थ सूक्त के शेषांश का गायन किया ।

लब्धासुं चायमित्यस्यां पृथक् पाणिभिरस्पृशन् ।

पळिदं वैश्वदेवानि द्वितीयेऽद्विरसां स्तुतिः ॥ १०२ ॥

और 'अयम्' (ऋग्वेद १०. ६०, १२) ऋचा में उन लोगों ने उसकी चेतना प्राप्त कर लेने पर अपने हाथों से उसका पृथक् पृथक् स्पर्श किया ।

'इवम्' से आरम्भ छः मूक्त (ऋग्वेद १०. ६१-६६) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं । इनमें से द्वितीय मूक्त (६२) में अन्निरस् की स्तुति है ।

जन्म कर्म च सख्यं च इन्द्रेण सह कीर्तयन् ।

स्तौति प्र नूनमित्याद्याः सावर्ण्यस्य मनो स्तुतिः ॥१०३॥

जन्म, कर्म, और इन्द्र के साथ उनके सखाव को बताते हुये (ऋषियों ने) स्तुति की । 'प्र नूनम्' (ऋग्वेद १०. ६२, ८-११) तथा शेष सवर्ण के पुत्र मन की स्तुति करते हैं ।

२२-ऋग्वेद १०. ६३-६६ का विवरण । ऋग्वेद
१०. ६७-७२ के देवता

तस्यैव चायुपोऽर्थाय देवान्स्तौत्यभ्ययादृषिः ।

सुत्रामाणां महीम् पु दक्षस्येत्यदिते स्तुतिः ॥१०४॥

और उनके आयुष्य के लिये ऋषि देवों की स्तुति करता है : 'सुत्रामाणम्' (ऋग्वेद १०. ६३, १०) और 'महीम् ऊ पु' द्वारा । 'दक्षत्व' (ऋग्वेद १०. ६४, ५) में अदिति की स्तुति है ।

^१ अथर्ववेद ७. ६, २; वाजसनेयि संहिता २१ ५, तीर्थरीय महिला २०५, २१, ५;
पैतरेय ब्राह्मण १. ९, ८; आश्वलायन श्रौतसूत्र ४ ३ में उद्धृत ।

पथ्यास्वस्तेः स्वस्तिरिद्वि स्वस्ति नो मरुतां स्तुतिः ।

मारुतीमृचमन्वाहेत्य् उक्तमाध्वर्यवेपु हि ॥१०५॥

'स्वस्तिर् इद् धि' (ऋग्वेद १०. ६३, १६) पथ्या स्वस्ति की स्तुति है; 'स्वस्ति नः' (ऋग्वेद १०. ६३, १५) मरुतों की स्तुति है : क्योंकि अध्वर्युयों के प्रन्थों में यह उक्ति है कि 'वह मरुतों को सम्बोधित ऋचा का आवाहन करता है' ।

या गौरिति तथैवास्यां स्तूयते मध्यमा तु वाक् ।

मित्राय मैत्रावरुणी भुज्युमंहस आश्विनी ॥१०६॥

इसी प्रकार 'या गीः' (ऋग्वेद १०. ६५, ६) ऋचा में मध्यम वाक् की स्तुति है; 'मित्राय' (ऋग्वेद १०. ६५, ५) मित्र-वरुण को सम्बोधित है; 'भुज्युम् अंहसः' (ऋग्वेद १०. ६५, १२) अश्विनों को सम्बोधित है ।

स्तौत्यपि च मनुं स्वस्ति ब्रुचे वाचं च मध्यमाम् ।

अथेमां द्वे वार्हस्पत्ये भद्रा आग्नेयमाप्रियः ॥१०७॥

वह 'स्वस्ति' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ६६, १४-१५) में मनु और मध्यम वाच् की भी स्तुति करते हैं ।

इसके बाद 'इमाम्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. ६७-६८) बृहस्पति को सम्बोधित हैं, 'भद्रा' (ऋग्वेद १०. ६९) अग्नि को सम्बोधित है, इसके बाद एक आग्नी सूक्त (ऋग्वेद १०. ७०) आता है ।

प्रथमे वार्हस्पत्ये तु अर्धर्चे ब्रह्मणस्पतिः ।

वैश्वदेवेऽपि सूक्तेऽत्र स्तुतोऽर्धर्चे बृहस्पतिः ।

ब्रह्मणस्पतिरित्यस्मिन् लिङ्गवाक्यविकारतः ॥१०८॥

बृहस्पति को सम्बोधित प्रथम सूक्त (६७) में एक अर्ध ऋचा में (७ वीं ऋचा की) ब्रह्मणस्पति आते हैं । यहाँ विश्वेदेवों को सम्बोधित सूक्त (७२) में एक अर्ध-ऋचा (२ री ऋचा की) में बृहस्पति की भी स्तुति है . अर्थात् 'ब्रह्मणस्पति' (ऋग्वेद १०, ७२, २) से आरम्भ अर्ध ऋचा में लिङ्ग वाक्य के विकार द्वारा ।

२३-ऋग्वेद १०. ७१ का विस्तृत विवरण ।

यज्ज्योतिरमृतं ब्रह्म यथोगात्समुपाश्नुते ।

तज्ज्ञानमभितुष्टाव सूक्तेनाथ बृहस्पतिः ॥१०९॥

जो ज्ञान अमर ज्योति है और जिसके संयोग से व्यक्ति ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, उसकी बृहस्पति ने एक सूक्त द्वारा बाद में स्तुति की है ।

जीवनार्थं प्रयोगस्तु मन्त्राणां प्रतिषिध्यते ।

वेदतत्त्वार्थविज्ञानं प्रायेणात्र हि दृश्यते ॥११०॥

अब जीवनार्थ मन्त्रों के प्रयोग का प्रतिषेध है । यहाँ अधिकांशतः वेदतत्त्व का यथार्थ ज्ञान ही दृष्टिगत होता है ।

आचार्याः केचिदित्याहुर् अत्र वाग्विदुषां स्तवः ।

यथाभिर्निन्यतेऽत्रग्निः सूक्तेऽन्याभिरनर्थवित् ॥१११॥

कुछ आचार्यों का कथन है कि यहाँ कुछ ऋचाओं द्वारा वाग् वेत्ताओं की

स्तुति है। किन्तु इस सूक्त की अन्य ऋचाओं द्वारा उन व्यक्तियों की निन्दा की गई है जो वेदों का अर्थ नहीं जानते।

यथैतामन्वविन्दन्त विद्वांसपिंगतां सतीम् ।

यथा च व्यभजन् यज्ञे तदत्रोक्तं तृतीयया ॥११२॥

और विद्वानों ने उसे (वाच् को) किस प्रकार पाया जब कि वह ऋषियों^१ के बीच स्थित थी, और इन लोगों ने उसे यज्ञ के समय कैसे विभक्त किया— इसका यहाँ तृतीय ऋचा (ऋग्वेद १०. ७१, ३) में वर्णन है।

^१ तु० श्री० ऋग्वेद १०. ७१, ३ : 'ताम् गन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टा, तां भाष्यत्वान् अदपुः पुरुत्रा' ।

प्रशस्यते दशम्या तु विद्वानुत्तमया त्वृचा ।

यज्ञे महर्त्विजामाह विनियोगं च कर्मणाम् ॥११३॥

किन्तु दसवीं ऋचा (ऋग्वेद १०. ७१, १०) में विद्वानों की प्रशंसा है; जब कि अन्तिम ऋचा में उसने (ऋषि ने) चार ऋत्विजों तथा यज्ञ के समय के उनके कर्मों का विनियोग बताया है।

२४-ऋग्वेद १०. ७२-८४ के देवता । खिल

परे तु स्तूयते दक्षो अष्टौ चैवादितेः सुताः ।

धातेन्द्रो वरुणो मित्रो अंशः सूर्योऽर्यमा भगः ॥११४॥

अब बाद के सूक्त में (ऋग्वेद १०. ७२) में दक्ष की तथा अदिति के आठ पुत्रों, धातृ, इन्द्र, वरुण, मित्र, अंश, सूर्य, अर्यमन्, भग की भी स्तुति है।

ऐन्द्रे जनिष्ठाः सूक्ते द्वे प्र स्वित्यत्र परं तु यत् ।

तत्र प्राच्यः प्रतीच्यश्च स्रवन्त्यो दक्षिणाश्च यः ॥११५॥

ताः सप्त सप्तकैर्वागैः संस्तूयन्ते प्रधानतः ।

ग्राव्णामा वो मारुते द्वे अभ्रप्रुप इति स्मृते ॥११६॥

'जनिष्ठाः' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. ७३-७४) इन्द्र को सम्बोधित हैं; किन्तु 'प्र सु' से आरम्भ अथ जो सूक्त आता है (ऋग्वेद १०. ७५) उसमें पूर्व, पश्चिम, और दक्षिण में बहनेवाली जलधाराओं की प्रधानता के आधार पर सात-सात के सात समूहों में एक साथ स्तुति है।^१ 'आ वः' (ऋग्वेद १०. ७६) पापाणों को, और 'अभ्रप्रुप.' से आरम्भ दो सूक्तों (ऋग्वेद १०. ७७-७८) को मरुतों को सम्बोधित माना गया है।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० ७१, १ 'प्र मम-मम त्रेधा हि चक्रमु' ।

अपश्यमिति चाग्नेये य इमा वैश्वकर्मणे ।
मान्यवे यस्त इत्येते परं यत्तु मम व्रते ॥ ११७ ॥
तदाशीर्वादयहुलं स्तौति विश्वान्दिवोकसः ।
पराकदास आग्नेयं यदुदित्यष्टकं परम् ॥ ११८ ॥

'अपरयम्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ७९-८०) अग्नि को सम्बोधित हैं, 'या इमा' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ८१-८२) विश्व-कर्मन् को सम्बोधित हैं, 'यस् ते' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० ८३-८४) मन्यु को सम्बोधित हैं । किन्तु 'मम व्रते'^१ से आरम्भ बाद में आनेवाला सूक्त विश्वेदेवों के आशीर्वाद और स्तुति की बहुलता से युक्त है । 'उत्'^२ से आरम्भ आठ ऋचाओं का सूक्त अग्नि को सम्बोधित एक पराकदास^३ है ।

^१ यह ऋग्वेद १० ८४ और ८५ के बाद आनेवाले दो खिलों में से प्रथम है । इसमें प्रथमतः अनुष्टुप् छन्द में वत्तीस ऋचाएँ हैं जो 'मम व्रते' हृदय ते दधामि' से आरम्भ होती हैं । तु० की० अथर्ववेद ६ ९८, २, पारस्कर गृह्यसूत्र १ ८, ८, २ २, ६, शाङ्ख्यन श्रौत सूत्र २ ४, १ ।

^२ इस खिल में अग्नि को सम्बोधित आठ अनुष्टुप् ऋचाएँ हैं और यह 'उत् तुदेनं गृहपते' से आरम्भ होता है ।

^३ तु० की० ऋग्विधान ३ २१, ४ 'पराकदासस्य विधिन्', और २ २२, २ 'पराकदासो देवप्यार्यम्' ।

२५-सूर्या सूक्त ऋग्वेद १०. ८५ । उपस् के तीन रूप
मैत्रावरुण्युक् तत्रास्ति चतुर्थ्येन्द्राग्न्युपोत्तमा ।
सावित्री चैव सूर्या च सैव पत्नी विवस्वतः ॥११९॥
स्तुता वृषाकपायोति उषा इति च योच्यते ।
उषा एषा त्रिधात्मानं विभज्य प्रैति गोपतिम् ॥१२०॥

वहाँ बोधी ऋचा मित्र वरुण^१ को सम्बोधित है, जब कि अन्तिम के पूर्व की एक ऋचा (ऋग्वेद १० ८५, ७) इन्द्र और अग्नि^२ को सम्बोधित है । सावित्री और सूर्या विवस्वत की एक ही और वही पत्नी है जिसकी वृषाकपायी के रूप में स्तुति है और जिसे ही उपस् कहा गया है । यह उपस् अपने को तीन रूपों में विभाजित करके गोपति (= सूर्य) के पास जाती है ।

^१ यह 'इमा मे मिवावरुणौ' पाद से आरम्भ होता है ।

^२ यह 'अनेन ब्रह्मणाग्ने त्वम्, अयं चेन्द्रो न ईद्विन.' पाद से आरम्भ होता है ।

उपाः पुरोदयाद् भूत्वा सूर्या मध्यदिने स्थिते ।

भूत्वा वृषाकपायी च दिनान्तेष्ववगच्छति ॥१२१॥

सूर्योदय के पूर्व उपस्र बन कर, मध्याह्न के समय सूर्या, और दिनान्त के समय वृषाकपायी हो कर यह नीचे चली जानी है ।

सत्यसूर्यर्तसोमानां सौर्याद्यात्र हृगुच्यते ।

पराभिस्तिष्ठभिस्त्वृग्भिर् उच्यते सोम ओषधिः ॥१२२॥

यहाँ सूर्या को सम्बोधित प्रथम ऋचा (ऋग्वेद १०. ८५, १) को सत्य, सूर्य, ऋत, और सोम से सम्बद्ध बताया गया है; किन्तु बाद की तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ८५, २-४) में सोम को औषधि के रूप में व्यक्त किया गया है ।

विस्पष्टमुत्तरा त्वासाम् ऋक् चन्द्रमसमर्चति ।

सूर्यायै भाववृत्तं तु रैमीत्यष्टाभिरुच्यते ॥१२३॥

किन्तु जो ऋचा (ऋग्वेद १०. ८५, ५) इनके बाद आती है वह स्पष्टतः चन्द्रमा की अर्चना करती है, जब कि 'रैमी' से आरम्भ आठ ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ८५, ६-१३) में सूर्या के 'भाववृत्त' को व्यक्त किया गया है ।

२६-सूर्या-सूक्त का विवरण (क्रमशः) ।

यदश्विनौ द्रुच स्तौति सूर्यमेवोत्तरार्चति ।

सप्तदशी वैश्वदेवी सौर्याचान्द्रमसी परा ॥१२४॥

'यत्' से आरम्भ दो ऋचार्ये (१०. ८५, १४-१५) अश्विनों की स्तुति करती हैं । बाद की ऋचा (१६) सूर्य की अर्चना करती है, सप्तदशी (१७) विश्वेदेवों को सम्बोधित है, इसके बाद की ऋचा (१८) सूर्य और चन्द्रमा को सम्बोधित है ।

परस्याः प्रथमौ पादौ सौर्यौ चान्द्रमसौ परौ ।

और्णवाभो द्रुचे त्वस्मिन् अश्विनौ मन्यते स्तुतौ ॥१२५॥

बाद की ऋचा (ऋग्वेद १०. ८५, १९) के प्रथम दो पाद सूर्य को सम्बोधित हैं, जब कि इसके बाद के दो पाद चन्द्रमा को । फिर भी और्णवाभ का विचार है कि इन दो ऋचाओं में अश्विनों की स्तुति है ।

सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ ।

अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी ॥१२६॥

क्योंकि इन दोनों (अश्विनों को) को सूर्य और चन्द्रमा, और प्राण तथा अपान माना गया है, और यह दोनों दिन और रात्रि भी हो सकते हैं, अथवा दोनों ही दोनों लोक (रोदसी) ।^१

^१ इनमें से प्रथम, तृतीय और चतुर्थ व्याख्यायें निरुक्त १२ १ में ही हुई हैं ।

अश्रुवाने हि तौ लोकाञ् ज्योतिषा च रसेन च ।

पृथक्पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च ॥१२७॥

क्योंकि यह दोनों प्रकाश तथा आर्द्रता से लोकों को व्याप्त करते हैं और यह दोनों ही पृथक्-पृथक् दक्षिण और उत्तर की ओर विचरण करते हैं ।^१

^१ यह प्रत्यक्षन ऋग्वेद १० ८१, १८ ('पूर्वापर चरतो मावया' 'श्तौ') को ही व्यक्त करता है ।

सूर्यः सरति भूतेषु सु वीरयति तानि वा ।

सु ईर्यत्वाय यात्येषु सर्वकार्याणि संदधत् ॥१२८॥

सूर्य भूतों के बीच चलते हैं, अथवा यह उन्हें भली प्रकार प्रोत्साहित करते हैं : उनके सभी कार्यों को भली प्रकार धारण करते हुये वह उन्हें भली प्रकार प्रोत्साहित करते हुये उनके बीच जाते हैं ।

२७-चन्द्रमस् की व्युत्पत्ति । ऋग्वेद १०. ८५,

२० ३० का विषय-वस्तु

चारु द्रमति वा चार्यश् चायनीयो द्रमत्युत् ।

चमेः पूर्वं समेतानि निर्मिमीतेऽथ चन्द्रमाः ॥१२९॥

चन्द्रमा सुन्दरतापूर्वक (चारु) अथवा देखते हुये (चायन्) दीड़ते (द्रमति) है, अथवा देखने योग्य होने के रूप में (चायनीय) दीड़ते हैं, अथवा (यौगिक शब्द का) पूर्व पद 'चम' धातु से व्युत्पन्न है, अथवा यह (चन्द्र) समस्त जीवों का निर्माण (विर-मा) करता है ।^१

^१ चन्द्रमस् की उपरोक्त पाँचों व्युत्पत्तियों निरुक्त १२. १ पर आधारित हैं, जहाँ छ. १. व्युत्पत्तियों की हैं. (१) चायन् द्रमति, (२) चारु द्रमति, (३) विर द्रमति, (४) चम द्रमति, (५) चन्द्रो माता, (६) चाम मानन् अस्व ।

सुकिंशुकमिति त्वस्यां सूर्यामारोहतीं पतिम् ।

स्तौति विश्वावसुं चैव ब्रूचे गन्धर्वमुत्तरे ॥१३०॥

अथ 'सुकिंशुकम्' (ऋग्वेद १०. ८५, २०) ऋचा द्वारा (ऋषि ने) सूर्या के अपने पति पर आरोहण की, और वाद की दो ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ८५, २१-२२) में गन्धर्व विश्वावसु की स्तुति की है ।

अनुक्षरा इत्यनया यानौ स्तौतीह दंपती ।
गृहान्प्रपद्यमानां तु पराभिः पञ्चभिर्वधूम ॥ १३१ ॥

'अनुक्षराः' (ऋग्वेद १०. ८५, २३) में (ऋषि ने) यहाँ उस दंपति की स्तुति की है जो प्रस्थान कर चुके हैं; किन्तु वाद की पाँच (ऋग्वेद १०. ८५, २४-२८) में (पति के) घर पर पहुँची वधू की ।

२८-ऋग्वेद १०. ८५, ३१-४३

वाससश्च वधूनां च वरदानं प्रचक्षते ।
तत स्त्रिया विरागस्य विभवे सति वाससः ॥ १३२ ॥
अन्यत्र मैथुनाद्भर्तुर् हरणं प्रतिषिध्यते ।
ये यक्ष्मनाशिनी स्तौति द्रुचे मा परिपन्थिनः ॥ १३३ ॥

और उनका कथन है कि (वाद को ऋचाः ऋग्वेद १०. ८५, २९ में) वधुओं को वस्त्र और वर-दान देने को व्यक्त किया गया है ।^१ इसके बाद भोग-विलास की समाप्ति पर विरागावस्था में स्त्री के वस्त्र का—अर्थात् मैथुन के समय के अतिरिक्त—पति द्वारा हरण निषेध है । 'ये' (ऋग्वेद १०. ८५, ३१) ऋचा यक्ष्म-नाशक है; 'मा' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ८५, ३२-३३) में (ऋषि ने) मार्गावरोधकों की स्तुति की है ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १०. ८५, २९ के यह शब्द 'परा देहि शाल्मुक्यं ब्रह्मन्' । इस पर देखिये आश्वलायन गृह्यसूत्र १. ८, १० ।

तृष्टमेतदिति त्वाह यादृग्वाधूयमर्हति ।
आशास्ते चैव विविधं ज्ञातिभ्यश्चानुशासनम् ॥ १३४ ॥
यद्वा स्त्री भाववृत्तिश्च परया त्वत्र कथ्यते ।
गृभ्णामि त ऋचा हस्तं गुह्यन्नथ घनाशिपः ॥ १३५ ॥
आशास्ते परया तस्याः संयोगार्थास्तथाशिपः ।
पराभिराशीश्चाशास्ते पृथक् ताभ्यां सहैव च ॥ १३६ ॥

अघोरेति तृचे तस्याः समिहेति द्वयोर्द्वयोः ।

आ नः प्रजापतेर् इमाम् ऐन्द्री चान्त्या बृहस्पतेः ॥ १३७ ॥

किन्तु 'तृष्टम् एतत्' (ऋग्वेद १०. ८५, ३४) ऋचा यह बताती है कि किस प्रकार का मनुष्य वैवाहिक वस्त्र के योग्य होता है ।^१ और बृह स्त्री द्वारा अपने सम्बन्धियों को विविध प्रकार के अनुशासनात्मक^२ निर्देश दिये गये हैं । बाद की ऋचा (ऋग्वेद १०. ८५, ३५) में यहाँ भाववृत्ति का कथन है ।

'गृभ्णामि ते' ऋचा द्वारा उस समय (पति के द्वारा) धन का आशिस दिया गया है जब वह उसका (वधू का) हाथ पकड़ता है । बाद की ऋचा (ऋग्वेद १०. ८५, ३७) में भी सयोगार्थक आशिस हैं ।

बाद की ऋचा ने (ऋषि ने) दोनों को साथ-साथ और पृथक्-पृथक् आशिस कहा है, 'अघोर-' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० ८५, ४४-४६) में केवल उसके (वधू के लिये), और 'सम्' (ऋग्वेद १०. ८५, ४७) तथा 'इह' (ऋग्वेद १० ८५, ४२) क्रमशः दोनों के लिये हैं । 'आ नः' (ऋग्वेद १०. ८५, ४३) प्रजापति को, और 'इमाम्' (ऋग्वेद १०. ८५, ४५) इन्द्र को सम्बोधित है, अन्तिम (ऋग्वेद १०. ८५, ४७) बृहस्पति को सम्बोधित है ।

^१ तु० की० ऋग्वेद १० ८५, ३४ 'सूर्यां वो मत्वा विचार, स इह वाधूयम् अर्हति' ।

^२ तु० की० ऋग्वेद १० ८५, ३५ 'आशसन विशसन अथो अधिविकतनम्' ।

२९-सूर्या सूक्त पर टिप्पणी (शेषांश) ।

मन्त्रा वैवाहिका ह्येते निगद्यन्ते नृणामपि ।

आर्त्विजा याजमानाश्च यथारूपं विशेषतः ॥ १३८ ॥

अब यह वैवाहिक मंत्र मनुष्यों के लिये भी उच्चरित होते हैं, क्योंकि यह अपने विशिष्ट रूप और विशेषताओं के अनुसार ऋत्विजों और यजमानों से भी सम्बद्ध हैं ।

प्रत्यृचं प्रतिकीर्त्सन्ते देवताश्चेह यासु पाः ।

वदेत्तां देवतां तासु नाराशंसोर्वदेत वा ॥ १३९ ॥

और यहाँ उन ऋचाओं में, जिनमें से प्रत्येक में देवताओं का उल्लेख है, हमें उसीको देवता कहना चाहिये जिसका उल्लेख है, अथवा यह कहना चाहिये कि यह (ऋचाएँ) नाराशंसी^१ है ।

^१ नारायंसी ऋचाओं के लिये तु० की० ऊपर ३. १५४; तु० की० ऋग्वेद १०. ८५.
६ : 'श्यासीरनुदेयी नारायंसी न्योपनी' ।

औपसीः सर्वथा चैता भाववृत्तं प्रचभ्रते ।

सूर्यया सह सूक्तेऽस्मिन् पादश्चैवात्र लक्ष्यते ॥१४०॥

और उनका कहना है कि उपम् को सम्बोधित यह ऋचायें भाववृत्त से संबन्धित एक सम्पूर्ण सूक्त का निर्माण करती हैं; और इस सूक्त में एक पाद सूर्या से सम्बन्धित भी लक्षित होता है ।

वि हि वार्पाकपं सूक्तम् असौ हि कपिलो वृषा ।

इन्द्रः प्रजापतिश्चैव विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४१॥

'वि हि' (ऋग्वेद १० ८६) वृषाकपि को सम्बोधित एक सूक्त है; क्योंकि वह कपिल वृषभ इन्द्र^१ और प्रजापति है; 'इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है' ।

^१ तु० की० ऊपर २. ६७, जहाँ वृषाकपि की भी 'वृषा कपिलः' के रूप में व्याख्या है और उसे सूर्य के सात नामों में से एक, अथवा दिव्य अग्नि का एक रूप बताया गया है ।

रक्षोहणादि चाग्नेयं त्रीन् स्तौत्यग्नीन् परं हविः ।

इमं च मध्यमं चैव असौ वैश्वानरं च यः ॥१४२॥

'रक्षोहणम्' (ऋग्वेद १०. ८७) में आरम्भ सूक्त अग्नि को सम्बोधित है । वाद का 'हविः' (ऋग्वेद १०. ८८) तीन अग्नियों : इस (पार्थिव), मध्यम, और जो वह वैश्वानर^१ है, की स्तुति करता है ।

^१ तु० की० ऊपर १. ६७, जहाँ वैश्वानर को अग्नि का दिव्य रूप बताया गया है ।

३०-ऋग्वेद १०. ८९-९३ के देवता । पुरुरवस् और उर्वशी की कथा ।

ऐन्द्रात्पुरुषसूक्तं च अन्त्यया पौरुषस्य तु ।

यथैनमभजन्साध्या यज्ञार्थं सोऽर्थं उच्यते ॥१४३॥

और इन्द्र को सम्बोधित एक सूक्त (ऋग्वेद १०. ८९) के वाद पुरुष-सूक्त (ऋग्वेद १०. ९०) आता है । पुरुर को सम्बोधित सूक्त की अन्तिम ऋचा (१६वाँ) में उन स्थितियों का वर्णन है जिनमें साध्यों ने उसका यज्ञार्थं विभाजन किया था ।

आपान्तमन्युरित्यैन्द्र्यां स्तुतः सोमोऽत्र दृश्यते ।

सालोक्यात्साहचर्याद्वा स्तूपते सोम एव वा ॥१४४॥

'आपान्तमन्यु' (ऋग्वेद १०. ८९, ५) से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित ऋचा में स्पष्टतः सोम की स्तुति है। सोम की या तो एक ही लोक के होने अथवा इन्द्र के सहचर होने के कारण ही स्तुति है।

निपातभाजं सोमं च अस्यां रथीतरोऽब्रवीत् ।

पेन्द्रेषु हि निपातोऽत्र स्तुतोऽग्निररुणेन सम् ॥१४५॥

रथीतर ने कहा है कि इस (ऋचा) में सोम निपातभाज है, क्योंकि इन्द्र को सम्बोधित सूक्तों में यहाँ ऐसा ही नैपातिक उल्लेख है। 'सम्' (ऋग्वेद १० ९१) में अरुण द्वारा अग्नि की स्तुति है।

यज्ञस्य वो वैश्वदेवे प्रैत इत्युत्तरं तु यत् ।

तत्रार्बुदस्तु ग्रावाणं मूर्तिमन्तमिवाचर्ति ॥१४६॥

प्र तद्दुःसीम इत्यृग्भ्यां राज्ञां दानं च शंसति ।

पुरूरवसि राजर्षीव् अप्सरास्तूर्वशी पुरा ।

न्यवसत्संविदं कृत्वा तस्मिन्धर्मं चचार च ॥१४७॥

'यज्ञस्य च' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. ९२-९३) विश्वेदेवों को सम्बोधित हैं, किन्तु 'प्रैते' (ऋग्वेद १०. ९४) से आरम्भ जो बाद में आता है उसमें अर्बुद ने मूर्तिमान् पापानों की अर्चना की है, और 'प्र तद् दुःसीमे' (ऋग्वेद १०. ९२, १४-१५) से आरम्भ दो ऋचाओं में उसने (ऋषि ने) राजाओं के दान की प्रशंसा की है।

अब प्राचीन काल में अप्सरा उर्वशी राजर्षि पुरूरवस् के साथ रही थी, और समझौता करके उनके साथ (पत्नी -) धर्म का आचरण करने लगी।

३१-पुरूरवस् और उर्वशी की कथा (शेषांश)

तया तस्य च संवासम् असूयन् पाकशासनः ।

पैतामहं चानुरागम् इन्द्रवचापि तस्य तु ॥१४८॥

स तयोस्तु वियोगार्थं पार्श्वस्थं वज्रमब्रवीत् ।

प्रीतिं भिन्द्वि तयोर्वज्रं मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥१४९॥

और उसके (उर्वशी के) साथ उनके सहवास पर ईर्ष्या करते हुये और उसके (उर्वशी के) लिये ब्रह्मा तथा उनके (पुरूरवस् के) ऐसे अनुराग को देखकर कि मानों वह इन्द्र हैं, पाकशासन (इन्द्र) ने उन्हें पृथक

करने के लिये अपने पार्श्वस्थ वज्र से कहा : 'हे वज्र यदि तुम मेरा प्रिय चाहते हो तो इन दोनों के प्रेम-सम्बन्ध को भंग कर दो ।'

तथेत्युक्त्वा तयोः प्रीतिं वज्रोऽभिनत्स्वमायया ।

ततस्तथा विहीनस्तु चचारोन्मत्तवन्दुपः ॥१५०॥

'बहुत अच्छा' कहकर वज्र ने अपनी माया से उनके प्रेम को भंग कर दिया । तब उससे विहीन राजा उन्मत्त होकर फिरने लगे ।

चरन्सरसि सोऽपश्यद् अभिरूपामिवोर्वशीम् ।

सखीभिरभिरूपाभिः पञ्चभिः पार्श्वतो घृताम् ॥१५१॥

जब वह इस प्रकार घूम रहे थे तब उन्होंने एक तालाब में पाँच सुन्दर सखियों से घिरी हुई मातों सुन्दरी उर्वशी को देखा ।

नामाह पुनरेहीति दुःखात्सा त्वन्नवीन्नृपम् ।

आप्राप्याहं त्वयाद्येह स्वर्गं प्राप्स्यसि मां पुनः ॥१५२॥

उससे उन्होंने कहा, 'लीट आओ' । किन्तु उसने राजा को दुःखपूर्वक उत्तर दिया, 'अब तुम मुझे यहाँ नहीं प्राप्त कर सकते; स्वर्ग में तुम मुझे पुनः प्राप्त करोगे ।

३२-ऋग्वेद १०. ९६. ९७ के देवता । देवापि की कथा: १०. ९८

आह्वानं प्रति चाख्यानम् इतरेतरयोरिदम् ।

संवादं मन्यते यास्क इतिहासं तु शौनकः ॥१५३॥

हय इति परमैन्द्रं प्र ते या ओषधीस्तवः ।

प्रयोगे भिषजस्त्वेतद् यक्ष्मनाशाय कल्पते ॥१५४॥

आह्वान के सन्दर्भ में उस आख्यान को यास्क ने संवाद माना है, किन्तु शौनक ने एक कथा : (अर्थात्) 'हये' (ऋग्वेद १०. ९५) से आरम्भ सूक्त को । इसके बाद 'प्र ते' (ऋग्वेद १०. ९६) इन्द्र को सम्बोधित है । 'याः' (ऋग्वेद १०. ९७) में ओषधियों की स्तुति है ।

भिषज् का यह सूक्त प्रयोग में यक्ष्मा के नाश के लिये व्यवहृत हो सकता है ।

^१ निरुक्त ५ १३, १० ४६, ४७, ११ ३६, से वह मत व्यक्त नहीं होना ।

^२ तु० की० अर्षानुक्रमणो १० ४५ 'या आपधीस्तु सूक्तस्य ऋषिर् आपर्वणे भिषक', देखिये सर्षानुक्रमणा भी ।

ऋष्टिपेणस्तु देवापिः कौरव्यश्चैव शंतनुः ।

भ्रातरौ कुरुषु त्वेतौ राजपुत्रौ बभूवतुः ॥१५५॥

जब, ऋष्टिपेण के पुत्र देवापि, और कुरु-वंशीय शंतनु, कुरुओं में राजा तथा दो भ्राता थे ।

ज्येष्ठस्तयोस्तु देवापिः कनीयांश्चैव शंतनुः ।

त्वग्दोषी राजपुत्रस्तु ऋष्टिपेणसुतोऽभवत् ॥१५६॥

इन दोनों में से देवापि ज्येष्ठ और शंतनु कनिष्ठ थे, किन्तु वह (देवापि) ऋष्टिपेण के राजपुत्र त्वचा-दोष से पीड़ित थे ।

राज्येन छन्दयामासुः प्रजाः स्वर्गं गते गुरौ ।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रजास्ताः प्रत्यभाषत ॥१५७॥

जब उनके पिता स्वर्ग चले गये तब उनकी प्रजा ने उन्हें राज्य दिया । किन्तु एक क्षण विचार करके उन्होंने अपनी प्रजा को उत्तर दिया

॥ इति बृहद्देवताया सप्तमोऽध्यायः ॥



१-देवापि की कथा (क्रमशः)

न राज्यमहमर्हामि नृपतिर्वोऽस्तु शंतनुः ।
तथेत्युक्त्वाभ्यसिञ्चस्ताः प्रजा राज्याय शंतनुम् ॥ १ ॥

‘मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ : शंतनु ही तुम्हारे शासक (नृप) हों ।’
इससे सहमत होकर उनकी प्रजा ने राजा के रूप में शंतनु का अभिषेक किया ।

ततोऽभिपिक्ते कौरव्ये वनं देवापिराविशत् ।
न ववर्षाथ पर्जन्यो राज्ये द्वादश वै समाः ॥ २ ॥

जब कुरु के वंशज का अभिषेक हो गया तब देवापि वन को चले गये ।
इसके बाद उस राज्य में पर्जन्य ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की ।

ततोऽभ्यगच्छद्देवापिं प्रजाभिः सह शंतनुः ।
प्रसादयामास चैनं तस्मिन्धर्मव्यतिक्रमे ॥ ३ ॥

परिणाम-स्वरूप अपनी प्रजा के साथ शंतनु देवापि के पास आये और
उस धर्म-न्यतिक्रम^१ के लिये उनका प्रसादन किया ।

^१ अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता देवापि के रहते हुए छोटे भ्राता का अभिषेक ।

शिशिक्ष चैनं राज्येन प्रजाभिः सहितस्तदा ।
तमुवाच्राथ देवापिः प्रहं तु प्राञ्जलिस्थितम् ॥ ४ ॥

न राज्यमहमर्हामि त्वग्दोषोपहतेन्द्रियः ।
याजयिष्यामि ते राजन् वृष्टिकामेज्यया स्वयम् ॥ ५ ॥

तब अपनी प्रजा के सहित उन्होंने उन्हें (देवापि) को राज्य देना चाहा ।
जब वह (शंतनु) विनम्रतापूर्वक करबद्ध खड़े थे, तब देवापि ने उत्तर दिया :
‘मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ क्योंकि त्वचा-दोष से मेरी शक्ति खीन हो गई है;
हे राजा मैं स्वयं वर्षा के लिये तुम्हारे यज्ञ-पुरोहित का कार्य करूँगा ।’

२-देवापि की कथा (शेषांश) । ऋग्वेद १०. ९९-१०१ के श्लोक
ततस्तं तु पुरोऽधत्त आर्त्विज्याय स शंतनुः ।
स चास्य चक्रे कर्माणि वार्षिकानि यथाविधि ॥ ६ ॥

तव श्रंतनु ने उन्हें (देवापि को) अपना पुरोहित नियुक्त करते हुये उनसे ऋत्विज् के रूप में कार्य करने के लिये कहा । तब उन्होंने (देवापि ने) यथाविधि वर्षा करानेवाले कर्म सम्पन्न किये ।

बृहस्पते प्रतीत्यृग्भिर् ईजे चैव बृहस्पतिम् ।
द्वितीययास्य सूक्तस्य बोधिते जातवेदसा ॥ ७ ॥
आस्ये ते द्युमतीं वाचं दधामि स्तुहि देवताः ।
ततः सोऽस्मै ददौ प्रीतो वाचं देवीं तथा च सः ॥८॥
ऋग्भिश्चतसृभिर्देवाञ् जगौ वृष्ट्वर्थमेव तु ।
अग्निं च सूक्तशेषेण कमैन्द्रं सूक्तमुत्तरम् ॥९॥

और उन्होंने 'बृहस्पते प्रति' (ऋग्वेद १०. ९८, १-३) ऋचाओं से बृहस्पति का यज्ञ किया ।

जब जातवेदस् ने इस सूक्त की 'दधामि ते द्युमतीं वाचम् आसन्' (ऋग्वेद १०. ९८, २) ऋचा का उन्हें बोध कराया तब प्रसन्न हो कर बृहस्पति ने उन्हें (देवापि को) दिव्य वाच् प्रदान किया, इससे उन्होंने वर्षा कराने के लिये चार ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ९८, ४-७) से देवों की, और सूक्त की शेष ऋचाओं (ऋग्वेद १०. ९८, ८-१२) से अग्नि की स्तुति की । दूसरा, 'कम्' (ऋग्वेद १०, ९९) सूक्त इन्द्र को सम्बोधित है ।

इन्द्र इत्येति विश्वेषाम् उदित्यृत्विक्स्तुतिः परम् ।
शक्तिप्रकाशनेनैषां विनियोगोऽत्र कीर्त्यते ॥१०॥

'इन्द्र इत्य' (ऋग्वेद १०. १००) विश्वेदेवों की सम्बोधित हे, 'उत्' (ऋग्वेद १०. १०१) से आरम्भ वाद का सूक्त ऋत्विजों की स्तुति है । इव (ऋत्विजों) की शक्ति के प्रकाशन द्वारा यहाँ विनियोग का कीर्तन किया गया है ।

३-ऋग्वेद १०. १०२. १०३ के देवता । नकुल का खिल ।

प्रेतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः ।
यास्को द्राघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः ॥११॥
शाकटायन 'प्र' (ऋग्वेद १० १०२.) को एक इतिहास-सूक्त मानते

हैं : यास्क का विचार है कि वह द्रुघण अथवा इन्द्र को सम्बोधित है; किन्तु सौमिक के विचार से यह विश्वेदेवों को सम्बोधित है ।

आजावनेन भार्म्यश्च इन्द्रासोमौ तु मुद्गलः ।

अजयद्रुपभं युक्त्वा ऐन्द्रं च द्रुघणं रथे ॥१२॥

अपने रथ में इन्द्र के एक द्रुघण और वृषभ को संयुक्त करके मुद्गल भार्म्यश्च ने एक प्रतिरपर्धा में इन्द्र और सोम को इसी (सूक्त) के द्वारा विजित किया था ।^१

^१ तु० की० निकट १. २३ 'मुद्गले भार्म्यश्च ऋषिर् वृषभ च द्रुघर्षं च युक्त्वा मग्नमे न्यवहृत्यभार्मि जिगाय'; तु० की० ऋग्वेद १०. १०२, ५ : 'तेन मुद्गलः प्रधाने जिगाय', भी ।

युध्यन् संख्ये जयं प्रेप्सुर् ऐन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ ।

आशुरैन्द्रमप्वा देवी अमीषामित्यृचि स्तुता ॥१३॥

एक युद्ध में युद्ध करते हुये विजय की इच्छा से अप्रतिरथ ऐन्द्र ने इसी (सूक्त) का गायन किया था ।

'आशुः' (ऋग्वेद १०. १०३) इन्द्र को सम्बोधित है : 'अमीषाम्' (ऋग्वेद १०. १०३, १२) ऋचा में देवी अप्वा की स्तुति है ।

चतुर्थी बार्हस्पत्या स्यान् नाकुले च महानिति ।

द्रुचस्तु मारुतः प्रेतैत्य् ऐन्द्री वा ब्रह्म यत्परम् ॥१४॥

चतुर्थ ऋचा को तथा नकुल के सूक्त की 'महान्' ऋचा को भी, बृहस्पति को सम्बोधित मानना चाहिये ।

अब 'प्रेत' (ऋग्वेद १०. १०३, १३) से आरम्भ हो ऋचायें मरुतों को सम्बोधित हैं, जिनसे प्रथम वैकल्पिक रूप से इन्द्र को सम्बोधित है । जो (सूक्त) बाद में आता है वह 'ब्रह्म' से आरम्भ होता है ।

तत्रानिरुक्तसूक्ताशब्द ऋगेका सूर्यमर्चति ।

धर्मपराश्रतवस्तु सवितारमभीति या ॥ १५ ॥

इसमें, सूक्त के आरम्भ में उहाँ कोई भी देवता व्यक्त नहीं है,^१ एक ऋचा (१) सूर्य की, और जो 'अभि' (४) से आरम्भ होती है वह सवितृ की अर्चना करती है; जब कि (प्रथम) चार 'धर्म' से निकट रूप से सम्बन्ध हैं ।

^१ ऐतरेय ब्राह्मण १. १९, १ में इस मन्त्र के 'मह्य' की बृहस्पति के रूप में व्याख्या की गई है। यह ऋचा = अथर्ववेद ४. १, १। -सिल की अनुक्रमणी में द्वितीय ऋचा 'इय वै पित्र' की 'धर्मं स्तुति' काया गया है। यह = अथर्ववेद ४. १, २। तृतीय ऋचा (महान् महीं = तैत्तिरीय संहिता २. १, १४, ६) की बृहस्पति की सम्बोधित बताया जा चुका है।

^१ यह ऋचा (अभित्य देव सवितारम्) = अथर्ववेद ७. १४, १, वाजसनेयि संहिता ४. २५, तैत्तिरीय संहिता १. २. ६, १, सामवेद १. ४६४ जिसका शतपथ ब्राह्मण १३. ५. १, ११ में भी उल्लेख है।

४-ऋग्वेद १०. १०४-१०५ के देवता। भूतांश काश्यप :

ऋग्वेद १०. १०६।

सूक्तशेषस्य पल्लवः सूर्याचन्द्रमसौ सह।

तुष्टावेन्द्रमसावोति अष्टकोऽस्मात्परेण तु ॥ १६ ॥

सूक्त की शेष छः ऋचाये सूर्य और चन्द्रमा की साथ-साथ अर्चना करती हैं।

अब 'असावि' (ऋग्वेद १०. १०४) से आरम्भ जो सूक्त इसके बाद जाता है, उसमें अष्टक ने इन्द्र की स्तुति की है।

कौत्सः कदा वसो सूक्तं दुर्मित्रो नाम नामतः।

सुमित्रश्चैव नाम स्याद् गुणार्थमितरत्पदम् ॥१७॥

कुत्स के वंशज दुर्मित्र नामक व्यक्ति ने 'कदा वसो' (ऋग्वेद १०. १०५) सूक्त का दर्शन किया। इसका 'सुमित्र' नाम भी हो सकता है जब कि अन्य शब्द (दुर्मित्र) एक गुण^१ को व्यक्त करेगा।

^१ तु० का० सर्वानुक्रमणा . 'कौत्सो दुर्मित्रो नाम्ना सुमित्रो गुणतः, सुमित्रो वा नाम्ना दुर्मित्रो गुणतः।'

भूतांशस्तु प्रजाकामः कर्माणि कृतवान्पुरा।

न हि लेभे प्रजाः काश्चित् काश्यपो मुनिसत्तमः ॥१८॥

अब सन्तान की इच्छा से प्राचीन काल में भूतांश काश्यप ने कर्म किये, क्योंकि इस मुनियों में सर्वश्रेष्ठ ने कोई भी सन्तान नहीं पाई थी।

उवाच भार्या -भूतांशं सुतानिष्ठसि यावतः।

तावतो जनयिष्यामि देवता द्वन्द्वश स्तुहि ॥ १९ ॥

उसकी पत्नी ने भूतंश से कहा, 'आपकी जिननी इच्छा हो मैं उतने ही पुत्रों का प्रजनन करूँगी : केवल देवों की द्वन्द्व स्तुति करें ।'

तमभ्ययुस्तु सर्वाणि द्वन्द्वानि स्तुतिकाम्यया ।
तान्यवेक्ष्याथ तच्चक्रो नासत्यौ सूक्तभागिनौ ॥२०॥

अब उनके पास समस्त द्वन्द्व केवल स्तुति की इच्छा से ही आये । उन्हें देखकर उन्होंने स्तुति (ऋग्वेद १०.१०६ में) की : अश्विन् इसके सूक्तभागिन् हैं ।

५-ऋग्वेद १०. १०७ । सरमा और पणियों की कथा :
ऋग्वेद १०. १०८ ।

तदेतदन्ततो भावाद् आश्विनं सूक्तमुच्यते ।
न ह्यस्मिन्देवतालिङ्गं प्रागन्त्याद्दृश्यते पदात् ॥२१॥

इसी सूक्त (ऋग्वेद १०. १०६) को अश्विनों को सम्बोधित कहा गया है क्योंकि अन्त में यही आते हैं । क्योंकि इस सूक्त में अन्तिम पाद के पूर्व देवता का लिङ्ग नहीं आता ।

सूक्तेन तु परेणात्र स्वयमाविरभूदिति ।
आत्मानमेव तुष्टाव प्राजापत्याथ दक्षिणा ॥२२॥

अथ 'आविर् अभूत्' (ऋग्वेद १०. १००) से आरम्भ वाद में आनेवाले सूक्त से यहाँ दक्षिणा प्राजापत्या ने अपनी स्तुति की है ।

दातृनत्र स्तुतानेके दक्षिणानां वदन्ति तु ।
दातृत्वादक्षिणानां च भोजाश्चतसृभि स्तुताः ॥२३॥

फिर भी किसी का कथन है कि यहाँ दक्षिणा देनेवालों की स्तुति है, और यतः यह दक्षिणा देनेवाले हैं, अतः उदार दाताओं की चार (ऋचाओं) से स्तुति है ।^१

^१ अर्थात् ऋग्वेद १०. १०७, ८-११ में जहाँ 'भोज' के पुरस्कारों का वर्णन है ।

असुराः पणयो नाम रसापारनिवासिनः ।
गास्तेऽपजहुरिन्द्रस्य न्यगूहंश्च प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

पणि नाम के असुरगण थे जो रसा के उम पार निवास करने थे । इन

लोगों ने इन्द्र की गायों का अपहरण कर लिया और उन्हें सतर्कतापूर्वक छिपा दिया ।

बृहस्पतिस्तथापश्यद् बृहद्वेन्द्राय शशंस च ।

प्राहिणोत्तत्र दूत्येऽथ सरमां पाकशासनः ॥ २५ ॥

बृहस्पति ने इसे देर लिया और देखने के बाद इन्द्र से बताया । तब पाकशासन (इन्द्र) ने सरमा^१ को वहाँ दूत के रूप में भेजा ।

^१ तु० की० सर्वातुकमणी 'अन्वेष्टु सरमा देवशुनान् इन्द्रेण प्रहितान्' ।

६-सरमा और पाणियों की कथा (कमशः) ।

किमित्यत्रायुजाभिस्तां पप्रच्छुः पणयोऽसुराः ।

कुतःकस्यासि कल्याणि किं वा कार्यमिहास्ति ते ॥ २६ ॥

'किम्' (ऋग्वेद १०. १०८) सूक्त में असुर पाणियों ने अयुग्म ऋचाओं^१ द्वारा उससे (सरमा से) पूछा : 'तुम कहीं से (आ रही हो) ? हे कल्याणि तुम किसकी हो ? अथवा तुम्हारा यहाँ क्या कार्य है ?'

^१ तु० का० सर्वातुकमणी . 'अशुभिः पणयो मिश्रायन्तः प्रोबु' ।

अथात्रवोत्तान्सरमा दूत्यैन्द्री विचराम्यहम् ।

युष्मान्ब्रजं चान्विष्यन्ती गाश्चैवेन्द्रस्य पृच्छतः ॥ २७ ॥

तब सरमा ने उनसे कहा : 'मैं इन्द्र के दूत के रूप में विचरण कर रही हूँ; तुम्हें तथा तुम्हारे गोष्ठ और इन्द्र की गायों को ढूँढ रही हूँ क्योंकि वह (इन्द्र) उनके (गायों के) सम्बन्ध में पूछ रहे हैं ।

विदित्वेन्द्रस्य दूर्तीं ताम् असुराः पापचेतसः ।

ऋचुर्मा सरमे गास्त्वम् इहास्माकं स्वसा भव ॥ २८ ॥

यह जानकर कि वह इन्द्र की दूती है, पापी असुरों ने कहा : 'सरमा तुम जाओ नहीं; यहाँ हम लोगों की बहन के रूप में रहो ।'

विभजामो गवां भागं माहिता ह ततः पुनः ।

सूक्तस्यास्यान्त्यया चर्चा युग्माभिस्त्वेव सर्वशः ॥ २९ ॥

सात्रर्वाग्नाहमिच्छामि स्वसृत्वं वा धनानि वा ।

पिबेयं तु पयस्तासां गवां यास्ता निगूहथ ॥ ३० ॥

‘हम गायों के अपने अपने भाग का निभाजन कर लें; अब से पुनः हमारे लिये अमित्रवत् न रहो ।’

और इस सूक्त की अन्तिम कृत्वा (ऋग्वेद १०. १०८, ११) तथा सभी युग्म कृत्वाओं से उसने (सरमा) कहा : ‘मैं न तो तुम्हारी बहन बनना चाहती हूँ और न तुम्हारा धन ही चाहती हूँ; किन्तु जिन गायों को तुमने यहाँ दिया स्वता है उनका दुग्धपान करना चाहेगी ।’

७-सरमा और पाणियों की कथा (शेषांश)

असुरास्तां तथेत्युक्त्वा तदाजहुः पयस्ततः ।
 सा स्वभावाच्च लौल्याच्च पीत्वा तत्पय आसुरम् ॥ ३१ ॥
 परं संवननं हृद्यं बलपुष्टिकरं ततः ।
 शतयोजनविस्ताराम् अतरत्तां रसां पुनः ॥ ३२ ॥
 यस्याः पारे परे तेषां पुरमासीत्सुवर्जयम् ।
 पप्रच्छेन्द्रश्च सरमां कचिद्ग्रा दृष्टयत्पसि ॥ ३३ ॥

उससे ‘हाँ’ कहते हुये असुरों ने उसे दूध लाकर दिया । और लाञ्छ से उसने उस आसुरी दूध का पान कर लिया जो श्रेष्ठ, मोहक, आनन्ददायक, तथा बल को पुष्ट करनेवाला था, और नव वह सी योजनोंके विस्तारवाली रसा को पुनः पार कर गई जिसे उम पार उनका दुर्जय पुर स्थित था । और इन्द्र ने सरमा से पूछा ‘तुमने गायों को यहाँ देखा ?’

सा नेति प्रत्युवाचेन्द्रं प्रभावादासुरस्य तु ।
 तां जघान पदा क्रुद्धः उद्गिरन्ती पयस्ततः ॥ ३४ ॥
 जगाम सा भयोद्विशा पुनरेव पणीन्प्रति ।
 पदानुसारिपद्धत्या रथेन हरिवाहनः ॥ ३५ ॥
 गत्वा जघान च पणीन् गाश्च ताः पुनराहरत् ।
 तेऽवदन्वैश्वदेवं तु ब्रह्मजाया जुहुर्जगौ ॥ ३६ ॥

किन्तु आसुरी दूध के प्रभाव से उसने इन्द्र को भकारात्मक उत्तर दिया । क्रुद्ध होकर उन्होंने उसे पैर से मारा । नव दूध का नमन करनी हुई भय से उद्गिर होकर वह पुनः पणियों के पास गई । अपने रथ पर बैठ कर हरिवाहन

(इन्द्र) ने उसके पद चिह्नों का अनुसरण करते हुये जाकर पणियों को मारा और गायों को वापस लिया ।

अब विश्वेदेवों को समर्पित 'तेऽवदन्' (ऋग्वेद १०. १०९) का प्रह्वजाया जुहु ने गायन किया ।

८-ऋग्वेद १०. १०९-१२० के देवता

जामदग्नं समिद्धोऽथ आप्रीसूक्तमतः परम् ।

युगपद्वै व्रजन्तं तं वैरूपा ऋपयस्त्रिभिः ॥ ३७ ॥

इन्द्रं प्रतिजगुः सूक्तैः पर्णान्प्रति मनीषिणः ।

वैश्वदेवं परं सूक्तं धर्मत्यंकेऽत्र तु स्तुतान् ॥ ३८ ॥

देवानिन्द्रं च मन्यन्ते छन्दांस्यग्निं च मध्यमम् ।

आग्नेयं चित्र इत्येतज् जगादपिंरुपस्तुतः ॥ ३९ ॥

इसके बाद 'समिद्धोऽथ' (ऋग्वेद १०. ११०) से आरम्भ जामदग्नि का आप्री सूक्त आता है ।

'मनीषिणः' (ऋग्वेद १० १११, १) से आरम्भ तीन सूक्तों (ऋग्वेद १० १११-११३) में वैरूपा ऋषियों ने उस समय इन्द्र का गायन किया जब वह पणियों के विरुद्ध गये । 'धर्मा' से आरम्भ बाद का सूक्त (ऋग्वेद १०. ११४) विश्वेदेवों को सम्बोधित है । फिर भी, कित्ती का विचार है कि यहाँ देवों और इन्द्र, इन्द्रों, और मध्यम अग्नि की स्तुति है । ऋषि उपस्तुत ने 'चित्र' (ऋग्वेद १० ११५) का गायन किया जो अग्नि को सम्बोधित है ।

पिप्रेन्द्रं स्तौति नेत्यन्नं राक्षोग्नाग्नेयमुत्तरम् ।

इति वै लावमैन्द्रं तद् आप्त्याः पृथया निपातिताः ॥४०॥

'पिव' (ऋग्वेद १० ११६) इन्द्र की स्तुति करता है और 'न' (ऋग्वेद १० ११७) अन्न की । बाद का सूक्त (ऋग्वेद १० ११८) अग्नि को सम्बोधित (और) राक्षसज्ञ है । 'इति वै' (ऋग्वेद १० ११९) लव को सम्बोधित है । 'तद्' (ऋग्वेद १० १२०) इन्द्र की सम्बोधित है इसकी छठवीं ऋचा में आप्त्यों का नैपतिक उल्लेख है ।

९-ऋग्वेद १०. १२१-१२२ के देवता । तीन खिल

प्राजापत्यमथाग्नेयं वैन्यमित्यनुपूर्वशः ।

वरुणेन्द्राग्निसोमानाम् इमं न इति संस्तवः ॥ ४१ ॥

इसके बाद कम से एक सूक्त प्रजापति (ऋग्वेद १०. ०२१) को, एक (ऋग्वेद १०. १२२) अग्नि को, और एक (ऋग्वेद १०. १२३) वेन को सम्बोधित है। 'इमं नः' (ऋग्वेद १०. १२४) में वरुण, इन्द्र, अग्नि, सोम की स्तुति है।

१ तु० को० मार्गःक्रमणी : 'अग्निवरुण सोमानान्... ऐन्द्रव् उत्तमा'।

चतस्रस्तत्र सूक्तादाव् आग्निरात्मस्तवं जगौ ।

स्तुतः सोमस्तु पृथवा च नचम्या च पदैत्रिभिः ॥ ४२ ॥

अब इस सूक्त के आदि की चार ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १२४, १-४) का अग्नि ने अपनी स्तुति में गायन किया; किन्तु छठवीं में तथा नवीं के तीन पादों में सोम की स्तुति है।

वारुण्यस्त्वितरास्तिस्व ऐन्द्रमेवोत्तमं पदम् ।

अहं वाक्सूक्तमर्यम्णो मित्रस्य वरुणस्य च ॥ ४३ ॥

न तं रात्र्याः परं सूक्तं वैश्वदेवं ममेति यत् ।

नमस्ते वैद्युतं सूक्तम् आशीर्वादः परं तु यत् ॥ ४४ ॥

यां कल्पयन्ति नोऽरयः कृत्यानाशनमात्मनः ।

हिरण्यस्तुतिरायुष्यं नासद्यत्परमेष्ठिनः ॥ ४५ ॥

किन्तु शेष तीन (ऋग्वेद १०. १२४, ५. ७. ८) वरुण को, जबकि अन्तिम पाद (नवीं ऋचा का) केवल इन्द्र को सम्बोधित हैं। 'अहम्' (ऋग्वेद १०. १२५) वाक् का सूक्त है। 'न तम्' (ऋग्वेद १०. १२६) अर्यमन्, मित्र और वरुण का है। वाट का सूक्त (ऋग्वेद १०. १२७) रात्री का है। वह जो 'मम' (ऋग्वेद १०. १२८) से आरम्भ होता है, विश्वेदेवों को सम्बोधित है। 'नमस् ते' से आरम्भ विद्युत को सम्बोधित सूक्त आशीर्वाद है। किन्तु 'यां कल्पयन्ति नोऽरयः' से आरम्भ जो बाद में आता है वह अभिचार नाशक है। 'आयुष्यम्' द्वारा अपने लिये स्वर्ग की स्तुति है। 'नासद्य' (ऋग्वेद १०. १२९) परमेष्ठिन् को सम्बोधित है।

१०-ऋग्वेद १०. १३०-१३७ के देवता

वदन्ति भाववृत्तं तद् यो यज्ञ इति चोत्तरम् ।

अपैन्द्रमत्र त्वाश्विन्यौ चतुर्थी पञ्चमी स्मृते ॥ ४६ ॥

लोग इस (सूक्त) को तथा बाद के सूक्त 'यो यज्ञः' (ऋग्वेद १०. १३०)

को भाववृत्त कहते हैं। 'अप' (ऋग्वेद १०. १३१) इन्द्र को सम्बोधित है, फिर भी, यहाँ चौथी और पाँचवीं ऋचा को अधिनों को सम्बोधित माना गया है।

मैत्रावरुणमीजानं प्रथमायामृचि स्तुताः।

अर्धचं त्रौश्च भूमिश्च अन्विनौ चोत्तरे ततः ॥ ४७ ॥

'ईजानम्' (ऋग्वेद १० १३२) मित्र वरुण को सम्बोधित है। प्रथम ऋचा की प्रथम अर्ध ऋचा म आकाश और पृथिवी की, तथा द्वितीय अर्ध ऋचा में अधिनों की स्तुति है।

प्रो ष्वैन्द्रे वैश्वदेव्यृक् तु नकिर्देवा मिनीमसि।

यस्मिन्वृक्ष इति त्वस्मिन् युस्थान स्तृयते यमः ॥ ४८ ॥

'प्रो यु' (ऋग्वेद १० १३३, १) में आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० १३३-१३४) इन्द्र को सम्बोधित हैं, किन्तु 'नकिर् देवा मिनीमसि' (ऋग्वेद १० १३४, ७) ऋचा विश्वेदेवों को सम्बोधित है। 'यस्मिन् वृक्षे' (ऋग्वेद १० १३५) में युस्थानीय यम की स्तुति है।

केश्यग्निं कौशिनं सूक्तम् उत देवाः परं तु यत्।

देवानामत्र चाद्या स्याद् वातदेवस्तृचः परः ॥ ४९ ॥

'केश्य अग्निम्' (ऋग्वेद १० १३६) सूक्त वेदिनों को सम्बोधित है, 'उत देवा' से आरम्भ राद के सूक्त (ऋग्वेद १० १३७) में प्रथम ऋचा को वृषों को सम्बोधित मानना चाहिये, राद की तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १० १३७, २-४) के देवता वान हैं।

त्रायन्तां वैश्वदेव्यृक् तु शेषस्त्वब्देवतः परः।

स्यादेतद्विश्वभैपज्यं रपसो वा विनाशनम् ॥ ५० ॥

'त्रायन्ताम्' (ऋग्वेद १० १३७, ५) से आरम्भ ऋचा विश्वेदेवों को सम्बोधित है किन्तु इमक राद जो ऋचायें (ऋग्वेद १० १३७, ६-७) आती हैं उनके वधता जल हैं। इम सूक्त को 'विश्व भैपज्य' अथवा अतमर्षता का विनाश करनेवाला मानना चाहिये।

११-'भूमि' पिल। ऋग्वेद १०. १३८-१४२ के देवता

भूमिर्लाक्षं परं सूक्तं तवैन्द्रं सूक्तमुत्तरम्।

सूर्यरश्मिरिति त्वस्मिन् सावित्रः प्रथमस्तृचः ॥ ५१ ॥

वाद् का 'भूमिः' सूक्त लावा को सम्बोधित है। इसके बाद का 'तव' (ऋग्वेद १०. १३८) सूक्त इन्द्र को सम्बोधित है। 'सूर्यरश्मिः' (ऋग्वेद १०. १३९) सूक्त की प्रथम तीन ऋचायें सवितृ को सम्बोधित हैं।

^१ 'भूमिर् माता, नमः पिता, अयमा ते पितामहः' से आरम्भ सात ऋचाओं का मिल।

आत्मा स्तुतः परोक्षस्तु गन्धर्वेणोत्तरे तृचे।

इन्द्रो वैप निपातेन अथवा सूर्य उच्यते ॥ ५२ ॥

अब बाद की तीन ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १३९, ४-६) में गन्धर्व द्वारा परोक्ष रूप से आत्मस्तुति है। इसे नैपातिक रूप से इन्द्र अथवा सूर्य कहा गया है।

सृक्तेऽस्मिन्देवतास्तिष्ठ एता एव प्रकीर्तिताः।

आग्नेयं त्वग्ने तवेति अग्ने अष्टेति यत्परम् ॥ ५३ ॥

आग्नेयं वैश्वदेवं च अयमित्यत्र तु दृचाः।

शाङ्गाश्चत्वार ऋपयो अग्निमार्चन्पृथक्पृथक् ॥ ५४ ॥

इस सूक्त (१०. १३९) में केवल इन्हीं तीन देवताओं की प्रशंसा है। अब 'अग्ने तव' (ऋग्वेद १०. १४०) अग्नि को सम्बोधित है, 'अग्ने अष्टे' (ऋग्वेद १०. १४१) से आरम्भ जो बाद में आता है वह अग्नि तथा विश्वेदेवों को सम्बोधित है। अब 'अयम्' (ऋग्वेद १०. १४२) सूक्त में द्वि-ऋचाओं के दृष्टाओं के रूप में चार शाङ्गों ने पृथक्-पृथक् अग्नि की अर्चना की है।

^१ अर्थात् सवितृ, इन्द्र, सूर्य।

^२ अर्थात् प्रत्येक ने दो-दो ऋचाओं से। तु० की० सर्वानुक्तमणीः 'अयम् : अष्टीः दृचाः शाङ्गाः, "आग्नेयम्"; देखिये 'दृव' वा व्याख्या के लिये षड्गुरुशिष्य।

१२. ऋग्वेद १०. १४३-१५४ के देवता। खिलः मेघसूक्त।

आश्विनं त्यं चिदित्येतद् अयमैन्द्रं ततः परम्।

इमां त्वनामोति सूक्तम् इन्द्राणी यत्स्वयं जगौ ॥ ५५ ॥

तदौपनिषदं पदकं भावघृत्तं प्रचक्षते।

उत्तानपर्णा पाठां तु स्तौति सूक्ते महोपधिम् ॥ ५६ ॥

'यं चित्' (ऋग्वेद १०. १४३) सूक्त अश्विनों को सम्बोधित है। 'अयम्' (ऋग्वेद १०. १४४) से आरम्भ इसके बाद का इन्द्र को सम्बोधित

है। 'इमां खनामि' (ऋग्वेद १०. १४५) में आरम्भ सूक्त को, जिसको स्वयं इन्द्राणी ने गाया है, उन लोगों ने छः ऋचाओं वाला एक औपनिषदिक भाववृत्त कहा है।

अब इस सूक्त में उसने (द्रष्टा ने) फैली हुई पत्तियों^१ वाली 'पाठा' नामक समर्थ महौषधि की स्तुति की है।

^१ औषधि की एक विशिष्टता के रूप में 'उत्तानपणां' शब्द ऋग्वेद १०. १४५, २ में आता है।

पतिसंवननी त्वन्त्यान्याः सपत्न्यपनोदिकाः ।

अरण्यानोत्थरण्यान्या स्तुतिरैन्द्रे श्रदुत्तरे ॥ ५७ ॥

अब अन्तिम ऋचा (ऋग्वेद १०. १४५, ६) का प्रयोजन पति का प्रेम प्राप्त करना तथा शेष का सपत्नि^१ (सौत) का प्रतिकार करना है।

'अरण्यानि' (ऋग्वेद १०. १४६) में अरण्यानी की स्तुति है। 'श्रद्' (ऋग्वेद १०. १४७, १) से आरम्भ वाद के दो सूक्त (१०. १४५-१४८) इन्द्र को सम्बोधित हैं।

^१ सर्वाङ्गुक्रमणी में 'सपत्ता वाधनम्' है, जिसकी ऋग्विधान ४. १२, २ के इन शब्दों से तुलना करें। 'सपत्नीम् वाधते तेन'।

सावित्रं सविता यन्त्रैः समिद्धश्चित्समिध्यसे ।

आग्नेयं श्रद्धया श्राद्धं मेधासूक्तमतः परम् ॥ ५८ ॥

'सविता यन्त्रैः' (ऋग्वेद १०. १४७) सवितृ को सम्बोधित है। 'समिद्धश्चित् सम् इध्यसे' (ऋग्वेद १०. १५०) अग्नि को सम्बोधित है। 'श्रद्धया' (ऋग्वेद १०. १५१) श्रद्धा को सम्बोधित है। इसके बाद 'मेधासूक्त' आता है।

^१ यह एक ऋच है, जिसका ऋग्विधान ४. १४, २ में 'मेधासूक्तम्' के नाम से उद्धृत है।

आग्नेयमा सूरैत्वेतच् छास ऐन्द्रे ततः परे ।

सोम एकेभ्य इत्येतद् भाववृत्तं प्रचक्षते ॥ ५९ ॥

'आ सूर एतु' सूक्त अग्नि को सम्बोधित है। इसके बाद 'शास' से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित दो सूक्त (ऋग्वेद १०. १५२-१५३) आते हैं। 'सोम एकेभ्यः' (ऋग्वेद १०. १५४) सूक्त को वह भाववृत्त कहते हैं।

^१ वह भा एक ऋच है जो वाश्मार समय में मेधासूक्त के ठीक बाद आता है।

१३-ऋग्वेद १०. १५५-१५९ के देवता

यदरायीत्यलक्ष्मीर्घ्नं तत्र चत्तो इति ब्रुचे ।

प्राधान्याद्वा निपाताद्वा स्तूयते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ६० ॥

इन्द्रश्चैव यदित्यस्यां विश्वे देवाः परीत्यृचि ।

आग्नेयं चाग्निमित्येतद् वैश्वदेवमिमा नु कम् ॥ ६१ ॥

'अरायि' (ऋग्वेद १०. १५५) दुर्भाग्य' का नाशक है : इसमें 'चत्तो' से आरम्भ हो ऋचाओं (ऋग्वेद १०. १५५, २-३) में ब्रह्मणस्पति की या तो प्रधान देवता के रूप में अथवा नैपातिक रूप में स्तुति है; और 'यत्' (ऋग्वेद १०. १५५, ४) ऋचा में इन्द्र की तथा 'परि' (ऋग्वेद १०. १५५ ५) ऋचा में विश्वेदेवों की स्तुति है । और 'अग्निम्' (ऋग्वेद १०. १५६) अग्नि को सम्बोधित है । 'इमा नु कम्' (ऋग्वेद १०. १५७) विश्वेदेवों को सम्बोधित है ।

^१ सर्वानुकमणी में यही 'अलक्ष्मीणम्' शब्द आता है; तु० कं० ऋग्विधान ४. १५, ०. 'अलक्ष्मीनाशनार्थम्' ।

इन्द्रः प्राधान्यतस्त्वत्र विश्वेदेवैः सह स्तुतः ।

आदित्यैश्च मरुद्भिश्च तथारूपं हि हृदयते ॥ ६२ ॥

फिर भी विश्वेदेवों, और आदित्यों और मरुतों के साथ-साथ यही इन्द्र' की प्रधान स्तुति है, क्योंकि सूक्त का रूप प्रत्यक्षतः ऐसा ही है ।

^१ सर्वानुकमणी में ऋग्वेद १०. १५७ को केवल 'दैवदेवम्' कहा गया है ।

सूर्यो न इति सौर्यं तु यच्चेतदुदसाविति ।

पौलोमी स्वान्गुणांस्तत्र सपत्नीनां च शंसति ॥ ६३ ॥

अब 'सूर्यो नः' (ऋग्वेद १०, १५८) सूर्य को सम्बोधित है; किन्तु 'उद् अमी' (ऋग्वेद १०. १५९) में पौलोमी ने स्वयं अपने गुणों तथा अपनी सपत्नियों के गुणों की प्रशंसा की है ।

१४-ऋग्वेद १०. १६०-१६४ के देवता । ऋषि कपोत नैर्ऋत ।

ऐन्द्रं तीव्रस्य मुञ्चामि भैषज्यं यक्ष्मनाशनम् ।

राजयक्ष्मरणं सूक्तं प्राजापत्यं तदुच्यते ॥ ६४ ॥

'तीव्रस्य' (ऋग्वेद १०. १६०) इन्द्र को सम्बोधित है । 'मुञ्चामि' (ऋग्वेद १०. १६१) एक यक्ष्मनाशक उपचार है । इस प्राजापत्य' सूक्त को 'राज-यक्ष्मा'^१ का विनाशक कहा गया है ।

^१ सर्वानुकमण और आर्षानुकमणा म श्म सूक्त क द्रष्टा को 'प्राजापत्य यक्ष्मनाशन' कहा गया है।

^२ सर्वानुकमणी में इसे 'रात्रयक्ष्मन्' कहा गया है।

एन्द्राग्रं मन्यते यास्क एके लिङ्गोक्तदैवतम् ।

राक्षोघ्नाग्नेयमित्युक्तं यत्चेतद्ब्रह्मणेति तु ॥ ६५ ॥

यास्क का विचार है यह सूक्त इन्द्र-अग्नि को सम्बोधित है, कुछ कं विचार से यह लिङ्गोक्त-देवताओं को सम्बोधित है। 'अव' 'ब्रह्मणा' (ऋग्वेद १०. १६२) को 'राक्षसग्र', तथा अग्नि को सम्बोधित कहा गया है।

स्रवतामपि गर्भाणां हृष्टं तदनुमन्त्रणम् ।

वैन्यं तु घेनस्तत्पश्यद् अक्षीभ्यां यक्ष्मनाशनम् ॥ ६६ ॥

इसे जन्म ले रहे गर्भ के इष्ट की स्तुति भी माना गया है। 'घेनम् तद परयत्'^१ घेन को सम्बोधित है। 'अक्षीभ्याम्' (ऋग्वेद १०. १६३) यक्ष्म-विनाशक है।

^१ यह ऋग्वेद १०. १६३ के पहले आनेवाला वान ऋचाओं का खिल है। अनुकमणा में इसे 'घेनम्. तुच वेनो, भाववृत्त तु' के रूप में व्यक्त किया गया है।

दुःस्वप्नघ्नमपेहीति निपातीन्द्रोऽग्निरेव च ।

आसीदपिदीर्घतपाः कपोतो नाम नैर्ऋतः ॥ ६७ ॥

'अपेहि' (ऋग्वेद १०. १६४) दुःस्वप्न विनाशक है : इसमें इन्द्र और अग्नि नेपातिक हैं।

कपोत नैर्ऋत नामक एक ऋषि था जिसने दीर्घकाल तक तप किया।

१५-ऋग्वेद १०. १६५-१७४ के देवता

अकरोत्कपोतस्तस्याष्ट्याम् अग्निधाने पदं किल ।

स तमात्महितैर्वाक्यैः कपोतं स्तुतवानृषिः ॥ ६८ ॥

देवा इति तु सूक्तेन प्रायश्चित्तार्थमुच्यते ।

ऋषभं मा सपत्नघ्नं येनेदमिति मानसम् ॥ ६९ ॥

ऐसा कथन है कि एक वन में कपोत ने इनके अग्निधान पर अपना पैर रख दिया था : ऋषि ने आत्महितेपी वाक्यों से 'देवा.' (ऋग्वेद १०. १६५) सूक्त द्वारा कपोत की स्तुति की : इसे प्रायश्चित्तार्थक' कहा गया है। 'ऋषभम् मा' (ऋग्वेद १०. १६६) सपत्नघ्न है। 'येनेदम्'^१ मानस को सम्बोधित है।

^१ तु० वी० सर्वा०नुक्रमणी : 'प्रायश्चित्तम् इदम् ।

^२ यह ऋग्वेद १०. १६७ के पहले आने वाला एक तीन ऋचाओं का खिल है और 'वेनेद भूत भुवनं भविष्यत्' से आरम्भ होता है ।

तुभ्येत्यूर्पा ददशतुर् ऐन्द्रं गाथिनभार्गवौ ।
वरुणो विधातानुमतिर् धाता सोमो बृहस्पतिः ॥ ७० ॥
पञ्चेता देवतास्तत्र तृतीयायामृचि स्तुताः ।
वातस्येति परेणास्तौद् अनिलः पितरं स्वकम् ॥ ७१ ॥

गाथिन (विश्वामित्र) और भार्गव (जमदग्नि), इन दो ऋषियों ने 'तुभ्य' (ऋग्वेद १०. १६७) से आरम्भ इन्द्र को सम्बोधित मूक्त का दर्शन किया । यहाँ तृतीय ऋचा (ऋग्वेद १०. १६७, ३) में वरुण, विधात, अनुमति, धातृ, सोम, बृहस्पति—इन छः देवताओं की स्तुति है । 'वातस्य' (ऋग्वेद १०. १६८) से आरम्भ वाद के मूक्त द्वारा अनिल ने अपने पिता^३ की स्तुति की ।

^१ तु० वी० सर्वा०नुक्रमणी : 'विश्वामित्रजमदग्नी (= सर्वा०नुक्रमणी) ऋषिर् गाथिन-भार्गवौ' ।

^२ सर्वा०नुक्रमणी : 'तृतीया लिङ्गोक्तदेवता'; तु० वी० पद्मपुराणम् ।

^३ तु० वी० सर्वा०नुक्रमणी १०. ८७; 'वातायनो भुनिः मूक्तं वातस्यैव अनिलो ज्यौ ।'

मयोभूरिति यत्सूक्तम् अपश्यच्छवर ऋषिः ।
नानारूपाः पयस्विन्यो गावस्तत्र तु संस्तुताः ॥ ७२ ॥

'मयोभूः' (ऋग्वेद १०. १६९) से आरम्भ सूक्त का शवर^१ ऋषि ने दर्शन किया । यहाँ नाना रूपों की पयस्विनियों (दूध देने वाले पशुओं) की स्तुति है ।^२

^१ शवर का नाम सर्वा०नुक्रमणी तथा सर्वा०नुक्रमणी में आता है ।

^२ सर्वा०नुक्रमणी इस सूक्त का केवल 'गभ्यम्' के रूप में वर्णन करता है ।

विभ्राट् सौर्यं त्वं त्यमैन्द्रम् आ याहीत्युपस स्तुतिः ।
आ त्वा राज्ञेऽभिपिक्ताय द्वे तूक्ते चानुमन्त्रणे ॥ ७३ ॥

'विभ्राट्' (ऋग्वेद १०. १७०) सूर्य को सम्बोधित है; 'श्वं त्यम्' (ऋग्वेद १०. १७१) इन्द्र को सम्बोधित है; 'आ याहि' (ऋग्वेद १०. १७२) में उपस्य की स्तुति है, और 'आ त्वा' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १०. १७३-१७४)^३ अभिपिक्त राजा का अनुमन्त्रण करते हैं ।

^१ सर्वानुक्रमणा ने इन दोनों को 'राशस्तुति' कहा है। तु०वा० ऋग्विधान ४ २२, ३।

१६-ऋग्वेद १०. १७५-१८१ के देवता।

प्र व इत्युत्तरं ग्राव्यां ददर्श स्तुतिमावुदिः।

यन्वतः परमाग्नेयं तत्रार्भण्यृक् प्र सून्वः ॥ ७४ ॥

गाणों की स्तुति के रूप में 'आवुदि' ने वाद के 'प्र व' (ऋग्वेद १०. १७५) सूक्त का दर्शन किया। अब जो वाद में आता है वह अग्नि को सम्बोधित है यहाँ 'प्र सून्व' (ऋग्वेद १० १७६, १) से आरम्भ तीन ऋचायें ऋतुओं को सम्बोधित हैं।

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणा 'प्र व "आवुदिर् ग्राव्योऽस्तौत्'।

ऋषिर्जगौ पतंगस्तु पतंगमिति यत्परम्।

तत्सौर्यमेके मन्यन्ते मायाभेदं तथापरे ॥ ७५ ॥

अब वाद में आनेवाले 'पतंगम्' सूक्त (ऋग्वेद १० १७७) का पतंग ऋषि ने गायन किया, कोई इसे सूर्य को सम्बोधित मानता है, जब कि अन्य 'मायाभेदक' मानते हैं।

^१ इस सूक्त का वचन करन के लिये सर्वानुक्रमणी न भा इस शब्द का प्रयोग किया है। तु० की० ऋग्विधान ४ २२, ५ 'मायाभेदन् ऐतत्'।

मायाभेदे द्वितीयायां वाक् स्तुतेत्याह शौनकः।

देवी विभर्ति मनसा या वाचं विदितां सतोम् ॥ ७६ ॥

इस माया-भेदक सूक्त में, शौनक का कथन है कि, द्वितीय ऋचा (ऋग्वेद १० १७७, २) में उस देवी वाच की स्तुति है जो अपने हृदय^१ में सुविदित^२ वाणी को धारण कर रखती है।

^१ तु० वा० ऋग्वेद १० १७७, २ में यह शब्द 'पतञ्जो वाच मनसा विभर्ति' शोतमानाम्'।

^२ इससे सम्भवतः ऋग्वेद १ १६४, ४५ में वर्णित चार प्रकार के वाच से तात्पर्य है 'तानि विदुर् ग्राव्यां तुरीय वाचो ननुष्या वदन्ति'।

त्यम् पु ताक्षर्यदैवत्यं सूक्तं स्वस्त्ययनं विदुः।

उदैन्ये वैश्वदेवं तु प्रथञ्चेति च यत्परम् ॥ ७७ ॥

'त्यम् ऊ पु' (ऋग्वेद १० १७८) सूक्त जो, जिसके देवता ताक्षर्य है, वह होता 'स्वस्त्ययन' करने वाला मानने है।^१ 'उत्' से आरम्भ दो सूक्त (ऋग्वेद १० १७९-१८०) इन्द्र को सम्बोधित है, जब कि जो कि इनके

बाद में 'प्रथमं च' (ऋग्वेद १०. १८१) आता है। अर्थात् 'वृहस्पति' का सम्बोधित है।

^१ तु० की० ऋग्विधान ४. २३. २ - 'स्यम् ऊ ष्व इति स्वस्त्वुयंतम्'।

१७-ऋग्वेद १०. १८२-१८४ के देवता

आत्मप्रभावमाचख्युस् तत्राद्या ऋषयस्त्रयः।

रथंतरं यथा स्तोत्रं स्तोत्रं चैव यथा बृहत् ॥ ७८ ॥

यथा च संभूतो धर्मः सवितुश्चोपलक्ष्यते ॥ ७९ ॥

बृहस्पतिरिति त्वस्मिन् स्तुतः सूक्ते बृहस्पतिः ॥ ७९ ॥

इसमें प्रथम तीन ऋषियों ने स्वयं अपने प्रभाव को व्यक्त किया है : किस प्रकार रथंतर स्तोत्र और किस प्रकार बृहत् स्तोत्र, और किस प्रकार धर्म सवितृ से उपलब्ध हुये, इसका वर्णन निहित है। अब 'बृहस्पतिः' (ऋग्वेद १०. १८२) सूक्त में बृहस्पति की स्तुति है।

आशिपो यजमानस्य केचिदेतां स्तुतिं विदुः।

प्राजापत्यस्य यत्सूक्तम् अपश्यं त्वा प्रजावतः ॥८०॥

प्रत्यृचं देवता स्तोति लिङ्गैरेवात्र लक्ष्मिनाः।

आशिपः पुत्रकामस्य प्रथमा हि वदत्यथ ॥८१॥

द्वितीया पुत्रकामायास् तृतीयात्मस्तवं त्वृषेः।

यद्विष्णुरिति सूक्तं तु वैश्वदेवं प्रचक्षते ॥८२॥

बृह लोम इम स्तुति (बृहस्पति की) की यजमान की स्तुति मानते हैं। 'अपश्यं त्वा' (ऋग्वेद १०. १८३) से आरम्भ प्रजावत् प्राजापत्य के सूक्त में प्रायेक ऋचा में लिङ्ग में व्यक्त देवताओं की स्तुति है : अर्थात् प्रथम ऋचा में पुत्र की इच्छा रखनेवाले के लिये आशिपु है, दूसरे बाद द्वितीय में पुत्र की इच्छा रखनेवाली स्त्री के लिये; जब कि तृतीय ऋषि की आत्मस्तुति है। अब 'विष्णुः' (ऋग्वेद १०. १८४) में आरम्भ सूक्त को वह लोम विश्वदेवों^१ को सम्बोधित बताते हैं।

^१ तानों ऋचाओं में कनधाः यजमान, उसरी पत्नी, और होतृ ही देवता हैं; तु० का० सर्वानुक्रमणः : 'अनृचं यजमानरसाशी आशिपः।'

^२ सर्वानुक्रमणों में इन सूक्त बड़े 'लिङ्गीकदेवता' बताया गया है।

तस्मिन्स्वदारगर्भार्थम् ऋषिराशास्त आशिषः ।

परं तु नेजमेवेति गर्भार्थं वा तदुच्यते ॥८३॥

इसमें ऋषि ने अपनी पत्नी के गर्भ^१ धारणार्थ आशिष कहा है। अब वाद का सूक्त 'नेजमेप'^२ है। इसे वैकल्पिक रूप से गर्भार्थक कहा गया है।

^१ तु० वी० सवानुकमणा 'गर्भोपशा' ।

^२ यह ऋग्वेद १० १८५ के पहले आनेवाला तीन ऋचाओं का खिल है।

१८- 'नेजमेप' खिल। ऋग्वेद १०. १८५-१८८ के देवता

अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान् ।

आशिषो योगदेतं हि सर्वर्गधेन मन्यते ॥८४॥

एकारमनुकम्पार्थे नान्नि स्मरति माठरः ।

आख्याते भूतकरणं वाष्कला आव्ययोरिति ॥८५॥

'पुत्र की इच्छा रखनेवाली मेरी इस स्त्री को सन्तान प्रदान करें जो पुरुष हो'—सम्पूर्ण ऋचा के इस अर्धभाग से उनका इन सम्पूर्ण आशिष-योग से तात्पर्य है। माठर यह मानते हैं कि (नेजमेप) नाम में 'एकार' का अनुकम्पार्थक तात्पर्य है, जब कि वाष्कलों का कथन है कि (आदधे) आख्यात में दो 'एकारों' का 'आख्य'^१ के आशय में भूतकालिक अर्थ है।

^१ अर्थात् 'आदधे' यहाँ = आदधी ।

माहित्रं यन्महि त्रीणाम् आदित्यानां स्तुतिं विदुः ।

वरुणार्यममित्राणाम् आदित्येष्वितरेषु तु ॥८६॥

एत एव त्रयो देवा स्तुताः स्वल्पेष्वतोऽन्यथा ।

शान्त्यर्थं सूक्तमेतद्धि पावनं चैव वै श्रुतम् ।

यातामपि स्वस्त्ययने दृष्टं तदनुमन्त्रणम् ॥८७॥

'महि त्रीणाम्' (ऋग्वेद १० १८५) से आरम्भ सूक्त को वह लोग आदित्यों, वरुण, अर्यमन्, मित्र, की स्तुति मानते हैं। अब इसको छोड़कर आदित्यों को सम्बोधित अत्यन्त कम सूक्त ही ऐसे हैं चिनम केवल इन तीनों देवों की स्तुति हो। ध्रुति के अनुसार यह शान्त्यर्थक सूक्त, तथा पवित्र कारक भी है।

इसे गात्रियों के आमन्त्रण में भी कल्याणकारी माना गया है।

^१ तु० षो० ऋग्वेदान ८. २१, ३ : 'नदि ज्ञानाम् अनोऽस्तु रति एवराजने जयत् ।
 देतिये ऋग्वेद ८. ८९, ६ : 'क्षिपन्तो वान्तो अध्वश्च आ देवा वृषाय हूमहे ।' सर्वा-
 नुक्रमणी में भां २९ सूक्त को 'स्वस्वयमन्' कहा गया है ।

उलोऽस्तौत्पितरं वातं वात आग्नेयमुत्तरम् ।

विस्पष्टं जातवेदस्यं प्रेति दाशतयीषु तु ॥८८॥

'वातः' (ऋग्वेद १०. १८६) से उल ने अपने पिता की स्तुति की ।
 वाद् का सूक्त (ऋग्वेद १०. १८७) अग्नि को सम्बोधित है । ऋग्वेद दस
 मण्डलों में 'प्र' (ऋग्वेद १०. १८८) से आरम्भ पुरु सूक्त स्पष्टरूप से
 जातवेदस्' को सम्बोधित है ।

^२ क्योंकि यहाँ केवल 'जातवेदस' नाम का ही उल्लेख है । अनुक्रमणी में भी इन सूक्त
 को 'जातवेदस्यम' कहा गया है ।

१९-ऋग्वेद १०. १८९, १९० । 'संज्ञानम्' खिल

यत्किञ्चिदन्यत्राग्नेयं जातवेदस्यमुच्यते ।

आयं गोरिति यत्तुक्तं सारंपराज्ञी स्वयं जगौ ॥८९॥

अन्य जो कुछ भी जातवेदस्' को सम्बोधित कहा गया है, वह (वास्तव
 में) अग्नि को सम्बोधित है । 'आयं गौः' (ऋग्वेद १०. १८९) सूक्त का
 सारंपराज्ञी^३ ने अपने लिये गायन किया है ।

^४ ऊपर १. १७ में जातवेदस्' को मध्यम अग्नि कहा गया है । ऋग्वेद १०. १८९ के
 अतिरिक्त, सर्वानुक्रमणी ने केवल एक ही अन्य सूक्त (ऋग्वेद १. १९) को
 जातवेदस्' कहा है ।

^५ तु० षो० सर्वानुक्रमणी : 'सारंपराज्ञी आग्नेयं सौर्यं वा ।'

तस्मात्सा देवता तत्र सूर्यमेके प्रचक्षते ।

सुहृलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकशायनः ॥९०॥

त्रिस्थानाधिष्ठितां वाचं मन्यन्ते प्रत्यूचं स्तुताम् ।

भाववृत्तं परं सूक्तं ददर्शाथाघमर्षणः ॥९१॥

परं न विद्यते यस्मान् छान्त्यै वा पाचनाय वा ।

यथाश्वमेधः ऋतुराद् सर्वरिप्रप्रणोदनः ॥९२॥

तथाघमर्षणं ब्रह्म सर्वरिप्रप्रणोदनम् ।

तदादीनीति यच्चातः संज्ञानं ज्ञानसंस्तवः ॥९३॥

अतः हमें यहाँ पंचता है, कोई सूर्य को (देवता) पताते हैं । सुहृल,

शाकृष्णि, और आचार्य शाकटायन का विचार है कि यहाँ प्रत्यक ऋचा में तीन स्थानों की अधिष्ठात्री के रूप में वाच् की स्तुति है। वाच् के उस भावपूत^१ सूक्त (ऋग्वेद १० १९०) का अधमर्षण ने दर्शात किया जिससे समृद्धि अथवा पवित्रता के लिये श्रेष्ठ अन्य कोई (सूक्त) विद्यमान नहीं है। जिस प्रकार हर प्रकार की अशक्तता^२ को दूर करने के लिये प्रमुख प्रणोद है, उसी प्रकार अधमर्षण स्तुति समस्त अशक्तता को दूर करती है। अब इसके (ऋग्वेद १० १९०) वाच् में आनेवाले सूक्तों में से 'संज्ञानम्'^३ से आरम्भ सूक्त में ज्ञान की स्तुति है।

^१ तु० का० सर्वानुक्रमणी 'अधमर्षणो, भाववृत्तम्'।

^२ तु० का० ऋग्विधान ४ २३, ५ 'पवित्राणा पवित्र तु जपेद् एवाधमर्षणम्'।

^३ आरम्भ सप्तह में ५वें अव्याय का प्रथम खिल है।

२०-दो खिल। ऋग्वेद १०. १९१। मह्यानाम्नी ऋचार्ये।
चतुर्थं यत्तु नैर्हस्यं तत्सपत्ननिवर्हणम्।
संसमित् प्राध्वराणां चेत्य् आग्नेय्यावेव ते स्मृते ॥९४॥

- अथ 'नैर्हस्यम्' सपत्न विनाशक है।^१ 'संसम् इत्' (ऋग्वेद १०. १९१, १) और 'प्राध्वराणाम्'^२ को अग्नि को सम्बोधित दो ऋचार्ये माना गया है।
^१ यह खिल ऋग्गीर सप्तह में 'मज्ञानम्' के बाद आता है। इसमें 'नैर्हस्य सेनाशरणम्' से आरम्भ तान ऋचार्ये है।
^२ यह 'प्राध्वराणा पते वसो' से आरम्भ सात ऋचार्यों का खिल है जो 'नैर्हस्यम्' के बाद आता है।

उशाना वरुणश्चेन्द्रश् चाग्निश्च सविता स्तुताः।
संज्ञाने प्रथमस्यां तु द्वितीयस्यामथाश्विनौ ॥ ९५ ॥

अब 'संज्ञानम्' की प्रथम ऋचा में उशाना, वरुण, इन्द्र, अग्नि और सविता की, और इसके बाद द्वितीय में अश्विनों की स्तुति है।

तृतीया चोत्तमे च द्वे आशिपोऽभिवदन्ति ताः।
इन्द्रः पूषा सपत्नघ्ने द्वितीयस्यामृचि स्तुतौ ॥९६॥

तांसरो और अन्तिम दो (३, ४, ५) आशिप् को अभिव्यक्ति करती हैं। 'सपत्नघ्ने' की दूसरी ऋचा में इन्द्र और पूषन् की स्तुति है।

^१ अर्थात् 'नैर्हस्यम्' की। इन दोनों देवताओं का हम खिल का दूसरी ऋचा में उल्लेख है।

देवानामितराः प्रोक्ता आशीर्वादपराश्च याः ।

संसं संज्ञानमित्येते परं संवननं विदुः ॥ १७ ॥

और अन्य ऋचाओं को, जो कि प्रमुक्ततः आशीर्वादों से सम्बद्ध हैं, देवों को सम्बोधित कहा गया है। वह लोग 'सं-सम्' (ऋग्वेद १०. १९१) और 'संज्ञानम्' को सहमति^१ के लिए सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

^१ ऋग्विधान ४. २४, ४. ५ में 'सं-सम्' का 'मौञ्जदुकरणं महत्' के रूप में और 'संज्ञानम्' का 'सन्धिकरम्' के रूप में वर्णित है।

महानामन्य ऋचो गुह्यास् ता एन्द्रयश्चैव यो वदेत् ।

सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्त्रात्मं स राध्यते ॥ १८ ॥

'महानामनी ऋचायें गुह्य है और यह इन्द्र को सम्बोधित हैं। जो भी इसका आराधन करता है वह सहस्र वर्ष की अवधि वाला ब्रह्म का एक दिन प्राप्त करता है।'

^१ तु० बी० भागवतशास्त्र ८. १७ : 'सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् यद् ब्रह्मणो विदुः' जो ऋग्वेद परिवर्तन के साथ निकल १४ ४ में आया है। मनुस्मृति २. ७३ में भी यद् कुल इम प्रकार परिवर्तित रूप में आया है : 'तर्पे युगसहस्रान् प्राप्तं पुण्यम् अहर् विदुः।'

२१-महानामनी ऋचायें : सूक्त क्या होता है

तृचाधमं याज्ञिकाः सूक्तमाहुस्

तस्मिन्स्तुतौ दृश्यन्ते याः सूक्तभाजः ।

प्रधानमुक्तं किल देवता याः

सूक्तभाजः सर्वदा शौनकेन ॥ १९ ॥

याज्ञिका का कथन है कि एक सूक्त में कम से कम तीन ऋचायें होती हैं।' इनमें जिन देवताओं की स्तुति^१ होती है वही इनके सूक्तभाज होते हैं। जैसा कि तुर्विदिन है, शौनक ने यह कहा है कि सूक्तभाज देवता सर्वदा ही (स्तुति के) प्रधान विषय होने हैं।

^१ इसके अनुसार ऋग्वेद २. ९९, सूक्त नहीं होगा।

^२ तु० बी० उपर ८. १८३ : स्तुतौ यस्वेह दृश्यते, और देविये ६. १६ भी।

एन्द्रार्कचो महानामनीस्तु विद्यात्

तथा हि दृष्टं ब्राह्मणे सूक्तशब्दः ।

न हश्यते सूक्तवादो निविदिसु

यथा प्रैवेप्वाह सूक्ताभिधानम् ॥ १०० ॥

अब यह जानना चाहिये कि महानामनी इन्द्र को सम्बोधित ऋचायें होती हैं, क्योंकि एक बार ब्राह्मण^१ में ऐसा ही उल्लेख आता है।

सूक्त शब्द इनके लिये व्यवहृत दिखाई नहीं पड़ता, 'सूक्तवाद' का उर्मी प्रकार निविदों के सम्बन्ध में प्रयोग होता है, जैसे सूक्त की अभिधा को प्रैवों के लिये व्यवहार किया जाता है।

^१ यह ऋचायें (= ऐतरेय आरण्यक ४) उग शिल्प का निर्माण करती हैं जो बादमात तमस में 'प्राधराणम्' के बाद आता है।

^२ तु० की० ऐतरेय ब्राह्मण १ ७ २ 'इन्द्रो वा एतानिर् महान् आमान निरनिमो, तस्मान् महानाम्ब्य'; तु० की० कौषीकि ब्राह्मण २२ २, भा।

सूक्तैकदेशा इति तान्प्रतोयाद्

अन्याश्च कुन्त्याः पदशो विशास्ता।

यथैतशो देवनीथादिसंज्ञा

कुन्तापे तत्सर्वमेकं हि सूक्तम् ॥ १०१ ॥

ऐसा समझना चाहिये कि यह^१ एक सूक्त के एक एक भाग हैं, तथा साथ ही साथ पादों^२ से पृथक् कुन्त्या^३ ऋचायें, जैसे ऐतश प्रलाप, तथा देवनीथ सञ्जक पाद, इत्यादि, भी ऐसे ही हैं, क्योंकि कुन्ताप में यह सब एक ही सूक्त हैं।

^१ अर्थात् निविद् सूक्तों में निविद् और 'प्रैविक सूक्तम्' में प्रैव।

^२ ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि ऐतश प्रलाप (ऋग्वेद ६ ३३, १४-१५) और देवनीथ (ऋग्वेद ६ ३५, २२) के प्रत्येक पाद को 'ओम्' के साथ निविद् की भाँति उच्चारण करना चाहिये।

^३ 'कुन्त्या' शब्द अन्यत्र नहीं मिलता। यहाँ इसका अर्थ 'कुन्ताप की ऋचायें' ही होना चाहिये।

पुरीषपदमासां तु प्रथमं स्यात्प्रजापतेः।

आग्नेयमैन्द्रं वैष्णवं पौष्णं चैव तु पञ्चमम् ॥ १०२ ॥

अब इनमें (महानामनी ऋचाओं में) से प्रथम पुरीष पद को प्रजापति का मानना चाहिये, इसके बाद एक अग्नि को, एक इन्द्र को, एक विष्णु को और पंचमों पृषन् को सम्बोधित।

अग्नेः प्रपाजानुयाजाः प्रैषा ये च हवींषि च ।

यद्देवतं हविस्तु स्यात् प्रैषास्तद्देवताश्च ते ॥ १०३ ॥

प्रपाज और अनुयाज, प्रैष और हवींषी अग्नि के हैं। अब इन हवींषी के जो भी देवता हों उन्हें ही प्रैषों का भी देवता होना चाहिये।

२२-निविद्, निगद्, और छन्दों के देवता

निविदां निगदानां च स्वैः स्वैर्लिङ्गैश्च देवताः ।

निगदेन निगद्यन्ते याश्च कल्पानुगा ऋचः ॥ १०४ ॥

निविदों और निगदों के देवताओं को उनके अपने-अपने लिङ्ग के आकार पर जाना जा सकता है; और उन्हीं ऋचाओं का निगद के साथ गायन करना चाहिये जो ऋच के अनुकूल हों।

अग्नेरेव तु गायत्र्य उष्णिहः सवितुः स्मृताः ।

अनुष्टुभस्तु सोमस्य बृहत्यस्तु बृहस्पतेः ॥ १०५ ॥

अब गायत्रियों को अग्नि का, उष्णिहों को सवितु का, अनुष्टुभों को सोम का, और बृहतियों को बृहस्पति का माना गया है।

पंस्यस्त्रिष्टुभश्चैव विश्वादेन्द्रमथ सर्वशाः ।

विश्वेषां चैव देवानां जगत्प्यो यास्तु काश्चन ॥ १०६ ॥

यह जानना चाहिये कि पंस्यियों और त्रिष्टुभ सर्वशा इन्द्र की ही हैं; और जो भी समस्त जगत्पियों हैं वे विश्वेश्वरों की हैं।

^१ वाचस्पत्येय संहिता अनुक्रमणिका के अनुसार पंस्यियों वरुण की और त्रिष्टुभ इन्द्र के होते हैं : 'पंस्य वरुणस् त्रिष्टुभ इन्द्रः ।'

विराजश्चैव मित्रस्य स्वराजा वरुणस्य च ।

इन्द्रस्य निचूतः प्रोक्ता वायोश्च भुरिजः स्मृताः ॥ १०७ ॥

विषये यस्य वा स्यातां स्यातां वा वायुदेवते ।

यास्त्वनिच्छन्दसः काश्चित् ताः प्रजापतिदेवताः ॥ १०८ ॥

विराज मित्र के, और स्वराज वरुण के होते हैं। निचूतों को इन्द्र का पताया गया है और भुरिजों को वायु का माना गया है; अथवा यह दोनों^१ वय देवता के ही मन्त्रों हैं जिसके वेद्य में यह हों, अथवा दोनों के ही देवता वायु हो सकते हैं। किन्तु सभी अविच्छन्दम् छन्दों के देवता प्रजापति^२ हैं।

^१ तु० वी० वाक्सनेवि सहिता विराजो मित्र स्वराजो वरुण ।

^२ अथाद् मिचूत् और भुरिन् ।

^३ तु० वी० वाज्मनत्रि सहिता अनुक्रमणी 'अनिधन्दस प्रजापति ।'

२३-छन्दो, वेदों, वपट्कार, स्वाहावृत्तियों के देवता । स्वर ।

विछन्दसस्तु वायव्या मन्त्राः पादैश्च ये मिताः ।

पौरुष्यो द्विपदाः सर्वा ब्राह्मण्य एकपदाः स्मृताः ॥१०९॥

किन्तु विभिन्न छन्दों वाले मन्त्र वायु के होते हैं । और जो पादों से परिमित होते हैं उनमें से सभी द्विपदा पुरुष के लिये होते हैं, और एक पदों की ब्रह्म के लिये माना गया है ।'

^१ तु० वी० वाक्सनेवि सहिता अनुक्रमणी विच्छन्दसो वायुर् द्विपदाया इत्येकपदाया ब्रह्मा ।'

समस्ता ऋच आग्नेय्यो वायव्यानि यजूंषि च ।

सौर्याणि चैव सामानि सर्वाणि ब्राह्मणानि च ॥११०॥

समस्त ऋचायें अग्नि के लिये हैं^१, यजुप् वायु के लिये हैं^२, समस्त सामन् और ब्राह्मण सूर्य के लिये हैं ।

^१ तु० वा० वाक्सनेवि सहिता अनुक्रमणी 'सर्वाऋच आग्नेय्य' ।

^२ तु० वी० वही 'सामानि सौर्याणि सर्वाणि ब्राह्मणानि च' ।

वैवदेवो वपट्कारो हिंकारो ये यजामहे ।

रूपं वज्रस्य वाक्पूर्वं स्वाहाकारोऽग्निदेवतः ॥ १११ ॥

वपट्कार तथा हिंकार विश्वेदेवों के लिये हैं ।^१ 'ये यजामहे' वज्र^२ का रूप है जिसके पूर्व में वाक् है । स्वाहाकार के देवता अग्नि हैं ।

^१ 'इवार' का 'वपट्कार' के साथ अवयववेद ३ २३, ४ में उल्लेख है ।

^२ तु० वी० धेतरेय ब्राह्मण २ २८, ५ आगूर् वज्र^३ ।

देवानां च पितॄणां च नमस्कारः स्वधैव च ।

शुष्टो मूर्धानि विज्ञेयस् तालव्यः प्रथमः स्वरः ॥११२॥

नमस्कार और स्वधा देवों और पितरों के हैं ।

शुष्ट स्वर को मूर्धा में स्थित मानना चाहिये; प्रथम स्वर तालव्य^१ है ।

^१ तु० वा० नावे ११७ । 'सिन्धे वाक्सनेवि सहिता प्रातिशाल्य ८ ४७ ।

द्वितीयस्तु भ्रुवोर्मध्ये तृतीयः कर्णसंश्रितः ।

चतुर्थी नासिकाग्रे स्याद् औरसो मन्द्र उच्यते ।

मन्द्रकर्षणसंयुक्तम् अतिस्वारं प्रशंसति ॥ ११३ ॥

किन्तु द्वितीय भौंहों^१ के मध्य में होता है, तृतीय का स्थान कर्ण^२ है, चौथे को नासिकाग्र^३ में मानना चाहिये, मन्द्र को वक्त्र^४ में बताया गया है । अतिस्वार^५ को कोई व्यक्ति मन्द्र के कर्षण से संयुक्त बताते हैं ।

^१ तु० की० नीचे ११७ ।

^२ तु० की० नीचे ११८ ।

^३ तु० की० नीचे ११८ ।

^४ तु० की० नीचे ११९ ।

^५ इस शब्द का वह रूप नीचे ११६ में भी प्रयुक्त हुआ है, किन्तु भन्वव नहीं मिलता । शक्य सामान्य रूप 'अतिस्वारं' नीचे १२० में प्रयुक्त हुआ है, जहाँ तु० की० इसकी वह परिभाषा: 'विकर्षण मन्द्रस्य युक्तः' ।

२४-स्वरों के देवता ।

वदन्ति देवताः क्रुष्टं मनुष्याः प्रथमं स्वरम् ।

द्वितीयं पशवः सर्वे गन्धर्वाप्सरसः स्वरम् ॥ ११४ ॥

देवगण क्रुष्ट स्वर में बोलते हैं, मनुष्यगण प्रथम स्वर में, तन्मत्ता पशु द्वितीय में, गन्धर्व और अप्सरायें (बाद के) स्वर में ।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पाश् चतुर्थमुपभुञ्जते ।

मन्द्रं पिशाचा रक्षांसि असुराश्चोपभुञ्जते ॥ ११५ ॥

अण्डज जीव, पक्षी, सर्प, चतुर्थ का व्यवहार करते हैं; पिशाच, राक्षस, और असुर मन्द्र स्वर का व्यवहार करते हैं ।

अतिस्वारस्तु सर्वस्य जङ्गमस्थावरस्य च ।

वैश्वदेवः स्वरः क्रुष्टो नित्यं यो मूर्ध्नि तिष्ठति ॥ ११६ ॥

किन्तु अतिस्वार समस्त जङ्गम और स्थावर की विशेषता है ।

क्रुष्ट स्वर, जो कि स्थायी रूप से मूर्ध्नि में स्थित होता है, विश्वेदेवों के लिये है ।

तालव्यः प्रथमः सान्नां स्वर आदित्यदैवतः ।

स्वरां द्वितीयः साध्यानां भ्रुवोर्देशं सनाश्रितः ॥ ११७ ॥

प्रथम तालव्य, सामनों के स्वर के देवता आद्रित्य गग हैं। द्वितीय एर, जिसका स्थान भ्रूदेश ह, साध्यों के साथ सम्बद्ध है।

आश्विनस्तु तृतीयोऽत्र स्वरः कर्णो समाश्रितः ।

चतुर्थस्त्वत्र घायव्यो नासिक्यः स्वर उच्यते ॥११८॥

किन्तु नहीं तृतीय स्वर, जिसका स्थान कर्ण है, अश्विनों के लिये है; किन्तु यहाँ चतुर्थ स्वर, जो नासिक्य है, घायु के लिये कहा गया है।

२५-स्वरों के देवता (शेषांश) । प्रस्ताव, उद्गीथ, उपद्रव,
प्रतिहार, निधन, के देवता ।

पञ्चमस्तु स्वरः प्रोक्तश् चाक्षुषः सूर्यदेवतः ।

यस्तु सामस्वरः षष्ठः स सौम्यो मन्द्र उच्यते ॥११९॥

किन्तु पाँचवें स्वर का, जो चाक्षुष है, सूर्य को देवता कहा गया है। किन्तु छठवें मन्द्र सामन् स्वर को सोम का कहा गया है।

विकर्षेण तु मन्द्रस्य युक्तोऽतिस्वार्य उच्यते ।

स मैत्रावरुणा ज्ञेयो मन्द्रस्थानसमाहितः ॥ १२० ॥

किन्तु जो मन्द्र के कर्षण से बना है उसे अतिस्वार्य कहा गया है : इमं मित्र-वरुण के लिये जानना चाहिये । यह मन्द्र-स्थान में स्थित है ।

सामस्वराणां सप्तानाम् एतो देवा इहोदिताः ।

त्रयाणामितरेषां तु लोकाधिपतयस्त्रयः ॥१२१॥

इन सबको यहाँ सात सामन स्वरों का देवता कहा गया है किन्तु अन्य तीन^१ के देवता तीन लोकाधिपति^२ हैं ।

^१ अर्थात् ऋग्वेद के तीन स्वर ।

^२ अर्थात् ऊपर १. ७२ में परिचित अग्नि के तीन रूप ।

वाग्देवत्योऽधवाग्नेयः प्रस्तावश्चैव सामसु ।

उद्गीथोपद्रवाबैन्द्रौ स्यातां वा वायुदेवता ॥ १२२ ॥

सामनों में प्रस्ताव के देवता वाग् हैं, अथवा यह अग्नि का होता है; उद्गीथ और उपद्रव इन्द्र के लिये हैं अथवा इनके देवता वायु हो सकते हैं ।

सौर्यः स्यात्प्रतिहारोऽत्र निधनं वैश्वदेवतम् ।

हिङ्कारप्रणवाभ्यां तु पुरस्तादेव कीर्तनात् ॥ १२३ ॥

अब प्रतिहार को सूर्य के लिये मानना चाहिये, निधन को विश्वदेवों के लिये; इनके आरम्भ में हिंकार तथा प्रणव का उच्चारण करना चाहिये ।

^१ तु० को० ऐतरेय ब्राह्मण ३ २३, ६ पर सायण - 'इन्द्राना पठितव्य. साध आदी हिन् इत्येव शब्दो हिंकारः ।'

२६-वैश्वदेव सूक्तों के विभिन्न नैपातिक देवता

इति व्यस्तसमस्तानां मन्त्राणामिह देवतम् ।

देवताविदवेक्षेत प्रयोगे सर्वकर्मणाम् ॥१२४॥

इस प्रकार जो देवताओं को जानता है, उसे यहाँ व्यस्त तथा समस्त मन्त्रों के देवताओं को सभी कर्मों के प्रयोग के आधार पर जानना चाहिये ।

सप्तर्षयो वसवश्चापि देवा अथर्वाणो भृगवः सोमसूर्याः ।

पथ्या स्वस्ती रोदसी चोक्तमन्त्रे कुहुरुङ्गूरदितिधेनुरध्न्या ॥

अमुनीतिरिळा चाप्त्या विधातानुमतिर्ह या ।

आङ्गिरोभिः सहैताः स्युर् उक्तमन्त्राश्च देवताः ॥१२६॥

सप्तर्षि, वसुगण, देवगण, अथर्वगण, भृगुगण, सोम, धीर सूर्या, पथ्या स्वस्ति, रोदसी तिसके लिये मन्त्र कहे गये हैं, कुहू, गुंगू, अदिति, धेनु, अध्न्या, अमुनीति और इळा, आप्त्यगण, विधातु, अनुमति तथा अङ्गिर्मों के सहित, इन सबको ऐसे देवता मानना चाहिये तिनके लिये मन्त्रों की उक्ति है ।

वैश्वानरो हि सुपर्णो विवस्वान्

प्रजापतिर्द्यौः सुधन्वा नगोद्यः ।

अपांनपादर्यमा चातजूतिर्

इळस्पतिश्चापि रथस्पतिश्च ॥ १२७ ॥

ऋभवः पर्जन्यः पर्वता गाश्च

दक्षो भगो देवपत्नीर्दिशाश्च ।

आदित्या रुद्राः पित्रोऽथ

साध्या निपातिनो वैश्वदेवेषु सर्वे ॥ १२८ ॥

वैश्वानर, सुपर्ण, विवस्वत, प्रजापति, सौम, सुधन्वन्, नगोद्य, अपांनपात्, अर्यमन्, चातजूति, इळस्पति, और रथस्पति; ऋसुगण, पर्जन्य, पर्वत, और मित्र्यो; दक्ष, भग, देव-पत्नियों, दिशाओं; आदित्यगण, रुद्रगण ।

पितृगण, और साध्यगण—यह सभी विश्वेदेवों को सम्बोधित सूत्रों में नैपातिक रूप से जाते हैं ।

२७-देवता सम्बन्धी विवरण तथा उनका ज्ञान

अनुक्रान्ता देवताः सूक्तभाजो

हविर्भाजश्चोभयथा निपातैः ।

अप्येवं स्यादुभयथान्यथा वा

न प्रत्यक्षमनृपेरस्ति मन्त्रम् ॥ १२९ ॥

सूक्तभाज् और हविर्भाज् देवताओं को क्रमानुसार कहा गया है, और इन दोनों ही के नैपातिक देवताओं को भी (बताया गया है) । चाहे दोनों ही स्थितियाँ हों अथवा एक ही, कोई भी मन्त्र उसको प्रत्यक्ष नहीं हो सकता जो श्रुति नहीं है ।

योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्ध्या

वाहुश्रुत्येन तपसा नियोगैः ।

उपास्यास्ताः कृत्स्नशा देवता या

ऋचो ह यो वेद स वेद देवान् ।

यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञान्

सामानि यो वेद स वेद तत्त्वम् ॥ १३० ॥

इन सभी देवताओं की योग, दक्षता, दम, बुद्धि, पाण्डित्य, तप तथा नियोग के साथ उपासना करनी चाहिये । जो ऋचाओं को जानता है वह देवताओं को भी जानता है ।

जो यजूंषि को जानता है वह यज्ञ को भी जानता है । जो सामन् को जानता है वह तत्त्व को भी जानता है ।

मन्त्राणां देवताविद्यः प्रयुङ्क्ते कर्म कर्हिचित् ।

जुपन्ते देवतास्तस्य हविर्नादेवताविदः ॥ १३१ ॥

वह जो मन्त्रों के देवताओं को जानते हुये किसी कर्म का प्रयोग करता है, उसकी हवि को देवता लोग ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु उसकी हवि को नहीं जो इन देवताओं से अनभिज्ञ होता है ।^२

^१ तु० की० सर्वानुक्रमणी, भूमिका : 'मन्त्राणाम् आर्षेयद्वन्दोर्देवतविद् ।'

^२ तु० की० वाजसनेयि सहिता, अनुक्रमणी, उ० स्था० : 'देवताम् अविद्याय यो जुहोति, देवतास् तस्य हविर् न जुषन्ते ।'

अविज्ञानप्रदिष्टं हि हविर्नैत देवतम् ।

तस्मान्मनसि संन्यस्य देवतां जुहुयाद्धविः ॥ १३२ ॥

यतः अविज्ञान प्रदिष्ट हवि की देवता इच्छा नहीं करते, अतः मन में देवता को भली प्रकार संनिविष्ट करके ही हवि देनी चाहिये ।^१

^२ तु० की० वाजसनेयि सहिता, अनुक्रमणी, उ० स्था० : 'संन्यस्य मनसि देवता हविर् ह्रयते ।'

२८-देवताओं को जानने का महत्त्व

स्वाध्यायमपि योऽधीते मन्त्रदैवतविच्छुचिः ।

स सत्त्रसदिव स्वर्गं सत्त्रशद्भिरपीड्यते ॥ १३३ ॥

एविव्र होते हुये जो मन्त्रों के देवता को जानना और स्वाध्याय करता है, वह स्वर्ग में यज्ञ-सत्र में बैठे हुये के समान, ऐसों के द्वारा भी प्रसंसित होता है जो इस प्रकार के सत्र में बैठे हाते हैं ।^१

^१ तु० की० वाजसनेयि सहिता, अनुक्रमणी, उ० स्था० : 'स्वाध्यायम् अपि योऽधीते मन्त्रदैवतज्ञः, सोऽनुष्मिन् लोके देवैर् अपीड्यते ।'

नियमोऽयं जपे होमे ऋषिद्वन्दोऽथ दैवतम् ।

अन्यथा चेत्प्रयुञ्जानस् तत्फलाच्चात्र हीयते ॥ १३४ ॥

जप और होम में यह आवश्यक हैं—ऋषि, छन्द और देवता; और उनके अन्यथा प्रयोग करने से यहाँ व्यक्ति उनके फल से हीन हो जाता है ।

ऋषिद्वन्दोर्दैवतादि ज्ञानं यज्ञादिषु श्रुतम् ।

तदाश्रित्य प्राणदृष्टिर् विपितात्रेति गम्यताम् ॥ १३५ ॥

ऋषि, छन्द, देवता, इत्यादि के यज्ञादि द्वारा अर्जित ज्ञान के सम्बन्ध में यह जानना चाहिये कि इनके आश्रित होने से यहाँ प्राण को देखने की दृष्टि स्थापित होती है ।

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च ।

योऽध्यापयेज्वपेद्वापि पापीयाज्जायते तु सः ॥ १३६ ॥

ऋषि, छन्द, देवता और योग^१ के ज्ञान के बिना ही जो अप्यापन अथवा जप करता है, वह पापी^२ हो जाता है।

^१ 'योग' का यहाँ 'प्रयोग' के अर्थ में व्यवहार हुआ प्रतीत होता है।

^२ तु० बौ० ज्ञानप्रथ ब्राह्मण १२ १, ५, ४।

अर्थेप्सवः खल्वृषयश् छन्दोभिर्देवताः पुरा ।

अभ्यधावन्निति छन्दो मध्ये त्वाहुर्महर्षयः ॥ १३७ ॥

प्राचीन काल में धन की इच्छा से ऋषियों ने छन्द के द्वारा देवताओं की शरण ली यही कारण है कि महर्षिगण छन्द का मध्य में उल्लेख करते हैं।

ऋषिं तु प्रथमं ब्रूयाच् छन्दस्तु तदनन्तरम् ।

देवतामथ मन्त्राणां कर्मस्वेवमिति श्रुतिः ॥ १३८ ॥

अब, सर्वप्रथम ऋषि को बताना चाहिये, उसके बाद छन्द को, और तब कर्म के सन्दर्भ में इस क्रम से मन्त्रों के देवता को, ऐसी श्रुति है।

आधारं व्याप्यनाधारं द्विविध्यात्मानमात्मनि ।

ईक्षमाणो ह्युभौ संधिम् ऋचो दैवतवित्पठेत् ॥ १३९ ॥

'आधार' और साथ ही साथ, अनाधार के रूप में आत्मा को अपनी आत्मा में जानते हुये जो देवताओं को जानता है उसे संधि तथा ऋचा दोनों पर दृष्टि रखते हुये (ऋचाओं का) पाठ करना चाहिये।

^१ तु० बौ० बरान्नासार, ^२ 'ना मानन् अद्विलभारम् वाञ्छये'। भागवतगीता ४ १३

'तत्त्व वर्तारन् अपि मा विद्वय अनांम् अन्वयन्'।

स ब्रह्मानृतमत्यन्तं योनिं सदसतोर्ध्वम् ।

महद्वाणु च विश्वेशं विशति ज्योतिरुत्तमन् ॥ १४० ॥

ऐसा व्यक्ति उस ब्रह्म में प्रवेश कर जाता है जो अमर, अनन्त, सत् और असत् का ध्रुव स्रोत, महान तथा अणु, विश्वेश्वर, और परम ज्योति स्वरूप है।

॥ इति बृहदेवतायामष्टमोऽध्यायः ॥

॥ इति शौनकीया बृहदेवता समाप्ता ॥

परिशिष्ट-१

वृहस्पता में उद्धृत वैदिक प्रतीकों की सूची

(काले टाइटों में छपे मन्द-संकेतों से ऋग्वेद का तात्पर्य है; जहाँ किसी अन्य ग्रन्थ से तात्पर्य है वहाँ काले टाइटों में छपे सन्दर्भ-संकेत के साथ ग्रन्थ-निर्देश भी कट दिया गया है। सादे टाइटों में छपे मन्द-संकेतों से उद्धृत-वक्ता का तात्पर्य है।)

अधीरवाम्, १०. १६३ : ८ ६९
 अघैर् मा, १०. ३४, १३ : १ १२
 अगस्पृति, ९. ४७, २० : ५ १११
 अगस्यस्य, १०. ६०, ६ : ७ ९९
 अग्र आर्युषि, ९. ६६, १९ : ३ १३१
 अग्र हन्द्रस्य, ३. २१, ४ : ४. ११२
 अग्निता, ८. ३५ : ६. ७७
 अग्निनाशिः सम् ह्यपते, १. १२, ६ : २
 २४५
 अग्निम्, १. १२, १ : २. १४५, १. १९७ :
 ४ ५ : ८. ३१, १४ : ६. ७५ : १०
 ११६ : ८ ६१
 अग्निम् उषसम्, ३. २०, १ : ४. १०२
 अग्निर् उक्थे, ८. २७ : ६ ६८
 अग्नीपर्जन्यौ, ६. ५२, १६ : ५ २१८
 अग्नीषोमौ, १. ९३ : १ २०४
 अग्ने, १. ४४ : १ १११
 अग्ने अक्षु, १०. १४१ : ८ ५३
 अग्ने तव, १०. १४० : ८. ५३
 अग्ने नय, १. १८९ : ८ ६२
 अग्ने महद्भिः, ५. ६०, ८ : ५. ४८
 अग्ने स शेषण्, ६. ३, ३ : १. २०५
 अन्नम्, ४. ४६ : ५. ४
 अग्ने, १०. १ : ६ १४७
 अघोरः, १०. ८५, ४४ : १. १२७
 अघोर्य् अग्निः, ८. ५६, ५ : ६. ८१
 अक्षु, ३. ३३, ३ : ४. १०७, ५. ४३, ८ :
 ५. ४१ : ५. ८३ : ५. ८८

अक्षु वद्, ५. ८३ : ५. ८८
 अश्रुति, ३. ८ : ३ १८, ५. ४३, ७ :
 ५ ८१
 अश्रुतिश्वा, ३. ८, १ : ८ १००
 अतः, १. २२, १६ : ३ २३
 अति ज्व, १०. १४, १० : ६. १५९
 अदान्, ८. १९, ३६ : ६ ५१
 अदितिर् शी, १. ८९, १० : ३. २२३
 अद्या नो देव सवितः, ५. ८२, ४ : ५. ८९
 अधः, ८. ३३, १९ : ६ ७२
 अधः सिवद् आसीद्, १०. १२९, ५ :
 १ ५१
 अधि, ६. ४५, ३१ : ५. १०८
 अधर्यवः, ५. ४३, ३ : ५. ४२
 अमर्षणम्, १. १५० : ४. ६३
 अनसवन्ता, ५. २७ : ५. २९
 अनु वा, ११० ३. ३, ११, ३ : ४. ८८
 अनुचराः, १०. ८५, २३ : ४. २३२
 अन्व अस्य ह्यूरम्, ८. १, ३४ : ६. ४०
 अन्व ह्य, नेम ३. ३, ११, ३ : ४. ८८
 अप, १०. १३१ : ८ ६९
 अपश्यं स्वा, १०. १८३ : ८. ८०
 अपश्यम्, १०. ७९ : ७ ११४
 अपात्, ८ ६९, ११ : ६. ९२
 अपोहि, १०. १६४ : ८ ६७
 अप्रजाः सन्तु, १. २३, ५ : १. ५८
 अपुधम्, १०. ३५ : ७ २७
 अपोधि, १. १५७ : ५. २६, ५ : १ : १. ११

अङ्गनाम्, ७ ३४, १६ ५ १६५
 अभि, ५ ४१, १९ ५ ३७ ६ ५०, ६
 ५ ११७ ८ ४९ (खिल) ६
 ८४ वास० ४ २५ ८ १५
 अभि न, ५ ४१, १९ ५ ३७
 अभीदम्, १० ४८, ७ १ ४९
 अभूरुट, १० ३७, ७ ७ २४
 अभ्रप्रय १० ७७ ७ ११६
 अमन्दान् १ १२६, १ ३ १५५
 अमात्रुर, १० ३९, ३ ७ ४८
 अमीषान् १० १०३, १२ ८ १३
 अग्नि- (तमे), २ ४१, १६ ० १३७
 अद्य य, १० २७, २१ ७ २७
 अय सोम सुदात्र, १ ४५, १०
 ३ १११
 अय कुरु, ८ ७९ ६ २७
 अय देव, ६ ४४, २२ ५ १०८
 अयम्, १ २० ३ ०० ५ ५१, ४
 ५ ६६ ८ १००, १ ४१ ६ ११७
 ११८ १० ६०, १२ ७ १०२
 १० १४२ ८ ५४ १० १४४
 ८ ५५
 अय माता, १० ६०, ७ ७ २००
 अरण्यानी, १० १४६ ८ ५७
 अरम्, १ १७०, ४ ८ ५२
 अरायि, १० १५५ ६०
 अरुणो मा सकृत् १ १०५, १८
 २ ११२
 अय, ७ ९६, १३ ६ १२५
 अय द्रुप्त, ८ ९६, १३ ६ ११६
 अविता न, ९ ६७, १० १२१
 अवीराम, १० ८६, ९ २ ५२
 अवीवृधत्, ८ ८०, १० ६ ९७
 अश्विना १ ९२, १६ ३ १२१
 अश्विनौ ५ ७८ ५ ८६
 असत्, १० २७ ७ ०३
 असावि, १० १०४ ८ १६
 असात्रि ते, ५ ४३, ५ ५ ४१

असौ, १ १०५, १६ ३ १३७
 असौ य ष्टि, ८ ९१, २ ६ १०२
 अस्तु धौपट, १ १३९ ४ ७
 अस्तोय सु प्र, १० ४२ ७ ४०
 अस्माकम्, २ ३१ ४ ८६
 अस्माकम् उत्तमम्, ४ ३१, १५
 ४ १३९
 अस्मिन्, १० ३८ ७ ३९
 अस्मै, १ ६१ ३ १२८
 अस्त्य, १ १६४, १ ४ ३२ २ ३२
 ४ ८६ १० ८, ७ ६ १४८
 अस्थवामीय, (सूक्तम्) १ १६४
 ४ ३१
 अस्यै मे पुत्रकामायै (खिल), ८ ८६
 अहम्, ४ २६ ४ १२५ ८ ७४, १३
 ६ ९५ १० १५५ ८ ४३
 अहं भुवम् १० ४८ ७ ७७
 सह मनु, ४ २६, १ १ ५१
 आ ४ १६ ४ १२७ ५ ४३, १०
 ५ ४२ ५ ४३, ११ ५ ४३ ६
 २८ ५ २०५ ६ ५० ८ ५
 ११७ १० ३१ ७ ३४ १० ६०,
 १ ७ ९६
 आ ग त ८ २० ६ ५७
 आग्ने याहि, ८ १०३, १४ ६ १२८
 आ ते, २ ३३ ४ ८९
 आ स्वा, १ १३४, १ ४ ५ ८ ९५
 ६ १०० १० १७३ ८ ७२
 आ स्वा रथन्, ८ ६८ ६ ९१
 आद् अह स्वधाम् अनु, १ ६, ४
 २ १३९
 आ धेनव, १, १५२, ६ ४ १७
 आ न, १ ८९ ३ १२२ १ १८६
 ६ ६० ८ ८ ६ ४७ ८ ४६,
 २५ ६ ८० १० ८५, ४३
 ७ १३७
 आ नो भद्रा, १ ८९, १ ३ १२२

राप, १०. ९ : ६. २५३; ७. ४७ : ५. २७४	इन्द्रा, ४. ४१, ९ : ५. २
रापान्तमन्वु, १०. ८९, ५ : ७. १४६	इन्द्राकुला, ५. ३१, ९ : १. ५६; ५ २८
आ मा पूषन्, ६. ४८, १६ : ५. १२४	इन्द्राग्री, ५. ८६ : ५. ८९; ३. १२१ ५ १०३
आ माम्, ७. ५० : ६ ?	इन्द्रावरुणा, ७. ८९ : ६ १०
आ मे, ८. १०१, ७ : ६. १०९; ८. ८५ : ६ ९८	इन्द्रो वा, ८. २१, १७ : ८. ५९
आर्यं गी, १०, १८९ : ८. ८७	इमं जीवेभ्यः, १०. १८, ४ : ७ ११
आ याहि, १०. १७२ : ८ ७३	इमं ना, १०. १२४ : ८ ५१
आयुष्यम्, (खिल) : ८ ४५	इमं सु, ८. ७६ : ६ ९६
आ रुद्राभ्यः, ५. ५७, १ : ५ ४७	इमं नो यज्ञम्, ३. २१, २ : १. ५१
आ य, १०. ७६ : ७ १२३	इमम्, १. ९४ : ३ १२६, ३. ५७ : ४. १०१; १०. ७५, ५ : २ १३७
आ वर्तन्ति मधुना, ४. ४५, ३ : ३ ९७	इमम्, १. ११४ : ३. १३५, २. १७ : १ ८१, १०. १८, ७ : ७. २२
आ वाम्, ८. ४२, ७ : ६. ७८	इमं खनासि, १०. १४५ : ८. ५५
आविर् अभूत्, १०. १०७ : ८ २२	इमानि, ८. ५२ (खिल) : ३. ११५
आ अर्मा, ८. ३१, १० : ६ ७८	इमा तु कम्, १०. १५७ : ८ ६१
आनुः, १०. १०३ : ८ १२	इमाम्, १०. ६७ : ७. १०७, १०. ८५, ४५ : ७ १३७
आश्विना (= मी), १. ३७, १७ : ३ १०२	इमे, ८. ४३ : ६ ७५; १०. १८, ३ : ७ २१
आ स्य, ८. ४६, २१ : ६. ८०	इमे खेपारः, ७. ६०, ५ : ६ ७
आसष्याणासा, ६. ३७, ३ : ५ १०७	इये शुभेभिः, ६ ६१, १ : ७ ११७
आ सूर ष्ट, (खिल) : ८ ५९	इयम्, ६. ६१ : ५ ११७
इक्ष्मिन्ति, ३. ३० : ४. १०५	इह, १. २१ : ३ ७१; १०. ८५, ४२ : ७ १३७
इक्ष्मिन्ति त्वा, ३. ३० : ४. १०५	इह प्रवीतु, १. १६४, ७ : १. ५२
इति वै, १०. ११९ : ८. ४०	इहेत वा, ३. ६० : १ १२२
इत्था, १. ८० : ३. १२१	
इदम्, १. ११३ : ३ २३८, २. २८ : ४ ८३, ४. ४९ : ५. ५, ४ ५१ : ५ ६, ८. १८ : ६. ४९, १०. ५६ : ७. ८२, १०. ६१ : ७ १०२	
इन्द्रः, ४. ४७, २ : १. ४	ईमानम्, १०. १३२ : ८ ८७
इन्द्रं षष्ठा, १०. ६०, ५ : ७ ९३	ईमान्तासः, १ १६३, १० : ४. २७
इन्द्रं दध, १०. १०० : ८ १७	ईन्द्रिय, ८. ७३ : ६ ६३
इन्द्रं मित्रम्, १. ११४, ४६ : ८ ४०	ईले, १. ११२, १ : ३. १३८
इन्द्रं श्रेष्ठानि, २. २१, ६ : ४. ७४	ईले अग्निम्, ५. ६०, १ : ५. ४८
इन्द्रं सोमं पिब, १. १५ : ३. १४	उत्, ५. ४२, ३ : ३५, ८. ७३ : ६. १४, १०. १०१ : ८ १०, १०. १०५ : ८. ७३ : (खिल) : ७. ११८
इन्द्रस्य, १. ३२ : ३. १०४	

उत्त, ६ ५०, ९-१० : ५ ११७, ८ १८,
८ : ६ ४९, ८. ६७, १० : ६ ९०

उत्त देवा, १०. १३७ : ८ ४९

उत्तो हि वाम, ४. ३८, १ : ५. १

उत् तिष्ठ, १. ४० : ३ १०७

उत् सूर्यः, ७ ६२ : ६ ५

उद् असी, १० १५९ : ८ ६३

उद् ईरताम, १०. १५ : ६ १५९

उद् ईर्ष्व नारि, १०. १८, ८ : ७ १३

उद् उ ज्योति, ७ ७६ : ६ ११

उद् उ त्यत्, ६ ५१, १ : ५ ११८ ७.
६६, १४ : ६ ०

उद् उ त्यम्, १. ५० - ७ - ५

उद् उ ध्य, ७ ३८ : ५ १६७

उद्यन्, १ ५०, ११ : ३ १ ५

उद् वृ पृति, ७ ६३ : ६ ५

उप, २. ३५ : ४ ९० ३. ५३, ११ : ४
११ - ५ ४२, ७ : ५ ३८ ६ ४७,
२९ : ५ ११०

उपप्रयन्त, १. ७४ : ३ १००

उप त्रियम्, ९. ६७, २९ : ५ १७३

उप मा पद्, ८ ६८, १४ : ६ ०१

उप सर्प, १० १८, १० : ७ १७

उपोप मे, १. १२६, ७ १ ५०

उपोप मे परा मृदा, १. १२६, ७ : ४ ३

उभ्यम्, ८. ६१ : ६ ८२

उभाभ्याम्, ९. ६७, २५ : ६ १३८

उरुम्, ७ ९९, ४ : ६ २५

उलूक्यानुम्, ७ १०४, २२ : ६ ३२

उसना, ५. २९, ९ : ५ ७७

उसन्ता, ७. ९१, २ : ६ १८

उपो वाजेन, ३. ६१ : ४ १२४

ऊर्ध्व ऊ पु ण ऊतये, १ ३६, १३ : ८ १००

ऊर्ध्व, ७. ३९, १ : ५ १६९

ऋत्नम् उच्यन्त्यामे, ८. २५, २२ : ५ ६६

ऋतम्, २. ३० : ६ ८८

ऋतस्य श्लोक, ४. २३, ८ : २. ४३

ऋतेन, ५. ६२ : ५ ८१

ऋधरु, ८. १०१, १ : ६ १०६

ऋभुर् धीरः, ९. ८७, ३ : ६ २३५

ऋषभं मा, १० १६६ : ८ ६५

ऋषयो वा इन्द्रम्, तैत्ति०, ३. ५, २, १ :
५ १५७

एकं चमसम्, १. १६१, २ : ३ ८७

एका, ७. ९५, २ : २ १३७

एतत् त्यत् ते, ६. २७, ४ : ५ १३७

एत मे स्तोमम्, ५. ६१, १७ : ५ ७४

एता उ त्या, १. ९२ : ३ १०६

एतौ मे, १०. २७, २० : ७ ७७

एदम्, ५ २६, ९ : ५ २६

एप, ५ ४२, १५ : ५ ४०

एप संति, ५. ६१, १९ : ५ ७५

एपो, १ ४६ : ३ ११०

ऐतु, ८. ३१, ११ : ६ ७६

ऐभिः, १. १४ : ३ ३३, ५१, ८०

ओ चित्, १०. १० : ६ १५६

ओ चित् सखायम्, १०. १० : ६ १५६

ओ त्यम्, ८. २२ : ६ ६२

क इमम्, ४. २७, १० : ५ १३३

क ईम्, ७ ५६ : ५ ३

क, ४. ४३ : ५ ३, ४. ५५ : ५ ७

कङ्कत, १. १९१ : ५ ६३

कतरा, १. १८५, ४ ६१

कदा वसो, १०. १०५ : ८ १७

कद् इत्या, १. १२१ : ३ १६१

कनिकद्, २. ४२ - ५ ९४

कनीनका, ४. ३२, २३ : ५ १४४

कन्या वा, ८. ९१. १ : ६ १०१

कम्, १०. ९९ : ८ ९

कम् एत त्यम्, ५. २, २ : ५ २०

कया, १. १६५ - ४ ४६

कस्ते, १. ३०. २० : ३. १०२
 कस्य नूनम्, १. २४ : ३. ९८
 किं नः, १. १०७, २ : ६ ५१
 किं नो भ्राताः, १. १६०, ३ : ४ ८०
 किम्, १. १६१ : १ ०७, १०. १०८, १.
 ८ २३

किम् वाद् उतामि, ४. ३०, ७ : ६ १३५
 कुह, १०. २२ : ० १०
 केरु अग्निम्, १०. १३६ : ८ ६ :
 केष्ट, ५. ६१ १ : ५ ६९
 को अद्य, १. ८४, १६ : १ ५७
 को नु मर्याः, ८. ४५, ३७ : २ १०५
 को नु वाम, ५. ४१ : ५ ३६
 क्रीळम्, १. ३० : ३ १०५
 केचस्य, ४. ५७ . ५ ७

गणानाम्, २ २३ : ४. ८१
 गृभ्यामि ते, १०. ८५, ३६ : ७ १३५
 गौः, ८. ९४ : ६ १०५
 गौरीः, १. १६४, ४१ : ६ ४२

धर्मा, १०. ११४ : ८. ३८
 चक्षुः, (श्लिख) : २ १०५
 चक्षो, १०. १५५, २ : ८ ६०
 चन्द्रमाः, १. १०५ : ३ १३
 चित्र इत्, ८. २१, १८ : १ ०८, ० १२७
 चित्रः, १०. ११५ : ८ ३९
 चित्रम्, १. ११५ : ३ १३०

जनिष्ठाः, १०. ७३ : ७ ११५
 जनीयन्तः, ७. ९९, ४ : २ १९
 जरापोध, १. २७, १० : ३ ९२
 जातवेदसे, १. ९९ : ३ १३०
 जामये नः, = ३. ३१, २ (१) : १. ५५
 जीमूतस्य, ६. ७५ : १ १२८
 जुपरस्व नः, ७. २ : १. १६०
 ग्यार्यासम्, ५. ४४, ८ : ५ ४३
 ग्येष्ट आह, ४. ३३, ५ : ३. ८७

तं वा, २ ३०, ११ : ६ ८५
 तच्चक्षुः, ७. ६६, १६ : ६. ७ : ६. ९
 तन्, ४. ५३ : ७. १०, १२० : ८ ४०
 ततम्, १. ११० : ३ १३१
 तद् वो अद्य, ७. २६, १२ : ६ ६
 तन् नु, १. १६६ : ४ ४८
 तम्, १. १४५ : ६ १६ ८. ८८ : ६ ९८
 तम् उ ष्टुदि, ५. ४२, ११ : ५ ३८
 तं प्रलया, ५. ४४, १ : ५. ४६
 तव, १०. १३८ : ८ ५१
 तवाग्ने यज्ञः, १० ५१, ९ : ७. ७१
 तस्य धुमान्, ८. ३३, ३ : ६ ७३
 तां सु ते, १०. ५४ : ७ ८१
 ता वाम्, १. १५४, ६ : ६ २०, ८. २५४
 ६ ६०

तिष्ठः, ७. १०१ . ६ २१
 तीक्ष्णस्य, १०. १६० : ८ ६६
 तीक्ष्णाः, १ २३, १ : ३ १४
 तुभ्य, १०. १६७ : ८ ७०
 तुभ्यम्, २. ३६ : ५ ९१
 तृप्तम् पुतत्, १०. ८५, ३४ : ७ १३६
 तेऽऽदनु, १०. १०९ : ८ ३६
 ते मय्येज, ७. ९०, ५ : ८ १८
 त्व चित्, १०. १४३ : ८ ११
 त्वम् उ पु, १० १७८ : ८ ७७
 त्वान् नु, ८. ६७ : ६ ८७
 त्रयः केशिनः, १. १६४, ४३ : १ ९५
 त्रायन्ताम्, १०. १३७, ५ : ८. १०
 त्रिश् चित्, १. ६४ : ३ १०६
 त्री, ५. २९ : १ ०७
 त्वं सोम, १. ९१ : ३ १०६
 त्वं ह् अग्ने, ६ १ : ५ १०६
 त्वं त्वम्, १०, १०१ : ८ ३
 त्वम्, १. ३१ : १ १ २. १ : ६ ६५ ;
 ८. ११ : ६ ८८ ८. ७१ : ६. ९३
 त्वम् अग्ने पुतत्, ८. १०१ : ६. १०७
 त्वष्टा, १०. १० : ७. ७

स्वा, ४ २८ ४ १३६
 स्वाम्, ४ १ १ १२७
 स्वे ह, ७ १८ ५ १६१

 दक्षस्य, १० ६४, ५ ७ १०४
 दण्डा, ७ ३३, ६ १ १०
 दधिक्राम्, ३ २०, ५ ४ १०२
 दध्यङ्ग ह मे, १ १३९, ९ ४ १०
 दश, ५ ४३ ४ ७ ४१
 दाता मे, ८ ६५ १० ६ ८६
 दिवश चित्, ४ ३०, ९ ४ १३७
 दिवस परि, १० ४५ ७ ४१
 दूरात्, ८ ५ ६ ४५
 द्युद्वयाम्, ३ २३, ४ २ १३७
 देवा, १० १६५ ८ ६९
 देवानाम्, १ ८९, २ ३ १२२ ८ ८३
 ६ ९८ १० २७, २३ ७ २७
 देवाना पत्नी, ५ ४६, ७ ५ ४५
 देवान् हुये, १० ६६, १ ५ ४५
 दोग्धी धेनुर् जोढान्द्वात् आशु ससि
 पुरधिया, चास०, २२ २२ ३ ७९
 द्यावा, २ ४१, २० ४ ९२
 द्यौर न, ६ २० २०
 द्रप्स, १० १७, ११ ७ ०
 द्वयी अग्ने, ६ २७, ८ ५ १४१
 द्वयान्, ६ २७, ८ ५ १४०
 द्वे नसु, ७ १८, २२ ५ १६३
 द्वे विरूपे, १ ९५ ३ १२९

 धनु, १० १८, ९ ७ १५
 धन्व, ११ ८६ २० ० ६९
 धाता दधातु नो रमिम्, तैस० ३ ३, ११,
 २-३ ४ ८८
 धारावरा, २ ३४ ४ ८५
 धीरा, ७ ८६ ६ १५
 धृत्वता, २ २९ ४ ८४
 धेनु, ३ ५८ ४ १२२
 ध्रुवासु स्वा, ७ ८८, ७ ३ ६ १५

न, १ १७० ४ ५० ३ २१, २ ४
 १११ १० ११७ ८ ४०
 नकिर् हन्त्र, ४ ३०, १ ४ १३३
 नकिर् देवा मिनीमसि, १० १३४, ७
 ८ ४८
 नकि सुदास, ७ ३२, १० १ १६२
 न जामये, ३ ३१, २ २ ११३ १ ५७
 न तम, १० १२६ ८ ४४
 न तस्य, १० ४०, ११ ७ ४८
 नदस्य मा, १ १७९, ४ १ ५३
 नम, १ २७, १३ ३ २९ १० ३७
 ७ ३९
 नमस ते, (खिल) ८ ४४
 नमस् ते अस्तु विद्युते, अवे० १ १३, १
 १ ५४
 न मृपुर आसीत्, १० १२९, २ १ १८
 न विजानामि, १ १६४, ३७ १ १९
 न स स्व, ७ ८६, ६ १ ५६
 नहि, ८ ८० ६ ९७
 नानानीय (सूक्तम्), ९ ११२ ६ १३९
 नासत्, १० १२९ ८ ४५
 नासत्याभ्याम्, १ ११६ ३ १३९
 नि ते, ३ ३३, १० ४ १०७
 नि वर्तध्वम्, १० १९ ७ २०
 नू चित्, १ ५८ ३ ११७
 नून भग, ७ ३८, १ १ १६८
 नू मे, ६ २१, ११ ५ १०६
 नेजमेध, (खिल) ८ ८३
 नेन्द्रो अस्ति, ८ १००, ३ ६ ११८
 नैर्हस्त्यम्, (खिल) ८ ९४

 पतगम्, १० १०७ ८ ७१
 पयस्वती, १० १७, १४ ७ १०
 परि, १० १५५, ५ ८ ६१
 परेयिर्वासम्, १० १४ ६ १५१
 पवित्रम्, ९ ८३ ९ १३४
 पथा, १ ६५ ३ ११८
 पान्तम्, ८ ९२ ५ १०७

पावीरवी, द. ४९, ७ : ५ ११६
पितृम्, १. १८० : ४ ६२
पिव, द. १७ : ५ १०५, १०. ११६ :
८. ४०

पीवानं भेषज, १०. २७, १७ : ७ २५
पुनन्तु माम्, ९. ६७, २७ : ६. १२२
पुनर् नः, १०. ५९, ७ : ७ ९४
पुरोध्यामः, ३, २२, ४ : ४ २०६
पूर्वाः, १. ९४, ८ : ३. १०७
पूर्वाः, १ १७९, १ : ४ ५८
पूर्वो देवाः, १. ९४, ८ : ३ १०६
पूषा १०. १७, ३ : ७ ८
पृथ्वाभि त्वा, १ १६४, ३४ : १. ५०
पृथुः, १ १२३ : ३ १४०

प्र, १. ३६ : ३ १०७, १. १२२ : ३ ४०.
१. १५९ : ४. २६, २. ४१, १९ :
४ ९२, ३. ३३ : ४ २०५, ४. ३३ :
५ १; ५. ४३, ९ : ५. ४२, ५. ५२ : ५.
३७, ५. ८७ : ५ ९०, ७. ३४ : ५
१६५ ७. ५३ : ६. २; ७. ९५ : ६. १९,
८. ४, १५ : ६ ४३; ८. ७ : ६ ४७,
८. १०१, ५ : ६ १२५; १०. ३२ :
७ ३४, १०. १०२ : ८. ११, १०.
१८८ : ८. ८८

प्र कृतानि, ८. ३२ : ३ ७५
प्र केतुना, १०. ८ : ६. १४७
प्रजा ह, ८. १०१, १४ : ६. १२७,
८. १०१, १४ : ६ १२८
प्र तव, १. १२९, ६ : ८. ४
प्र तव दुःसीमे, १०. ९३, १४ : ७. २६७
प्र तारि, १०. ५९ : ७. ९१
प्रति, १. १७१ : ४ ५५
प्रति श्यम्, १. १९ : ३ ७५
प्रति वान, ७. ६७ : ६ ४
प्रतीचीने, १०. १८, १४ : ७. २८
प्र तै, १०. ९६ : ७. १५६
प्राय् श्रमिः, ४. १३ : ८. १२९
प्रथन् च, १०. १८१ : ८. ७७

प्र देवत्र, १०. ३०, ३ : ७ ३३
प्र जु वोचा, द. ५९ : ५. ११५
प्र नूनम्, १० ६२, ८ : ७. १०३
प्र-प्र, १. १३८ : ४ ७
प्र मा, १०. ३३, १ : ७ ३८
प्र यन्तु, ३. २६, ७ : ४ १०२
प्र या जिगति, ७. १०४, १७ : २ ३०
प्र ये, १. ८१ : ३. १०१
प्र याः, १. १५५, १ : ६ २०, ५ ४४, ४ :
५ ४३, १०. १७५ : ८ ७४
प्र वर्तय, ७ १०४, १९ : ३ ३१
प्र वीरया, ३. ९० : ६ १६, १७
प्र वो महे, १०. ५०, १ : ७ ६०
प्र वो वाजाः, ३. २७, १ १४ १०३
प्र सप्तानः, ७. ६ : ५ १६
प्र सप्तज्ञे, ५. ८५ : ५ ८९
प्र सु, १० ७५ : ७ ११५
प्र सु प विभ्यः, ४. २६, ४ : १ १३६
प्र सुष्टुतिः, ५ ४२, १४ : १ ३८
प्र सूतवः, १० १०६, १ : ८ ७१
प्र सोता, ७. ९२, २ : ३ १८
प्रस्तोकः, द. ४७, २२ : ५ १५०
प्र हि, १० २६ : ७ ५३
प्र हि ऋणुम्, २ ३०, ६ : ४ ८४
प्राप्तये, ७. ५ : ५ १६, ७. १३ : ५
१६१, १०. १८७ : ८. ८८
प्रातः, १. १२५, १ : ३ १०२, १. १२५ :
३ १४० १०० ७. ४१ : १. १३०
प्रातजितम्, ७. ४१, २ : ५. १७०
प्राप्तराणां, (ग्विल) : ८. ९४
प्रावेपाः, १० ३३ : ७ ३६
प्रावेपा मा, १०. ३४ : ७ ३६
प्रेत, १०. १०३, १३ : ८. ५४
प्रेष्टम्, ८. ८४ : ६ ५८
प्रेहि प्रेहि, १०. १४, ७ : ५ १०८
प्रेते, १०. ९४ : ७ १६३
प्रोतये, द. २१, ९ : ५. ०६
प्रो पु, १०. १३३ : ८. ८८

वट, प. ८४ : ५ ८८	महानग्री, अये० २०, २७, १ : १ ५१
वधु, ८. २९, १ : ६ ७१	महि, ८. ४७ : ६ ८१
वधुर् एक, ८ २९ : ६ ६९	महि त्रीणाम्, १०. १८५ : ८. ८३
वळ इत्या, प. ८४ : ५ ८८	मही, ४. ५६ : ५ ७
बृहस्पतिः, १० १८२ : ८ ७१	महीम् ऊ पु. चासं० २१ ५, सैसं० १.
बृहस्पते प्रति, १०. ९८ : ८ ७	५. ११, ५; अये० ७. ४, २ : ७ १०१
बोधत्, ४ १५, ७ : ४ १२२	महे, ५. ७९ : ५. ८८
ब्रह्म, (खिल) . ८ १८	महो अग्नेः, १०. ३६, १२ : ७ ३८
ब्रह्मणा, १०. १६२ : ८ ६५	मा, १०. ५७ : ७. ९०, १०. ८५, ३२ :
ब्रह्मा देवानाम्, ९ २६, ६ : ६ १३६	७ १२३
भगभक्तस्य, १. २४, ५ : ३. ९८	मा चित्, ८. १ : ६ ४०
भगम् उग्र, ७ ३८, ६ : ५ १६७ १६८	माता, ८. १०१, १५ : ६ १०७
भद्रम्, १. ८९, ८ : ३ १२२, ४. ११,	माता च, चासं० ९३. २५ : १. ८८
१ : १ १८, ५. ३०, १२ : ५ ३६.	मा नः, १. १६२ : ४ २७, ७. ३४, १७ :
१०. २५ : ७ २३ १	५ १६५
भद्रा, १०. ६९ : ७ १०७	मा नो रत्ना, ७. १०४, २३ : ६ ३२
सुरू, अये० २०. १३५, १ : २ ५५	मा नोऽहिः, ७. ३४, १७ : १ १९५
सुशुम् अंहस, १०. ६५, १२ : ७ १०६	मादित्रं (सूक्तम्), अर्थात् 'महि त्रीणाम्'
सुवतस्य, ६ ४२, १० : ५ ११६	१०. १८५ : ८ ८६
भूमि, (खिल) : ८ ५१	मिश्र, ३ ५९ : ४ १२२
भूरीत्, ८. ५५ : ६ ८६	मित्रम्, १. १५१, १ : ४ १७
मनु, ८. ३१, १५ : ६ ७३	मित्राय, १०. ६५, ५ : ७ १०६
मधु वाता, ९. ९०, ६ : ३ १०३	मित्राय पञ्च, ३. ५२, ८ : ४ १२३
मनीषिणः, १०. १११ : ८ ३८	मुञ्चामि, १०. १६१ : ८ ६४
मनोजवा, ८ १००, ८ : ६ १००	मूर्धानम्, ६ ७ : ५ १०८
मन्थत्, ३. २९, ५ : ८ १०३	मैनम्, १०. १६ : ६ ६१
मन्दस्य, २. ३७, १ : ३ २७	मोघम् अन्नम्, १०. ११७. ६ : १. ४९
मन्वु समानवर्चसा, १. ६, ७ : २ १४१	मो पु, १०. ५२, ४ : ७ ९२
मम, १०. १२८ : ८ ४४	य आनयत्, ६. ४५ : ५ १०८
मम व्रते, (खिल) : ७ ११७	य इन्द्र, ८. १२ : ६ ८८
मयोभूः, १०. १६९ : ८ ७२	य इन्द्राग्नी, १. १०८ : ३. १२२
महत्, १०. ५१ : ७ ८०	य इमा, १०. ८१ : ७ १२७
महद् देवानाम् असुररवम्, ३. ५५ :	य ईं बहन्ते, ५. ६१, ११ : ५ ७०
१ १२२	यः, ५. ४२, १० : ५ ३८, ८. ३१ : ६.
महम् चित्, १. १६९ : ८ ८९	७२, ९. ६७, ३१ : ६. १३३, १०.
महान्, ८. ६ : ६ ४६, (खिल).	३९ : ७ १०
८ १४	यः कुन्तव्, ८. ४५, ३० : ६ ८१

यं रक्षन्ति, १ ४१ : ३. १०७
 यञ् चित्, १. २५ : ३ ९८
 यञ् चिद् धि, १. २८, ५ : ३ १०१
 यञ् चिद् धि मत्स्य, १. २९ : ३ ००
 यज्ञस्य वाः, १०. ९२ : ७. १४६
 यज्ञे, ७. ९७ : ६ ७५, २६
 यज्ञेन, २. २ : ५ ६५
 यत्, ७. ६० : ६ ४, १०. ५८ : ७ ८३
 ००, १०. ८५, १४ : ७. १७४, १०.
 १५५, ४ : ८ ६१
 यत् ते, ९. ६७, २३ : ६ १३०
 यत् त्वा सूर्य, ५. ४०, ५ : ५ २८
 यत्र, १. २८, १ : ३ २००
 यथा, ८. ५, ३७ : ६. ४५, ८. ३१, १३ :
 ६. ७४, १०. १८, ५१ : ७ १०
 यथा वरो सुषाम्ने, ८. २४, २८ : ६ ६४
 यथा वाताः, ५. ७८, ७ : ५. ८६
 यद् अद्य, ७. ६० : ३ ५, ७. ६६, ४ :
 ६. ६
 यद् अद्य सूरः, ७ ६६, ४ : ६ ८
 यद् अर्जुन, ७. ५५, २ : ६ २३
 यद् इन्द्र चित्र, ५. ३९, १ : १ ८०
 यद् इन्द्राहम्, ८. १४, १ : १. ५५
 यदि वाहम्, ७. १०४, १४ : ६. ३०
 यद् उत्तमे, ५. ६०, ६ : ५ ६८
 यद् वाक्, ८. १००, १० : ६. १०१
 यम्, १. १२९ : ४. ४, ८. ३, २१ : ६
 ८, ८. १९, ३४ २ ६. १०
 यस् तस्मिन्, ४. ५० : ५. ५
 यस् मे, १०. ८३ : ७. ११७
 यस्मिन् वृक्षे, १०. १३५ : ८ ६८
 यस्य, १०. ३३, ६ : ७. ३६
 या, १०. ९७ : ७. १५४
 या गौः, १०. ६५, ६ : ७. १०६
 यां कक्षधन्ति नोऽयः (खिल) :
 ८. ४५
 या दम्पती, ८. ३१, ५ : ६. ७४
 याम्, १. ८०, १६ : ३. १२१

यावन् तरः, ७ ९१, ४ : १. ८
 युद्ध, ८. २६, २० : ६ ६७
 युञ्जे, १० १३ : ६ : १५
 युञ्जे वाम्, १०. १३ : ६ १५५
 युञ्जते, ५. ८१ : ५. ८८
 युवं तम्, १. १३२, ६ : ५. १
 युवम्, १०. २०, ४ : ७. ७०
 युवोः, ८. २६ : ६ ६७
 युवा रजांसि, १. १८० : ८ ६१
 युवोर् उ षू, ८. २६ : ६. ६७
 ये, १०. ८५, ३१ : ७ १३३
 येन, १. ५०, ६ : ३ १-२
 येनेदम्, (खिल) : ८ ६१
 ये पाकशांसम्, ७. १०४, ९ : ६ ७९
 यो जातः, २. १२ : ४ ६८
 यो नः, २. ३०, ९ : ४ ८५
 यो मा, ७. १०४, १६ : १ ८०, ६ ३०
 यो मे, २. २८, १० : ४ ८३
 यो यजाति, ८. ३१, १ : ६ ७३
 यो यज्ञः, १० १३० : ८. ६०
 यो रजांसि, ६. ४९, १३ : ७ ११७
 यो वां परि-, १०. ३९ : ७ ४६
 रक्षोहणम्, १०. ८७ : ७ १६२
 रथम्, ५. ५६, ८ : ५ ४६
 रथीतमं कपर्दिनम्, ६. ५५, २ : ५. ११९
 रेंभी, १०. ८५, ६ : ७ १०३
 वनस्पते वीडुः, ६. ४७, २६ : ७ ११०
 वने न, १०. २९, १ : ७. १५८
 वपुरं जु, ६. ६६ : ५. १२०
 वयम्, ६. ५३ : ५. ११८, ८. २१ :
 ६ ५३
 वयाः, १. ५९ : ३. ११७
 वरुणः प्राविता भुनक्तु, १.२३, ६ : ३ ७९
 वसिष्वा हि, १. २६, १ : ३. ९९
 वह्निम्, १. ६० : ३ ११७
 वात आ वानु, १०. १८६, १ : १. ५०

वात, १० १८६ ८ ८८
 घातस्य, १० १६८ ७१
 ग्रामम्, ४ ३०, ५४ ४ ३८
 वायव आ यादि, ५ ५१, ५ १ ४६
 वायो ४ ४७, १ ४
 वि क्रोशनास १० २७, १८ ७ ७६
 वि ज्योतिषा ५ २ ९ ७१
 विमता, जये० २० १३३, १ १ ५७
 वि तिष्ठन्म, ७, १०४ १८ ५ ३०
 विबुद्धाणम्, १० ५५, ५ ७ ८१
 विभ्रात १० १७० ८ ७३
 विवस्वन्तम्, १० १४ ५ ६ १ ७
 विरो विश, ८ ७३ ६ ९४
 विश्वम्, २ २४, १२ ४ ८२
 विश्वस्माद्, इन्द्र उत्तर १० ८६ ७
 ६७ ७ १४१

विश्वेत् ता ते, ८ १००, ६ ६ ११२
 विश्वेषा व सताम्, ६ ६७ ५ १२१
 विश्वो हि, १० २८ ७ २९
 विश्वो ह्य अन्य, १० २८ ७ ०९
 विष्णु, १० १८४ ८०
 विष्णोर नु कम, १ १५४ ४ १९
 वि हि, १० ८६ ७ १४१
 विहि ४ ४८, १ ४
 वीळु चित्, १ ६, ५ २ १४०
 वृक्षे वृक्षे १० २७, २२ ७ १११
 ७ ०७

वृषा, १० ११ ६ १५५
 वृष्णे शर्घाय, १ ६४ ७ १८
 वृद्धिपदे, १ १४० ४ १६
 वेनस तत् पश्यत्, (खिल) ८ ६६
 वैश्वानरस्य, १ ९८ ७ १०२
 व्य उपा, ७ ७५ ६ १०

शतधारम्, ३ २६, ९ ४ १०३
 शतम्, १ ८९, ९ ३ १०५ १ १२६,
 २ ३ १४८ ८ ६, ४६ ६ ४७
 शतेन, ४ ४६, २ १ ४

शन, ७ ३८, ७ ५ १६७
 शनोमित्रीया, १ ९०, ९ ३ ७९
 शम्, ८ १८, ९ ६ ० १० ५९, ८
 ७ ९६
 शश्वत्, १ ३०, ३६ ३ १०३
 शुश्वद् धि वाम्, (खिल) ३ ११८
 शास, १० १५२ ८ १९
 शासत्, ३ ३१, १ ८ १११
 शिच, ८ २, ४१ ० ६२
 शुचिम्, ७ ९३ ६ १९
 शुन वाहा, ४ ५७, ४ ५ ७
 शुन कीनारा ४ ५७, ८ ५ ०
 शुन न फाला, ४ ५७, ८ १ ०
 शुनासीरी, ४ ५७, ५ ९
 श्रत्, १ १४७ ८ ५७
 श्रद्धा, १० १५१ ८ १८
 शुधि, २ ११ ४ १३
 शुष्ठी, ६ ६८ ५ १२१
 श्वायत्, ७ ३३ ७ १६३

स इद् राजा, ४ ५०, ७
 स, ७ ९५, ३ ६ १९
 सव सरम्, ७ १०३ ६ २७
 स सम, १० १९१ ८ ०७
 स सम् इत्, १० १९१ ८ ९४
 स सवत्ति, (खिल) १ ९०
 स ह पद् वाम्, ५, ३१, ८ १ २७
 सखाय, ८, २४ ९ ५३
 सखे विष्णो, ८ १००, १२ ६ १२४
 सज्ञानम्, (खिल) ८ २३ ०५
 सनत्, ५ ६१, ५ ८२
 सप्त, १० २७, १५ ७ ८१
 स प्रवृथा, १ ९६ ३ १२९
 स आतरम्, ४ १, २ ८ १२८
 सम्, ५ ४२, १८ ५ ४० ६ ६६
 ५ १२१ ८ ४४ (सम्-) ६
 ७९ १० ५९, १० ७ ९४ १०
 ८५, ४७ ७ १३७ १० ९१
 ७ १

सम् अश्वपणाः, ६. ४७, ३१ : ५ ११३
 समित्-समित्, ३. ४ : ८ ९६
 समिद्ध, १. १८८ : ८ ६२
 समिद्धः, १ १४२ : ४. २६ ९. ५ :
 ६. १३०
 समिद्धश्च चित् सम् हृष्यसे, १०. १५० :
 ८. ५८
 समिद्धो अग्निः, २. ३ : ८ ६१
 समिद्धो अघ, १. १८८ : ८ २७, १०.
 ११० : ८ ३७
 समुद्रज्येष्ठाः, ७. ४९ : ५ १७५
 समुद्रात्, ४. ५८ : ५ १०
 समुद्रे, ८. १००, ९ : ६. १२०
 सं पूषन्, १. ४२ : ३ १०८
 सं मा, १० ३३, २ : ७. ३८
 स यो वृषा, १. १०० : ३. १३१
 सरस्वति स्वम्, २. ३०, ८ : ४ ८५
 स रोहवत्, १०. २८, २ : ७. २२
 सविता यन्त्रैः, १० १४९ : ८. ५८
 ससंपरी, ३. ५३, १५ : ८. २१६
 सह, १. ४८ : ३. ११३
 सहस्रम्, १. १६७ : ४. ४९
 स हि रत्नानि, ५. ८२, ३ : ५. २६९
 स ते जीवातुः, १०. २७, २४ : ७. २९
 मुक्तिशुकम्, १०. ८५, २० : ७ १३०
 सुगुः, १. १२५, २ : ३. १५१, १५३
 सुत्रामाणम्, १०. ६३, १० : ७. १०४
 सुदेवः, १०. ९५, १४ : १. ५३
 सुनीधो घ, ८. ४६, ४ : ६ ८१
 सुरूपकृत्नुम्, १. ४ : २ १३९
 सुपुम्, १. १३७ : ८ ७
 सुसमिद्धान, ५. ५ : ५ २६

सूर्यरश्मिः, १०. १३९ : ८. ५१
 सूर्यो नः, १०. १५८ : ८ ६३
 सोम एकेभ्यः, १० १५४ : ८. ५९
 सोमस्य मा, ३. १ : ४ ९५
 सोमानम्, १. १८ : ३ ६६
 सोमाहदा, ६. ७४ : ५ १२०
 स्तुतासः, १. १७१, ३ : ८. ५६
 स्तुपं, ६. ४९ : ५ ११५, ६. ६२ :
 ५. ११२
 स्तुधि, ८. १. ३० : ६ ४२
 स्तुधि ध्रुतम्, २. ३३, ११ : ८ ९०
 तिथिः, ३. ५३, १७ : ८. ११६
 स्थूरं राघः, ८. ४, १९ : ३ ४८
 स्थोना, १. २२, १५ : ३ ९३
 स्रजं, ९. ७३ : ६. १३८
 स्वस्ति नः, १०. ६३, १५ : ७. १०५
 स्वस्तिर् इद् धि, १०. ६३, १६ : ७. १०५
 स्वादुप् किलायम्, ६. ४७, १ : ५ १०९
 स्वादोः, ८. ४८ : ६ ८३
 हंसः, ४. ४७, ५ : ५ ७
 हंसः शुचिपत्, ४. ४७, ५ : ५ ७
 हन्ताहम्, १०. ११९, ९ : १ ५६
 ह्ये जाये, १०. ९५, १ : ५ १३
 हविः, १०. ८८ : ७ १४२
 हविषा, १. ४६, ४ : ३ ११२
 हिमेनाग्निम्, १ ११६, ८ : ७ ११०
 हिरण्यकेशो रजसः, १. ७९ : ३. १००
 हिरण्यपाणिम्, १. २२, ५ : ७. २१
 हुवे, २. ४ : ८ ६५
 होता यज्ञत, १. १३९, १० : ८ ७
 क्षयानि, १. ३५ : ३. ८५, १०५

परिशिष्ट-२

गृहदेवता में उद्धृत आचार्यों के नाम

आध्वर्यव, ७ १०५	भास्करदी श्रुति, ५ १५९
आश्वलायन, ४ १३९	
प्रेतर, २ १३८	मधुक, १ २४
प्रेतरोयक, ५ ३, २५ ११०, ६ १७,	माठर, ६ १०७, ८ ८५
१०८, ११७, १२९, ७ ७२	मुद्गल, ८ ९०
औपमन्यव, ७ ६९	मुद्गल भार्ग्यश्च, ६ ४६
और्णवाभ, ७ १२५	मैत्रायणीयक, २ १३८
कात्थव्य, ३ १००	
कौपीतिकि, ५ ४४	यास्क, १ २६, २ १११, १३२, १३७,
क्रौष्टिकि, ४ १३७	३ ७६, १००, ११२, ४. ४, १८, ५
	८, ४०, ६ ८७, १०७, ७ ७, ३८,
	६९, ९३, १५३, ८ ११, ६५
गार्ग्य, १ २६	रथीतर, १ २६, ३ ४०, ७ १४५
गालव, १ २४, ५ ३९, ६ ४३, १०५,	राथीतर, ५ १४२, ७ १४५, ८ ९०
७ ३८	
छन्दोगा, ५ २३	लामकायन, ३ ४७
निदान, ५ २३	
नैरुत्ता, १ २४	शाकटायन, २ १, ९५, ३ १५६, ४
	१३८, ६ ४३, ७ ६९, ८ ११, ९०
	शाकपूणि, ३ १३०, १५५, ५ ८, ३९,
	६ ४६, ७ ७०, ८ ९०
यास्कला, ८ ८५	शाण्डिल्य, २ १३२
माल्लण, ५ ११, २५, १५७, ७ ९४,	
८ १००	दौनक, १ २७, २ १३६, ४ १८, ५
	३७, ३९, ४०, ६. ६, ९, १०७, ११६,
भागुरि, ३ १००, ५ ४०, ६ ८६, १०७	७ ३८, १५३, ८ ११ ८६, ९९
भाह्वि-माल्लण, ५ २३	श्वेतकेतु, १ २४

परिशिष्ट-३

बृहदेवता के अनुसार ऋग्वेद के देवताओं की सूची

(प्रत्येक मण्डल के अन्तर्गत पहले सूक्त संख्या, फिर छोटे टाइटों में ऋचाओं की संख्या, और तब देवता का निर्देश है)।

मण्डल १

- | | |
|---|---|
| १ अग्नि | २२ ^{१-४} अश्विनी, ^{५-८} सवितृ, ^{९-११} अग्नि, ^{१२} देव्यः, ^{१३} देवपत्न्याः इन्द्राग्नी, वरुणानी, अग्नायो, ^{१३-१४} यावा-पृथिव्यौ, ^{१५} पृथिवी, ^{१६} विष्णु अथवा देवाः, ^{१७-२१} विष्णु |
| २ ^{१-३} वायु, ^{४-६} इन्द्र-वायु, ^{७-९} मित्र-वरुण | २३ ^१ वायु, ^{२-३} इन्द्र-वायु, ^{४-६} मित्र-वरुण, ^{७-९} इन्द्र मरुत्वत्, ^{१०-१२} विश्वे देवाः, ^{१३-१४} पूषन् आधृणि, ^{१५-१६} आपः, ^{१७-२१} अग्नि |
| ३ ^{१-३} अश्विनी, ^४ इन्द्र, ^{५-९} विश्वे देवाः, ^{१०-११} सरस्वती | २४ ^१ क, ^२ अग्नि, ^{३-५} सवितृ, ^{६-१०} अथवा भग, ^{११-१५} वरुण |
| ४ इन्द्र | २५ वरुण |
| ५-११ इन्द्र | २६-२७ अग्नि |
| ६ ^{१-३} मरुतः, ^{४-६} इन्द्र और मरुतः | २७ ^१ अग्नि मध्यम, ^{२-३} विश्वे देवाः |
| १२ अग्नि, ^६ निर्मथ्य और आहवनीय | २८ ^{१-४} इन्द्र (भागुरि), इन्द्र-उदुषल (यासु और काथक्य), ^{५-६} उदुषल, ^{७-८} उदुषल और मुसल, ^९ अरमाधिपवणीय अथवा सोम । |
| १३ आप्रियः
^१ इभ, ^२ तनूनपात्, ^३ नराशंस, ^४ इल, ^५ वहिम्, ^६ द्वारो देव्यः, ^७ नकोपासा, ^८ देव्यी हातारौ, ^९ तिस्रो देव्यः, ^{१०} त्वष्टा, ^{११} वनस्पति, ^{१२} स्वाहाकृतयः । | २९-३० इन्द्र |
| १४ विश्वे देवाः | ३० ^{१-३} अश्विनी, ^{४-१२} उपसू |
| १५ ऋतवः
^१ इन्द्र, ^२ मरुतः, ^३ त्वष्टा, ^४ अग्नि, ^५ शक (इन्द्र), ^६ मित्र-वरुण, ^{७-११} अग्नि त्रिविणोदम्, ^{१२} भाम्यस्यौ, ^{१३} अग्नि | ३१ अग्नि |
| १६ इन्द्र | ३२-३३ इन्द्र |
| १७ इन्द्र-वरुण | ३४ अश्विनी |
| १८ ^{१-५} महागस्पति, ^६ सोम इन्द्र भी, ^७ सोम, इन्द्र, दक्षिणा भी, ^{८-९} सद-सस्पति, ^{१०} नराशंस | ३५ सवितृ
^१ अग्नि, मित्र-वरुण, रात्रि |
| १९ अग्नि पार्थिव और मरुतः | ३६ अग्नि
^{१३-१४} यौषधी |
| २० ऋभ्यः | ३७-३९ मरुतः |
| २१ इन्द्र-अग्नि | ४० महागस्पति |

- ४१ ^१ ^२ वरुण, अर्यमन्, मित्र,
^३ आदि या
- ४२ पूषन्
- ४३ ^१ रुद्र, ^२ मित्र, वरुण, विश्व देवा
भी, ^३ सोम ।
- ४४-४५ अग्नि
- ४६ ^१ अश्विनौ और उपस भी ।
- ४७ ^१ देवा
- ४८-४९ अश्विनौ
- ४९ ^१ आदित्य भी (चारु) ।
- ४८-४९ उपस
- ५० सूर्य
^१ वरुण (शुभक्ति), ^२ ^३ रोगघ्न
(वृच), ^४ द्विपदद्वेष
- ५१-५० (कोई उल्लेख नहीं) ।
- ५८ जातवेदस्
- ५९ वैश्वानर
- ६० अग्नि
- ६१-६३ इन्द्र
- ६४ मरुत
- ६५-७३ अग्नि
लिल (ग्यारह)
१-४, ६-११ (दशद धि वाम्)
अश्विनौ, ५ (इमानि = ८ ५९),
इन्द्र वरुण
- ७४-७९ अग्नि
- ७९ ^१ अग्नि मध्यम
- ८०-८४ इन्द्र
- ८० ^१ दध्यञ्ज, मनु, अथर्वन् (निपा-
तित्ता)
- ८५ ८८ मरुत
- ८९-९० विश्व देवा
- ८९ ^१ ^२ देवा, ^३ अदिति
- ९१ सोम
- ९२ उपस
^१ ^२ अश्विनौ
- ९३ अग्नि, सोम के साथ ।

- ९४ जातवेदस्
^१ देवा, ^२ अग्नि अथवा छ उल्लि-
खित दवगण (मित्र वरुण, अदिति,
ति-नु, पृथिवी, धु) ।
- ९५ अग्नि औपस
- ९६ अग्नि द्विविणोदस्
- ९७ अग्नि शुचि
- ९८ अग्नि वैश्वानर
- ९९ जातवेदस्
- १००-१०४ इन्द्र
- १०५-१०७ विश्वे देवा
- १०८-१०९ इन्द्र अग्नि
- ११०-१११ ऋभव
- ११२ अश्विनौ
^१ घावापृथिव्यौ, अग्नि
- ११३ राग्युपसी
- ११४ रुद्र
- ११५ सूर्य
- ११६-१२० अश्विनौ
- १२० ^१ तु स्वप्ननासिनी
- १२१ इन्द्र, स्वरसामनो में विश्वे देवा
- १२२ विश्वदेवा
- १२३-१२४ उपस
- १२५ स्वनय भावयव्य के दान की
स्तुति ।
- १२६ ^१ भावयव्य, ^२ जायापत्यो
सप्रवाद् ।
- १२७-१२८ अग्नि
- १२९-१३३ इन्द्र
- १२९ इन्दु
- १३२ इन्द्र पर्वत
- १३४ वायु
- १३५ ^१ वायु, ^२ इन्द्र वायु ।
- १३६ ^१ मित्र वरुण, ^२ धु तथा अन्य
उल्लिखित दवता ।
- १३७ मित्र वरुण
- १३८ पूषन्

१३९ विश्वे देवाः १ विश्वे देवता, २ ^१ अश्विनी, ६ इन्द्र, ७ अग्नि, ८ महताः ९ इन्द्र-अग्निः अथवा द्रष्टा स्वयं अपनी अथवा ऋषियों की स्तुति करता है त्रिपदं इन्द्र-अग्निनिपात- भाज् है; १० बृहस्पति, ११ देवाः	१३९ सारस्वत् अथवा सूर्य । १३९ मातृगैत्रः संवादः : १.२.४.६-८.९ १०.१० के देवता महताः, ३.५.७.९ के देवता इन्द्र । १३६-१३८ महताः १३७ इन्द्र १३९ इन्द्र १४० २-३ इन्द्र, १, ३ अगस्त्य १४१-१४२ महताः १४१ ३-६ इन्द्र मरुत्वत् १४३-१४६ इन्द्र १४७ संवादः : १, २ लोपामुद्रा का वचन, ३, ५ अगस्त्य, ४, ६ एक ब्रह्मचारिन् १४७-१४८ अश्विनी १४५ सावापृथिव्यौ १४६ विश्वे दिव्यैकसः (= देवाः) १४७ अन्न १४८ जामयः १४९ अग्नि १५० बृहस्पति १५१ उपनिषत् : 'अप्यां तुजानां सूर्यस्य स्तुतिः केचित्; तद् वा विपश्नम्'
१४०-१४१, १४३-१४४ जातवेदस् १४२ आग्निषः १३ इन्द्र १४५-१५० अग्नि १४१-१५३ मित्र-वरुण १५१ मित्र १५२ अदिति अथवा अग्नि; अदिति = अग्नि (हीमक) । १५३-१५६ विष्णु १५५ १-३ इन्द्र-विष्णु १५७-१५८ अश्विनी १५९-१६० सावापृथिव्यौ १६३ ऋचवः १६२-१६३ मे-परश अथस्य संततवः १६३ १० अनेक और विभिन्न अथ भी । १६४ १-१ विश्वे देवाः, १६-१७ सूर्य,	

मण्डल २

१ अग्नि २ जातवेदस् ३ आग्निषः ४-१० अग्नि ११-२२ इन्द्र २३-२६ ब्रह्मणस्पति; बृहस्पति २७ १ इन्द्र-ब्रह्मणस्पति २० आग्निषाः मित्र-वरुण, दृष्ट, अंत, तुषिमात, नग, अर्यमन् । २८ ब्रह्म १ दु-रवमाः पृथगादिनी	२९ विश्वे देवाः ३० इन्द्र : इन्द्र-सोम, वाच् मन्वमा, बृहस्पति, महताः ३१ विश्वे देवाः ३१ सावापृथिव्यौ, २, ३ इन्द्र अथवा स्वप्ता, ४, ५ राका, ६, ७ सिनीवाली, ८, ९ देवियों : गुहू, इत्यादि । ३३ इन्द्र १ अग्निं सृष्टाम् अस्तीत् । ३४ महताः
--	---

- ३५ अपा नपात्
 ३६-३७ ऋतव
 ३८ सवितृ
 ३९ अश्विनौ
 ४० सोम पूषन्
 ६ अदिति भी ।

- ४१ १ वायु, १ इन्द्र-वायु, १ प्रउग
 देवता, १ हविर्धाने, अग्नि निपात
 भाज्, २ चावापृधिन्वी, २ हवि
 धाने
 ४२ ४३ एक कपिञ्जल के रूप में इन्द्र ।

मण्डल ३

- १ अग्नि
 २-३ वैश्वानर
 ४ आग्रव
 ५-६ अग्नि
 छावापृधिन्वी, उपस, आप, देवा,
 पितर, मित्र (निपाता)
 ७-१९ अग्नि
 ८ १ यूप, १ विश्वे देवा, १ ब्रधनी
 १२ इन्द्र अग्नि
 २० १ विश्व देवा
 २२ धिष्ण्या अग्रय
 २५ अग्नि इन्द्र
 २६ १ वैश्वानर, १ मरुत, १ गुरुस्तव
 २७ ऋतव
 २९ ऋत्विज
 ३०-५३ इन्द्र
 ३३ विश्वामित्र और नदियों का सवाद

- १३ १-७ १ ११ १ नद्य, ४ ६ ६ १
 विश्वामित्र, १ दो नपातिक देवताओं
 (इन्द्र और सवितृ) की स्तुति ।
 ५३ इन्द्र पर्वत, १ वायु, १-२
 अनसोऽन्नानि, २ वासिष्ठ
 द्विपिण्य
 ५४-५७ विश्वे देवा
 ५८ अश्विनौ
 ५९ मित्र
 विश्वे देवा
 ६० ऋभव
 १ इन्द्र और ऋभव, १ इन्द्र
 (नैपातिक) ।
 ६१ उपस
 ६२ १ इन्द्र वरुण, १ बृहस्पति, १
 पूषन्, १ सवितृ, १ सोम,
 १ मित्र-वरुण

मण्डल ४

- १-१५ अग्नि
 १ अग्नि, अथवा अग्नि और वरुण
 १३-१४ लिङ्गोक्तदेवत (एके)
 १५ सोमक, अश्विनौ
 १६-३२ इन्द्र
 २६ १ ऋषि द्वारा इन्द्र के समान
 अपनी ही आत्मस्तुति, १ श्यम
 स्तुति

- २७ १ श्यमस्तुति
 २८ इन्द्र और सोम ।
 ३० १ उषा मध्यमा (शाकटायन),
 २ भग, पूषन्, अर्यमन्
 ३१ १ सूर्य (आश्वलायन)
 ३२ १ हवोस्तुति
 ३३-३७ ऋभव
 ३८-४० दधिक्षा

वृहद्वक्ता : परिशिष्ट ३

- ३८ 'द्यावापृथिव्यौ
४० 'अग्नि, वायु, सूर्य; सूर्य (ऐतरेय
ब्राह्मण)
४१-४२ इन्द्र-वरुण
४३-४५ अश्विनी
४६ 'वायु, 'इन्द्र-वायु
४७ 'वायु, 'इन्द्र-वायु
४८ वायु
४९ इन्द्र-वृहस्पति
५० वृहस्पति :

५१ पुरोधायुः कर्मशांसा, 'इन्द्र

- वृहस्पति
५१-५२ उपसृ
५३-५४ सवितृ
५५ विश्वे देवाः
५६ द्यावापृथिव्यौ
५७ १-३ क्षेत्रपति, 'शुन, 'शुनासीरौ,
६.७ सीता, 'कृषि, कृषिजीवा
मनुष्याः, पर्जन्य, घन । अथवा यह
सम्पूर्णं सूक्त कृषि की स्तुति
करता है ।

मण्डल ५

- १-४ अग्नि
५ आग्नेयः
६-२८ अग्नि
२६ 'विश्व देवाः
२७ 'इन्द्र-अग्नि
२९-४० इन्द्र
२९ 'उषना
३१ 'उषना, 'इन्द्र और कुस
४० 'अग्नीणां कर्म कीर्यते ।
४१-५१ विश्वे देवाः
४१ 'इन्द्र
४२ 'सवितृ (शौनक), 'वृहस्पति,
'मरुतः, 'रुद्र, 'इन्द्रस्पति
(शाकपूणि), पर्जन्य-अग्नि (गालव),
पूषन् (वास्क), इन्द्र (शौनक),
वैश्वानर (भापुरि), 'मरुतः,
'अश्विनी
४३ 'वायु, 'सोम, 'इन्द्र, 'अग्नि,
'घर्म, 'अश्विनी, 'वायु और पूषन्
'अग्नि, द्विवीकसः,
मध्यमा, 'वृहस्पति
४४ 'सोम, अथवा देवाः, अथवा इन्द्र,
अथवा प्रजापति, 'वायु, 'आदित्य
- ४६ 'देवपान्यः
५१ 'इन्द्र-वायु, 'वायु
५२-६१ मरुतः
५६ 'रोदसी
५७ 'रुद्राः
६० 'पार्थिव और मध्यम अग्नि तथा
मरुतः
६२-७२ मित्र-वरुण
७३-७८ अश्विनी
७८ 'गर्भार्थम् उपनिषास्तुतिः
७९-८० उपसृ
८१-८२ सवितृ
८२ 'दुःस्वप्ननाशिनी
८३ पर्जन्य
८४ पृथिवी मध्यमा
८५ वरुण
८६ इन्द्र-अग्नि
८७ मरुतः, विष्णु के नैपतिक उल्लेख
के साथ ।
खिल १ : श्रीसूक्तम्; अग्नि निपातभाज्
खिल २ : प्रजावत्
खिल ३ : जीवपुत्र
खिल ४ (संखवन्ति) : पयस्विन्यः

मण्डल ६

- १-६ अग्नि
 ७-९ अग्नि वैश्वानर
 १०-१६ अग्नि
 १७-२० इन्द्र
 २१ ^{१ १ १} विश्वे देवा
 २७ ^८ अभ्यावतिन् और सार्ज्य की दान स्तुति ।
 २८ गवा स्तुति, ^{२ ८} इन्द्र
 २९-४६ इन्द्र
 ३७ वायु और इन्द्र
 ४४ ^{२२ २३} सोम, कुल्ल के अनुसार इन्द्र ।
 खिल (चञ्चु) शरीर
 ४५ ^{२१ ३३} वृषुस्तुति
 ४७ ^{१ ५} सोम, अथवा नैपातिक सोम के साथ इन्द्र, ^{२ १} देवा, भूमि, वृहस्पति, इन्द्र, ^{२२ २५} अभ्यावतिन् और सार्ज्य की दान स्तुति, ^{२६} भाववृत्तम्, ^{२६ २८} रथाभि मर्शना, ^{२९ ३१} दुन्दुभे सस्तव, ^{३१} इन्द्र ।
 ४८ तृणपाणिक पृथिसुक्तम् ^{१ १०} अग्नि, ^{११ १२} मरुत, ^{१४ १५} मरुत अथवा आदित्या अथवा विश्वे देवा, ^{१६ १९} पूषन्, ^{२० २१} मरुत, ^{२२} षु भू अथवा पृथि
 ४९-५२ विश्वे देवा
 ४९ अग्नि, वायु, अश्विनौ, वाच्, पूषन्, स्वप्ना, रुद्र, ^{११ १२} मरुत, विष्णु ।
 ५० रोदसी, इन्द्र, सवितृ, अग्नि, ^{१ ०} अश्विनौ ।
- ५१ ^{१ २} सूर्य
 ५२ ^{१६} अग्नि पर्जन्य
 ५३-५६ पूषन्
 ५५ ^२ कुल्ल के अनुसार रुद्र
 ५७ इन्द्र पूषन्
 ५८ पूषन्
 ५९-६० इन्द्र अग्नि
 ६१ सरस्वती
 ६२-६३ अश्विनौ
 ६४-६५ उपस्
 ६६ मरुत
 ६७ मित्र वहण
 ६८ इन्द्र वरुण
 ६९ इन्द्र विष्णु
 ७० तावापृथिव्यौ
 ७१ सवितृ
 ७२ इन्द्र सोम
 ७३ वृहस्पति
 ७४ सोम रुद्र
 ७५ युद्धोपकरणम्, समामाह्वानि ^१ योद्धावर्मा, ^२ धनु, ^३ ज्या, ^४ आर्षी ^५ इषुधि, ^६ सारथि, ^७ रश्मय, ^८ अश्वा, ^९ आयुधागारम्, ^{१०} रथ गोपा, ^{११} रणदेवता, ^{१२} इषु, ^{१३} कवच, ^{१४} कशा, ^{१५} हस्तत्राणाम् ^{१६} दिग्घ इषु, अयोमुखी, वारुणम् अश्वम्, ^{१७} धनुमुक्त इषु, ^{१८} युद्धा दि, ^{१९} कषचक्षय यध्यत स्तुति, ^{२०} युयुत्सु, नामन् (ऋषेर्) आग्निप

मण्डल ७

- १ अग्नि
 २ आप्त्यः
 ३-१७ अग्नि
 ५, ६, १३ वैश्वानर
 १८-३२ इन्द्र : मरुतः निपातभाज्
 १८ १८-१९ पञ्चवन की दानस्तुति
 ३२ १० वही
 ३३ इन्द्र सूक्त, अथवा इन्द्र के, और
 अपने पुत्रों के साथ तमिस्र और
 अगस्त्य का संवाद
 ३४-३७ विश्वे देवाः
 ३४ १६ अहि, १७ अहि बुध्न्य
 ३८ सवितृ :
 १-२ अहि, ६ भग, ७ वाजिनः
 ३९-४३ विश्वे देवाः
 ४१ २-६ भग, ७ उपस, अथवा ऋषियों
 के लिये स्तुतिः
 ४४ दधिक्षा :
 १ देवताः परिकीर्तिताः
 ४५ सवितृ
 ४६ रुद्र
 ४७ आपः
 ४८ १-३ ऋभव, ४ विश्वे देवाः अथवा
 ऋभवः
 ४९ आपः
 ५० १ मित्र-वरुण, २ अग्नि, ३ विश्वे देवाः,
 ४ नद्यः
 ५१-५२ आदित्याः
 ५३ रोद्रुमी (= आकाश और पृथिवी) ।
 ५४ वास्तास्पति
 ५५ वास्तोस्पति, २-६ प्रानाग्निः
 ५६-५९ मरुतः

- ५९ १२ प्रथम्यक
 ६०-६६ मित्र-वरुण
 ६० १ सूर्य, २ अर्यमन्, मित्र-वरुण
 ६२ १-३ सूर्य
 ६३ १-५ सूर्य
 ६६ ४-१३ आदित्याः अथवा सवितृ,
 अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमन्,
 भग, १४-१७ सूर्य, १८ वसुः (सूर्यस्य)
 एक स्तुति ।
 ६७-७४ अश्विनौ
 ७५-८१ उपसः
 ७६ १ मध्यम (अग्नि)
 ८२-८५ इन्द्र-वरुण
 ८६-८९ वरुण
 ९०-९२ वायु
 ९० ४-७, ९१ १-४-७, ९२ १ इन्द्र-वायु
 ९३-९४ इन्द्र-अग्नि
 ९५-९६ सरस्वती
 ९५ १, ९६ ४-७ सरस्वत्
 ९७ बृहस्पति :
 १ इन्द्र, २-९ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति,
 १० इन्द्र और बृहस्पति
 ९८ इन्द्र
 ९९-१०० विष्णु
 ९९ ४-७ इन्द्र भी
 १०१-१०२ पर्जन्य
 १०३ माण्डूक्य
 १०४ इन्द्र-सोम (रावाहम्) : १ सोम,
 २ अग्नि, ३ विश्वे देवाः, ४-१३ सोम,
 १४ अग्नि, १६ इन्द्र, १७ प्रावाण,
 १८ मरुतः, १९-२३ इन्द्र, २३ आरमन
 (ऋषेर्) आशीः, २४ इन्द्र ।

मण्डल ८

- १-४ इन्द्र
१ ^{३० ३१} आसन्न की दानस्तुति,
^{३४} आसन्न
२ ^{४१ ४४} विभिन्दु की दानस्तुति
३ ^{४१ ४२} पाकस्थामन् की दानस्तुति
४ ^{१५-१८} पूषन् (शाकटायन)
^{१५} इन्द्र, ^{१६ १८} पूषन् (गालव),
^{१९ २१} कुरुन्न की दानस्तुति
५ अश्विनौ
^{२० २१} कशु की दानस्तुति
६ इन्द्र
^{२०} अग्नि मैश्वानर (शाकपूणि और
मुद्गल), ^{२० २८} तिरिन्दिर की
दानस्तुति
७ मरुत
८-१० अश्विनौ
११ अग्नि
१२-१७ इन्द्र
१७ ^{१७} वास्तोष्पति
१८ आदित्या
^{४६ ७} अदिति, ^८ अश्विनौ, ^९ अग्नि,
सूर्य, अनिल ।
१९ ^{४४ ४५} वरुण, ^{४५} अर्यमन्, ^{४६} मित्र,
^{३६ ३७} ब्रह्मदस्यु
२० मरुत
२१ इन्द्र
^{१७ १८} चित्र की दानस्तुति
२२ अश्विनौ
२३ अग्नि
२४ इन्द्र
^{२८ ३०} उपसु
२५ ^{१ १} मित्र वरुण, ^{१० २१} विश्वे देवा,
^{२२ २४} बरु की दानस्तुति ।
२६ अश्विनौ
^{२० २४} वायु
२७-३१ विश्वे देवा
- २९ पृथक्कर्मस्तुति
^३ सोम, ^४ अग्नि, ^५ वृषा, ^६ इन्द्र,
^७ रुद्र, ^८ पूषन्, ^९ विष्णु, ^{१०} अश्विनौ,
^{११} मित्र वरुण, ^{१२} अन्नय
३१ इज्या
^{१ १} शक, यज्ञतां पति, ^{३ ४} यज्ञन्,
^{५ ६} दपती, ^{१ १} आशो, ^{१ २} पूषन्,
^{१३} मित्र, ^{१४} अर्यमन्, वरुण आदित्या,
^{१४} अग्नि, ^{१५ १६} यज्ञन्
३२-३४ इन्द्र
३३ ^{१९} एक दानवी द्वारा इन्द्र को
सम्बोधन
३५ अश्विनौ
३६-३७ इन्द्र
३८ इन्द्र अग्नि
३९ अग्नि
४० इन्द्र अग्नि
४१-४२ वरुण
४२ ^{४ ६} अश्विनौ
४३-४४ अग्नि
४५-४६ इन्द्र
४६ ^{४ ५} मित्र, ^{४ ५} अर्यमन्, ^{४ ५} मरुत,
^{२१ २८} कानीत पृथुभवस् की दान-
स्तुति, ^{२५ २८ ३१} वायु
४७ आदित्या
^{१४ १६} अदिति, ^{१४ १६} उपसु भी
४८ सोम
४९-५६ इन्द्र
५४ ^{५ ५} बहुदेवत (प्रगाथ)
५५-५६ प्रकल्प की दानस्तुति ।
५६ ^{५ ५} अग्नि, सूर्य
५७-५८ (कोई निर्देश नहीं)
५९ (१ ७३ के बाद एक खिल के रूप
में उल्लेख) ।
६० अग्नि
६१-६६ इन्द्र

६५ ^१ देवाः (भागुरि), ^{१०१२} विश्वे देवाः (यास्क) ।	८४ अग्नि
६७ आदित्याः ^{१०१२} अदिति ।	८५-८७ अश्विनौ
६८-७० इन्द्र :	८८-९३ इन्द्र :
६८ ^१ ऋतवः, ^{१५-११} ऋच और अश्वमेध की दानस्तुति ।	९३ ^{३४} ऋभवः
६९ ^{१२} इन्द्र, अग्नि, विश्वदेवाः, ^{११.१२} वरुण	९४ महतः
७१-७२ अग्नि :	९५-१०० इन्द्र :
७२ हविषां स्तुतिः पयःपशोपधीनां च ।	९६ ^{१३-१५} इन्द्र, महतः, बृहस्पतिः इन्द्र (शौनक), इन्द्र-बृहस्पति (ऐत- रेय ब्राह्मण) ।
७३ अश्विनौ	१०० ^{१५} इन्द्र आत्मानं तुष्टाय, ^८ सुपर्ण, ^१ वज्र, ^{१०.११} वासु ।
७४-७५ अग्नि :	१०१ ^{१२} मित्र-वरुण, ^१ अर्यमन् भी, ^{५.६} आदित्याः, ^{२.८} अश्विनौ, ^{१.१०} वायु, ^{११.१२} सूर्य, ^{१२} उपमन् अधवा चन्द्र- धूर्ययोः प्रभा, ^{११} पवमान, ^{१५-१६} शो
७४ ^{१३-१४} ऋषि की आत्मस्तुति; युत- पैतृ की दानस्तुति भी, ^{१५} परुणी	१०२-१०३ अग्नि :
७६-७८ इन्द्र	१०३ ^{१२} अग्नि मध्यम, महतः और रुद्राः के साथ ।
७९ सोम	
८०-८२ इन्द्र :	
८० ^१ विश्वे देवाः	
८३ देवाः	

मण्डल ९

इम मण्डल के देवता सोम पयमान हैं	^{२१.३२} स्वाध्यायावाप्येतुमंस्तयः
५ आश्रयः	७३ अग्नि रघोदन
६६ ^{१५-२१} अग्नि	८३ धर्मसंस्तवः
६७ ^{१५-१९} पवमान और पूषन्, ^{२३.२४} अग्नि, ^१ सवितृ, ^{२६} अग्नि और सवितृ, ^{२५} विश्वे देवाः, ^{२१} अग्नि ।	८० ऋभु ११२ इन्द्र ।

मण्डल १०

१-७ अग्नि	१३ हविषानि ।
८ ^{१-६} अग्नि, ^२ इन्द्र	१४ यम मध्यम :
९ भापः	^६ अधर्वाजाः, ऋतवः, अद्विरसः, पितरः, ^२ मेतानिपः, ^{१०-१३} श्वानौ
१० यम और यमी का संवाद	१५ पितरः
११-१२ अग्नि	

- १६ अग्नि कथ्यवाहन ।
- १७ ^१ सरयू, ^२ पूषन्, अग्नि, ^३ पूषन्
^४ मरुत्वती, ^५ आप, ^६ सोम
^७ आप
- १८ ^१ सूर्य, ^२ धातु, ^३ वषा, ^४ सूर्य,
^५ पृथिवी, ^६ आश्विप
- १९ गाव, कुज के अनुसार आप
अग्नि सोम, इन्द्र और अग्नि
निपातभाज, ^१ इन्द्र
- २०-२१ अग्नि
- २२-२३ इन्द्र
- २४ ^१ अश्विनी
- २५ सोम
- २६ पूषन्
- २७-२९ इन्द्र
- २७ ^१ महत, ^२ वज्र, ^३ अग्नि, इन्द्र,
सोम, पर्जन्य और वायु, ^४ अग्नि,
^५ सूर्य, ^६ इन्द्र और वज्र,
^७ इन्द्र का धनुष, ^८ पर्जन्य,
अनिल, मारुत, ^९ इन्द्र अथवा
सूर्य ।
- २८ ऋषि नशा इन्द्र का सवाद अयुग्म
नशाओं न इन्द्र को सम्बोधित
क्रिया गया है ।
- २९ आप
^१ अग्नि मध्यम की अपा नपात्
के रूप में स्तुति ।
- ३० विश्वे देवा
- ३१ इन्द्र
- ३२ विश्वे देवा, ^१ इन्द्र ^२ कुरुश्रवण
त्रासदस्यव, ^३ उपमश्रवस्
- ३३ ^१ अक्षा, ^२ कृषि, नेप में
अचनिन्दा ।
- ३४-३६ विश्वे देवा
- ३६ ^१ सवितृ (एके), ^२ सवितृ
(शौनक, पारक, शाल्व) ।
- ३७ सूर्य
^१ नैपातिक देवता, ^२ विश्व देवा
- ३८ इन्द्र
- ३९ ४१ अश्विनी
४२-४४ इन्द्र
४४ ^१ बृहस्पति
४५-४६ अग्नि
४५ ^१ दानाष्टिष्यौ, ^२ विश्वे देवा
४७ इन्द्र वैकुण्ठ
४८-५० इन्द्र वैकुण्ठ की आत्मस्तुति ।
५१-५३ अग्नि और देवों का सवाद
५४-५५ इन्द्र
५५ ^१ सूर्य और चन्द्रमा
५६-५७ विश्वे देवा
५७ इन्द्र, ^१ अग्नि, ^२ मनस, ^३ सोम
५८ जीवावृत्ति सुवन्धोर् मनस स्तवी
वा ।
५९ ^१ निवृत्ति, ^२ सोम, निवृत्ति,
^३ असुनीति (यारक केवल में),
^४ भू, वा, सोम, पूषन्, स, पथ्या,
स्वस्ति, ^५ रोदसी (इन्द्र),
^६ इन्द्र ।
- ६० ^१ ऐचवाकु, ^२ ऐचवाकु के लिये
स्तुति, ^३ ऐचवाकु, ^४ सुवन्धोर् असुम
आह्वयत्, ^५ अस्य चेतसो
धारणाय, ^६ लब्धासु पाणिभिर्
अस्पृशन् ।
- ६१-६६ विश्व देवा
- ६२ अजिरता स्तुति, ^१ मनु सायण्य
- ६३ ^१ मरुत, ^२ पथ्या स्वस्ति ।
- ६४ अदिति
- ६५ ^१ मित्र-वह्ण, ^२ वाच् मध्यमा,
^३ अश्विनी ।
- ६६ ^१ वाच् मध्यमा और मनु ।
- ६७-६८ बृहस्पति
- ६७ ^१ अक्षयस्वपति
- ६९ अग्नि
- ७० आश्विप
- ७१ ज्ञान
- ७२ विश्वे देवा, ^१ बृहस्पति

- ७३-७४ इन्द्र
 ७५ नदियों (स्रवन्त्याः)
 ७६ प्रावाणः
 ७७-७८ मरुतः
 ७९-८० अग्नि
 ८१-८२ विश्वकर्मन्
 ८३-८४ यन्तु
 खिल १ (मम वृते) : विश्वे देवाः
 खिल २ (उक्त्) : अग्निः
 मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि
 ८५ सूर्यां, माय, सूर्यं, ऋत, और सोम
 के साथ: २-४ सोम, चन्द्रमस्,
 ६-१३ सूर्यायै भाववृत्तम्, १४-१५
 अश्विनौ, १६ सूर्यं, १७ विश्वे देवा,
 १८ सूर्यं-चन्द्रमस्, १९ सूर्यं, चन्द्र-
 मस् (१८-१९ अश्विनौ औणवाम),
 २० सूर्यां, २१-२३ राधवं विश्वावसु,
 २३ दंपती, २४-२६ वधू, २९ वर द्वारा
 वधू को वसुदान, ३० पति द्वारा
 वसु हरण का निषेध, ३१ वधम-
 नाशिनौ ३२-३३ परिपन्थिनः, ३४ वधू
 के वसु को लेने वाला, ३५ भाववृत्ति,
 ३६ धनाश्रयः, ३७ संयोगाश्रयः,
 ३८-४० विवाहित दंपती के लिये
 स्तुतियाँ, ४१ प्रजापति, ४२ इन्द्र,
 ४३ (= खिल) बृहस्पति ।
 ८६ वृषाकपि
 ८७ अग्नि
 ८८ तीन अग्नि (पार्थिव, मध्यम् और
 दिव्य) ।
 ८९ इन्द्र, सोम भी ।
 ९० पुरुष
 ९१ अग्नि
 ९२-९३ विश्वे देवाः
 ९३ १४-१५ रात्रां दानस्तुतिः
 ९४ मावा
 ९५ पुरुवरम् और उर्वशी का संवाद
 ९६ इन्द्र

- ९७ क्षीपधीस्तवः
 ९८ १-३ बृहस्पति, ४-५ देवाः, ६-११ अग्नि
 ९९ इन्द्र ।
 १०० विश्वे देवाः
 १०१ ऋत्विक्स्तुतिः
 १०२ रूपण अथवा इन्द्र (घास्क),
 विश्वे देवाः (शौनक) ।
 १०३ इन्द्र :
 बृहस्पति, १३ अन्वा, १३ इन्द्र
 अथवा मरुतः
 खिल १ : मरुतः
 खिल २ (मरु) : १ सूर्यं, २ घर्म, ३ बृह-
 स्पति, ४ यवित्, ५ सूर्यं-चन्द्रमस्
 १०४ इन्द्र
 १०५ इन्द्र
 १०६ अश्विनौ
 १०७ प्रजापत्या दक्षिणा; कृष्ट के अनु-
 सार दक्षिणादातार; ८-९ भोजः
 १०८ १.३.५.६.९ सरमा, १.४.६.८.१०.१।
 पणयः
 १०९ विश्वे देवाः
 ११० आश्रियः
 १११-११३ इन्द्र
 ११४ विश्वे देवाः : एके : देवाः, इन्द्र,
 कुन्दासि, अग्नि मध्यम ।
 ११५ अग्नि
 ११६ इन्द्र
 ११७ अन्न
 ११८ अग्नि रचोहन्
 ११९ लव
 १२० इन्द्र :
 आपत्याः निपातभाज् ।
 १२१ प्रजापति
 १२२ अग्नि
 १२३ वेन
 १२४ १-३ अग्नि की आत्मारुति, ४ वरुण,
 ५ सोम, ६ वरुण, ७ सोम, इन्द्र ।
 १२५ वाच्

- १२६ अर्यमन्, मित्र, वरुण
 १२७ रात्री
 १२८ विश्वे देवा
 खिल १ (नमस् ते) विद्युत्
 खिल २ (या कल्पयन्ति नोऽरय)
 कृत्यानाशनम्
 खिल २ (आशुष्यम्) हिरण्यस्तुति
 १२९ परमाष्टन् भाववृत्तम्
 १३० भाववृत्तम्
 १३१ इन्द्र ^१ अश्विनौ
 १३२ मित्र वरुण
^१द्यु, भूमि, अश्विनौ
 १३३-१३४ इन्द्र
 १३५ द्युस्थानीय यम
 १३६ कर्मिन्
 १३७ ^१देवा, ^२वात, ^३विरव देवा,
^४आप
 खिल (भूमि) लाघा
 १३८ इन्द्र
 १३९ ^१सवितृ, ^२शम्भर्व की आम-
 स्तुति, इन्द्र और सूर्य निपात
 भाज है ।
 १४० अग्नि
 १४१ अग्नि और विश्वे देवा
 १४२ अग्नि
 १४३ अश्विनौ
 १४४ इन्द्र
 १४५ भाववृत्तम् औपनिषद्म मूक्तम्
^१सपान्यपनोदिका, ^२पति
 स्वनानी ।
 १४६ अरण्यानी
 १४७-१४८ इन्द्र
 १४९ सवितृ
 १५० अग्नि
 १५१ श्रद्धा
 खिल १ मेघ सूक्तम्
 खिल २ (आ सूर एतु) अग्नि
 १५२-१५३ इन्द्र
 १५४ भाववृत्तम्
 १५५ अलक्ष्मीघ्नम् ^१महामस्वति,
^२इन्द्र, ^३विश्वे देवा
 १५६ अग्नि
 १५७ विश्व देवा (इन्द्र प्रमुख देवता है,
 और विश्व देवा, आदित्या, महत्,
 गौण) ।
 १५८ सूर्य
 १५९ पौलोमी द्वारा अपने, तथा अन्य
 सहपत्नियों के गुणों की स्तुति ।
 १६० इन्द्र
 १६१ राजयक्षप्रभम् इन्द्र अग्नि (यास्क)
 लिङ्गोक्त देवतम् (एके) ।
 १६२ स्रवता गर्भाणाम् अनुमन्त्रणम्
 अग्नि रचाहन् ।
 खिल (वनसू तत् पश्यत्) वन ।
 १६३ यक्ष नाशनम्
 १६४ दुश्प्रज्ञम् इन्द्र और अग्नि
 निपात भाज्
 १६५ प्रायश्चित्ताथम् कपोत
 १६६ सपञ्चमम्
 खिल (येनेद्म्) मनस्
 १६७ इन्द्र
^१वरुण, विधातृ, अनुमति, धातृ
 सोम, बृहस्पति ।
 १६८ अनिल ऋषि के पिता (अर्थात्
 वात) ।
 १६९ गाव
 १७० सूर्य
 १७१ इन्द्र
 १७२ उपस्
 १७३-१७४ राम्नेऽभिषिक्त्यादानुमन्त्रणे ।
 १७५ प्रावाग
 १७६ अग्नि
^१ऋभव
 १७७ सूर्य अथवा मायानेद्म् ^१वाच
 (शौनक)
 १७८ स्वस्वयनम् ताप्य ।

१७९-१८० इन्द्र	१८८ जातवेदम्
१८१ विश्वे देवाः	१८९ सापराज्ञी की आत्मस्तुति, मूर्ध (एके), वाच् (मुद्रल, शाकपूणि, शाकटायन) ।
१८२ बृहस्पति	१९० भाववृत्तम्
१८३ लिङ्गाक्तदेवताः	१९१ ^१ अग्निः; ^{२-५} संज्ञानं
^१ पुत्रकामी व्यक्ति के लिये स्तुति, ^१ पुत्रकामी स्त्री के लिये स्तुति, ^२ ऋषि की आत्मस्तुति ।	खिल १ (संज्ञानम्) : ^१ उशना, वरुण, इन्द्र, अग्नि, सवित्र, ^२ अग्निनी, ^{३-५} आशिपः
१८४ सन्तान के लिये स्तुति : विश्वे देवाः	खिल २ (प्राध्वराणाम्) : ^१ अग्नि
खिल (नेत्रमेप) : गर्भार्थम्	खिल ३ (नैर्हस्यम्) : सपत्नम् :
१८५ दान्त्यर्थं पावनं सूक्तम् : आदिभ्याः, सूर्य, वरुण, मित्र ।	^१ इन्द्र और पूषन्
१८६ उल ऋषि के पिता, अर्भात् वात ।	खिल ४ (महानाम्न्य ऋचः) : इन्द्र ।
१८७ अग्नि ।	



परिशिष्ट-४

बृहदेवता में वर्णित कथाओं की सूची

अगस्त्य, देखिये वसिष्ठ और लोपामुद्रा
अग्नि और उनके आता, ७. ६१-८१

अग्नि, देखिये भृगु

अपाला, ६. ९९-१०६

अभ्यावर्तिन् ५. १२४-१२८

इन्द्र, देखिये गृत्समद, त्रसदस्यु, त्रिशिर-
रस्, विष्णु ।

इन्द्र और ऋषिगण, ६ १३७-१४१

इन्द्र का जन्म और वामदेव के साथ
युद्ध, ४. १३०-१३५

कपिशल के रूप में इन्द्र, ४ ९३-९४

इन्द्र और भरद्वाज, ४ ४६-५५

इन्द्र वैकुण्ठ, ७ ४९-६०

इन्द्र और वयश की बहन, ६ ७६-७७

उर्वशी, देखिये पुरूरवस्

ऋभुगण और त्वष्टा, ३. ८३-८८

कधीवत् और स्वनय, ३ १४२-१५१

कण्व और प्रगाथ, ६. ३५-३९

कपोत मेरुत, ८ ६७-६८

काश्यप भूताज्ञ, ८. १८-२०

गृत्समद, इन्द्र और दैत्यगण, ४
१५-२८ ।

घोषा, ७ ४२-४८

चिद्य, देखिये सोमरि ।

त्रापि त्रसदस्यु, और इन्द्र, ६ ५१-५७
त्रित, ३, १३२-१३७

त्रिशिरस् और इन्द्र, ६. १४७-१५३

व्यरुण और वृष जान, ५ १३-२२
त्वष्टा, देखिये ऋभुगण

दध्यञ्ज, ३. १८-२४

दीर्घतमस्, ४. ११-१५

दैत्यगण, देखिये गृत्समद ।

नाहुप और सरस्वती, ६. २०-२४

पणि, देखिये सरमा

पुरूरवस् और उर्वशी, ७ १४७-१५२

प्रगाथ, देखिये कण्व

भरद्वाज, देखिये भृगु

भूताज्ञ, देखिये काश्यप

भृगु, अग्नि, भरद्वाज, आदि का जन्म
५. ९७-१०३ ।

भरद्वाज, देखिये इन्द्र ।

लोपामुद्रा और अगस्त्य, ४ ५७-६१

वसिष्ठ और व्यरुण का कुत्ता, ६ ११-१५

वसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म, ५
१४३-१५९

वामदेव, देखिये इन्द्र ।

विश्वामित्र, गाधिन् के पुत्र, ४. ९५

विश्वामित्र और शक्ति, ४ ११२-१२०

विश्वामित्र, सुदास्, और मदिर्षी, ४
१०५-१०८ ।

विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता, ६,
१२१-१२३ ।

वृष जान, देखिये व्यरुण

न्यास की बहन, देखिये इन्द्र ।	सरस्वता, देखिये मातृष ।
शक्ति, देखिये विश्वामित्र	सव्य, ३. ११५
रथावाध, प. ५०-८१	सुदास, देखिये विश्वामित्र
सप्तवभि, प. ८२-८५	सुबन्धु, प. ८५-१०२
सरण्यू, प. १६३-७. ७	सोमरि और चित्र, प. ५८-६२
सरमा और पति, प. २४-३६	सोम का पलापन प. १०९-११५
	खनय, देखिये कवीवत्



परिशिष्ट-६

अन्य ग्रन्थों में उद्धृत बृहदेवता के स्थलों की सूची ।

- | | |
|---|--|
| १. २ : ऋग्वेद १. १ पर नीतिमञ्जरी । | ४. १०५-१०६ : ऋग्वेद ३. ३३, १ पर नीतिमञ्जरी । |
| २. १०५ : निरुक्त २. २ पर दुर्गा | ४. ११२-११६ : ऋग्वेद ३. ५३ पर पद्मगुरुशिष्य । |
| ३. १८-२३ : ऋग्वेद १. ११६, १२ पर नीतिमञ्जरी | ४. ११३-११४ : ऋग्वेद २. ५३, १५ पर सायण । |
| ३. १०१ : ऋग्वेद १. २८ पर पद्मगुरु-शिष्य और सायण । | ४. ११७ : ऋग्वेद ३. ५३ पर पद्मगुरु-शिष्य । |
| ३. १४०, १४२-१५० ऋग्वेद १. १२६, ७ पर नीतिमञ्जरी । | ४. १२६ : ऋग्वेद ४. १८, १३ पर नीतिमञ्जरी । |
| ३. १५५-१५६ : ऋग्वेद १. १२६, ६. ७ पर नीतिमञ्जरी । | ४. १३०-१३१ : ऋग्वेद ४. १८, १३ पर नीतिमञ्जरी । |
| ४. १-३ : ऋग्वेद १. १२६, ६. ७ पर नीतिमञ्जरी । | ५. ८ : ऋग्वेद ४. ५७ पर पद्मगुरुशिष्य |
| ४ ११-१५ : ऋग्वेद १. १४७, ३ पर नीतिमञ्जरी । | ५. १४-२१, २२, २३ : ऋग्वेद ५. २, ९ पर नीतिमञ्जरी । |
| ४. २१, २४, २५ : ऋग्वेद १. १८, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५. ३३-३६ : ऋग्वेद ४. ३०, १५ पर नीतिमञ्जरी । |
| ४. २२, २३, २४ : ऋग्वेद १. १५८, ५ पर नीतिमञ्जरी । | ५. ५०-५९ (६१, ६८, ७१ को छोड़ कर) : ऋग्वेद ५. ६१ पर पद्मगुरुशिष्य । |
| ४. ३५ : अथर्ववेद १९. ५३, २ पर सायण | ५. ५०-७९ (६४-६७, ६९-७१ को छोड़कर) : ऋग्वेद ५. ६१, १७ पर नीतिमञ्जरी । |
| ४. ४९-५३ ऋग्वेद १. १०७, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५. ७२-७९ : ऋग्वेद ५. ६१, १७ पर सायण । |
| ४. ५४-६० : ऋग्वेद १. १७९, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५. ९७-१०१ : ऋग्वेद ५. की भूमिका में पद्मगुरुशिष्य । |
| ४. ६६-६९ : ऋग्वेद २. १२, १ पर नीतिमञ्जरी । | ५. ९७-१०२ : ऋग्वेद ५. की भूमिका नीतिमञ्जरी । |
| ४. ६६-६८ : ऋग्वेद २. १२, पर सायण । | ५. १०६ : ऋग्वेद ६. २४, ५ पर सायण |
| ४. ९३-९४ : ऋग्वेद २. ४३ पर पद्मगुरु-शिष्य । | ५. १११ : ऋग्वेद ६ ४७ पर पद्मगुरु-शिष्य । |
| ४. ९६ : ऋग्वेद ३. ५, ६ पर पद्मगुरु-शिष्य । | |

५. १२४-१२८ : ऋग्वेद ६. २७, ४ पर नीतिमञ्जरी ।
५. १२९-१३३ : ऋग्वेद ६. ७५, १ पर नीतिमञ्जरी ।
५. १३६-१३८ : ऋग्वेद ६. २७, ४ पर नीतिमञ्जरी ।
५. १३९-१४० : ऋग्वेद ६. ४७, २२ पर नीतिमञ्जरी ।
५. १४३-१५५ (१५३ को छोड़कर) : ऋग्वेद ७. १०४, १६ पर नीतिमञ्जरी ।
५. १४९-१५५ : ऋग्वेद ७. ३३, ११ पर में सायण ।
६. ११-१५ : ऋग्वेद : ७. ५५, २ पर नीतिमञ्जरी ।
६. ११-१३ : ऋग्वेद ७. ५५, ३ पर सायण
६. २७-२८ : ऋग्वेद ७. १०४ की भूमिका में सायण ।
६. २८ : ऋग्वेद ७. १०४, १६ पर नीतिमञ्जरी ।
६. ३२ : ऋग्वेद ७. १०४, २२ पर सायण ।
६. ३५-३८ : ऋग्वेद ८. १ पर नीतिमञ्जरी ।
६. ४३ : ऋग्वेद ८. ४ पर षड्गुरुशिष्य ।
६. ५१-५७ : ऋग्वेद ८. १९, ३७ पर नीतिमञ्जरी ।
६. ५८-६२ : ऋग्वेद ८. २१, १८ पर नीतिमञ्जरी ।
६. ६८ : ऋग्वेद ८. २७ पर षड्गुरुशिष्य ।
६. ७९-८० :

{	ऋग्वेद ८. ४६ पर षड्गुरुशिष्य ।
{	ऋग्वेद ८-४६, २१ पर सायण ।
६. ९१-९२ : ऋग्वेद ८. ६८ पर षड्गुरुशिष्य ।

६. ९९-१०६ : ऋग्वेद ८. ९१, ७ पर नीतिमञ्जरी ।
६. १२९-१००, १०२, १०५-१०६ : ऋग्वेद ८. ९१ पर षड्गुरुशिष्य ।
६. १०९-११३, ११४-११५ : ऋग्वेद ८. ९६, १३ पर सायण ।
६. ११० : ऋग्वेद ८. ९५, ७ पर नीतिमञ्जरी ।
६. १२१-१२४ : ऋग्वेद ८. १००, १२ पर सायण ।
- ऋग्वेद १. ११६, ६ पर नीतिमञ्जरी ।
६. १६२-१६३ : ऋग्वेद ७. ७२, २ और अथर्ववेद १८. १, ५३ पर सायण
७. १-७ : ऋग्वेद १. ११६, ६ पर नीतिमञ्जरी ।
७. १-६ : ऋग्वेद ७. ७२, २ और अथर्ववेद १८. १, ५३ पर सायण ।
७. ३७ : ऋग्वेद १०. ३१ पर षड्गुरुशिष्य ।
७. ३७ : ऋग्वेद १०. ३४ पर सायण ।
७. ४२-४४, ४५-४७ : ऋग्वेद १. ११७, ७ पर नीतिमञ्जरी ।
७. ६१-८१ : ऋग्वेद १०. ५० पर षड्गुरुशिष्य की एक प्राचीन पाण्डुलिपि में ।
७. ६१-६६, ७४, ७५, ७६ : ऋग्वेद १०. ५३, ८ पर नीतिमञ्जरी ।
७. ८९-९० : ऋग्वेद ५. ६०, १२ पर नीतिमञ्जरी ।
७. ९७-१०१ : ऋग्वेद १०. ६०, ७ पर सायण ।
७. ९६-९८, ९९-१०० : ऋग्वेद ५. ६०, १२ पर नीतिमञ्जरी ।
- ऋग्वेद १०. ७१ पर षड्गुरुशिष्य ।
७. १०९ : ऋग्वेद १०. ७१, १२ पर सायण ।

- | | | |
|---|--|--|
| ७. १५५-१५७ : | ऋग्वेद १०. ९८ पर
षड्गुरुशिष्य की
एक प्राचीन पाण्डु-
लिपि में।
ऋग्वेद १०. ९८, ८
पर नीतिमञ्जरी। | ८. ६५ : ऋग्वेद १०. १९१ पर षड्गुरु-
शिष्य। |
| ८. १-२ : ऋग्वेद १० ९८ पर षड्गुरु-
शिष्य की एक प्राचीन पाण्डु-
लिपि में। | | ८. ७३ : ऋग्वेद १०. १७३ पर षड्गुरु-
शिष्य। |
| ८. १, २-७ : ऋग्वेद १०. ९८, ८ पर
नीतिमञ्जरी। | ८. ९८ : ऋग्वेद १०. १९१ पर षड्गुरु-
शिष्य। | |
| ८. ४० : ऋग्वेद १० ११९ पर षड्गुरु-
शिष्य। | ८. १३३ : ऋग्वेद १०. १९१ पर षड्गुरु-
शिष्य। | |
| | ८. १३५ : ऋग्वेद १०. १९१ पर षड्गुरु-
शिष्य। | |
| | ८. १३६ : { षड्गुरुशिष्य : भूमिका,
१. २।
ऋग्वेद-भाष्य भूमिका :
सायण। | |



परिशिष्ट-६

अन्य ग्रन्थों के साथ बृहद्देवता का सम्बन्ध



१. नैघण्टुक

नैघण्टुक ५. १, २ (पार्थिव देवता— अग्नि के रूप और अप्री देवता)	बृहद्देवता १. १०६-१०९ का स्रोत है ।
नैघण्टुक ५. ३ (अन्य पार्थिव देवता)	बृहद्देवता १. १०९-११४ का स्रोत है ।
नैघण्टुक ५. ४, ५ (अन्तरिक्ष देवता)	बृहद्देवता १. १२२-१२९ का स्रोत है ।
नैघण्टुक ५. ६ (द्युस्थानीय देवता)	बृहद्देवता २. ८-१२ का स्रोत है ।
नैघण्टुक ५. ३ (नद्यः से अज्ञायी लक के नामों का अंश)	बृहद्देवता २. ७३-७५ का स्रोत है ।
नैघण्टुक १. १५ (विभिन्न देवताओं के बाह्यनाथ)	बृहद्देवता ४. १४०-१४४ का स्रोत है ।



२. निरुक्त

निरुक्त

बृहद्देवता

७. ३ : एवम् उवाचैर् अभिप्रायैर् ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति ।	१. ३ : तद्भिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु ।
७. १ : यत्काम ऋषिर् यस्यां देवता- याम् अर्धपायम् इह्यन् स्तुतिं प्रयुक्ते, तद्देवतः स मन्त्रो भवति ।	१. ६ : अर्धम् इह्यन् ऋषिर् देव्यं यं यम् आहायम् अस्तु इति; प्राधान्येन स्तुवन् भक्त्या मन्त्रस् तद्देव एव सः
१०. ४२ : देवतानामधेयान्य् अनुष्ठा- न्तानि, सूक्तभाजिः	१. १० (तु० की० ८. १२९) । देवता- नामधेयानि मन्त्रेषु त्रिविधानि तुः सूक्तभान्य् अथर्वभाजि तथा नैपातिकानि तु ।
७. १३ : देवताः...सूक्तभाजः...ऋग्भा- जन् च...कान् चिन् निपातभाजः ।	
१. २० : यद् अन्यदेवते मन्त्रे निपतति नैघण्टुकं तद् ।	१. १८ : मन्त्रेऽन्यदेवतेऽन्यानि निपातन्तेऽत्र कानि षिट्

निरुक्त

- १ १ पूर्वापरीभूत भावम् आख्या
तेन्यचष्टे
- ७ ५ तिस्र एव देवता अग्नि पृथि
वीस्थानो, वायुर वेन्द्रो वान्तरिच
स्थान सूर्या द्युस्थान
- ७ ४ आत्मैवेया रथो आत्मायुधम्
आत्मा सर्वं देवस्थ
- ७ १८ यस तु सूक्त भजते, यस्मै
हविर् निरुप्यतेऽयम् एव सोऽग्निर्,
निपातम् एव एते उत्तरे ज्योतिषो
एतेन नामधेयेन भजेते ।
- ७ १९ जातवेदा जातानि वेद,
जातानि नैन विदुर, जाते जाते
विद्यत इति वा, जातविद्यो वा
जातधनो, जातविद्यो वा जातप्रज्ञा
- ७ २३ रोहात् प्रयवरोहश् चिकीर्षि
तस ताम् अनुकृतिं होताधामिमारुते
शस्त्रे वैश्वानरीयेण मूक्तेन प्रति
पद्यते तत्त भागद्विति मध्यस्थाना
देवता रुद्रं च मरुतश् च ततोऽग्निम्
इहास्थानम् अत्रैव स्तोत्रियेऽसति
- ७ ८ अयं लोकं प्रातः सवनं वसन्तो
गायत्री त्रिष्टुप् स्तोमो रथतर साम
ये च देवगणा समाज्जाता प्रथमे
स्थाने ।
- ७ ११ शरद् अनुष्टुप् एकविंशस्तोमो
वैराज सामैति पृथिव्यायतनानि ।

बृहद्देवता

- १ ४४ य पूर्वापरीभूत इहेक एव
आख्यातशब्देन तम् अयम् वाहु
- १ ६९ अग्निर् अस्मिन् अथेन्द्रस् तु
मध्यतो वायुर् एव च, सूर्या दिवाति
विश्यास् तिस्र एवेह देवता ।
- १, ७३ तेषाम् आत्मैव तत् सर्वं भू
यद् भक्ति- प्रकीर्यते तेजस् एव
एवायुध प्राहुर् वाहन चैव यस्य एव
- १ ७८ निरुप्यते हविर् यस्यै सूक्तं च
भजते च या, सैव तत्र प्रधानं स्यान्
न निपातेन या स्तुता ।
- १ ९२ यद् विद्यते हि जात सजातैर्
यद् वाच विद्यते ।
- २ ३० भूतानि वद यज ज्ञत ।
यच् चेष जातविद्योऽभूद् विच
जातोऽधिवचि वा ।
- २ ३१ विद्यते सर्वभूतैर् हि,
यद् वा जात पुन पुन ।
- १ १०२ १०३ रोहात् प्रयवरोहेण
चिकीर्षन्न आग्निमारुत शस्त्र वैश्वानरी
येण सूक्तन प्रतिपद्यते । ततस्तु
मध्यमस्थाना देवतास् एव अनुशसति,
रुद्रं च मरुतश् चैव स्तोत्रियेऽग्निम्
इम पुन ।
- १ ११५ ११६ लोकोऽयं यच् च प्रातः
सवनं कियते मखे, वसन्तशरदौ
चर्तुस्तोमोऽनुष्टुप् अथो त्रिष्टुप् ।
गायत्री चैकविंशत च यच् च साम
रथतरम्, साम्या साम च वैराजम्
आप्यात् च वसुभि सह ।

निन्दक

बृहदेवता

१. ८ : अथऽस्य संस्तविका देवा इन्द्रः
सोमो वरुणः पर्जन्य ऋतवः;
आप्तावैष्णवं हविर् न स्व ऋक्
संस्तविकी दशतयीषु विद्यते;
अथापि आप्तापौष्णं हविर् न तु
संस्तवः ।

१. ८ : अथऽस्य कर्म बहनं च हविषो
आवाहनं च देवतानां यच्च च
किं चिद् दार्ष्टिविपयिकम् ।

१. १० : अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं
सवनं ग्रीष्मस् त्रिष्टुप् पञ्चदश-
स्तोमो बृहत् साम ।

१. ११ : हेमन्तः पङ्क्तिस् त्रिणवस्तोमः
शाकरं सामैभ्य् अन्तरिक्षायतनानि

७. १० : अथऽस्य संस्तविका देवा अग्निः
सोमो वरुणः पूषा बृहस्पतिर् ब्रह्मण-
स्पतिः पर्वनः कुर्मो विष्णुर् वायुः ।

७. ११ : बृहस्पतिर् बृहत्ः पाता ।

७. १० : अथऽपि मित्रो वरुणेन संस्तूयते,
पूष्णा रुद्रेण च सोमोऽग्निना
[वायुना] च पूषा, वातेन च
पर्जन्यः ।

१. ११७-१२० : इन्द्रेण च मरुद्भिश्च
सोमेन वरुणेन च पर्जन्येतुभिश्च
चैव विष्णुना चास्य संस्तवः; अस्यै-
वाग्नेस् तु पूष्णा च साम्राज्यं
वरुणेन च ।

देवतान् अर्थतत्त्वज्ञो मन्त्रैः संयोज-
येद् पविः, असंस्तुतस्यापि सतो
हविर् एकं निरुप्यते ।

देवतावाहनं चैव बहनं हविषां तथा
कर्म, दृष्टे च यत् किं चिद् विषये
परिवर्तते ।

१. १३०-१३१ : छन्दस् त्रिष्टुप् च
पङ्क्तिश्च लोकाणां मध्यमश्च यः
एतेष्व् एवाधयो विद्यात् सवनं
मध्यमं च यत् ; ऋतू च ग्रीष्म-
हेमन्तौ यच्च च सामोच्यते बृहत् ;
शाकरीषु च यद् गीतं नाग्ना तत्
सामःशाकरम् ।

२. १ : आह चैवस्य द्वौ स्तोमाव्
आधर्यौ शाकटापनः, यश्च
पञ्चदशो नाग्ना मङ्गयया त्रिणवश्
च यः ।

२. २-३ : संस्तुतश्चैव पूष्णा च
विष्णुना वरुणेन च
सोम-नाग्न्-अग्नि-कुर्मैश्च
ब्रह्मणस्पतिनैव च
बृहत्स्पतिना चैव
नाग्ना यश्चापि पर्वतः ।

२. ४-५ : मित्रश्च भ्रूयते देवो
वरुणेन सहस्रकृत्
रुद्रेण सोमः पूष्णा च,
पुनः पूषा च वायुना
वातेनैव च पर्जन्योः
लक्ष्यतेऽयम् वै क्व चित् ।

निरुक्त

७. १० : अथऽस्य कर्म रसानुप्रदानं,
बृध्रयधो, या च का च बलकृतिः ।
७. २४ : आदित्यररमयः...अमुतोऽ-
र्वाञ्चः पर्यावर्तन्ते ।
७. ११ : असौ लोकस् तृतीयसवनं वर्षा
जगती सप्तदशस्तोमो वैरुपं साम्...
शिशिरोऽतिछन्दस् त्रयस्त्रिंशस्तोमो
रेवतं सामैति शुभकीर्ति ।
७. ११ : चन्द्रमसा वायुना संवत्सरेण
इति संस्तवः ।
७. २३ : अथऽपि वैश्वानरीयो द्वादश-
कपालो भवति...अथऽपि छान्दो-
मिकं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं भवति...
अथापि इविष्णान्तीयं सूक्तं सौर्य-
वैश्वानरं भवति ।
७. १४ : अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्
भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं
नयति संनममानः ।
८. १ : द्विणोदाः कस्मात् ? अनें द्वि-
णम् उत्पद्यते...बलं वा द्विणम्...
तस्य दाता द्विणोदाः ।
८. ५ : निपाद् इत् अन्नन्तरायाः
प्रजाय। नामधेयम् ।

बृहदेवता

२. ६ : रसादानं तु कर्मास्य
बृध्रस्य च निर्वहणम्,
स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य
बलस्य निखिला कृतिः ।
२. ८-९ : सूर्यस्यैव तु पञ्चयः
अमुतोऽर्वाङ् निवर्तन्ते
प्रतिलोमात् तदाध्रया ।
२. १३ : असौ तृतीयं सवनं लोकं,
साम च रेवतम् ;
वैरुपं चैव, पर्यान् च
शिशिरोऽथ ऋतुस् तथा ।
२. १४ : त्रयस्त्रिंशश् च य स्तोमः
बलपया सप्तदशन् च यः
छन्दश् च जगती नाम्ना
तथाति छन्दशन् च याः ।
२. १५-१६ : एतस्यैव तु विज्ञेया देवाः
संस्तविकास् त्रयः ; चन्द्रमाश् चैव
वायुश् च यं च संवत्सरं विद्मः ।
२. १६-१७ : के चित् तु निर्वपन्त्य् अस्य
सौर्यवैश्वानर द्विः
सौर्यवैश्वानरीयं हि
तत् सूक्तम् इव दृश्यते ।
२. २४ : जातो यद् अग्ने भूतानाम्
अग्रणीर् अश्वरे च यत्,
नाम्ना संनयते वाङ्
स्तुतोऽग्निर् इति सूरिभिः ।
२. २४ : द्विणं धत्ते बलं कापि प्रायद्भृ-
येन कर्मणा,
तत् कर्म दृष्ट्वा कुःसत् तु प्रादैनं
दनिनोदसम् ।
२. २७ : अन्नन्तर प्रजाम् भादुर्
नपाद् इति कृपण्ययः ।

निरुक्त

बृहद्देवता

११. ६ : मृत्युर् मारयतीति सतो मृतं व्यावयतीति वा ।
१२. १६ : अथ यद् रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा भवति ।
१२. २५ : केशी, केशा रश्मयस्, तैस् तद्भान् भवति, काशनाद् वा प्रकाशनाद् वा ।
१२. २७ : अथ यद् रश्मिभिर् अभि-प्रकम्पयद् घृति, तद् घृपाकपिर् भवति घृपाकम्पनः ।
१२. १८ : अथ यद् विपितो भवति, तद् विष्णुर् भवति; विष्णुर् विशतेर् वा व्यशनोतेर् वा ।
१. ४ : अथ निपाता उच्चावचेष्व अर्थेषु निपतन्ति : अथ उपमार्थेऽपि कर्मोपसंग्रहार्थेऽपि पदपूरणाः ।
१. ९ : पदपूरणास् ते मिताक्षरेष्व अनर्थकाः कम् ईम् इद् व् इति ।
१. ४ : तेषाम् एते चत्वार उपमार्थे भवन्तीति : इवेति...नेति...चिद् इति...नु इति ।
२. २ : अथ तद्धितसमासेष्व् एकपर्वसु च...प्रविभज्य निर्मयाद् : दण्ड्यः पुरुषो दण्डम् अर्हतीति ।
१. १ : भावप्रधानम् आख्यातम् ।
१. २ : पट् भावधिकारा भवन्तीति वापर्यायेनिरः जायतेऽस्ति, विपरिणमते, वर्धते, स्पृहीयते, विनश्यतीति ।
२. ६० : यत् तु प्रच्यावयन् पृति घोषेण महता मृतम्, तेन मृत्युम् इमं सन्तं स्तीति मृत्युर् इति स्वयम् ।
२. ६३ : पुष्यन् चिति पोषयति प्रशुदन् रश्मिभिस् तमः, तेनैनम् अस्तीति पूषेति ।
२. ६५ : प्रकाशं किरणैः कुर्वन् तेनैनं केशिनं विदुः ।
२. ६७ : घृपाकपिर् असी..... रश्मिभिः कम्पयन्न पृति घृपा चर्षिष्ठ एव सः ।
२. ६९ : विष्णातेर विशतेर् वा स्याद्, वेवेष्टेर् व्याप्तिकर्मणः, विष्णुर् निरुच्यते ।
२. ८९ : उच्चावचेषु चार्थेषु निपाताः समुदाहृताः : कर्मोपसंग्रहार्थे च क चिच् चीपग्यकारणात् ।
२. ९० : मिताक्षरेषु ग्रन्थेषु पूरणार्थास् एव अनर्थकाः ।
२. ९१ : कम् ईम् इद् व् इति विशेषाः । इय न चिन् नु चत्वार उपमार्था भवन्ति ते ।
२. १०६ : समासेष्व् अपि तद्धिते प्रविभज्यैव निर्मयात् : दण्डार्हो दण्ड्य इत्य् अपि ।
२. १२१ : भावप्रधानम् आख्यातं; पट्टिकारा भवन्ति ते : जन्मास्तित्वं परीणामो वृद्धिर् हानं विनाशनम् ।

1 18 1918
1818 1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1918 1918

1 18 1918
1818 1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1 1918 1918 1918
1918 1918 1918 1918

1918 1918

निरुक्त

८. २ : को द्रविणोदाः ? इन्द्र इति श्रौष्टुकिः स बलधनयोर् दातृत्वमः ।
८. २ : बलेन मध्यमानी जायते ।
८. २ : अतिवजोऽत्र द्रविणोदस उच्यन्ते हविषो दातारस्, ते चैनं जनयन्ति : 'ऋषीणां पुत्रः' इत्य् अपि निगमो भवति: (बलेन मध्यमानी जायते) तस्माद् एनम् आह सहस्रम् पुत्रं, सहस्रः भूनुं सहस्रो बहूम् ।
८. २ : अयम् एवातिर् द्रविणोदा इति शकृपृगिर् आग्नेयेष्व् एव हि सूक्तैर् द्रविणोदताः प्रवादा भवन्ति ।
११. १६ : ऋभुर् विन्वा वाज इति सुधन्वन् आङ्गिरसरयत्रयः पुत्रा बभूवुः ।
१. ५ : अगस्त्य इन्द्राय हविर् निरुष्य मरुतयः संप्रदिप्यां चकार ; स इन्द्र एव परिदेवयां चक्रे ।
२. २४ : विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव...स विषं गृहीत्वा विपाट्-सुतुद्रयोः संसंभेदम् आययौ...स विश्वामित्रो नदीस्-तुष्टाव 'गाधा भवत्' इति अपि द्विवद् अपि बहुवद् ।

बृहद्देवता

३. ६१ : पार्थिवो द्रविणोदोऽग्निः पुरस्ताद् यस् तु कीर्तितः, तम् आहुर् इन्द्रं दातृत्वाद् एके तु बलवित्तयोः ।
३. ६२ : जायते च बलेनायं मध्यत् ऋषिभिर् अश्वरे ।
३. ६३-६४ : हवींषि द्रविणम् आहुर् हविषो यत्र जायते : दातारम् चत्विजस् तेषां, द्रविणोदास् तता स्वयम् । 'ऋषीणां पुत्र' इत्य् एषां दृश्यते, 'सहस्रो बहो' ।
३. ६५ : द्रविणोदोऽग्निर् एवायं; द्रविणोदाम् तदोच्यते : आग्नेयेष्व् एव दृश्यन्ते प्रवादा द्रविणोदसः ।
३. ८३ : तुधन्वन आङ्गिरसस्यामन् पुत्रास् त्रयः पुराः ऋभुर् विन्वा च वाजश् च, शिष्यास् त्वष्टुश् च तेषामवन् ।
४. ४८-५० : स [अगस्त्यस्] तान् अभिजगामाशुः निरुष्यैर्द्रं हविस् तदा मरुतश् चाभितुष्टाव सूक्तैस् तन न्व् इति च त्रिभिः तिरसं तद् भविश चेन्द्रं मरुतयो. दातुम् इच्छति : विज्ञायावेप्य तज्ञावम् इन्द्रो नेति तम् अत्रवीत् ।
४. १०६ : पुरोहितः सद् इज्यायै सुदासा सह यद् ऋषिः विपाट्-सुतुद्रयोः सम्भेदं शम् इत्य् एते उवाच ह । प्रवादास्तत्र दृश्यन्ते द्विवद् बहुवद् एकवत् ।

1 Գննելու են իմ արժեքն
են հար և արժեքն
'Գննել լի և արժեքն
'Չի լի արժեքն իմ 326 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ
'Ինքն ինքն իմ
Ինքն ինքն իմ 327 Ե

1 Բնակարան
արժեքն իմ արժեքն
1 Բնակարան իմ
Ինքն ինքն իմ 328 Ե

1 Ինքն
արժեքն իմ արժեքն 329 Ե

1 Ինքն ինքն
արժեքն իմ արժեքն
Ինքն ինքն իմ
'Ինքն ինքն իմ 330 Ե

1 Ինքն ինքն
արժեքն իմ արժեքն 331 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն 332 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն
Ինքն ինքն իմ 333 Ե

1 Ինքն ինքն
արժեքն իմ արժեքն 334 Ե

Ինքն ինքն

1 Ինքն ինքն իմ
'Ինքն ինքն իմ 335 Ե
Ինքն ինքն իմ 336 Ե

1 Ինքն ինքն
արժեքն իմ արժեքն
'Ինքն ինքն իմ
Ինքն ինքն իմ 337 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն 338 Ե
1 Ինքն
արժեքն իմ արժեքն
Ինքն ինքն իմ 339 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն 340 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն 341 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն 342 Ե

1 Ինքն ինքն
արժեքն իմ արժեքն
(Ինքն ինքն իմ
Ինքն ինքն իմ 343 Ե

1 (Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն
Ինքն ինքն իմ արժեքն
Ինքն ինքն իմ 344 Ե

1 Ինքն ինքն իմ
արժեքն իմ արժեքն 345 Ե

Ինքն ինքն

निरुक्त

१२. १४ : सूर्यः सतैर् वा सुवतैर् वा
स्वीयतैर् वा ।
११. ५ : चन्द्रमाश् चायन् द्रमति;
चन्द्रो भाता, चान्द्रं मानम् अरथेति
वा; चन्द्रश् चन्द्रतेः कान्ठिकर्मणः
“चारु द्रमति, चिरं द्रमति चमेर्
वा पूर्वम् ।
२. १० : देवापिश् चाष्टिपेणः शन्तनुश्
च कौरव्यौ भ्रातरौ यभूवतुः । स
शन्तनुः कनीयाद् अभिषेचयां चक्रे ।

देवापिस् तपः प्रतिषेदे । ततः
शन्तनो राज्ये द्वादश वर्षाणि देवो
न वर्षयं । तम् उचुर् ब्राह्मणाः
अधर्मस् त्वया शरितो ज्येष्ठं भ्रात-
रम् अन्तरित्याभिषेचितम्; तस्मात्
ते देवो न वर्षतीति । स शन्तनुर्
देवापि शिशिच्च राज्येन । तम् उवाच
देवापिः पुरोहितस् तेऽसानि याज-
यानि च ख्येति । तस्यैतद् वर्षकाम-
मूक्तम् ।

बृहद्देवता

७. १२८ : सूर्यः सरति मृतेषु सु वीरयति
तानि वा ।
७. १२९ : चारु द्रमति वा चार्यश् चाय-
नीयो द्रमत्य् इतः चमेः पूर्वम्;
समेतानि निर्दिशतिऽथ चन्द्रमाः ।
७. १५९ : आष्टिपेणस् तु देवापिः कौर-
व्यश् चैव शन्तनुः
भ्रातरौ वुरुषु स्व पुत्री
राजपुत्रौ यभूवतुः ।
ज्येष्ठस् तयोस् तु देवापिः
कनीयांश् चैव शन्तनुः ;
त्वद्दोषी राजपुत्रस् तु
ऋष्टिपेणसुतोऽभवत् ।
राज्येन छन्दयाम् आसुः
प्रजाः स्वर्गं गते गुरी ।
स सुहृतेम् इव ध्यात्वा
प्रजास् ताः प्रत्यभापत् ।

६. १ : न राज्यम् अहम् अहामि,
मृपतिर् चोऽस्तु शन्तनुः ।
२ : ततोऽभिषिक्तं कौरव्ये
वनं देवापिर् भाषिषात्
न वर्षयां पञ्चन्यो
राज्ये द्वादश वै समाः;
३ : ततोऽभ्यगच्छद् देवापिं
प्रजाभिः सह शन्तनुः;
प्रसादयाम् आस येन
तस्मिन् धर्मव्यतिक्रमे ।
४ : शिशिच्च चैनं राज्येन प्रजामिः
सहितस् तदा । तम् उवाचाथ
देवापिः प्रह्वं तु प्राञ्जलिस्वितम् :
न राज्यम् अहम् अहामि त्वद्दोष-
पहतेन्द्रियः याजयिष्यामि ते राजन्
बुष्टिकामेऽथवा स्वयम् ।

1 Եղիշէ եռնջարեան
 Երայիս ե լոնէ Երև
 'Մոսյէ ե Լոսյ Լճոս
 Յին Երևանի Լճոս շիտ
 Երան ե Երև Երե
 Ե Լճոս ե Լճիհիլիս
 'Երայիսիս Լճոս
 Ե Լճիհիլիս Երայիս
 'Երայիսիս Երայիս
 'Լճի Երայիս Լճիհիլիս
 'Երայիս Երայիսիս

Երան Լճի Լճիս,
 Եր Լճի Լճիհիլիս 07 7
 Երայիս Երայիսիս Լճի 0

1 (Լճոս
 Երան Լճիհիլիսիս Եր
 Լճիս Եր Երայիս Լճիս
 'Ե Ե 'Երայիսիս Եր Եր)

1 Լճոս Երան 'Լճոս
 Երայիսիսիս 'Երայիս Ե
 Լճիս Լճի Լճոս Երան Եր Ե

Լճիհիլիս

Երայիսիսիս 'Ե

1 Եղիշէ եռնջարեան
 Երայիս ե լոնէ Երև
 Մոսյէ ե Լոսյ Լճոս
 Յին Երևանի Լճոս շիտ
 'Երան ե Երև Երե
 Ե Լճոս ե Լճիհիլիս
 'Երայիսիս Լճոս
 Ե Լճիհիլիս Երայիս
 'Երայիսիս Երայիս
 'Լճի Երայիս Լճիհիլիս
 'Երայիս Երայիսիս

1 Երան Լճի Լճիս,
 Եր Լճի Լճիհիլիս Լճի 06
 1 Երայիս Երայիսիս Լճի 06

1 Եր Եր Երան Լճիս Լճիսիս
 Լճիսիս Եր Երան Լճի Ե 06
 1 Լճոս Լճի Երայիս
 Լճի Լճիս Երայիս Ե Ե

1 Երայիսիս Լճոս
 Լճիս Եր Երայիս
 'Եր Լճոս Լճոս
 Երայիս Եր Երայիս Ե Ե
 Երայիսիսիս

1 Եր Լճիս Ե Լճի Լճիս
 Լճիս Լճիս Լճիս Ե Երայիս
 Լճիս Երայիս Երայիս Լճիս Ե Ե

Լճիսիս

1 Երայիս Երայիսիս
 Լճիս Լճիս Ե Լճիս Ե
 Լճիս Երայիս Երայիս Լճիս Ե Ե

Երայիս

४. अनुयाकानुक्रमणी

अनुयाकानुक्रमणी

अनुव् २१ : गीतमाद् औशिजः,
कुम्भः परल्लेपाद् ऋपेः परः
कुम्भाद् दीर्घतमा इत्य् एप्
तु याक्लकः क्रमः

बृहद्देवता

३. १२५ : गीतमाद् औशिजः, कुम्भः
परल्लेपाद् ऋपेः परः;
कुम्भाद् दीर्घतमाः शश्वत्
ते द्वे एवम् अधीयते ।

५. ऋग्विधान

ऋग्विधान

१. १, १ : नमस्कृत्वा मन्त्रद्वयः
१. १, २ : समाश्रायानुपूर्वशः
३. ८, ६ : दशाक्षरं तु शान्त्यर्थम्
३. २२, ३ : सूर्यायै भाववृत्तं तु
४. १, ५ : बृहस्पते प्रतीर्य् एतद्
४. २४, २ : यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्व-
पापापनोदनः, तथाघमर्पणे सूक्तं
सर्वपापापनोदनम् ।

बृहद्देवता

१. १ : मन्त्रद्वयौ नमस्कृत्वा
समाश्रायानुपूर्वशः
७. २१ : दशाक्षरं तु शान्त्यर्थम् ।
७. १२३ : सूर्यायै भाववृत्तं तु ।
८ ७ : बृहस्पते प्रतीर्य् एतद्
८. ९२-९३ : यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्व-
रिप्रप्रणोदनः तथाघमर्पणं ब्रह्म सर्व-
रिप्रप्रणोदनम् ।

६. सर्वानुक्रमणी

सर्वानुक्रमणी

१. ३ : एताः प्रउगदेवताः
१. ४ : सुरूपकृत्नुं (दश) ऐन्द्रम्
१. १२ : पादो द्विद्विदेवतो निर्मथ्याह-
वनीयी
१. १३ : इति प्रत्यञ्चं देवताः
१. १४ : ऐभिर् वैश्वदेवम्

बृहद्देवता

२. १३५ : एताः प्रउगदेवताः
२. १३९ : सुरूपकृत्नुम् हर्य् ऐन्द्रम् ।
२. १४५ : पादस् तत्र द्विदेवतः निर्म-
थ्याहवनीयार्थी ।
२. १४६ : प्रत्यञ्चं यास् तु देवताः ।
३. ३३ : आग्नेयं सूक्तम् ऐभिर् यद्
वैश्वदेवम् ।

सर्वानुक्रमणी

बृहद्देवता

१ १६४ गौरीर् इति एतद्-न्त वैश्व देवम् ।	४ ४२ गौरीर-न्त वैश्वदेवम् ।
१ १६४ इन्द्र मित्र सौर्या वान्त्या सरस्वते सूर्याय वा ।	४ ४२ इन्द्र मित्रमित्रे सौर्या, सौरी वान्त्या सरस्वते ।
१ १६५ अयुजो मरुताम् ।	४ ४४ मरुताम् अयुज ।
१ १०९ मल्लचार्यन्त्ये अपरयत् ।	४ ५२ मल्लचार्युत्तमे जयी ।
१ १९० जनर्षाण्य चार्हस्प यम् ।	४ ६३ बृहस्पतेर् जनर्षाण्यम् ।
२ २९ एतन्नता वैश्वदेवम् ।	४ ८४ एतन्नता वैश्वदेवम् ।
२ ३१ द्वे द्वे राका-सिनीवारयो ।	४ ८७ द्वे द्वे राका सिनीवारयो ।
३ २, ४ वैश्वानरीय तु समिस्तमिद् जाप्रिय ।	४ ९६ वैश्वानरीये समित् समिद् भाष्य ।
३ २० अग्निम् उपसम् (जाचान्त्ये) वश्वदेव्यौ ।	४ १०४ अग्निम् उपस वैश्वदेवी ।
३ ५३ अभिशापास तावसिष्टद्वेषिण्य, न वसिष्ठा शृण्वन्ति ।	४ ११७, ११८, ११९ वसिष्टद्वेषिण्य स्मृता, अभिशापा इति स्मृता, वासिष्ठास् ता न शृण्वन्ति ।
३ ५८ ५९, ६० धेनुर् मित्र इहेह व ।	४ १२२ धेनुर् मित्र इहेह व
४ १३ लिङ्गोक्तदैवतं त्व् एके ।	४ १२९ लिङ्गोक्तदैवते सूक्ते, एके ।
४ १५ ऋषिर् बोधद् इत्य् आभ्या सोमक साहदेव्यम् अभ्यवदत् ।	४ १२३ ऋषिर् बोधद् इति द्वाभ्यां स्तौति सोमकम् एव तु ।
४ १५ पराभ्याम् अस्याश्विनी ।	४ १३० पराभ्याम् अश्विनी स्तुतो,
४ ५३, ५५-५७ तत् सावित्र तु को वैश्वदेवम् मही द्यावापृथि- वीय, क्षेत्रस्य तिस्र क्षेत्रपत्या ।	५ ७ तत् सावित्रे इ तु, को वैश्वदेवम्, ५ ७ मही द्यावापृथिवीय पर तु यत्, ५ ७ क्षेत्रस्येति तिस्रस् तु क्षेत्रपत्या ।
४ ५८ सौर्यं वाप वा गन्ध वा धृत स्तुतिर् वा ।	५ ११ अपा स्तुति वा यदि वा धृत- स्तुतिं गन्धम् एके सौर्यम् एतद् वदन्ति ।

सर्वानुकामणी

बृहदेवता

५. २७ : नारदात्मने दद्यात् ।
 ५. ६१ : वैददधी तरन्त-पुरुमीळ्ही ।
 ५. ८५ : प्र सत्रात्रे वाहगम् ।
 ५. ८६ : इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्रम् ।
 ५. ८७ : प्र वो मारुतम् ।
 ६. ४८ : अन्त्या धावाभूम्योर् वा धृभेर् वा
 ६. ६८ : भ्रुष्टी याम् ऐन्द्रावरुणम् ।
 ६. ६९ : सं वाम् ऐन्द्रावैष्णवम् ।
 १. १६६ : मित्रावरुणयोर् वीहितयोर्
 उर्वशीम् अप्सरसं इष्ट्वा वासतीवरे
 कुम्भे रेतोऽपतत् ।
 ७. ६० : यद् अय सौर्य आद्या ।
 ७. ६२ : उद् सूर्यः तिष्ठः सौर्यः ।
 ७. ६३ : उद् वेतीति चार्धपञ्चमाः ।
 ७. ६६ : चतुरर्थाद्या दशादित्याम्, तिष्ठः
 सौर्यः ।
 ७. ९९ : उरुम् इत्य् ऐन्द्रवशं च तिष्ठः ।
 ७. ९७ : यज्ञे ऐन्द्रवादि अन्वैन्द्री च
 तृतीयानवःवाक् ऐन्द्रावाङ्गणरपाये ।
 ७. १०४ : ऐन्द्रासोमं राषोक्षम् ।
 ७. १०४ : प्र वर्तयेति पञ्चैन्द्रवः मा नो
 रथ इत्य् अर्षेर् आग्रमन आशीः ।

५. ३२ : आत्मा हि नारमने दद्यात्
 ५. ६९ : तरन्त-पुरुमीळ्ही तु राजानौ
 वैददधी ऋषी ।
 ५. ८९ : वाहगं तु प्र सत्रात्रे
 इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्रम् उत्तरम् ।
 ५. ९० : विष्णुन्यङ्गं परं प्रेति मारुतम् ।
 ५. ११४ : अन्त्या शुम्भोः कीर्तना
 प्रभये वा ।
 ५. १२१ : भ्रुष्टीति चैन्द्रावरुणम् ।
 ५. १२१ : सम् ऐन्द्रावैष्णवं परम् ।
 ५. १४९ : तयोर् आदित्योः सत्रे इष्ट्वा-
 प्सरसम् उर्वशी रेतश् चत्कन्दः
 तद् कुम्भे न्यपतद् वासतीवरे ।
 ६. ५ : यद् अर्धकोत् सूर्यसु तिस्र उद्
 वेतीत्य् अर्धपञ्चमाः सौर्यः ।
 ६. ८ : यद् अद्य सूर इत्य् आद्या दशा-
 दित्याः ऋषः स्मृताः ।
 ६. ९ : स्तुता उद् उ ख्यद् इत्य् एताम्
 तिस्र सौर्यम् ततः पराः ।
 ६. ९५ : उरुम् ऐन्द्रवशं च तिष्ठः स्युः
 ६. ९६ : यज्ञ आद्येन्द्रम् एवास्तौत्,
 अन्त्या त्व् इन्द्रावृहस्पती ।
 ६. ९७ : तृतीया नवमी चैव
 तृतीतीन्द्राप्रहणस्पती ।
 ६. १०४ : ऐन्द्रासोमं परं तु यत् ।
 ६. १०४ : ऋषिर् ददर्श राषोक्षम् ।
 ६. ११ प्र वर्तयेति पञ्चैन्द्रवः
 ५. ३१ : ऋषिसु त्व् आशिपम् आशास्ते
 ५. ३१ : मा नो रथ इति त्व् अर्चि ।

सर्वाधिकमणी

बृहद्देवता

८. ५ : अन्त्याः पञ्चार्धर्षाद् वेपथस्य कशोर दानस्तुतिः ।
८. ४६ : प्रगाथी च वायव्यी ।
८. ४७ : अन्त्याः पञ्चोपसेऽपि ।
८. ६८ : ऋक्षाश्वमेधयोर् दानस्तुतिः ।
८. ७२ : हविषां स्तुतिर् वा ।
८. १०० : अयं ते...नेमो भार्गवः ।
८. १०१ : वायव्ये सौर्यो...उपस्था ।
९. ६७ : सावित्र्य् आग्निस्सावित्री वैश्वदेवी
१०. १७ : द्वे सरण्युदेवते ।
१०. १९ : अग्नीपोमीयो द्वितीयोऽर्धर्चः ।
१०. २५, २६ : भद्रम्...सौर्यं, प्र हि...पौष्णम् ।
१०. ३३ : द्वे कुरुभ्रवणस्य प्राप्तदशवस्य दानस्तुतिः...मृते मित्रातिथौ राज्ञि तस्नेहाद् ऋषिर् ।
उपमश्रवसं पुत्रम् अश्व व्यशोकयत्
१०. ४७ : विकुण्ठा नामासुरी, इन्द्रतुष्यं पुत्रम् इन्द्रन्ती, महत् तपस् तेपे, तस्याः स्वयम् एवेन्द्रः पुत्रो जज्ञे । स सप्तगुस्तुतिहोष्ट आत्मानम् उत्तरेस् त्रिभिस् तुष्टाव ।
६. ४५ : इत्य् अर्धर्षो हृचद् चान्य- कशोर दानस्तुतिः स्मृता ।
६. ८० : आ नः प्रगाथी वायव्यी ।
६. ८३ : अन्त्याः पञ्चोपसेऽपि स्युः
६. ९२ : ऋक्षाश्वमेधयोर् अत्र पञ्च दान- स्तुतिः पराः ।
६. ९३ : अथवा सूक्तम् उत्तरं हविषां स्तुतिः ।
६. ११७ : नेमोऽयम् इति भार्गवः ।
६. १२६ : वायव्ये सौर्यं उपस्था ।
६. १३२ : उभाभ्याम् इति सावित्री आग्निस्सावित्र्य् ऋग् उत्तरा ।
६. १३३ : पुनन्तु मा वैश्वदेवी ।
७. ७ : सरण्युदेवते द्वे ।
७. २० : अर्धर्चः प्रथमायास् तु अग्नीपोमीय उत्तरः ।
७. २३ : भद्र सौर्यं, प्र हि पौष्णम् ।
७. ३५ : कुरु भ्रवणम् अर्चतः परे द्वे प्राश- दस्यवम् । मृते मित्रातिथौ राज्ञि तत्रपातम् ऋषिः परैः ।
७. ३६ : उपमश्रवसं 'शस्य' ऋषिभिः स व्यशोकयत् ।
७. ४९ : प्राजापरयासुरी त्व् आसीद् विकुण्ठानाम नामतः ; सेङ्गन्तीन्द्रसम् पुत्रं तेपेऽथसुमहत् तपः ।
७. ५० : तस्यां चेन्द्र स्वय जज्ञे ।
७. ५७ : सप्तगुस्तुतिहोषितः आत्मानम् एव तुष्टाव अहं भुवम् इति त्रिभिः ।

सर्वाङ्कमणी

गृहदेवता .

१०. ५० : वषट्कारेण वृकगेषु आतृषु
शौचाङ्कौऽग्निर् अपः प्रविश्य ।

१०. ५६ : द्वैपदे त्व अत्रिमण्डले ।

१०. ५६ : पेषवाकौ राजासमातिः ।

१०. ५६ : गन्धादीन् पुरोहितास्
त्यक्त्वा ।

१०. ५६ : अन्वौ मायाविनौ श्रेष्ठतमौ
मत्वा पुरोदधे... ।

१०. ५६ : आतरम् अयः मा प्र गामेति...
रवस्त्ययनं जप्त्वा यन् ते यमम्
इति...मन आवर्तनं त्रेषु ।

१०. ६० : आ जनम् इति...चतसृभिर्
असमातिम् अस्तुवन् ।

१०. ६० : अगस्त्यस्य स्वस्ता मातेषां
राजानम् अस्तीत् (तु० की०
आर्षानुक्रमणी १०. २४) ।

१०. ६० : सुयन्धोर् जीवम् आह्वयन् ।

१०. ६० : तम् अन्वयता लब्धसंज्ञम्
अस्पृशन् ।

१०. ६२ : पळ अद्विरसां स्तुतिः ।

१०. ७१ : गृहस्पतिर् ज्ञानं तुष्टाव ।

१०. ८१ : य इमाः...वैश्वकर्मणम् ।

१०. ९८ : अष्टिपेजो देवापिः (तु० की०
आर्षानुक्रमणी १०. ४५) ।

७. ६१ : वषट्कारेण वृकगेषु आतृषु ।

७. ६२ : मीचीकांऽग्निर् इति ध्रुतिः

७. ६२ : स प्राविशद् अपकम्प्य ।

७. ६२ : ऋतून् अयो वनस्पतीन् ।

७. ८६ : द्वैपदा येऽत्रिमण्डले ।

७. ८५ : राजान्मसानिर् पेषवाकुः ।

७. ८५ : पुरोहितान् ।

७. ८६ : व्युत्स्य वन्दु प्रभृतीन् ।

७. ८६ : ततो मायाविनौ द्विजौ ।

७. ८७ : अममाति. पुरोऽधत्तः

परिष्टी तौ हि मन्थते ।

७. ८९ : आतरस् अयः ।

७. ९० : त्रेषुः स्वस्त्ययनं सर्वं मेति
गौषायनाः सदाः; मन-अवर्तनं तस्य
सूक्तं यद् इति तेष्वयुः ।

७. ९६ : ऋग्भिर् ऐति चतसृभिस्
तत पेषवाकुम् अस्तुवन् ।

७. ९७ : अगस्त्यस्येति माता च
तेषां तुष्टाव तं नृपम् ।

७. १०० : सुयन्धोर् अस्तुम् आह्वयन् ।

७. १०२ : लब्धासुं चायन् इत्य अस्यां
पृथक् पाणिभिर् अस्पृशन् ।

७. १०२ : पळ...अद्विरसां स्तुतिः ।

७. १०९ : नञ् ज्ञानम् अभितुष्टाव
सूक्तेनाय गृहस्पतिः ।

७. ११० : य इमा वैश्वकर्मणे ।

७. १५५ : आष्टिपेगस तु देवापिः

सर्वानुक्रमणी	बृहदेवता
१० १०१ उद्बुध्यध्व ऋत्विक् स्तुति ।	८ १० उद् इत्य ऋत्विक्स्तुति परम् ।
१० १०३ आशु ऐन्द्रोऽप्रतिरथन् चतुर्थी बाह्रपत्या ।	८ १३ ऐन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ । ८ १४ चतुर्थी बाह्रपत्या स्यात् ।
१० १०७ दक्षिणा वा प्राजापत्या ।	८ २२ प्राजापत्याथ दक्षिणा । (आर्षो १० ५० 'प्राजापत्या दक्षिणा वा')
१० १०९ तेऽबदन् जुहूर् ब्रह्मजाया वैश्वदेवम् ।	८ ३६ तेऽबदन् वैश्वदेव तु ब्रह्मजाया जुहूर् जगौ ।
१० १२४ अग्निवरुणसोमानाम् ।	८ ४१ वरुणेन्द्राग्निस्तोमानाम् ।
१० १३२ इंजान मैत्रावरुणम् ।	८ ४७ मैत्रावरुणम् इंजानम् ।
१० १५५ अरायि अलक्ष्मीघ्नम् ।	८ ६० यद् अरायित्य् अलक्ष्मीघ्नम् ।
१० १५७ इमा नु क वैश्वदेवम् ।	८ ६१ वैश्वदेवम् इमा नु कम् ।
१० १६४ अपेहि दु स्वप्रणम् ।	८ ६७ दु स्वप्रणम् अपेहीति ।
१० १६६ ऋषभम् सपत्नम् ।	८ ६९ ऋषभ ना सपत्नम् ।
१० १७०, १७१ विभ्राट् सौर्यं त्व त्यम् ।	८ ७३ विभ्राट् सौर्यं त्व त्यम् ।
सर्वानुक्रमणी, भूमिका २ ७ अर्थेऽसव ऋषयो देवतान् छन्दो भिर् अभ्यधावन् ।	८ १३७ अर्थेऽसव खल्व् ऋषयन् छन्दोभिर् देवता पुरा अभ्यधावन् ।

७. कात्यायन : वाजसनेयि संहिता की सर्वानुक्रमणी

वृद्धदेवता

वासं० सर्वानुक्रमणी

- १० : सर्वा ऋच आग्नेय्यः ।
सामानि सौराणि
सर्वाणि ब्राह्मणानि च
देवताम् अविज्ञाय यो जुहोति
देवतास् तस्य हविर् न जुपन्ते ।
संन्यस्य मनसि देवतां हविर् ह्वयते ।

स्वाध्यायम् अपि योऽधीते मन्त्र-
दैवतज्ञः, सोऽमुष्मिन् लोके देवैर्
अपीड्यते ।

तस्माच्च च देवता वेद्या
मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः
मन्त्राणां देवताज्ञानान्
मन्त्रार्थम् अधिगच्छति ।

न हि कश्चिद् अविज्ञाय
याथातथ्येन देवताः
श्रीतानां कर्मणां विप्रः
स्मार्तानां चाभ्युते फलम् ।

८. ११० : समस्ता ऋच आग्नेय्यो
वायव्यानि यजूषि च;
सौर्याणि चैव सामानि
सर्वाणि ब्राह्मणानि च ।
८. १३१ : जुपन्ते देवतास् तस्य
हविर् नादेवताविदः ।
८. १३२ : अविज्ञानप्रदिष्टं हि हविर्
नेहेत दैवतम् । तस्मान् मनसि
संन्यस्य देवतां जुहुयाद् धृषिः ।
७. १३३ : स्वाध्यायम् अपि योऽधीते
मन्त्रदैवतविच् छुषिः । स सप्रसद्
इव स्वर्गं सप्रसन्निर् अपीड्यते ।
१. २ : वेदितव्यं दैवतं हि
मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां
तदर्थम् भवगच्छति ।
१. ४ : न हि कश्चिद् अविज्ञाय
याथातथ्येन दैवतं
लौक्यानां वैदिकानां वा
कर्मणां फलम् अभ्युते ।

८. भगवद्गीता

वृद्धदेवता

भगवद्गीता

८. १७ : सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् यद्
प्रसूणो विदुः ।
(पद्गुरुशिष्यः, 'सहस्रयुगपर्य-
न्तम् अहर् यद् प्रसूम् उच्यते) ।

८. १८ : सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् प्र
स राष्यते ।

९. हेमचन्द्र : अभिधानचिन्तामणि

अभिधानचिन्तामणि

बृहद्देवता

वॉटलिङ्ग सस्करण का अन्तिम
श्लोक ।

इयन्त इति सस्वयान निपाताना न
विद्यते प्रयोजनवशाद् एते
निपात्यन्ते पदे पदे ।

२ ९३ इयन्त इति सस्वयान निपाता
ना न विद्यते वशाद् प्रकरणस्यैत
निपात्यन्ते पदे पदे ।

परिशिष्ट-७

संस्कृत शब्दों और नामों की अनुक्रमणिका

अ, अ. ८२; प. १४६, ७. ११४

शुभती, अ. ११०

अस, अ. २२

अकर्मक, १. ३१

अकस्मात्, अ. १५

अक्ष, १. ११०; ७. ३७

अक्षय, अ. ५५; ७. ६०

अक्षर, १. ६२

अक्ष संस्तुति, १. ५२

अक्ष-स्तुति, ७. ३६

अखिल, अ. १२, ८९, १२४

अग्रस्य, २. ८२, १३१, १५६; ३. ५५,

१२८; ४. ४७, ५१, ५३, ५८, ६१,

६४; ५. १५०, १५२

अग्रायी, १. ११२; २. ७५, ३. ६, ९२

अग्नि, १. ५, ६९, ८२, ८६, ९७, ११८,

१२६; २. २, २२, २४, २७, ३७,

१२४; ३. ३७, ८९; (तापस) ३. ५८;

(त्रयः) ६. १६०

अग्नि देवत, ३. ९७

अग्नि-दैवत, २. १४५

अग्नि-धान, ८. ६८

अग्नि-भूत, १. ६४, ६७

अग्नि-वायु-विष्वक्त्, बहु०, अ. ३७

अग्नि-सूर्य अनिल, बहु०, अ. ५०

अग्नि इन्द्र-सूर्य, बहु०, २. ७०

अग्रोपोमीय, ७. २०

अग्रणी, २. २४

अग्र-सर, ६. ५२

अग्रय, २. ७७

अग्र-मर्षण, ८. ९१; ८. ९३

अग्र्या, १. १२८; २. ७८; ८. १२५

अग्र, ३. १३५, अ. ११६; ७. ७७

अङ्ग-देश, अ. २४

अङ्ग राज-गृह, अ. २४

अङ्गार, प. ९९, १०२

अङ्गिरस, ३. ११५; ५. ९९, १०३; १.

१२७; अ. ९८, अ. १५६, १५७, ७.

१०२; ८. १२६

अज एकपाद, २. ११

अज, अ. १४१

अजाविक, ३. १४७, प. ६४

अजि, अङ्घ्रि धातु, ३. ९

अजि-अनन्ती, ३. २

अजिन-कर्मन्, ७. १२

अजन्ति-सूक्त, ३. २८

अजिष्ठ, २. ३२

अणु, ८. १४०

अण्ड-ज, ८. ११५

अतिक्रम, प. ७०

अतिगम, २. ४९, ५०, ५५

अतिद्वन्द्वस, २. १४; ८. १०८

अनिरिक्त, २. १००

अतिम्बार, १. ११३, ११६

अतिस्वार्य, ८. १२०

अत्यद्भुत, (कर्मन्) ६. २४

अत्यय, २. ६४

अत्रि, २. ३६, १२२, १५६; ५. २९, ३१,

५०, ६४, ६५, १०१; बहु०, अ. ९८

प. १२, १३, २८; ७. ९८ (=

मण्डल ५)

अत्रि-मुच, प. ५२, ५७

अत्रि-मण्डल, ७. ८६

अत्रि-सरतय, ६. ७२

अत्रि-मुच, ६. ९९

अथर्ववेद, २. १२; ३. १८, १२१; बहु०,
 अथर्वानां: १. १२; ६. १५६; ८.
 १२५
 अथर्वान्तरस = अथर्ववेद, २. १४३; बहु०
 (मन्त्राः) ५. १६
 अदन्तक, ४. १३९
 अदर्शन, ५. ६५
 अदस्, (दिव्य); असौ (भूमि), ५.
 ४८; ७. १४२; अमुम् (लोकम्)
 ३. १३
 अदिति, १. १२४; २. ४५, ७६, ८२; ३.
 ५७, १२३; ४. ९८; ५. १४४, १४६;
 ७. १०४, ११४; ८. १२५; अदितेः
 सुताः ६. ८९
 अहुर्वल, ५. ५०
 अहरय, ५. १५६
 अहृष्ट आरुय, ४. ६४
 अदेवता-विद्, ८. १३१
 अद्मुत, ४. ५०
 अद्यन्तन, ४. ५०
 अधर्षणीय, ५. १२०
 अधि, ३. १३
 अधिप, बहु० (त्रयः), ४. ४१
 अधिवासस्, ४. ३०
 अधीयान, २. २१; ६. १४२
 अध्वयन, २. १४२
 अध्वर्ध, ३. ९७
 अध्व्यापयत्, २. २१
 अध्व्यापित, ५. ५३
 अध्व्येयज, ५. ३०
 अध्वन्, ३. १४२
 अध्वर, २. २४; ३. २, ३, ६२; ७. ७३
 अध्वर्यु, ७. ७०
 अन्वृद्, ३. ५०, ७९; ४. ११६
 अन्वध, ४. १५
 अनपायिन्, ६. ५५
 अनर्थ, ६. ११३
 अनर्थक, २. ९१

अनर्थ-विद्, ७. १११
 अनरुपशस्, २. ९२
 अनरुगम, २. १०८, ११५
 अनरुघाङ्गी, ६. १०४
 अनस्, ४. ११६
 अनसूयु, ६. १४२
 अनागत, ७. ३०
 अनागास्, ४. ६०
 अनाघार, ८. १३९
 अनावृष्टि, ६. १३७
 अनिसुक्, ४. २८
 अनिरुक्, ७. १६
 अनिरुक्-सूक्तवि, ८. १५
 अनिल, ७. २८; एक ऋषि, ८. ७१
 अनु, २. ९५
 अनुकम्पार्थे, ८. ८५
 अनुकीर्तयत्, २. २१
 अनुकीर्तित, ४. २८
 अनुकम, १. ७९, ८५
 अनुकमतस्, १. ४६
 अनुकान्त, ८. १२९
 अनुग, ३. १३
 अनुगद्यत्, ३. १३१
 अनुज्ञा, ६. ३५
 अनुपदिष्ट (कर्मन्), ३. ४९
 अनुपानीया, ५. ११०
 अनुपूर्वशास्, ५. १७३; ८. ४१
 अनुमत, ५. ६३
 अनुमति, १. १२९; २. ७८; ४. ८८;
 ८. ७०
 अनुमन्त्रण, ५. ८६; ८. ६९, ७३, ८०
 अनुपान, ७. ७४; ८. १०३
 अनुयोग, १. ३६५२
 अनुराग, ७. १४८
 अनुवाक, ६. १४६
 अनुज्ञासन, ७. १३४
 अनुष्टुभ्, १. ११५; ८. १०५
 अन्वृषि, ५. ५८, ५९; ८. १२९

बृहद्देवता : परिशिष्ट ७

- अनेक, २. ११२
 अनेकधा, ३. ४४
 अनेकार्थ, २. १०८
 अनेकार्थक, २. ९१
 अन्त, ५. १७१; ३. ४९, ५२; ६. १०१,
 १४४
 अन्तःपरिधि, ७. ९८
 अन्त-काल, २. ५३
 अन्ततस्, ८. २१
 अन्तर, २. ९५
 अन्तर, ६. १२३
 अन्तरिक्ष, २. ३३, ५८; ५. १६६
 अन्तारस, २. ४२
 अन्तिक, ६. १२२
 अमय (कर्मन्), ७. १०; (मण्डल)
 ३. ११६
 अम्य-कर्मन्, ७. १५
 अम्य, ४. १२६; ७. ७९
 अम्यता, ४. १५
 अम्य, १. ८४; २. ४०; ३. ५; ८. ४०
 अम्य-काम, ३. ३२
 अम्याद, ६. १५१
 अन्याया, ८. १२९
 अन्य-देवाय, २. १२६
 अन्य-देश, ५. १६
 अन्य-देवत, १. १८
 अन्योन्य-योनि-ता, १. ७१
 अन्विध्यन्ती, ८. २७
 अप्, बहु०, आपः, १. ८३, ११२; २. ७३;
 अपः २. ५९; ७. ६२; अपाम् २.
 ५५, ५६; ३. ९०; ४. ६३; ५. १७५;
 ६. १००, १०१; ७. ९, २०, ३३
 अप्रथः ३. २४; अप्सु ५. १५४
 अपक्रमन, ५. १०
 अपक्रम्य, ४. १०९; ७. ६२
 अपक्रान्त, ५. ३
 अपनुत्ति, ३. ११४; ६. १५३
 अपनोदन, ७. ९१
 अपर, ८. ७५
 अपराध, ५. ८२, ८३
 अपरयत्, -न्ती, ५. ७४
 अपहत, ६. १०६
 अपहृत्य, ५. १२
 अपहृत्य, ७. १८
 अपहृत्य, १. ३८, ५६, ५७
 अपाक्रिया, ७. ६०
 अपां नपात्, १. १२४; ७. ५३; ८. १२७
 अपाला, २. ८२; ६. ९९
 अपूप, ६. १०३
 अप्रगृह्य, ४. १४४
 अप्रतिरथ (रेन्द्र), ८. १३
 अप्राप्य, ७. १५२
 अप्वा, १. ११२; २. ७४; ८. १३
 अप्सरस्, ५. १४९; ७. १४७, घृणु० १.
 २१; ७. ७१; ८. ११४
 अप्युवत्, ३. ८२
 अव-देवत, ७. १०
 अव-देवत, ८. ५०
 अवि, ७. ८७, ९७
 अविपात, ७. ८८
 अविचारक, -रिका, ४. ११८
 अभितप्य, ६. १२१
 अभिधान, ३. ७७; ५. १५४; ७. ९५
 अभिधायक, ५. ९४, ९५
 अभिनिर्दिश्य, ७. १०१
 अभिमान, ६. ६०
 अभिरूप, ७. १५१
 अभिज्ञाप, १. ५८; ४. ११८
 अभिषिक्त (राजन्), ८. २, ७३
 अभिष्टव, १. ३९
 अभिसंभित, १. ४४
 अभिसम्बन्ध, ६. ९६
 अभिहत, ७. ८४
 अभीष्टव, -न्ती, ६. १५४
 अभीष्टु, १. ११०
 अभ्यावर्तिन्, ५. १२४, १२८, १३९

अभ्यूह, २ १५२
 अभ्यत्य, ४ १२२
 अभति, ४ ११४
 अभितौञस, ७ ५५
 अभु, देखिये अदस्
 अभुतस, २ ९, ३ १, ५ २
 अभुज, २ १९
 अभृत, १ ८१
 अभृत्, ३ ८५, ७ १०९, ८, १४०
 अभृत्त्व, ३ ८८
 अभ्वर, २ ३५
 अभ्वर गर्भ ओघ, २ ५६
 अभ्वर ज, २ ३६
 अभ्वा, ५ ५८
 अभ्यम. देखिये इदम्
 अभ्युज्, ४ ४४
 अभ्युज, ८ २६
 अभ्युत्, ५ ३०, ६ ६१
 अभ्योमुखी, ५ १३३
 अरण्य, ५ ६७
 अरण्य गोचर, ३ १४२
 अरण्याती, १ ११२, २ ७४, ८ ५७
 अरिष्टनेमि, २ ५७
 अरिष्टि, ४ ७२, ७ ७३
 अरि सेना, ६ ११२
 अरुण, ७ १४५
 अरुण, -णी (गाव), ४ १४१
 √अर्च = अर्चति, ३ ५१, ७ २५, १२३,
 १२४, १४६, ८ १५, अर्चत, ७ ३५,
 अर्चन्ति, ३ ४८, आर्चन्, ८ ५८,
 आचयत्, ४ १
 अचनानस्, ५ ५१, ५२, ५३, ७९
 अचि, १ ९४, ५ ९९
 अध १ ६, २ ९९, १०२, ११४ ११५,
 ११७, ११८, ४ १, ६ १०१, ७
 १४३ अर्थाय ४ १३०, ७ १०४,
 अर्थे ६ १००
 अध तत्त्व ज्ञ, १ ११८

अर्थतस्, १ १०
 अधय, १ ९
 अर्थ वश, २ ९९
 अर्थ वाद, ३ ५३, १०४
 अर्थ विवेक, २ ११८
 अर्थ-सञ्चार, ४ ५१
 अर्थ सूक्त, १ १५
 अर्थिन्, ३ ९६
 अर्थेष्णु, ८ १३७
 अध, ३ १२६, अध (= मध्य) ४ १३४
 अध पञ्चम, ६ ५
 अधर्च, २ ५, १७, १३३, १४०, ३ ७८,
 ११२, ११४, १२७, ४ ६, ५, ४२
 अधर्ष्टिम्, ३ ९७
 अधुर्द, ७ १४६
 अयमन्, ५ १४७, ६ ८, ७ ११४, ८
 १२७
 अर्वाञ्च, २ ९
 √अह, ५ ५९, १५९, ६ ६१, ६२, ७
 १३४, ८ १, ५
 अलक्ष्मी ज्ञ, ८ ६०
 अलक्ष्म्य अपनुद, ५ ९१
 अल्पशस्, ४ १४३
 अल्प स्तव, ४ ४३
 अक्षका, ७ ७९
 अवत्सार, २. १२९, ३ ५७
 अवमुच्य, ५ ७२
 अवयव, १. ७४, २ १०३
 अविज्ञात, २ ११४
 अविज्ञान, ७ २
 अविज्ञान प्रादृष्ट, ८ १३२
 अविदित्वा, ८ १३६
 अविशेष्य, १ २०
 अवच्य, ८ २०
 अव्यक्त वर्ण, ३ ९
 अव्यय, १ ४५, ३, ३०
 अव्ययीभाव, २ १०५
 √अश् अश्नुते, ३ १६, ७२, ६ १४३,

अरनुवाते, ७. १२७
 अरलीक, ६. १५३
 अर, १. ८४, १०९; ४. २७; ५. १२३,
 १३१; बहु० ४. १४०, १४२
 १. अधमेध, ८. ९२
 २. अधमेध, ५. १३, २१, ८३; ६. ९२
 अध-रश्मि, ५. १४
 अध-स्फिणी, ७. ३
 अध-शत, ५. ८०
 अध-संस्तुति, ३. ५१
 अधा, ७. १
 अधावली, १. १११
 अधिन्, १. ८२; २. ८; ३. २०, २२, ८६,
 ९१, ९६; ४. ९८; ७. ६
 अधोष्ठ, ६. ५२
 अरथ्य, ६. ५९
 अष्टक (सूक्त), ३. ५०; ७. ११८
 अष्टक, एक नापि का नाम, ८. १६
 अष्ट-मासिक, २. ५५
 अस्-वि उद्, ७. ८६, सं-दि-, ८. १३२
 अ-प्र-, ५. ९९; समू ३. ३१
 अस्तंस्तुत, १. ११९; ३. ४८, ८१
 असंज्ञक, ४. २९
 असत्, १. ६२; २. १२०; ८. १४०
 असमाति, ७. ८५
 असंभव, ७. १७
 असित, २. १५७
 असु, २. ५४; ७. ८९; ९८, ९९
 असुनीति, १. १२४, २. ५४; ७. ९२;
 ८. १२६
 असुर, ६. ८२, १४९, १५०; ७. ५५, ६३;
 ८. ११५; बहु० ७. ६३; ८. २४,
 २६, २८, ३१
 असुर-नाया, ७. ५४
 असूयत्, ७. १४८
 असूय, ७. ८०
 असी, देविये अद्भ्यम्
 अरतम, २. ६८

अस्तुति, ४. ९७
 अद्य (वाक्य), ५. १३३
 अस्थि, ७. ७८
 अरिय-सञ्जय-कर्मणू, ७. १८
 अस्मत्सु, ७. ६५
 अस्यन्दन, ६. १३८
 अस्तवामीय (सूक्त), ३. ३१
 अह, आह : जनु-७. १०५
 अहस, ५. १०५, ७. १८, १९; ८. ९८
 अहि, १. १२६, ५. १६५, १६६
 अहि बुभुय, १. १२६; ५. १६५
 अ-हित, ८. २९
 अहि-देवत, ५. १६८
 अहोरात्र, ४. ३४, ७. १२६
 आकर्म्य, ६. ११९
 आहु, ६. ५९
 आहु-रात्र, ६. ६०
 आहवात, १. ३९; २. ९४, १२१; ८. ८५
 आश्यात-शब्द, १. ४४
 आश्यात, १. ५३; ७. ८४, १५३
 आश्याय, ५. १२५
 आगलत्, ३. १३४
 आगत, बहु० (देवाः), ७. ३०
 आशामिन्, ७. १९
 आग्नि-नाहृत्, १. १०२, ३. ७५
 आग्नि-सावित्र, -त्री, ६. १३२
 आग्नेन्द्र, -द्वी, ४. १०२
 आग्नेय, १. ९९; २. ७५, १२६, ३. ८,
 १५, -यी ३. ८, ९८; ५. ११७
 आहृणि, ३. ९५, ९६
 आग्नात-माय, ७. ६
 आग्नि-रस, ३. ८३, १०६, १२६, १४५; २.
 १३९; -सी ४. २; ६. ४०
 आचार्य, २. १३२, १३६, १४३; ४. १३
 ५. ३९; ६. ९; ८. ९०; ५. ११९;
 ३८, १११
 आचार्यक, ४. ११९

अभ्यूह, २ १२२
 अभ्युत्थ, ४ १२२
 अभन्ति, ४ ११४
 अभितौजस, ७ ५५
 अभु दक्षिये अदस्
 अभुतस, २ ९, ३ १, ५ २
 अभुत्र, २ १९
 अभृत, १ ८१
 अभृत, ३ ८५, ७ १०९, ८, १४०
 अभृतत्व, ३ ८८
 अभ्रवर, २ ३५
 अभ्रवर गर्भ जोघ, २ ५६
 अभ्रवर ज, २ ३६
 अभ्रवा ५ ५८
 अभ्रम, देखिये इदम्
 अभ्रुज, ४ ४४
 अभ्रुज, ८ २६
 अभ्रुत, ५ ३०, ६ ६१
 अभ्रुमुखी, ५ १३३
 अरण्य, ५ ६७
 अरण्य गोचर, ३ १४२
 अरण्यानी, १ ११२, २ ७४, ८ ५०
 अरिष्टनेमि, २ ५७
 अरिष्टि, ४ ७२, ७ ७३
 अरि सेना, ६ ११२
 अरुण, ७ १४५
 अरुण, -णी (गाव), ४ १४१
 √अर्च = अर्चाति, ३ ५१, ७ २५, १२३,
 १२४, १४६ ८ १५, अर्चत, ७ ३५,
 अर्चन्ति, ३ ४८, आर्चन्, ८ ५२,
 आचयत्, २ १
 अर्चनानस्, ५. ५१, ५२, ५३, ७६
 अर्चि, १ ९४, ५ ९९
 अर्ध १ ६, २ ९९, १०२, ११४ ११५,
 ११७, ११८, ४ १, ६ १०१, ७
 १४३, अर्धाय ४ १३०, ७ १०४,
 अर्धे ६ १००
 अर्ध त्वे ज्ञ, १ ११८

अर्थतस्, १ १०
 अर्थय, १ ९
 अर्थ वरा, २ ९९
 अर्थ वाद, ३ ५३, १०४
 अर्थ-विवेक, २ ११८
 अर्थ सञ्चार, ४ ५१
 अर्थ सूक्त १ १५
 अर्थिन्, ३ ९६
 अर्थेत्सु, ८ १३७
 अध, ३ १२६, अर्थे (= मध्ये) ४ १३४
 अध पञ्चम, ६ ५
 अधर्चं, २ ५, १७, १३३, १४०, ३ ७८,
 ११२, ११४, १२७, ४ ६, ५. २२
 अधर्षिण, ३. ९७
 अधुँद, ७ १४६
 अयमन्, ५ १४७, ६ ८, ७ ११४, ८
 १२७
 अर्वात्र, २ ९
 √अह, ५ ५९, १५९, ६ ६१, ६२ ७
 १३४, ८ १, ५
 अलक्ष्मी ज्ञ, ८ ६०
 अलक्ष्य-अपनुव, ५ ९१
 अल्पशस्, ४ १४३
 अल्प स्तव, ४ ४३
 अवका, ७ ७९
 अवत्सार, २ १२९, ३ ५७
 अवमुच्य, ५ ७२
 अवयव, १ ७४, २ १०३
 अविज्ञात, २ ११४
 अविज्ञान, ७ २
 अविज्ञान प्रोदष्ट, ८ १३२
 अविदिवा, ८ १३६
 अविशेष्य, १ २०
 अवचय, ८ २०
 अव्यक्त वर्ण, ३ ९
 अव्यय, १ ४५, ३, ३०
 अव्ययीभाव, २ १०५
 √अद् अरुते, ३ १६, ७२, ६ १४३,

बृहदेवता : परिशिष्ट ७

अरनुवाते, ७. १२०
 अरलील, ६. १५२
 अश, १. ८४, १०९; ४. २७; ५. १२३,
 १३१; षड् ० ४. १४०, १४२
 १. अशमेघ, ८. ९२
 २. अशमेघ, ५. १३, ३१, ८३; ६. ९२
 अश-ररिम, ५. १४
 अश-रूपिणी, ७. ३
 अश-शत, ५. ८०
 अश-मंस्तुति, ३. ५१
 अश, ७. १
 अश्राजनी, १. १११
 अश्विन्, १. ८२; २. ८; ३. २०, २२, ८६,
 ९१, ९६; ४. ९८; ७. ६
 अश्वोद्, ६. ५२
 अश्व्य, ६. ७९
 अष्टक (सूक्त), ३. ९०; ७. ११८
 अष्टक, एक ऋषि का नाम, ८. १६
 अष्ट-मासिक, २. ५५
 √अस् वि वद्, ७. ८९; सं-नि-, ८. १३२
 प्र-, ५. ९९; सम् ३. ३१
 असंस्तुत, १. ११९; ३. ४८, ८१
 असंस्त, ४. २९
 असत्, १. ६२; २. १२०; ८. १४०
 असमाति, ७. ८५
 असंभव, ७. १७
 अमित, २. १५७
 असु, २. ५४; ७. ८९, ९८, ९९
 असुनीति, १. १२४; २. ५४, ७. ९२;
 ८. १२६
 अमुर, ६. ८२, १४९, १५०; ७. ५५, ६३;
 ८. ११५; षड् ० ७. ६३; ८. २४,
 २६, २८, ३१
 अमुर-नाया, ७. ५४
 अस्यत्, ७. १४८
 अश्वि, ७. ८०
 असौ, देखिये अद्स्
 अस्तम, २. ६८

अस्तुति, ४. ९७
 अम्ब (वासु), ५. १३२
 अस्थि, ७. ७८
 अस्थि-सञ्जय-कर्मन्, ७. १८
 अस्मत्तत्, ७. ६५
 अस्यन्दन, ६. १३८
 अरयवामीय (सूक्त), ४. ३१
 √अद्, आद् : अनु-, ७. १०५
 अद्स्, ५. १७५; ७. १८, १२; ८. ९८
 अहि, १. १२६; ५. १६५, १६६
 अहि कुप्य, १. १२६; ५. १६५
 अ-हित, ८. २९
 अहि-वेवन, ५. १६८
 अहोरात्र, ४. ३४; ७. १२६
 आकष्य, ६. ११९
 आलु, ६. ५९
 आलु-राज, ६. ६०
 आख्यात, १. ३९; २. ९४, १२३; ८. ८५
 आख्यात-शब्द, १. ४४
 आख्यान, १. ५३; ७. ८४, १५३
 आख्याय, ५. १२५
 आयद्गत्, ३. १३४
 आगत, षड् ० (देवाः), ७. ३०
 आगामिन्, ७. १९
 आग्नि-भक्त, १. १०१; ३. ७५
 आग्नि-सावित्र, -त्री, ६. १३२
 आग्नेव, -त्री, ४. १०२
 आग्नेय, १. ९९; २. ७५, १२६; ३. ८,
 ६५; -यी ३. ८, ९८; ५. ११७
 आशुणि, ३. ९५, ९९
 आघ्रात-मात्र, ७. ६
 आश्रित, ३. ८३, १०६, १२६, १४५; ६.
 १३९; -सी ४. २; ६. ४०
 आचार्य, २. १३२, १३६, १४३; ४. १३८;
 ५. ३९; ६. ९; ८. ९०; ५. ११२; ७.
 ३८, १११
 आचार्यक, ४. ११९

अभ्यूह्य, २ १२२	अर्थतस्, १ १०
अभ्यस्य, ४ १२२	अथय, १ ९
अमति ४ ११४	अर्थ वस, २ ९९
अमितीपम, ७ ५५	अर्थ वाद, ३ ५३, १०४
अमु, देखिये अदस्	अर्थ विवेक, २ ११८
अमुतस, २ ९, ३ १, ५ २	अर्थ-सञ्चार, ४ ५१
अमुत्र, २ १९	अर्थ सूक्त, १ १५
अमृत, १ ८१	अर्थिन्, ३ ९६
अमृत ३ ८५, ७ १०९, ८, १४०	अर्थेस्तु, ८ १३७
अमृतत्व, ३ ८८	अध, ३ १२६, अर्धे (= मध्य) ४, १३४
अम्बर, २ ३५	अर्ध पञ्चम, ६ ५
अम्बर गर्भ ओघ, २ ५६	अर्धर्व, २ ५, १७, १३३, १४०, ३ ७८,
अम्बर ज, २ ३६	११२, ११४, १२७, ४ ६, ५ २२
अम्बा, ५ ५८	अर्धाष्टम, ३ ९७
अयम् देखिये इदम्	अर्जुद, ७ १४६
अयुज, ४ ४४	अयमन्, ५ १४७, ६ ८, ७ ११४, ८
अयुज, ८ २६	१२७
अयुस, ५ ३०, ६ ६१	अर्वाञ्ज, २ ९
अयोमुखी, ५ १३३	√अह, ५ ५९, १५९, ६ ६१, ६२, ७
अरण्य, ५ ६०	१३४, ८ १, ५
अरण्य गोचर, ३ १४२	अलक्ष्मी म, ८ ६०
अरण्यानी, १ ११२, २ ७४, ८ ५७	अलक्ष्य-अपनुद, ५ ९१
अरिष्टनेमि, २ ५७	अल्पशस्, ४ १४३
अरिष्टि, ४ ७२, ७ ७३	अल्प स्तव, ४ ४३
अरि सेना, ६ ११२	अवका, ७ ७९
अरुण, ७ १४५	अवतार, २ १२९, ३ ५७
अरुण, -णी (गाव), २ १४१	अवमुच्य, ५ ७२
√अर्च = अर्चति, ३ ५१, ७ २५, १२३,	अवयव, १. ५४, २ १०३
१२४, १४६, ८ १५, अर्चत, ७ ३५,	अविज्ञात, २ ११४
अर्चन्ति, ३ ४८, अर्चन्, ८ ५०,	अविज्ञान, ७ २
आचयत्, ४ १	अविज्ञान प्राद्वष्ट, ८ १३२
अचनानस्, ५ ५१, ५२, ५३, ७६	अविदित्वा, ८ १३६
अचि, १ ९४ ५ ९९	अविशेष्य, १ २०
अर्थ १ ६, २ ९९, १०२, ११४ ११५,	अवच्य, ८ २०
११७, ११८, ४ १, ६ १०१, ७	अव्यक्त वण, ३ ९
१४३, अर्थोच ४ १३०, ७ १०४	अव्यय, १ ४५, ३, ३०
अर्थे ६ १००	अव्ययीभाव, २ १०५
अव त्वत्, १ ११८	√अश् अश्नुते, ३ १६, ७२, ६ १४३,

अरुवाते, ७. १२७
 अरलील, ६. १५३
 अश्व, १. ८४, १०९; ४. २७; ५. १२३,
 १३१; बहु० ४. १४०, १४२
 १. अश्वमेध, ८. ९२
 २. अश्वमेध, ५. १३, २१, ८३; ६. ९२
 अश्व-रश्मि, ५. १४
 अश्व-रूपिणी, ७. ३
 अश्व-शत, ५. ८०
 अश्व-संस्तुति, ३. ५१
 अश्वी, ७. १
 अश्वीजनी, १. १११
 अश्विन्, १. ८२; २. ८, ३. २०, २२, ८६,
 ९१, ९६; ४. ९८; ७. ६
 अश्वीष्ट, ६. ५२
 अश्व्य, ६. ७२
 अष्टक (सूक्त), ३. ९०; ७. ११८
 अष्टक, एक ऋषि का नाम, ८. १६
 अष्ट-मासिक, २. ५५
 √अस्वि उद्, ७. ८६; सं-नि-, ८. १३२
 प्र-, ५. ९९; सम् ३. ३१
 असंस्तुत, १. ११९; ३. ४८, ८१
 असंज्ञस, ४. २९
 असत्, १. ६२; २. १२०; ८. १४०
 असमाप्ति, ७. ८५
 असंभव, ७. १७
 असित, २. १५७
 असु, २. ५४; ७. ८९, ९८, ९९
 असुनीति, १. १२४; २. ५४; ७. ९२;
 ८. १२६
 असुर, ६. ८२, १४९, १५०; ७. ५५, ६३;
 ८. ११५; बहु० ७. ६३; ८. २४,
 २६, २८, ३१
 असुर-माया, ७. ५४
 अस्यत्, ७. १४८
 असूङ्, ०. ८०
 असौ, देविये अद्स्
 अस्तम, २. ६८

अस्तुति, ४. ९७
 अस्त्र (वारुण), ५. १३३
 अस्थि, ७. ७८
 अस्थि-सञ्जय-कर्मन्, ७. १८
 अस्मत्तस्, ७. ६५
 अस्यन्दन, ६. १३८
 अस्यवामीय (सूक्त), ४. ३१
 √अह्, आह : अनु-, ७. १०५
 अहस्, ५. १७५; ७. १८, १९; ८. ९८
 अहि, १. १२६; ५. १६५, १६६
 अहि बुध्न्य, १. १२६; ५. १६५
 अ-हित, ८. २९
 अहि-देवन, ५. १६८
 अहोरात्र, ४. ३४; ७. १२६
 आकर्ष्य, ६. ११९
 आक्षु, ६. ५२
 आक्षु-राज, ६. ६०
 आख्यात, १. ३५; २. ९४, १२१; ८. ८५
 आख्यात-शब्द, १. ४४
 आख्यान, १. ५३; ७. ८४, १५३
 आख्याय, ५. १२५
 आगदत्, ३. १३४
 आगत, बहु० (देवाः), ७. ३०
 आगामिन्, ७. १९
 आग्नि-माहृत, १. १०२; ३. ७२
 आग्नि-सावित्र, -त्री ६. १३२
 आग्नेन्द्र, -दी, ४. १०२
 आग्नेय, १. ९९; २. ७५, १२६; ३. ८,
 ६५, -यी ३. ८, ९८; ५. ११७
 आघुणि, ३. ९५, ९६
 आघ्रात-मात्र, ७. ६
 आङ्गिरस, ३. ८३, १०६, १२६, १४५; ६.
 १३९; -मी ४. २; ६. ४०
 आचार्य, २. १३२, १३६, १४३; ४. १३८;
 ५. ३९; ६. ९; ८. ९०, ५. ११२; ७.
 ३८, १११
 आचार्यक, ४. ११९

आच्छिद्यत्, १ ३६, ५८
 आजि, ८ १२
 आज्ञाय, ५ ७५
 आज्य सूक्त, ५ ११
 आमन्, १ ७३, २ ८६, ८७, ४ १०,
 १४३, ५ ३२, ५१, ६७, ७०, ७३,
 १३५ ६ ३२, ९५, ११९, १४२, ७
 ५७, ६०, १२०; ८ २२, ४५, ५२,
 १२९
 आत्म प्रभाव, ८ ७८
 आमवत्, ६ १३४, १३६, ७ ८२
 आम-वादिन्, ७ ७१
 आत्म सस्ताव, ४ १३५
 आम-स्तव, २ ८७, ८ ४२, ८२
 आम हित, ८ ६८
 आम हितेषिणी, ४ १३१
 आत्म ब्रह्म, ४ २३
 आत्म आदान, ६ ९६
 आत्रेय, ५ ५१
 आदान, २ ६, ६ ९६
 आदाय, ६ ११४
 आदि, ३ ४९, ५२, ५ १७१
 आदित्स, ५ ११३
 आदित्य, २ १२, ६ १२५, ८ १२८
 आदित्य देवत्य, ६ २, ४९, १२६
 आदित्य देवत, ३ १०८, ६ ८३, ८७,
 ८ ११७
 आदेश, ३ ३९, १०९
 आघ् अन्त, १ २२
 आद्यान्व, ३ ८९
 आघार, ८ १३९
 आप्वर्यव, ७ १०५
 आनीत्वा, ५ १८
 आनीय, ५ १८
 आनुपूर्वी, २ १००
 आनुपूर्व्य, १ १०५
 आनुमत, ७ ९३
 आनुमानिक-की, १ ६०
 आ-त्र, ७ ७९

आम् वच्, ७ ४४; प्र-, ६ ९०,
 ७ १५२
 आपगा, ६ २३
 आप्त्य, १ ११६, १२८, ८ ४०, १२६
 आप्य, ५ १७४
 आप्री, बहु०, आप्रिय, ४ १६, ६५, ५
 २६, ७ १०७, ८ ३६, आप्र्य,
 ४ ९६, ५ २९, १५९, ६ १३९,
 आप्रीपु २ २८, १५१
 आशी-सूक्त, २ १५२ ८ ३७
 आभरण भूषित, ३ १४६
 आमुष्यायण, १ २५, २६
 आ-यत्, ६ १११
 आयग्य, ६ १४४
 आयस, ७ ५२
 आ-यात्, ६ ११२
 आयुष, १ ७४, ३ ८५, ४ १४३
 आयुषागार, ५ १३१
 आयुस, ४ १३०, ७ ४४, ७३, १०३
 आ-राष्य, ७ ४४
 आरोग्य, ७ ४४
 आरोहती, ७ १३०
 आर्तव, ३ १५, ३४, ४ ९१
 आर्त्वी, १ ११३, ५ १३०
 आर्त्विज, ७ ८३, १३८
 आर्त्विज्य, ५ ३३, ५१, ८ ६
 आर्त्विदि, ८ ७४
 आभव, ३ १३१, ४ २७, १२३, ५ १७४,
 ६ १३५;—वी ६ १०८, ८ ७४
 आर्ष, १ १४, ३ १३०, ४ ९४, ५ ७४
 आपक, २ १२६
 आष्टिपेण, ७ १५५
 आलुच्य, ७ ८९
 आवाप्त, ३ २१
 आवि, ८ ८५
 आशा, ४ ९३
 आशित्, १ ७, २६, ३२, ३५, ४७, ५०,
 ५८, ३ १५३, ५ ३०, १३५, १७०,

६. ९, ३१, ७४; ७. १२, १९, ९६,
१३६; ८. ८०, ८१, ८२, ८४, ९६
आशीर्वाच, ३. ८२; ५. ९१, ९३; ७.
१०; ८. ४४

आशीर्वाह-पर, ८. ४७

आशीर्वाह-बहुल, ७. ११७

आशु, ३. २१, ५०, ७९; ६. १५०; ७. ३

आश्रम, ५. ६४; ६. २९

आश्राव्य, २. १४२

आश्वमेधिक, २. १५३

आश्विन, २. १२७; ३. १०२, १५४, ११२,
११९;—नी ५. ११७

आश्विना-तृच, ३. १०२

आरग्य, ३. २१, २२, २३

आष्टी, ८. ६८

√आसुः आसते;

परि-उप-, २. ४३

आसक्त, ३. ९५

आसद्, ६. ४१

आसन्दी, ५. २०

आसीन, ३. २

आसुर, ६. १६१; ८. ३१, ३४, ~री, ७. ४९

आस्य, ८. ८

आहमस्या, १. ३७, ५५

आहवनीय, २. १४५

आहाय, ४. ११४

आह्वान, ७. १५३

√इः षृति, ३. ९६

अधि-, ४. ७३; ८. १३३;

अध्यापय, ८. १३६

उद्- : इयाय, ५. १५२

प्र-, ७. १२०

प्रति- ३. १५४; ८. १०१

उप- : इयाय, ५. ७६

इधन्ती, ७. ४९

इध्या, ६. ७२

इध्वार्थम्, ४. १०६

इधि, इधि, ३. ४

इत्तर, ७. १५, १८; इत्तरद्, ८. १७

इत्तरेतर, ७. १५३

इतिहास, ३. १५६; ४. ४६; ६. १०७,
१०९; ७. ७, १५३

इतिहास-सूक्त, ८. ११

इवय, २. १२०; अयम् (असि) ५. ४८,
= १. ९

√ इष् :

सम्- : इष्यते, २. १४५, १५८

इष्य, १. १०६; २. १४७, १५८; ३. ५

इष्णु, १. १२४, १२६

इन्द्र, १. ५, ६८, ६९, ८२, ११७; २. ७,
२२, ३१, ३४, ३५, ६७, १०७, ३.
३७, ६१, ६९, ८१, ९०; ५. १४८;

७. ११४, इत्यादि

इन्द्र-चिकीषित, ६. १००

इन्द्र-यसाद्, ७. ५२

इन्द्र-मातृ, २. ८३

इन्द्र-राजन्, ३. १५५

इन्द्र-वज्र, ७. २७

इन्द्रवत्, ७. १४८

इन्द्र-वासु, ३. ९४

इन्द्र-सम, ३. ११५; ७. ४९

इन्द्राग्नी, ३. १३१

इन्द्राग्नी, १. १२९; २. ७७, ८३; ३. ९२;
८. ५५

इन्द्रा-पर्वत, ४. ४

इन्द्रा-पुपन्, ४. ३१

इन्द्रा-नुहस्पति, ५. ५; ६. २६

इन्द्रा-मक्षणस्पति, ४. ८१; ६. २७

इन्द्रा वरुण, ३. ११५

इन्द्रा-विष्णु, ४. २०

इन्द्राश्रय, १. १२२

इन्द्रा-सोम, २. १०७; ४. ८४

इन्द्रिय, ४. ४०

इन्द्रोत्थावत्, ३. १००

इयत्, २. ९३

इयम् (=पृथिवी), ६. २०

इरा, २. ३५
 इव, २. ९१
 √इप् - ४. ४९
 इष्यते . २. ९९, ३. १२३
 अनु- , ५. १९
 इषिकृत (रूप), ३. ४
 इषु, १. १११; ५. १३२, १३३, १३४
 इषुधि, १. ११०; ५. १३०
 इळ, १. १००, २. १४०, ३. ४
 इळस्पति, ३. ७१, ८. १२७
 इळा, १. ११२, १२६, ३. १३, ८. १२६
 इळावत्, २. ४
 √ईच्ः
 उप- . ईचेत, १. २२, ७६
 अव- : ईचेत, ८. १२४
 अनु अव- : ऐचन्त, ७. ६३
 ईक्षमाण, ८. १३९
 ईष्ट - ईक्षते, ८. १३३
 ईडि, ईडि, ३. ४
 ईरयत्, ४. १२२
 √ईशः ईष्टे, २. ३५
 √ईष् - ईषते, २. १०९
 √ईह् - ईहेत, ८. १३२
 ईळित, ३. २७
 उक्त प्रयोग, २. ९६
 उक्त-मन्त्र, ८. १२५, १२६
 उक्तन्, २. ४१, ५. ३१
 उग्र, ६. १४१
 उच्यते ज, ४. १४
 उच्यते-वृहस्पति, ४. ११
 उच्यते-भार्या, ४. ११
 उच्चावच, २. ८९
 उच्चावच-मध्यम, ३. १५४
 उच्चती, ३. ९
 उत्तम, २. ३८, ८. १४०, -मा (त्वच्),
 ३. १०६
 उत्तर (अग्नि), ७. ६७, -रा (त्वच्),
 ६. १०६, (वेदि), ७. ३२-

उत्तर-मूक्त, ३. १४८
 उत्तरण, ७. १२७
 उत्तान-पर्ण, ८. ५६, -
 उत्तरण, ३. १६
 उत्थाप, ४. २५
 उत्थङ्ग, ६. ३६
 उत्सर्ग-काल, ४. १२
 उदर, ६. १४५
 उद-कुम्भ, ६. १००
 उदय, २. ९, ५८; ३. १०, ७. १२१
 उदर्क, ३. १२८
 उदाहृत, ६. १५८
 १. उदित, २. ६२
 २. उदित, ३. १४८
 उदोन्मोहित, ४. २३
 उद्गातृ, ७. ७०
 उद्गिरत्, -न्ती, ८. ३४
 उद्गीथ, ८. १२२
 उदिरव, ३. ४४
 उद्यत, ६. १२, १२३
 उन्मत्तवत्, ७. १५०
 उपजल्पितुम, ४. ५०
 उपदेश, १. ३८, ५२
 उपद्रव, ८. १२२
 उपनिषत् स्तुति, ५. ८२
 उपनिषद्, २. ८२, ४. ६३
 उपग्रह, १. ३८, ५६
 उपमश्रवत्, ७. ३६
 उपमार्थ, २. ९१, ९२; ४. ९७
 उपलक्ष्य, १. ४५
 उपवसन, १. २५, ३८, ३२
 उपसगृह्य, ५. ७६
 उपसर्ग, १. ३९, २. ९४, ९५, १०३
 उपस्तुत, ८. ३९
 उपास्य, ८. १३०
 उपोत्तम, ७. १९९
 उभयथा, ८. १२९
 उभयवत्, २. १५५; ३. ३१

बृहदेवता : परिशिष्ट ७

उरस्, ४. २२
 उर्यासिनी (= उर्वशी), २. ५८
 उर्वशी, १. १२८; २. ७७, ८३; ५. १४९;
 ७. १४०, १५१
 उर्वी, २. ५६
 उल, ८. ८८
 उल्लङ्घ, १. १११; ३. १००, १०१
 उशिञ्, ४. २४
 उपस, १. १२८; २. ८, ९, ६०, ८४, ८०;
 ३. ८, ९, १०; ४. १३८ (मध्यमा)
 १४१; ६. ८३; ७. १२१; ८. ७३
 उपस्थ, ३. १०२; ५. ८८, १००; ६. १२६;
 ७. १४०
 उद्ग, ६. ५२
 उष्णिह, ८. १०५

 उन, २. ९०
 उर्ताहुति, १. ११४

 श्च, ६. ९२
 श्चगुभाज्, १. १०, १८; २. ७९
 श्चम् मन्त्र, बहु०, ३. ३९
 श्चच्, बहु०, ३. १५; ४. ८; = श्चग्-वेद,
 ८. ११०, १३०, १३९
 श्चजिश्चन्, २. १२९, ३. ५५
 श्चणचप, ५. १३, ३३
 श्चत, १. १२४; २. ४२
 श्चतावृष्, ३. ३८
 श्चु, ३. ३४; ४. ५०; १. ११५, १३१;
 बहु० १. १७; २. ४१; ३. ३५, ३६;
 ४. ३४; ६. ९१; ७. ६२
 श्चनु-मैप-सूक्त, ३. ३६
 श्चते, ३. १०४; ६. १४०
 श्चत्विक्-स्तुति, ८. १०
 श्चत्विज्, बहु०, १. ८४; ३. ३; ७. ७०
 श्चक्षि-कर्मन्, २. ४
 /श्चभ् :
 प्रति- : आधि, ७. ७५
 सम्-, १. २१
 श्चषीस, ५. ८४

श्चनु, ३. ८३; बहु० १. ८२, १२०;
 ८. १२८
 श्चधि, १. ६१, २. ८६, ८७, ८८; ८. १३४,
 १३६, १३८; बहु० १. ८१; ३. ११६;
 ६. १३०, १३९; (त्रयः), ८. ७८
 श्चपि-कृत, ३. ४
 श्चपि-गत, ७. ११२
 श्चपि-कुन्दो-देवतादि, ८. १३५
 श्चपि-पुत्र, ४. ११; ५. ६३
 श्चपि-धृष्ट, ७. ५५
 श्चपि-ससद्, ४. १३३
 श्चपि-सत्तम, ४. ७८; ५. १५१
 श्चपि-सुत, १. १४
 श्चष्टिपेण-सुत, ७. १५६

 एक, २. ११२; एकमिन् १. १३, एकं,
 १. ६१; ५. १०८, ११९, १००; ८.
 २३, ३८, ६५, ७५, ९०
 एक-ज, ३. ६०
 एक-जात-त्व, १. ९८
 एक-देवाय, २. १४२
 एक-देश, ५. २५
 एक-पदा, बहु०, ८. १०९
 एक-प्रधान, ४. ८
 एक-भूयस्-त्व, ३. १३०
 एक-न्ध, ६. २०
 एक-यत्, ३. ८१; ४. १०७
 एक-विश, १. ११६
 एक-शत, ४. ९५
 एक-शस, ६. २१
 एकान्तराय, २. १४०
 एकाल-त्रिशत्, ५. १०५
 एक-कार, ८. ८५
 एकीकृत्य, २. ११३
 एकैकशस्, २. ६५
 एतद्-रूप, ५. ८७
 एय, ७. ३२
 एनस्, ४. ५९
 एनस्विन्, ५. १५

एव-प्रकार, १ ५२
 एव प्रकृति, १ ४०
 एवयामरुद् आख्यात, ५ ९०
 ऐकारम्ब, २ १८
 ऐश्वर्य, ५ १४; ७ ८५
 ऐश्वर्य, ५ १४, ७ ८५, ९६, ९९
 ऐतना, १ ५५, ८ १०१
 ऐन्दव, -वी, ४ ४
 ऐन्द्र, १ ११२, २ १२५, १२७, ३ ६६,
 -द्री ६ २५, ३१
 ऐन्द्र वायव, २ १२७, -वी, ४ ९२
 ऐन्द्र वायव्य, ५ ४, ६ १६
 ऐन्द्र-सूक्त, ६ ७७
 ऐन्द्राग्र, ३ १३१, ५ ८९, ६ १९, ७८,
 ८ ६५ -द्री ४ ९ ७ ११९
 ऐन्द्राग्नेय, ४ ९९
 ऐन्द्रा शर्वत, -ती, ४ ११०
 ऐन्द्रा पौष्णा, ५ ११८
 ऐन्द्रा बार्हस्पत्य, ६ ११७
 ऐन्द्राभव, ४ १२३
 ऐन्द्रा वरुण, ३ ६६ ४ १२४, ५ ३, १२१
 ऐन्द्रा वैष्णव, ५ १२१
 ऐन्द्रा सोम, ६ २७; -मी ६ ३१
 ऐश्वर्य, ७ ४४, ६०
 औ-कार, २ १२५
 ओजस्, ४ १३२
 ओषधि ७ १२२, बहु० १ ११२, २
 ७३, ६ ९४
 ओषधी स्तव, ७ १५४
 औचध्य, ३ १४६
 औचित्य, २ ११८
 औपनिषद्, ८ ५६
 औषम्य, १ ३०
 औषम्य कारण, २ ८९
 औरस ८ ११३
 औषध (= वसिष्ठ), २ ३६, ४४, १५६
 ३ ५६
 औशज (= कञ्चीवत्), ३ १२५

औषस, ३ ४५, ११३, १२४, (अग्नि)
 १२९, १४०, ४ १२४, ५ ६, १२०,
 ६ ६३, -सी ७ १४०
 क, १ १२२, २ ४७, १२५, ३ ७०
 ५ ९८
 क कौडपि, ३ १५, केचिद्, ८ ८०
 कञ्चीवत्, २ १३०, ३ ५६, १४२, १५०
 कञ्चीवत् प्रमुख, ४ २५
 कब्जिद्, ८ ३३
 कण्व, ६ ३५, ३६, ३७, बहु०, ४ ९८
 कण्व पत्नी, ६ ३५
 कथना, १ ३५, ५१
 कथय, ३ ७३ ४ ३४
 कथित, ३ ६९, १२३, १५४, ४ ६,
 ६ १०१
 कथित देवत्व, ५ ५
 कद्, ५ १४४
 कनीयस, ४ १२, ६ ३६ ७ १३
 कन्या, ३ १४६ ५ ५६, ६०, ६६, ७६,
 ६ ५४, ७६, ९९
 कन्या दान, ३ १४४
 कपिञ्जल, ४ ९३, ६ १५१
 कपिल, २ ६६, ७ १४१
 कपोत, ७ ८७, पुरु ऋषि, ८ ६७, ६८
 √कम् चकमे, ६ ९९ कामयाम् भास
 ६ ७६
 कम्पयत्, २ ६७
 कर, ७ ५६
 कर्ण, ८ ११८
 कर्ण सधित, ८ ११३
 कर्तृ, ३ ३०, ४२
 कर्तृ-त्व, ४ ४५
 कर्मन्, १ ७, २३, २५, २६, २८, १२०,
 ३ १६, ७८, १०४, १३५, ५ १६४,
 ६ ६९, १२०, १३७, ७ २३, ५८,
 १०३, ८ १८, १ ४, २१, २ २०,
 ६ १६०, ७ १०, १४, ११३, ८ ६,
 १३१, १३८, ३ ८४

कर्म-गुण, बहु०, ६. ७०
 कर्म-ज, २. २१; ३. ४१, ४३, ६०
 कर्मतस्, १. २७; ७. १६, १७
 कर्म-धारय, २. १०५
 कर्म-दांसा, ५. ६
 कर्म-संस्था, बहु०, ३. ८२; ५. ९३
 कर्म-समुप, १. २९
 कर्मोपसंग्रहार्थ, २. ८९
 कलत्रिद्ध, ६. १५१
 कलदा, ५. १५३
 कला, ३. ८
 कल्प, १. ४१
 कल्पानुग, ८. १०४
 कल्पशाल, स्त्री० -णी, ८. २६
 कवच, ५. १३४
 कवच-स्तुति, ५. १३२
 कल्प-वाहन, ६. १६१
 कक्षा, ५. १३२
 कक्षिपु, ५. २०
 कक्षु, ६. ४५
 कक्षय, ३. ५७; ५. १४३, १४५
 कक्षयपार्प, ३. १३०
 काकुत्स्थ, ६. ५४
 काक्षीयत, ३. १४०, १५२; ७. ४२;
 स्त्री० -ती, ७. ४८
 √कांच : ४. २०
 काञ्चन, ५. ३४; ७. ७८
 काण्व, ६. ३९, ५८; स्त्री० -वी, ४. ९९
 काम, ३. ७०; ७. ५०
 कामतस्, ६. ५५
 काम्या, ४. २४, ५७; ५. १३७; ६. ७७,
 १४९; ७. ५, ८. २०
 काय, स्त्री० -वी, ३. ९८
 काक, २. २२, ६८
 कार्य, ५. ५१; ८. २६
 काल, ३. ८; ६. १३७
 कालकेय, बहु०, ७. ५३
 काला, ५. १४७

काश, बहु०, ७. ७२
 काश्य, ६. ४२
 काश्यप, २. १५७; ८. १८
 कश्चित्, ७. ३७
 कश्मिण, २. ६५
 किराताकुलि, ७. ८६
 कीरिन्, ३. ९६
 कीर्तन, ४. ३१, ३२, ११९; ८. १२३
 कीर्तना, ५. ११४
 कीर्तय, ४. ३५, ७. ५८; ७. ४८;
 अनु- : कीर्तयेत्, ४. ३९
 प्रति- : कीर्तयन्ते, ७. १३९
 कीर्तित, ४. ३०, १२०
 कुत्स, २. २, २५; ३. ५८, १२५, १२६,
 १२८; ४. १८
 कुत्सित-नामन्, १. ३३
 कुन्ताप, ८. १०१
 कुन्तय, ८. १०१
 कुमार, ३. १४५, ७. ६
 कुमार-रूप, ५. २१
 कुम्भ, ५. १४९, १५१, १५३, १५७
 कुरु, ७. १५५; बहु० ६. ११०
 कुरु-क्षेत्र, ६. ५८
 कुरुङ्ग, ६. ४४
 कुरुश्रवण, ७. ३५
 कुश, ७. ७९
 कुशिक, बहु०, ४. ९८, ११४, ११५
 कुसीदिन्, ३. ५८
 कुहू, १. १२८; २. ७८; ४. ८७; ८. १२५
 कूप, ३. १३२
 कूपेष्टका, ३. १३९
 कूर्म, ७. ७९
 कृकलात्स, ६. १०६
 कृच्छ्र, ६. १४७
 √कृन् : अकृन्तत :
 नि-, ४. २२
 कृतवत्, ६. ४१; ७. ५८; ८. १८
 कृताहृत, २. ७७

झा, बहु०, ८. १२८
 झन्ध, २. ९०, ९२; ५. २३
 झह्, ५. ३२; ७. ६५
 झाह्य, ३. २१
 नि- : जझाह, ६. ६१
 प्र- : गृह्णति, २. १४२
 प्रति-, ५. ७८; ६. २३
 सम- : जझाह, ५. १४
 झहन, २. ९७
 झावन्, ७. १४६; बहु० १. ८४, ११०; ७.
 ११६; ८. ७४
 झाव्य, स्त्री०-णी, ६. ३०
 झीष्म, १. १३१
 झर्म, ५. ४१; ८. १५, ७९
 झर्म-संस्तव, ६. १३४
 √घस् : जघ्, ६. ५८
 घृणि, ३. ९५
 घृत, ६. २३; ७. ७४
 घृत-घृष्ट, ४. ३३
 घृत-वत्, २. ५०
 घृत-स्तुति, ५. ११
 घोर-पुत्र, ६. ३५
 घोष, २. ६०
 घोषा, २. ८२; ७. ४२, ४८
 घौर, ६. ३९
 √घ्रा :
 अव- : जघ्रतु, ४. ६०
 उप- : अजिघ्रत्, ७. ५
 घ्र, ५. १२३; ६. ७३
 घ्र-वत्, ४. ३५
 घ्र-वर्तिन्, ५. १२३
 घ्रस्, २. १९; ४. ९४, ५. ७४, ७. ७१
 √घृष् :
 आ- : घृष्टे, ३. २०
 प्रत्य-आ-, ५. ५९, ७७, ६. १५४
 प्र- : चघृते, ६. १०९
 चतुर् : बहु०, चतुर्भिः=चतसृभिः, २.

चतुर्-ऋच, ६. १८
 चतुर्थ (स्वर), ८. ११८
 चतुर्-युज्, ३. १४७, १४९
 चतुर्-विध, २. ३४
 चन्द्र, १. ८२, ८८; ३. १७
 चन्द्र-मस्, १. १२६; २. १९; ३. १३१;
 ७. १२३, १२९
 चन्द्र-सूर्य, ६. १२६
 चमस, ३. ८७
 चामि, 'चम्' धातु, ७. १२९
 √चर्, ६. २०; ७. २४, १२७, १४७
 (धर्मम्), १५०, १५१
 ०।-, ६. ११
 वि-, ८. २७
 चरण, ४. २
 चरु, ४. २९
 चर्म-अधिपवर्णीय, ३. १०१
 चक्षुष, ८. ११९
 चान्द्रमस, ७. १२५
 चायत्, ७. १२९
 चायनीय, ७. १२९
 चायमान, ५. १२४, १३८
 चारु, ७. १२९
 चिकीर्षत्, १. १०२, ४. ६८
 चिकीर्षित, ४. ५८; ६. १००
 चित्र, ६. ५९, ६०
 चित्र-भानु, ७. ६५
 चिद्, २. ९१
 चिन्तयत्, ५. ६७, ७. ४६
 चिन्ता, ७. ४३
 चुसुरि, ४. ६७
 चेतस्, ४. ११३, ७. १०१
 चोदित, ५. २४
 √छन्द : छन्दयाम् नातुस्, ७. १५७
 छन्दस्, १. १४, १३०, २. १४, ४४; ८.
 ३९, १३४, १३६-१३८
 छन्द-सूक्त, १. १६

द्वारा, ४. ३१

द्वान्दस, २. १०१

द्वान्दोमिक, ६. १०८

√द्विदः अङ्गिनव, ५. १५; अङ्गिदत्
१. १५०

जगत्, १. ९६; ४. ३७

जगत्ती, २. १४; ८. १०६

जवन्य-ज, २. ६७

जङ्गम-स्थावर, १. ६१; ८. ११९

जठर, १. ६५

√जन् : जले, ३. ११; ५. २९; ७. ५०;
जायते, ३. ७८; ८. १३६; जनय,

४. २५; ७. २; ८. १९

अभि-जायते, ५. १६६

जन्म, ४. १३

जनपितृ, २. ३७

जन-हित, २. ३७

जन्मन्, ३. ११; ४. ७३; ५. १६४;
७. १०३

जन्मस्मित-त्व, २. १२१

जन्म, २. ३७

√जप्, ७. १५. ९०, ९१; ८. १३६

जप, ८. ५३४

जमदाग्नि, २. १५१; ४. १२५; षड्, ७.
११४

जय, ८. १३

जरा, ७. ४३

जरायु, ५. ८७

जल, ५. १५१, १५२; ६. ८८

जात, १. ९२

जात-मात्र, ४. १३१

जात-विद्या, २. ३०

जात-वेदम्, १. ६७, ९७, १०६; २. ३०,
३१; ४. १६, ९३; ८. ७

जात-वेदस्य, १. ९९; ३. ११७, १२३,
१३०; ४. ६५; ८. ८८, ८९

जानि, ५. १४६

जाने, ५. १४, १८

जामदग, स्त्री-ग्री, ५. २५; ८. ३६, ३७

जामानृ, ५. ५७, ५८, ५९

जाया, ५. १९

जाया-पति, ३. १५५, १५६

जाल, ६. ८८

√जि : जवेचदि, ५. १२६

जिगमिषु, ४. ९३

जिघांसु, ६. ११२; ७. ५०

जिज्ञासु, २. ११९

जित, ५. १२७

जीर्ण, ४. २१

√जीव : ३. १९; ६. १३७, १३८ सम्-
५. १६; ७. १९

जीवनाथम्, ७. ११०

जीवधुत्र, ५. ९२

जीव-आहुति, ७. ८५

√हुप् : ७. ६६; ८. ३१

कुह् २. ८२; ३. ५८; ८. ३४

जेतु, २. ३७

जोष्टी, १. ११४

√जा :

अनु- : जले, ५. ८०

अति-नि- : जानन्ति, ९. १९

जाति, ७. १३३

जाम, ३. १३७; ४. ४३; ७. १०९; ८.
१३५

जान-संस्तव, ८. ९३

जया, १. १११

ज्याग्निमग्निग्री, ५. १२२

ज्यायस्, १. १६३

ज्येष्ठ, ६. ७५; ७. १५६

ज्येष्ठ-वय, ४. ११२

ज्योति-जीवन, ७. ११

ज्योतिस्, १. ९०; ६. १४७; ७. १
१२०; ८. १४०; षड् (विष्), ३.

√ज्वल :

उद्- : अज्वलत्, ५. २१

ज्वर, ८. १३०

तक्षतस् ४ ४७
 तक्ष दक्षिन्, १ १०
 तक्ष पुरुष, २ १०५
 तक्ष पूर्व सूक्त, ३ १२७
 तक्ष प्रधान, १ ७२
 तथा, ४ ७५ ५ १०१, १२७, १२८, ६
 २३ १२३ ८ १, ३१
 तथा रूप, ५ ८७; ६ ९४, ८ ६२
 तक्ष गत, ५ ९५
 तक्षभुण, २ ९२
 तक्ष देव, १ ६
 तक्ष देवत, ८ १०१
 तक्ष धित, १ ३
 तक्षित, २ १०६
 तक्ष भक्त, १ ७२
 तन्न २ २६
 तन्नय, ५ १६४, ७ ५३
 तन्न, २ २६, ३ १, ४ ७२
 तन्ननपात्, १ १०६, २ २६, १४७,
 १५६, ३ १
 तन्ननपाद् द्वितीया, ३ ३१
 तन्न नपात्, ७ ३५
 तन्न नामन्, २ ७७, १२८
 तन्न-नेत्र, ४ १५
 तन्न मनस्, ६ १४४
 √तप् ५ १५५, ६ १४०, १४१, ७
 ४९, अभि- अतपत्, ४ १५
 तपत्, ४ ४७, ५९ ६६, ७१ ९५, ५.
 १५५, १५६, ६ १००, १४०, १४१,
 १४२, ७ ४९, ८ १३०
 तपस्विन्, ५. १५०
 तमस्, २ ६०, ६२, ६४, ३ ९, ४ १४,
 ५ १२
 तमस्वती, ३. १०
 तरन्त, ५. ६१, ६३, ८०
 तरन्त पुरुमीच्छ, ५ ६२
 तद्वत्, ३ २८
 तात्, ७ ४४

तापस (मन्यु), २ ५३, (अग्नि),
 ३ ५८
 ताचर्य, १ १२३, २ ५७
 ताचर्य देवस्य, ८ ७७
 तालव्य, ८ ११०, ११५
 तावत्, ३ १४७
 तिग्म-तेजस्, ६ ८४
 तिष्ठिरि, ६ १५१
 तियंन् योनि, ६ ६२
 तिस्र तिस्र (देवता), १ ६२,
 (देव्य), २ १४९, ३ १२, ६ १३६
 तुरासाद्, ४ ७५
 तुरीय, ६ १२९
 तुल्य नामन्, १ ९२
 तुल्य रूप, ५ ६७
 तुल्य-व्ययस् ५ ६८
 तुविज्ञात्, ४ ८२
 √तुप् तोषय, ४ ५८
 तूर्णम्, २ ५७, ३ १६
 √तु अतरत्, ८ ३२
 तुच, २ १७ १२६
 तुचाधम, ८ ९७
 तुण, ४ ६३
 तुणपाणिक, ५. ११३
 तृतीय (स्वर), ८ ११३, ११८
 तृतीय सवन ३ ८५
 तेजस्, १ ९८ २ ६३, ६ ३७, ७ २
 तेजस, १ ८८
 तरिन्दिर, ६ ४७
 त्पाज्य, २ १००
 त्रयस्त्रिंश (स्तोम), २ १३
 त्रसदस्यु, ५ १३, ३१, ६ ५१, ७ ३५
 त्रि त्रय (अग्रय) ७ १४२ (अधिपा),
 ४ ११, (श्रयय), ८ ७८, (लोका
 धिपतय), ८ १२१, (स्वरा) ८
 १२१, त्रीणि (क्षिरांसि), ६ १५०,
 त्रिषु ३ ३१
 त्रिणव, २ १

बृहदेवता : परिशिष्ट-७

त्रित, ३, ५८, १३६, १३७, १५२; ६. १४७
 त्रि-दिव, ७. १००
 त्रिधा, १. ६३, ६४; ४. ३५; ७. १२०
 त्रि-वन्धुर, ३. ८६
 त्रि-विक्रम, २. ६४
 त्रि-विध, २. ७२; ३. १२, १४, ४२
 त्रि-विधा, ४. ३५ (त्रिधा)
 त्रि-वृत्, १. ११५
 त्रिगिरस्, ६. १४७, १४९, १६२
 त्रिशोक, ६. ८१
 त्रिष्टुभ, १. १३०; ८. १०६
 त्रिस्, ६. १०५
 त्रि-संघरत्निक, ५. ९७
 त्रि-स्थान, १. ६५; ३. १२
 त्रिस्थान अधिष्ठित, ८. ९१
 त्रैतन, ४. २२
 त्रैपद, ४. ८
 त्रैवृष्ण, ५. १३, १४
 त्र्यम्बक, ६. ३
 त्र्यम्ब, ५. १४, ३१, ३३
 त्व-पद, २. ११४
 त्वणति, 'त्वष्' धातु, ३. १६
 त्वग्-दोषिन्, ७. १५६; स्त्री०-नी, ६. ९९
 त्वग्-दोषोपहतेन्द्रिय, ८. ५
 त्वच्, ६. १०६
 त्वत्-प्रसादतस्, ६. ५६
 त्वष्ट, १. ८४, १०८, १२५; २. १४२; ३.
 १५, १७, २५, ३७, ८३, ८४, ८८;
 ५. १४८; ६. १६२; ७. ७
 त्वाष्ट (कर्म), ३. ८४; (त्रिगिरस्),
 ६. १४७; स्त्री०-ष्ट्री, ४. ८६; ७. ३, १२
 त्विप्, ६. १२१
 त्विपितस्, ३. १६
 त्व, ४. ८२; ७. ११४; ८. १२८
 त्व-सुत, ३. ५७
 त्विण, ४. ७५; ४. २३; ७. ६७, ११५
 १. दक्षिणा, २. ८४; ३. ६८; ८. २२

२. दक्षिणा, ५. १५९; ८. २३
 दक्षिणीयतम, ५. १५८
 दक्षिणेन, ७. १२७
 दण्डार्ह, २. १०६
 दण्ड्य, २. १०६
 दत्त, ५. १४१
 दद्व, २. ३४
 दधि, ३. ९५
 दधिक्रा, १. २५; २. ५५
 दध्यञ्ज, २. १२; ३. २२, २३, १२१
 दनायु, ५. १४४
 दनु, ५. १४४
 दम, ८. १३०
 दपति, ६. ७२; ७. १३१
 दपित, ७. ५४
 दर्शन, ४. १९
 ददा, २. १०८; ३. १४६
 दशम (अहन्), ५. १५५
 दशाक्षर, ७. २१
 दष्टुम्, ६. १२
 दक्ष, ७. ६
 √दहः अदहत्, ५. २२
 √दा, ३. १४८; ५. ३१, ३२, ३४, ५६,
 ५८, ७२, १३९, १४५; ६. ५१, ६६,
 ८२, १२३
 परीः ददे; ४. ११७
 प्र-: अदात्, ३. १८, १५६; ४. ५३;
 ५. ६३; ६. ७९, ८५
 दाक्ष्य, ८. १३०
 दात्, ८. २३
 दात्स्व, ३. ६१; ८. २३
 दाधिक्र, ५. १, १०३
 दान, ३. १४०, १५३, १५४; ४. १११;
 ५. १४०, १४१, १६२; ६. ४१, ४४,
 ४७, ८०, ९५, १२०; ७. १४०१
 दान-तुष्ट, ५. २९
 दान-शक्ति, ६. ५२
 दान-स्तुति, ६. ४५, ९२

दानव, उ. ५०, ५१, स्त्री०-नी, ६. ७६
 दार, बहु०, ६. ५३
 दार-संग्रह, ५. ८२
 दार्भ्य, ५. ५०, ७६, ७७
 दशतयी, ३. १५४; ८. ८८
 दास, ४. २१; स्त्री०-सी, ४. २५
 दिग्ध, ५. १३३
 दिति, ५. १४४
 दिसु, ५. ५६
 दिदृञ्चु, ४. १
 दिधचत्, ६. ३७
 दिन, ४. ३४, १३२
 दिनान्त, उ. १२१
 दिव् : द्यौस्, ६. १२३, उ. ९३; ८. ४७,
 १२७; द्विवि, ३. १४, ४. ६६; उ. ५३
 दिवाकर, २. ६१
 दिव्-आदि, ४. ६
 दिवोकस्, ४. ६२; ५. ४२; उ. ११८
 दिव्य, ३. ११, ८६, १०३; स्त्री०-व्या
 (वाच्), २. ७२
 दिव्यात्मन्, उ. ७७
 √दिशः
 उप- : दिश्यते, ३. १४१
 दिश्, बहु०, ४. ९८; ८. १२८
 दीङ्घ्यत्, ६. २०
 दीप्ततेजस्, ५. ६५
 दीप्तिसमत्तर, ३. १८
 दीर्घ, ४. १४; उ. ७३
 दीर्घ-तपस्, ८. ६७
 दीर्घ-तपस, २. १२९, १५४; ३. १४६;
 ४. १४, २१, २३
 दुःख, उ. ८८, १५२
 दुःख-शोक-परिहाःत्मन्, ६. ३३
 हुन्दुभि, ६. ११०; ५. ११२
 दुर्ग, ६. १३७
 दुर्गा, २. ७७
 दुर्भंग, स्त्री०-गा, उ. ४२
 दुर्मित्र, ८. १७

दुवस्यु, २. १२९; ३. ५६
 दुष्-कृत्, २. ११९
 दुःस्वप्न-प्र, ८. ६७
 दुःस्वप्न-वासिन्, स्त्री०-नी, ३. १३९; ५. ८९
 दुःस्वप्नाद्य-प्रणाशिन्, स्त्री०-नी, ४. ८३
 √दुह् : दुदुहे, ६. २३
 दुहित्, ४. ११०, १११; ५. ७३, १४५
 दृती, ८. २७, २८
 दूय, ८. २५
 दूरात्, उ. ६४
 √१. दृ, : आ-द्वियेत् २. १५४
 √२. दृ : दृणाति (इराम्), २. ३५
 दृति, ३. ९५, ९६, ९७
 √दृन्, ४. १८; ६. ९४; दर्शय ५. ६३;
 ६. ११९; प्र-, २. १३२
 दृष्ट, ५. ८६; ८. ६६, ८७, १००
 दृष्ट लिङ्ग, ४. ८०
 दृष्ट-वत्, स्त्री०-ती, ८. ३३
 दृष्टि हीन, ४. २१
 देव, बहु०, १. ८३; ६. ९८; उ. ५४,
 ६३, ६४, ६८, ७१, ७२; ८. ९, ४९,
 ११२, १२५
 देव-गण, ४. ३६; ६. १५६
 देव-गुरु, ६. ११३
 देवता, १. ११८; २. ८८; उ. १३३; ८.
 ८, १३८
 देवता-नामधेय, १. १७
 देवता-नामन्, १. ११
 देवता आर्ष अर्थं छन्दस्-तस् १. १४
 देवता-वत्, २. १३६
 देवता वाहन, १. ११९
 देवता-विद्, ८. १२४, १३१
 देवता लिङ्ग, ८. २१
 देवत्व, १. ९८
 देव दारु, उ. ७८
 देव-देव, १. १०४, ३. ८८; ३. १२६
 देव-देवाय, ३. ११२
 देव-नीय, ८. १०१

देव-पत्नी, बहू०, २. १२, ७८, १४३; ३.
१२; ५. ४५; ८. १२८

देव-प्रहित, ३. ८६; ७. ६५

देवर, ७. १४

देवर्षि-पितृ-पूजार्थम्, ४. १२६

देव-वत्, ६. ६०

देव-सुतोपम, ३. १४४

देवापि, ७. १५५, १५६; ८. २, ३, ४

देवामुर, ५. १४५

देवी, ५. ७५; ८. ८, ७६; ३. ९२;

(विश्वस्), ३. १०८; ३. ८

देसा, ८. ११५

देस-काल-तस्, २. ११८

दैत्य, ४. ६७; ६. ११५; ७. ५०, ५४

दैवतमस, स्त्री०-सी, ३. १५२

दैव, २. १२५; (अग्नि), ६. १६१

दैवत, १. १, २, ४, ५; २. १२४; ३.

१०९; ८. १३४, १३६

दैवत-सु, १. २

दैवत-विद्, ८. १३९

दैव्य, (होतारः), ४. १०४; (होतारी),

२. १४९; ३. ११

दोग्धी, ३. ५०, ७९।

दोषा, ३. १०

दौत्य, ५. ७४

घावापृथिवी, ३. ९३; ३. १३८

घावापृथिवीय, ५. ७

घु-भक्ति, ३. ११३; ६. १५६

घु-भू, ५. ११४

घु-मत्, ८. ८

घु-यत्, २. ८१

घु-स्थान, २. ७; ८. ४८

घु-सु : इमति, ७. १२९

घु-विण, २. २५; ३. ६३

घु-विणो-द्, ३. ६१, ६२, ६५; ३. ६३

घु-विणो-द्स्, १. १०६; २. २५; ३. ६८,

६५, १२९

घु-य, १. ४२, ४५

घु-यु, ५. १७०

घु-विणो-द्स्, ३. ६४

घु-यग, १. १११; ८. ११, १२

घु, १. १३

घु-यु, २. १०५; ५. १४८; ८. २०

घु-यु-भूत, १. ११३

घु-यु-अस्, ६. २१; ८. १९

घु-यु-अक, ३. ३४

घु-यु-अधा, ४. ३५

घु-यु-अर्च, २. १४६

घु-यु, (देव्यः), १. १०७; २. १४८;

३. ६

घु-यु, २. १०५

घु-यु-अर्चि-अक, ६. ८१

घु-यु, ७. ८६, ८७

घु-यु-य (स्वर), ८. ११३, ११४, ११७

घु-यु-य, ३. १२८

घु-यु-य, २. १४०, १४२

घु-यु-य, ३. ४१, ८०

घु-यु-य, २. १४५; (मन्त्र), ३. ८१

घु-यु-य, २. १०३

घु-यु-य, ३. ८२; ४. ८

घु-यु-य, ६. ६९; ८. १०९

घु-यु-य, ४. ५, ८

घु-यु-य, १. ७५; ४. १०७, १०८

घु-यु-य-सुति, ४. ५, ६. १६

घु-यु-य-य, ३. ११३; ४. ११८

घु-यु, २. १७; ३. १५५; ६. १३६, ८. ५४

घु-यु-य, ३. ८०; ७. ८६, ९८

घु-यु, २. २५; ५. ३१; ८. ३०

घु-यु-काम, ५. १०

घु-यु-कुप्य, ३. १४७

घु-यु-अशित्, ७. १३५

घु-यु-आदान, ७. १५

घु-यु-मुक्त, ५. १३४

घु-यु-य, ६. ११३

घु-यु, १. ११०; ५. १२९; (देव्यः),

७. २०

धन्विन्, ७ ५३
 धर्म ४ ३६ ७ १४७
 धर्म काम, ५ १०
 धर्म व्यक्तिक्रम, ८ ३
 √धा दधुस्, ७ १९
 अभि, १ ३०
 अव, ४ २१
 नि अधत्ताम्, ३ २२
 सन् दध्यात्, २ १००
 धातु २ १०२, ७ ८०
 धातु ज, २ १०४
 धातु विभक्ति, २ १०१
 धातु उपसर्ग अवयव गुण शब्द, २ १०३
 धातु, १ १२५, २ ५६, ४ ८८, ५
 १४७, ७ ११४
 धाना, ७ ३१
 धारण, ७ १०१
 √धाव अधावत्, अधावन्
 अभि-, ६ १२ ८ १३७
 उप-, ७ ५५
 धावत्, ६ १२
 धिष्ण्य, (अग्नीन्), ४ १०४
 धीवर, ६ ८८, ९०
 धुनि, ४ ६७
 धूम, ४ ४१
 √घ धारय, ५ १५५
 नि- ५ ८४
 घेजु १ १२९ २ ७८ ३ ५०, ७९, ८५,
 ४ ३६, ८ १२५
 घैर्य-कार्य, ४ १३४
 घ्मात्, २ १५८
 घ्माति, २ १५८
 √घ्या ध्यायेत्, ६ १४५
 ध्रुवम् ३ ७
 न, २ ९१
 न कार, २ ९२

नक्तोपत्, १ १०८, २ १४८ ३ ८
 नख, ७ ७९
 नगोद्य, (= अगोद्य), ८ १२७
 नञ् पूर्व, ३ ९
 नदत्, ६ १२
 नदी, ६ ११०, १ ११२ २ ७३, ८३,
 ४ २४, १०५, १०७, १०८, ६ १, २१
 नदी तोय, ४ २१
 नदी वत्, २ १३६
 नपात्, २ २७, ३ १, ५ १०३, ७ ३५
 नपुसक, १ ४०, २ ९६
 नष्ट, २ ५१
 नभाक, ३ १२८
 √नम्
 सम्- नमेत्, २ १०१
 नमस्, ५ ७८
 नमस्-कार, १ ३७, ५४, २ १२३ ८
 ११८
 नमस् कृत्वा, १ १
 नर, २ ६५ ३ २, ३
 नराशस, १. १०७, ११०, २ २८, ११५,
 १४७, ३ २, ३, ६७
 नराशस वत्, २ १५६, ३ ३१, ३२
 नवक, २ ८५, ३ ६६, ७५, ११७
 नवति, ६ ११५, ७ ५१
 नवम्, २ ५६, ६ १३०
 √नश्, ५. १७
 नष्ट, ७ ६३
 नष्ट रूप, ४ ६४
 नष्ट सञ्ज, ७ ८४
 नाक, २, ६६
 नाकुल, ८ १४
 नानानीय (सूक्त), ६ १३९
 नानान्वयोपाय, २ ९९, ११९
 नानाप्रकार, १ ३४
 नाना रूप ५ ९२, ६ ३२, ८ ७२
 नाभाक, ३ ५६

नाम-तस्, ७. ४९; ८. १७
 नामधेय, १. ८७, ८८
 नामधेयानुकीर्तन, १. ८९
 नामन्, १. ७६, ८५; २. ९३; ५. १२५;
 ८. ८५
 नाम-लक्षण, २. ७१
 नामाख्यात-विभक्ति, २. ९४
 नामाम्य-त्व, १. ७०, ७२
 नामाह्वान, १. ८६
 नारायण, ३. १५४; ७. १३९
 नारी, २. ८३; ६. ४७
 नासन, ८. ४५
 नाशनार्थम्, ७. ९५
 नास्त्यः, ७. ६; ३. २१, ३९; ७. ४८ (?);
 ८. २०
 नास्तिकाम्, ८. ११३
 नास्तिक्य, ८. ११८
 नाहुप, ६. २०, २२
 निकृत्व-य, ६. ८२
 निरिष्य, ७. १
 निगाद, ८. १०४
 निराद्य, ७. १३
 निराम, २. १३६
 निरुद्धीत, ४. ११३
 निचूय, ८. १०७
 निदधान, २. १००, ११०
 निदाय-माहात्म्यम्, २. ४९, ५४
 निदान-सहक, ५. २३
 निधान, २. ११३
 √मिन्दुः मिन्दन्ति, ७. ३७
 निम्ब, १. ३५, ४९
 निपात, १. ३५, ७८; २. ३, ८२, ८२,
 ९३; ३. २५, ३६; ४. ५४, ९६; ५.
 १६२; ६. ८६, १३५; ७. १४५; ८.
 ५२, ६०, १२९
 निपात-भाव, ४. १०, ९२, १२८; ५.
 ९१, ९३, १०७, ११०; ६. १३०;
 ७. १४५

निपात-भाव, १. ९३; २. ७५, ८१
 निपात-स्तुति, ३. ११९
 निपातित, २. १३९, ३. ६०, १२१; ५.
 १०५; ७. २१; ८. ४०
 निपातिन्, ४. ११०, १२६, १२८; ८.
 ६०, १२८; २. ५२; ५. ३९
 निपात्यर्थ, ४. ९७
 निपरुण, २. ३
 निष्पुच्, २. १०
 निष्पन्न, ८. १३४
 नियुक्त, ४. २८; ५. ३
 नियुग, ४. १४०
 नियोग, १. ३६, ५१; ५. ७५, ८. १३०
 निरर्थक, १. ३१
 निरुक्त, ४. ७४, ६. १३४
 निरुक्त-त्व, २. १११, ११२, ११३
 निरुक्त, ४. ४९
 निरुप्य, ४. ४८
 निरुप्यति, ७. ९१
 निरण्य, २. ११७
 निरुप्याद्वनीयायर्थ, २. १४५
 निर्वचन, १. ९६
 निर्वचन, २. २३
 निर्वचस्, २. २०६
 निर्वच्य, २. १०४
 निर्वच्य-लक्षण, २. १०३
 निर्वृत्ति, १. ४४, ४५
 निवाद्य, १. २५, २६
 निविद्, ३. ५०, ७८; ८. १००, १०४
 निशाचर, १. ३२
 निशास्त, ८. १०१
 निशीथ, ३. १०
 निषण्ण, ५. ३०
 निषद्, २. ८२
 निषङ्ग, ३. १४८, १४९
 √नी, १. ९०; २. ५३
 नीचमान, ४. २७
 नु, २. ९१

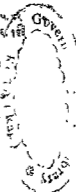
√मुद् : अनुदत्, ४. २३
 परा, ४. १३४
 मृ, १. ९१; ३. ३; ७. ६०
 मृप, ४. ३
 मृप-छय, ५. १२
 मृपर्वि-कुल-ज, ५. ५७
 मेसमेष, ३. ५९
 मेम (भार्गव), ६. ११७, ११८
 निपातिक, १. १७, १९; २. ७१, ७९
 नैहत्, २. ११९; १. २४
 नैर्जन, ७. ९२; ८. ६७; ७. ९२
 नोधस्, ३. १२८

 पञ्चिन्, ८. ११५
 पञ्चि-रूपिन्, ४. ९४
 पञ्चि, १. १३०; ८. १०६
 √पचू : पपाच, ४. १२६; अपचपन्त,
 ५. १७
 पच्छस्, ४. १०७; ६. ५०; ७. ४१
 पञ्च (जनाः), ७. ६६, ६९
 पञ्चदश, २. १
 पञ्चधा, ४. ३५
 पञ्चम (स्वर), ८. ११९
 पञ्चर्ष, ४. १३६; ५. २८, ८२, १०९, १६९
 पञ्चाशत्, ६. ५१, ५४
 √पद्, ८. १३९
 पणि, ८. २४, २६, ३५, ३६, ३८
 √पन्, ३. २३; ७. ५, ८८
 अभि-, ४. ६७, ७. ८८
 नि-, ५. १४९; निपायते, २. ९२, ९३
 पतत्र, ८. ७५
 पति, ६. ७३, १५९, १. ७५, १. १२९;
 ६. ४०, ५२; ७. ४३, १३०
 पतित, ५. १५१; ७. ८९, १०१
 पति व्रत, ४. ३
 पति-संवेदनी, ८. ५७
 पत्नी, ७. ११९; २. ८; ३. ६
 पथि, ५. ३५, १४०; ७. ६५

पथ्या, १. १२८; २. ७८; ७. ९३, १०५,
 ८. १२५
 √पद् :
 प्रति-, १. १०२; ३. १५०
 प्र-, ६. २२; ७. ४३
 पद्, ८. ३४; ६. ८५
 पद, २. ६३, ९३; ८. ६८; ४. १२१; २.
 १००, १०३, १०४, १११, ११३, ११७,
 १४२; ३. ४६; ८. १७; ६. १७, ८५;
 ८. २१, ४२, ४३
 पद् जाति, २. ११४
 पद्-भ्यवाय, २. ११३
 पद्दशस्, ८. १०१
 पद्-सघात-ज, २. ११७
 पदानुसारिन्, ८. ३५
 पदाये, २. १०८
 पद्धति, ८. ३५
 पद्म-निधि, ६. ५५
 पयस्, ६. २३, ९४; ८. ३०, ३१, ३४
 पयस्विमी, ५. ९२; ८. ७२
 पर (मधु), ३. ११७, (ब्रह्म), ६. १४४;
 ८. ९२; ८. ९७
 परम, ३. १२३
 परमेष्ठिन्, २. १२५, ८. ४५
 पराकृदात्, ७. ११८
 पराङ्-मुख, ६. १५२
 परामश, ५. २४
 परामृष्ट, ५. २३
 परावृत्त, ४. ४६
 परिकीर्तन, ३. ४७
 परिचारिन्, ४. २१
 परिदेवना, १. ३५, ५०
 परिधि-कर्मन्, ७. ११
 परिनिष्ठित-कर्मन्, ३. ८९
 परि-चूंहित, ३. ५
 परिमाण, ५. १५४
 परिवर्तिन्, ४. ३४
 परिष्वज्य, ४. ६०

परिसंख्या, २. ७१
 परिका, ५. ९४
 परीषद्, ३. ८०; ५. १३
 परीणाम, २. १२१
 परल्लेप, २. १२९; ३. ५६, १२५
 परुष्णी, ६. २६
 परोक्ष, ३. १४१; ५. २; ७. १, ९, ८. ५२
 परोक्षवत्, ७. ३१
 परोक्ष-वैयर्थ्य, ५. ३७
 परोक्षोक्त, ४. ३२
 पञ्चम्य, १. ८२, ११७, १२२; २. ५, ३६;
 ८. २, १२८
 पञ्चन्यासि-विवश्वत्, ४. ३८
 पार्श्व-भनिल-भाष्यकार, ७. ९८
 पर्वत, २. ३; ३. २३; ६. १६८; ८. १२८
 पर्वत-वत्, ४. ५
 पलायन, २. १०२
 लिल, ४. ३३
 पञ्चमान (अग्नि), १. ६६; २. २९;
 (सौर्य), ६. १३०
 पञ्चमान-वत्, ६. १३०
 पवित्रासमान, १. ३६
 √पद्म : पद्मवति, ३. १३५; अपद्मवत्,
 ६. ११०
 अनु- , ७. ६४
 पद्म, २. १३८; ६. ९४; ७. ७४; ८. ११४
 १. √पा : पाति, १. ३९; ४. ३४; ५.
 १२६; ७. २४
 २. √पा, ३. ९०; ६. १०२, ११४; ७.
 ३१; ८. ३०
 पाक-व्यासन, ६. ७६; ७. १४८; ८. २५
 पाक-स्थानम्, ६. ४२
 पाटा, ८. ५६
 पाणि, ४. ७५; ७. १०२
 पाण्डु, २. ३९; ३. २६
 पाण्डु, २. ५. १०, २०, ११३, १४५; ३.
 ७८, १०५, १२६, १२७, १३८; ५.
 ७६, १११, १३३, १३५; ६. ३०,
 १२५, १२९, १३५, १५०; ७. ८, ९३,

१२५, १४०; ८. १०९; (प्रया),
 ७. ९२
 पाद-सूक्त ऋग्वेद-सामन्, २. ९८
 पादाधर्च, ४. ८
 पादाधर्च-सामन्, ५. १२
 पाप, ४. २३, ६८; ६. १३३
 पाप-कृत्, ७. ९५
 पाप-चेतस्, ८. २८
 पाप-हीन, ७. ७२
 पापामिच्छा, ६. ३०
 पापीयस्, ८. १३६
 पाप्मान्, ६. १५३
 पापु, ५. १२०
 पार, ८. २५, ३३
 पार्श्व, ६. २५
 पार्थ, ३. ५०
 पार्थिव, १. ९९, १०५; २. २९; ३.
 १५, ६१, ७४, ७६; ५. ४८, ६१; २.
 ७२; ३. ९३; ७. १७
 पार्थिव-मत्तम, १. १०१; ३. ११
 पार्थ, ५. ६०
 पार्थिवत्, ७. १५१
 पार्थिव्य, ७. १४९
 पालन, ६. ३२
 पालय : पालयति, ३. २६
 पावक, ४. ४१; ७. ६१, ९९
 पावन, ८. ८७, ९२
 पावमान, ६. १४५, १४६; ६. १२७,
 १४९, १४४
 पाण्डु, ६. १४, १५
 पितापुत्र, ५. ६४
 पितृ, १. ११३
 पितृ, ३. १५०, १५१; ५. १०९, १२८;
 (देव), ६. ६; (वस्त्र), ६. १४,
 १५; (विवश्वत्), ६. १५०; (वात),
 ८. ७१, ८८; १. १२७; १. १२३; ६.
 १४०, १५६, १५७, १५८, १५९; ७.
 १९, ६८, ७१, ८३; ८. ११२, १२८



पितृत्व, ६ ३८
 पितृ देव असुर, ६ १६०
 पित्त, ७ ८०
 पित्र्य, ६ १५९
 पिशाच, ५ १४६, ८ ११५, ५ १९, २२
 पीति, ३ ७७
 पीत्वा, ६ ११५ ८ ३१
 पुस, १ ४०, २ ९६, ५ ४९, ६ ४०
 पुत्र, ३ ८३, ११५, ५ ७८, १०२, १२७,
 ६ ६८, १४९, ७ ४३, ४९, (गृहपते),
 ७ ३७
 पुत्रक, ४ ६०
 पुत्र काम, ८ ८१, ८२, ८४
 पुत्र काम्या, ४ २४
 पुत्र ता, ३ ११५
 पुत्र शत, ६ २८, ३४
 पुत्र शोक परिप्लुत, ६ २८
 पुत्रिका, ४ ११०
 पुनर् ग्रह, २ ९७
 पुर, ८ ३६
 पुरदर, ४ ७६ ५ १३७, ६ ८१, १०४
 पुरधिया, ३ ७९
 पुरस्, √कृ के साथ, ७ ७६, √धा के
 साथ ५ १८, ७ ८७, ८ ६
 पुरस्तात्, ८ १२३
 पुरा, ५ ७७, २ ९, ७ १२०
 पुरी, ७ ५२
 पुरीय पद, ८ १०२
 पुरुमीळह, ५ ६१, ६८, ८०
 पुरुष (देखिये 'मेघ'), २ १५३
 पुरुष विग्रह, ५ ६८
 पुरुष सूक्त, ७ १४३
 पुरुरवस्, १ १२४, २ ५८, ७ १४७
 पुरोधालु, ५ ६
 पुरोधास, ६ १४९
 पुरोहित, ४ १०६; ५ १४, १५, १२६,
 ७ ८५
 पुष्कर, ५ १५४, १५५

पुष्पवत्, ६ ५६
 पुस्यत्, २ ६३
 √पृ पुनाति, ६ १४२
 √पृञ्
 प्रति-, ४ ११५
 पूजयित्वा, ५ ७९
 पूजा, ५ ६२
 पूत, ६ १४३
 पूरणार्थ, २ ९०
 पूरुपाद्, २ १११
 पूर्ण, ३ ९५, ९६
 पूर्व, ६ १०६
 पूर्व-ज, ७ ७३
 पूर्व युग, ४ ३६
 पूर्वयुगीन, ४ ३६
 पूर्व सम्भूत, ४ १३
 पूर्वापर, ६ १४२
 पूर्वापरी भूत, १ ४४
 पूषन्, १ ८२, ११८, २ २, ४, १०, ६३,
 ३ ९५, ९६, ५ १४८
 पृथक्-कर्म स्तुति, ६ ७०
 पृथक्त्व, १ ९५, २ २८, ७१, ३ ४९,
 ५ १२८
 पृथक् पृथक् स्तुति, ३ ४०
 पृथक् स्तुति, ३ ४२, ४३, ४ ४२
 पृथग् देवत, ४. १२४
 पृथिवी, १ ११२, १२९, २ ११, ७४,
 ८१, ७ ५३
 पृथिवी जात, ७ ७२
 पृथिवी स्थान, १ १०५
 पृथिव्य आन्य-आश्रय, १ १२०
 पृथिव्य् आदि, ७ ५२
 पृथु श्रवस्, ६ ७९
 पृथि मातृ, ५ ७१
 पृथि-सूक्त, ५ ११३
 पृथती, ४ १४१
 पृथग्, ६ ८५
 पृष्ट, ५ ३६

श्रुत शत, ५. ७१	प्रणव, ८. १२३
श्रुत, ५. ७५	प्रणीत, ७. ६७
शुक्ल, ५. १६२	प्रति-गृह्य, ३. १५०; ५. ३५
शुक्लमह, ७. १४८	प्रतिपूर्वक, ५. २०
शुक्ल, २. १५; (सूक्त), ७. १४३; ८. १०९	प्रतियोग, ३. ५२
शुक्ल, ७. ५३	प्रतिराज, १. ३०, ५५
शुक्लोमी, ८. ६३	प्रतिलोम, २. ९
शुक्ल, ३. १०८; ५. ११८; ६. ४३; ७. ८, ३३; ५. ११४; ६. ७१, ७४	प्रतिवाच, १. ३७, ५०
शुक्ल-सावित्र-सौम्य, ४. १२५	प्रतिषेध, १. ३८, ५२; २. ९२
शुक्ल-देवता, २. १३५	प्रतिहार, ८. १२३
शुक्ल, २. ९३, ९६, ११८	प्रतीची, ७. ११५
शुक्लपित, ३. ८९	प्रतीचीन, ७. १८
शुक्ल, २. ६५; ५. २२	प्रबन्ध, ६. ४६
शुक्लपत्, ५. २२; ६. ५९	श्रावण, ३. ११; ८. १२९
शुक्लर्तन, ४. ३०	श्रावणरीह, १. १०२
शुक्ल, ३. १२७	श्रावणस्यात, ५. ६०
शुक्लि, २. १०८	श्रावणचम, २. १४६, १५१; ३. ३४; ६. १; ८. ८१, ९१
शुक्लिया, १. ९५	श्रम (श्रव), ८. ११२, ११४
शुक्लिया, ३. १३२; ६. ८८, १०५	श्रुति, ५. २५
शुक्लिया, ३. १११; ६. ३९, ३८, ४३, ५०, ८०, ८४	श्रुति, ७. ९९
शुक्लित, ५. ७५	श्रुति, ३. ४८, ४९, ८१, १४१; ५. ११
शुक्लितवत्, २. ५९	श्रुतान, १. ७८; २. ९२; ३. ४, ५, ५. ९६; ८. ९२
शुक्ल, ५. ६९; ६. १३७; ८. २६, २७, ३३	श्रुतान-गुण-भूत, ५. ९६
शुक्ल, २. २७; ३. १; २. ४६; ७. १५०; ८. १, ३, ४, १८	श्रुतान-वत्, ५. ११०; ७. ११६
शुक्लकान, ५. ९७; ८. १८	श्रुतान्मान, ७. १३१
शुक्लपति, १. ६२, ८३, १२५; २. १२४; ३. ६९, ७२, ८८; ५. ४४, ९०, १००, १०१; ७. १७, ४८, १३७, १४१; ८. १०२, १२७	श्रुत, ६. १५२
शुक्लपति-तत्, ७. ५०	श्रुति, ७. ५५
शुक्लपति-देवता, ८. १०८	श्रुति, १. ६१
शुक्लपितृ, ३. ३२	श्रुति, ६. १२६
शुक्लपितृ-बीवपुत्र, ५. ९२	श्रुतान, १. ३४; ८. ३४
शुक्लवत्, ८. ८०	श्रुतवत्, २. ६; ७. ६०
	श्रुत, ७. ६०
	श्रुतान, १. ३८, ५६
	श्रुतवत्, ७. १९
	श्रुत तत् ८. २४
	श्रुतान, ७. ७४; ८. १०३

प्रयात, ५. ७२
 प्रयुक्त, २. ६९
 प्रयुञ्जान, ८. १३४
 प्रयोग, १. ९०; ५. ९४; ७. १८, ११०, १५४;
 ८. १२४
 प्रयोग-तस्, १. ५९
 प्रयोग-विद्, १. १२
 प्रलय, १. ६१
 प्रलाप, १. ३७, ५५
 प्रवचयत्, ५. ७३
 प्रवर्ग्य, ५. ३५
 प्रवर्हिका, १. ३५, ५७
 प्रवाद, २. १८; ३. ४६, ६५, ४. ३२, १०७
 प्रवाद-बहुल-त्व, ४. ४३
 प्रविभज्य, २. १०६
 प्रविश्य, ७. ४७
 प्रव्यथित, ५. १८
 प्रशंसा, १. ३५, ४८
 प्रशास्य, ३. ३, ४. ६०
 प्रशस्य, ४. ९५
 प्रश्न, १. ३५, ५०
 प्रसङ्ग, ३. ४७, ५२, ६८; ४. १९, २८, ८१;
 ५. १४२; ६. ७२; ३. ५३
 प्रसङ्गज, ३. २८
 प्रसङ्ग-तस्, ५. १७१
 प्रसङ्ग-परिकीर्तन, १. १२
 प्रसन्न, ५. १९; ६. ८९
 प्रसाद्य, ५. १८, ५०, १२५
 प्रसूति, १. ९६; ३. ३०
 प्रस्कण्व, ६. ८५
 प्रस्ताव, ८. १२२
 प्रस्तोक, ५. १२४
 प्रस्वापिन्, ६. २
 प्रहृषित-मनस्, ६. ६०
 प्रहित, ४. २५; ६. १४९
 प्रहृष्ट, ४. ३
 प्रह्लाद-तमय, ७. ५३
 प्रह्ला, ४. ७१, ५. ७६; ६. ५४, ८. ४

प्राउग, ४. ९२; ६. १७
 प्राक्, ३. १०; ८. २१
 प्राच्, ७. ११५
 प्राजापत्य, ३. ६९; ५. १४३; ८. २२, ४१,
 ६४, ८०
 प्राजापत्य-आश्रमेधिक, २. १५३
 प्राञ्जलि, ५. ५१; ६. ३८
 प्राञ्जलि-स्थित, ८. ४
 १. प्राण, २. ३५; ४. ३९, ४०
 २. प्राण, ७. ७१; ६. १४४
 प्राण-दृष्टि, ८. १३५
 प्राण-भूत, २. ५१
 प्राण-वत्, ७. ८२
 प्राण-अपाण, ७. १२६
 प्रातः-सवन, १. ११५
 प्रादाय, ३. २४
 प्रादुर्, $\sqrt{\text{अस् के साथ ५. ६७; ७. ४५, ६३}}$
 प्राधान्य, १. ६, ७५; २. १३८; ३. ७;
 ६. १७, ८. ६०
 प्राधान्य-तस्, ५. १०७; ८. ६२
 प्रायश्चस्, ३. १५१
 प्रायश्चित्तार्थम्, ८. ६९
 प्रासाद, ६. ५६
 प्रास्त, ५. १७
 प्रिय, ७. १४९
 प्रियकाम्या, ६. १४९
 प्रियत्व, ४. ७०
 प्रीत, ३. १०३; ५. ७१, १३७; ६. १०४;
 ७. ४६, ७६, ७७, १००; ८. ८
 प्रीतात्मन्, ४. ५५
 प्रीति, ७. १; ७. १४९, १५०
 प्रेत, ७. १३, १५, १८
 प्रेतानुगमन, ७. १४
 प्रेताशिल्, ६. १५८
 प्रेषु, ८. १३
 प्रेष, १. २५, ५७, २. १५२, ३. ३६; ८.
 १००, १०३
 प्रेष-गत, २. १५४

बृहदेवता : परिशिष्ट-७

प्रेष-सूक्त, २. १५२, १५३

फल, ८. १३४

फल-प्रदर्शन, ३. १५१

वज्र, ६. १४; ७. १३५

वज्रा, ४. २१; ६. ८८

वज्रवत्, ५. १३४

वज्र्,

प्रति- : अवज्रवत्,

वज्रु-प्रमृति, ३. ५९; ७. ८६

वज्रु, ५. ३३

वर्हः

निः वर्हय, ४. ६९

वर्हिस्, १. १००; २. १४८; ३. ५

वल्, १. ८०; २. २५; ३. ६२; ४. ११३,

१३२; ६. ११४

वल्-काम, ३. ३२

वल्-कृति, १. ८७

वल्-पुष्टि-कर, ८. ३२

वल्-वत्सर, ५. ९४

वल्-वित्त, ३. ६१

वहु, १. १३; ३. ८२

बहुत्वेकत्व-लक्षित, ३. ३५

बहु-देवता, १. ७५; ४. ७

बहु-देव, ३. ८०

बहु-देवत, २. १२८, १३३; ३. ४१, ४३,

१२८; ६. ८३

बहुधा, ४. १४३; ५. ३९, १५१

बहु-प्रकार, १. १९

बहु-प्रधान, ४. ८

बहु-रूप-त्व, ६. ५५

बहु-वत्, ३. ८२; ४. १०७, १०८

बहु-वत्-स्तव, ३. ८२

बहु-विध, ५. ६३

बहु-वीहि, २. १०५

बहु-दास, ४. ८; ६. १५७

बहु-पुत्र-शानु-ज, २. १०३

बाधितुम्, ७. ५४

बाधमान, ७. ५५

बाह्वस्वत्य, ४. ९, १२४; ६. २५

बाल, ४. १२०

बाल-भाव, ४. ३

बाष्कल, ८. ८५

बाहुभुज्य, ८. १३०

बाह्य (मन्त्र), ५. २४

बिभ्यत्, ४. ८२

बुद्धि, ८. १३०

बुध्वा, ५. ७०; ७. ५७

बुध् : पुष्येत, ३. ४८; अयुष्यत, ५.

६९; बुध्ने, ६. १००, १५०

अनु-, ५. ११९; ६. ३६

बुध्न, ५. १६६

बुज्य, ५. १६६

बृष्ट, ५. १०८

बृहत् (स्तोत्र), ८. ७८; (साम),

१. १३१

बृहती, ८. १०५

बृहदुबध, २. १३१, ३. ५५

बृहस्पति, १. ८२, १२२; २. ३, ३९; ३.

८६, १३३, १३७, १५६; ४. १२, १३;

५. १०२, ६. ११०, ११२, ११६;

७. १३७

बृहस्पति-प्रबोधित, ३. १३६

बृहस्पति-स्तुति, ४. ८५

बोधित, ८. ७

ब्रह्म-कर्मन्, ५. १५८

ब्रह्म-चारिन्, ४. ५९

ब्रह्म-जाया, २. ८२; ८. ३६

ब्रह्मगन्-पति, १. १२२, २. २, ३. ६६, ७१

ब्रह्मन्, १. ६२, २. ४०, ११९; ७. १०५

८. १४०; ३. १८; ८. ९३; ५. १२६,

५. १२५; ७. ७०

ब्रह्मपि-ता, ४. ९५

ब्रह्म-वादिन्, २. ८४

ब्रह्म-हन्, ६. १५२

ब्राह्म, २. १२५; ८. ९८; ४. ११३; ६.

१५२; ८. १०९

ब्राह्मण, १ ४१, ५. २०, १५७, ६ ११७,
 १२९, ७ ७२, ८ १००, ११०,
 ५. १५८
 ब्राह्मण कुमार, ५ १५
 ब्राह्मण शासन्, ७ १४
 ब्राह्मणस्पत्य, ३ १०७
 ब्राह्मण उक्त, ५ ११
 ब्रुवत्, ६ २०
 ब्रु अवताम, ३ २१
 निर्- ब्रुयात्, २ १०६
 भक्त, ४ १५
 भक्ति, १ ६, ७३, ७६, ७७
 भक्ति-तस, ५ १७२
 भक्त भक्तयेत, ७ ३१
 भक्त्यिवा, ६ १०३
 भग, २ १०, ६२, ५ १४७, ६ ८, ७
 ११४, ८ १२८
 भग देवत, ५ १६९
 भगवत्, ५ ७८
 भग अन्तर, ७ ४६
 भज्, १ ५, १८, ७८, ८८, ११३, २
 ७३, ७४, ७६, ८०, ८१, ३ १४, ७
 ६५, १४३, ७ ११२, ८ २९
 भण् भण्यते, ३ ५४
 भयोद्धिप्र, ८ ३५
 भरद्वाज, २ ६३, ३ १२८, ४ ९८, ५
 १०२, १२४, १३७, १३९, १४०
 भर्तुं, ७ १, ४७, १३३
 भवत्, १ ६१, ५. १२६
 भविष्य, १ ४०, ४ २९
 भव्य, १ ४०, ६१
 १ भाग, ३ ८९, ३३६, ६ २१, २२,
 ८ २९
 २ भाग, ३ ४५, ५१, ५, १६७, ३ ९८
 भाज् (सूक्तस्य), १ १००
 भाव, २ ६३
 भारत, ५ ८३

भारती, ३ १३, ५ १०१
 भार्गव, २. ५१, ८ ७०, ४ ११
 भार्गवश्च, ६ ४६, ८ १२
 भार्या, ५ ५९, ८ १९
 भाह्वयेयी, ५ १५९
 भाव, १ ७५, ३ २१, ४ ५९, ६८, ७३,
 ६ ३८, ८ २१
 भाव प्रधान, २ १२१
 भावयव्य, ३ १५०, १५५, १५६
 भावयव्य सुत, ३ १३३
 भाव विकारञ्ज, २ १२२
 भाव वृत्त, २ ८६, १२०, ५ ८७, ११२,
 ७ १२३, १४०, ८ ४६, ५६, ५९,
 ६५, ९१
 भाव वृत्ति, ७ १३५
 भाव्य, ३ १४०
 भाप आभापत
 अभि-, ५ १००
 प्रति-, ४ १२
 भासयत्, २ ६२
 भास्कर, ७ २८
 भित्वा, ७ ५२
 भिद् विभिद्, ६ ६४, भिन्दि, ७
 १४९, अभिनत्, ७ १५०
 भिज् (सूक्त), १ २४
 भिषज्, ७ १५४
 भीत, ४ ६९, ८९
 भीम पराक्रम, ४ ६७
 भुज् भुजते
 उप-, ८ ११५
 भुरिज्, ८ १०७
 भुवन, ७ ६०
 भू, २ ७३, ७ ५, ९३, १०१
 भू भूत्, ६ ५७, ९०
 सम्-, ५. १५०, ७ ६
 १ भूत, १ ४०, ६१
 २ भूत, २ २४, ३ २४, ३०, ७ १२८
 भूत करण, ८ ८५

भूत-वत्, घ. २९
 भूनांश, ङ. १८, १९
 भूति, रे. ३२
 भूपति, फ. १९
 भूम, फ. १११, १२३; ङ. ४७
 भृ : विभक्ति, ङ. ७६
 भृगु, फ. ९९; श. १२८; घ. ९८; ङ.
 . १५६; ङ. १२५
 भृशम्, घ. २३
 भेषजार्थम्, ङ. ९१
 भेषज्य, ङ. ६४
 भोज, घ. ४२; घ. ९८; ङ. २३
 भ्राज् : भ्राजते, श. ९३
 भ्रातृ (मध्यम), घ. ३३; (यवीयस्)
 घ. ११२; (कनीयस्), ङ. १३;
 ङ. १५५; (चत्वारः), रे. ५९;
 (त्रयः) घ. ३२; ङ. ८९, (मरुतः)
 घ. ५१; (वृक्काः), ङ. ६१;
 (पूर्वजाः), ङ. ७३, ७७
 भ्रू, ङ. ११३, ११७
 भ्रु, श. ११५; रे. ४५
 भ्रुल, श. २५, ३२
 भ्रुज् : भ्रुजतिः
 नि, रे. २४
 भ्रुजा, ङ. ७९
 भ्रुजि, फ. १२३
 भ्रुडल, रे. २८, ११६, फ. १०३; घ. ३९,
 १३०, १४५
 भ्रुडूक, श. १०९; घ. २७
 भ्रुत, रे. १२२; फ. ५६
 भ्रुति, रे. १४४
 भ्रुत्, ङ. २३
 भ्रास्य, फ. १५२
 भ्रुध् : मध्यति, रे. ६२
 मध्यमान, रे. ६४
 भ्रुद् : मादयसे, घ. ७८
 भ्रुद्-गृह, घ. ५५

भ्रुद्-देवत, ङ. ७४
 भ्रुद्-देवत्य, ङ. ७४
 भ्रुद्, रे. १७, १९, २१, ९६, १२३; घ.
 १२६, ६. १४५
 भ्रुद्धन्दस्, रे. १२६; रे. ५७
 भ्रुध्य, रे. ११६; घ. १३४; ङ. ११३, १३७
 भ्रुध्येदिन, रे. ९; ङ. १२१
 भ्रुध्य-भाग, रे. ३१
 भ्रुध्यम, श. ६६, ६९, ९३, ९४, ९९,
 १३०; रे. २६, ३८, ४१, ४३, ४५,
 ७२. ८५; रे. ७६, ९९ (अग्नि), ११६,
 १२० (अग्नि); घ. ३३; फ. १०
 (अग्नि), ३५ (अग्नि), ४३ (वाच्),
 ४८ (अग्नि), ४९ (वाच्) ८८
 (पृथिवी) १६६; घ. ११ (अग्नि),
 १२८, १२९, १५५ (यम); ङ. ३३
 (अग्नि), १०६, १०७ (वाच्)
 १४२ (अग्नि); ङ. ३९ (अग्नि)
 भ्रुध्यम-स्थान, श. १०३, १२१; रे. ७;
 रे. ७४
 भ्रुद् : भ्रुद्यते, श. २५; भ्रुद्यते, रे. ७६,
 ११२, १३०, १५५, १५६; भ्रुद्यते,
 रे. १००; घ. ४, १८
 भ्रुद्-आवर्तन, ङ. ९०
 भ्रुद्स्, फ. ५४, ५५, ६०, ६५, ७३; ङ.
 ७१, ८२, ८५; ङ. ७६, १३२
 भ्रुद्, रे. १२, १३०; रे. ५५, १२१; ङ.
 २, १०३, १०७
 भ्रुद्ध्य, फ. ९; ङ. ६८, ७१
 भ्रुद्-चाग्-देह-भोजन, घ. १४३
 भ्रुद्ध्य, श. ८०, ८६, ८७, ११९; रे. २०,
 २१, ६८, १०१, ११०, ११२, ११८,
 १३२; रे. ३७, ४६, ४८; फ. ५८,
 ९४, ९५, ९६; घ. १५७; ङ. १६,
 ४५, ११०, १३८; ङ. १०९, १२४,
 १३१, १३८; रे. १३२; ङ. १२९
 भ्रुद्ध्य-तस्, ङ. १७
 भ्रुद्ध्य-दक्षिन्, श. ३४; फ. ६६

मन्त्र दश, १. १, ५ ५८
 मन्त्र दष्टि, १ ३
 मन्त्र दैवत विद्, ८ १३३
 मन्त्र प्रयोग, ५ ९४
 मन्त्रय
 अनु- अमन्त्रयत्, ५. १२८
 अप- मन्त्रया चक्रे, ५ २०
 मन्त्र वित्तम, २ १२२
 मन्त्र विद्, १ २२, ९०, ५ ९३
 मन्त्रविन् मन्त्रवित्तम, ३ १३३
 मन्दु, २ १४१, -दू, २ १४२
 मन्द्र (स्वर), ८ ११३, ११५, ११९, १२०
 मन्द्र कर्पण-सयुक्त ८ ११३
 मन्द्र स्थान समाहित, ८ १२०
 मन्थमान, ४ १२१
 मन्थु, १ १२३, २ ५२, ४ १३४
 मन्वान ६ ११२
 ममता, ४ ११
 ममता सुत, ३ ५६
 मरीचि, ५ १४३
 मरुत, १ ८३, १०३, ११७, १२७, २
 ३५, ३ ३७, ७४, ७५, १०७, ७ १०५
 मरुत्पति, ६ ११३
 मरुत्वत्, ३ ९४, ४ ५६
 मरुद्-गण, २ १४४, ५ ६७
 मरुद् गण प्रधान, २ १४१, १४३, १४४
 महत्, ८ १४०
 महत्विन्, ७ ११३
 महर्षि, १ ८१, ५ ६५, ८ १३७
 महातपस्, ४ २५
 महा दोष, ४ ११९
 महान्धति, ५ १४७, १५२
 महा नग्नी, १ ५५
 महा नदी, ६ ९६
 महा नाग्नी (ऋच), ८ ९८, १००
 महा यज्ञ, ४ ११२
 महा यशस्, ५ १५२
 महा वीर, ५ ३४, ३५
 महिमन्, ५ १६४

महिषी, ५ ५६, ६३
 महेन्द्र, २ १४४
 महेन्द्र सदन, ४ ७६
 महौपधि, ८ ५६
 म्मा मीयते, ५ १५३
 निर्- -मिमीते, ७ १२९
 मास, ४ २९, ७ ७८
 माता पुत्र, ४ ३९
 मातृ, ६ ९०, ७ ९७
 मातृ त्व, ६ ३८, ९१
 माध्यमिक (गण), ३ २५
 मान, ५ १५३
 मानस, ७ २१, ८ ६९
 मान्य, ४ ५२, ५ १५३
 मान्यव, ७ ११७
 मामक, ७ ४४
 माया, २ ४२
 माया-बल, ७ ८८
 माया भेद, ८ ७५, ७६
 मायाविन्, ७ ८६
 मारीच, ५. १४३
 मारुत, ३ १०७
 मारुतैन्द्र, ४ ४४
 मास, मासि मासि, २ ५२
 मास, २ ५६, ४ ३४
 मास कृत्, २ ११२
 मासिक, २ ५६
 माहात्म्य, १ ७०
 माहिव्र (सूक्त), ८ ८६
 मित, ८ १०९
 मिताक्षर, २ ९०, ९२
 मित्र, १ १२३, २ ४, ४८, ५ १४७, १४८,
 ७ ११४
 मित्रातिथि, ७ ३५
 मित्रार्यमन्, ६ ८१
 मित्रा वरुण, १ ८३, ३ ९४
 मित्रा-वरुण द्वाश तुविजात-भग्यमन्,
 ४ ८२
 मित्री कृत्, २ ४८

मिथुन, द. १६२; उ. १
 √मी : मीयन्ते, :
 प्र-, घ. १२०
 मीन, द. ८८
 मुख, प. १; द. १०२, १५१
 मुख्य, द. ३७
 मुख्यतम, र. ८
 √मुन् : मुमुषुः, द. ८२
 प्र- : मोचिरे, द. १५
 मुद, प. ५३
 मुद्रल, द. ४६; द. १२, २०
 मुधा, उ. ४३
 मुनि, र. १०६, ११५; प. १४४; उ. ४७
 मुनि-सत्तम, द. १८
 मुसल, र. १०१
 मुसलील्लखल, र. ११३
 √मुह : मुमोह, उ. ८८
 मुहूर्त, घ. ६६; प. १४३; उ. १५७
 मूलं, र. ३२
 मूर्तिमत्, उ. १४६
 मूर्धन्, घ. ६०, १२०; द. ११२, ११६
 मूर्धन्वत्, र. १८
 मृग, घ. ८९
 मृत, उ. ३५
 मृत-यज्ञी, उ. १३
 मृत-शिष्ट, उ. ११
 मृत्यु, र. १२२; र. ५९; उ. १०, १६
 √मृस् : ममर्ष, घ. १३
 मेघ, घ. ४१; प. १६६
 मेदस्, उ. ७८
 मेघ (पुरुषस्व), र. १५३
 मेघा, र. ८४
 मेघप्रतिधि, र. ६४, १३०, १५५, १५७;
 र. ५४
 मेघा-सुक्, द. ५८
 मेप्य (अथ), घ. २०
 मैत्री, घ. १७, १२३
 मैत्रावरुण, र. १२७; र. १०५; घ. १२५;

नी, द. ६५, ७२, १२४
 मैत्रावरुण, प. १६०
 मेथुन, घ. १२; द. १५४; उ. ४, १३३
 मोहित, उ. ५४
 ~
 यत्, उ. ६८
 यक्ष्म-नाश, उ. १५४
 यक्ष्म-नाशन, द. ६४, ६८
 यक्ष्म-नाशिन, उ. १३३
 यक्ष्यमाण, प. ५०
 √यज्, द. १११; र. २१; उ. ५९; द.
 उ; प. ५३; द. ५
 यजत्, द. ५८
 यजमान, द. ७२; उ. ७०; द. ८०
 यजुस्, र. १५२, १५३, १५४; द.
 ११०, १३०
 यज्ञ, र. १३६; प. १५८; उ. ३१, ७४,
 ७७, ११३; द. १३०, १३५
 यज्ञार्थम्, उ. १४३
 यज्ञिय, उ. ७२
 यज्वन्, द. ७३, ७४
 √यत् : यत्तेत, र. ११३
 यथा-क्रमम्, र. ७१
 यथा न्यायम्, र. २३
 यथा-रूपम्, उ. १३८
 यथा-वाचयम्, र. १२२
 यथा-विधि, द. ६
 यथा-स्थानम्, र. ७२; उ. ५२
 यदल्लुपा, प. ९९
 यद्-दैवत, द. १०३
 √यस् : यदति, र. १
 प्र- : अयद्यत्, र. २५; र. ११२
 यम, र. १२३; र. ११, ४७; र. ५८; द.
 १५४, १५५, १५७, १५८, १५९, १६३;
 द. ४८
 यम (यमज), द. १६३
 यम-पुत्र, र. ६०
 यम-यमी, द. ११३

यमी, १, १२८, २ ७७, ८३, ६ १५४

यव, ६ ५८

यविष्ट, ७ ६१

यवीयस, ४ ११२

यशस्विनी, ४ ५७, ५ ५४

यहु, ३ ६४

√या

अभि अयात्, ६ ११०, ७ १०४,

अयुस, ७ ९०, ८ २०

√याच अयाचतम, ३ २०

याचना, १ ३५, ४९

याजमान, ७ १३८

याज्ञिक, ८ ९९

याज्य, ५ ५५

याज्या, २ १३८

याज्यार्चित, ५ ६४

यान्, ८ ८७

याधातव्य, १ ४

यादृक्, १ ३०

यादृश्, ७, १३४

यावत्, ८ १९

युक्त, ४ २४

युग, ६ १०५

युगपत्, ५ ९८, ६ ५४, ८ ३७

युग पर्यन्त, ८ ९८, ९, ३ २४

युग्म, ४ ४४; ७ ३०, ८ २९

√युज्

नि अयोजयत्, ५ ७४

प्र युज्यन्ते, ७ १५ युक्ते, ८ १३१

सम् यजयेत्, १ ११८

युद्ध, ४ १३१

युद्धादि, ५ १३४

युद्धोपकरण, ५ १२८

युष्, ५ १२४, १२५, ७, ६३

युष्पत्, ८ १६

युयु सु, ५ १३५

युव-काम्या, ६ ७७

युवम् युष्मान्, ८ २७

यूप, ४ १०१

यूपवत्, ३ २८

योग, ७ ८८, १०९, ८ ८४, १३०, १३६

योगित्व, ३ ११५

योःस्वमान, ६ १११

योद्ष्ट, ५ १२७

योधयत्, ४ १३२

योनि, १ ६२, ८ १४०

यौष, -पी, ४ १००

यौवन, ६ ५५, ७ ४४

रङ्गस्, ८ ११५

रघो भूत, ६ ३४

रघो-हन्, ६ १३४

रजत, ७ ७८

रजस (त्रीणि), २ ६३

रण देवता, ५ १३१

रति, ६ ५४

रत्न, ५ १२३, ६, ५२

रथ, १ ८४, ११०, ३ ८६, ९५, १४७,

१४९, ५ १४, १५, १२३, ८ १२, ३५

रथ-गोप, ५ १३१

रथ द्विद्, ६ १०५

रथतर, १ ११६, ८ ७८

रथ प्रोष्ठ, ७ ८५

रथवीति, ५ ५०, ७३, ७४, ७७

रथस्पति, ८ १२७

रथाभिमर्शन, ५ ११२

रथीतर, ४ ७३

रपस्, ७ ९५, ८ ५०

√रभ रेभे

आ, ७ ५४

√रम् रमये, ६ ५४

रम्ग, ५ ७५

रयिनत्, ४ ७२

रव, २ ३५, ४२

रवि, ३ १०, १७

रश्मि, १ ६३, ६८, ९४, २ ६२, ७७,

३ १७, ४ ३८, ५ १३०, (सप्त)

४ ३३

रस, १. ६८; २. ३२; ७. १२७
 रसादान, २. ६
 रसा-पार-निवासिन्, ८. २४
 रहस्य, ६. १२९
 रहस्य-संयोग-काम्य, ४. ५७
 राका, १. १२८; २. ७८
 राका-सिनीवाली, ४. ८७
 राक्षस्, ५. १४५; ७. ६८
 राक्षोघ्न, ६. २८
 राक्षोघ्न-आश्रेय, ८. ४०, ६५
 राजन् (वरुण), ६. १४, (नाहुय)
 २०, (कुहू) ४४, १३८
 राज-पुत्र, ७. १५५, १५६
 राज-पुत्री, ५. ५३, ५४
 राज-यथम-हन्, ८. ६४
 राजर्षि, ३. ५४; ४. ९८; ५. २९, ५०; ६.
 ५१; ७. २, १४७
 राज्ञी, ४. २
 राज्य, ७. ५४, १५७; ८. १, ४, ५
 रात्रि, ४. १३२, ५. ८४, ६. ११
 रात्रि-संस्ताव, ३. १०५
 रात्री, १. ११२; २. ७४, ८४, ५. ७४,
 ७५; ८. ४४
 राम्य-उपस्, ३. १३८
 √साध् : राधते, ८. २८
 राङ्, ८. २
 रासभ, ४. १४१
 राहुगण, २. ४५
 रिन्ध, ४. १११
 √रिभ् : रिन्धते, ३. ९६
 रिरंसु, ४. ५८, ५९
 रिकम, ५. ७२
 रिकम-वधस्, ५. ६८
 √रुद्र् : भरोदीव, २. ३४
 रुद्र, १. १०३, १२२; २. ४, ३३; १. १२७;
 ५. ४७; ८. १२८
 रुद्र-पानी, ५. ४६
 रुद्र-सूनु, ५. ६९

रुवन, २. ५९
 √रुह् : रोहति, ७. १३
 रुधिन्, २. ६७
 आ- : रुरोह, ७. ४
 रुदि-गत, २. १०२
 रूप, २. ११९; ३. ७६; ४. १८; ८. १११;
 २. १५८; ३. ४
 रूप-कृत, १. ८४
 रूपवत्ता, ७. ४५
 रूपवद्-भार्य, २. १०७
 रूप-विकर्तु, ३. २५
 रूप-वीर्य, ४. १३४
 रूप-संपन्न, ३. १४४
 रेतस्, ४. १११; ५. १४९
 रैवत, २. १३
 रोग-घ्न, ३. ११३
 रोगापनुत्ति, ३. ११४
 रोदसी, १. १२९; २. ७८, १४३; १. ८३,
 ११३, ४. ६, ९८; ७. ९४, ९५, १२६;
 ८. १२५
 रोमन्, ४. २; ७. ७८
 रोमशा, २. ७७, ८३; ३. १५५, १५६
 रोह, १. १०२
 रोहित, ४. १४०
 रोदसी, ५. ११७
 रोद्र, ३. १३९, ५. १७३; -दी, ३. १०८,
 ५. ३८
 रोद्र-सौर्य-औषस्, ४. ९९
 रोष्य, ७. ५२
 रोशम, ५. ३४
 √लक्ष्, ५. १५४, ७. १४०
 उप-, १. १२; ८. ७९
 लक्षण-संपद्, १. ११
 लक्षित, ८. ८१
 लक्ष्य-वत्, ५. ६६
 लक्ष्यासु, ७. १०२
 √लभ्, ६. ६८; ७. ५०; ८. १८
 उप-, ३. १३४; ४. ५२

लाक्ष, ८ ५१
 लाक्षा, १ १२९, २ ८४
 लाघ, ८ ४०
 लिङ्ग, १ ४५, ८६, ८७, २. ९९, ९७,
 १००, १०२, ११८, ३ ११०, ८ २१,
 ८१, १०४
 लिङ्ग तस्य, १ २०, ३ २९, ६ ६९
 लिङ्ग भाज्, ३ १११
 लिङ्ग-वाक्य, ५ ९३
 लिङ्ग-वाक्य विकार, ७ १०८
 लिङ्गोक्त देवत, ४ १२९, ८ ६५
 लुप्त, २ १२९, ३ ५५
 लोक, १ १३०, २ ६२, ७ १२७, (त्रय),
 १ ९०, १०१, २ ५०, ६ १२१,
 १ ९२
 लोकाधिपति (त्रय), १ ७३
 लोकाधिपति (त्रय), ७ १२१
 लोप, २ ११६
 लोपामुद्रा, २ ८३, ४ ५७
 लौकिक, २ १०१
 लौक्य, १ ४
 लौक्य, ८ ३१
 लशज, ६ ३९, ५८
 लशय, ६ १४२
 लक्ष्मण काम, ७ ८४
 √लच् लक्ष्यामि, १ १, ४ ३२, (मा)
 लोच, ३ १९, ऊच, ७ ६, उच्यते,
 ३ १५३
 ल- , लक्ष्यामि, १ ८५
 प्रति- ऊचु, ६ २१
 लचन लिङ्ग, १ ४३
 लज्ज, १ ८४, ८७, ३ २३, ४ ५, ६ ८२,
 १२३, १५०, ७ २५, १२९, १५०
 लज्ज धृक्, ७ ३२
 लज्ज सस्तव, ६ १२०
 लज्जिन्, ३ २३, ११५
 √लद् लदति, ४ १७

लमि- वदन्ति, ८ ९६, अवाद
 यताम्, ५ ६५
 वि प्र-, ४ १०
 लम्- ऊदे २ ८५, ऊदिरे, ४
 १०५, ६ ८९, ७ ८१
 लध् (मा) लधी, ४ ५२, लधीत्
 • ३ २१
 लधू, ३ १४७, ६ ५१, ७ १३१, १३२
 लधूमत्, ३ १४९
 लन, ६ ३५, १०१, १३८, ८ २, लनानाम्
 (पति), ३ २६
 लनस्पति, १ ६६, १०९, २ १५०, ३
 २६, २७, ७ ६२
 √लन्द् लवन्दे, ४ २
 √लप्
 लिर्- उष्यते, १ ७८, ११९, लपन्ते,
 २ १६
 लपुस्, ४ ६६
 लयस्, ५ १४६
 लर, ३ २४, ४ ७१, ७४, ६ ५१, ७
 ५०, ६९, ७६
 लरन्दान, ७ १२२
 लरिष्ठ, ७ ८७
 लरिष्ठा, ५ १४४
 लरुण, १ ११७, ११८, १२२, २ २, ४,
 ११, ३२, ५.९८, १४७, १४८, ७ ११४
 लरुण देवत, ६ ९३
 लरुण मित्र देव, ४ ६
 लरुणानी, ३ ९२
 लरुण अयम मित्र, बहु०, ३ १०७, ६
 ५०, ८ ८६
 लरुण इन्द्र अग्नि सोम, बहु०, ८ ४१
 लर्ग, १ ५, २ ८५ ८६, ८७, ७ ११६
 लर्ण, २ ११६, ७ १५
 लर्ण-भोग्न लादिक, ३ १४५
 लर्ण-भोग्न अविरोध, ३ १४४
 लर्ण सघात, २ ११७
 लर्तन्ती, ६ १३७

शुद्धरेवता : परिशिष्ट-७

पतिन्, -नी, ३. १२

वर्मिन्, ५. १२९

वर्ष, बहु०, ७. ४२

वर्ष-सहस्र, ६. २०

वर्षा, बहु०, २. १३

वर्षिष्ठ, २. ६७

वल्, ६. ६४

वश, २. ९३

वश, ६. ७९

वषट्-कार, ७. ६१; ८. ११३

√वस् : वसति ३. १३४; उवास ७. ४३;

ऊपतु; ६. ३५

नि-; ७. १४७

वसत्, ६. ३६

वसति, वस् धातु, ५. १५६

वसन्त, १. ११५

वसन्ती, ६. ४०

वसिष्ठ, २. ६२, १३०; ३. १२८; ४. ९८,

११९; ५. १५०, १५३, १५४, १५७,

१५८, १६३; ६. ११, ३४

वसिष्ठ-द्वेषिन्, नी, ४. ११७

वसिष्ठ-शाप, ७. ५९

वसिष्ठ-भगस्य, ५. १६४

वसु, ५. ६३, १३९, ६. ८५

वसु, बहु० १. ११६, २. १२; ८. १२०

वसुकण, ३. ५५

वसुक, ७. ३०

√वह्, ६. २१, २२, ७. ६५

भा- : अवाहयत्, ३. १३३

वहन, १. ११९

वाक्-पूर्व, ८. १११

वाक्-प्राण, ४. ३९

वाक्य, २. ८८, ८९, १००, ११७; ८. ६४

वाक्य-ज, २. १०४

वाक्यार्थ-निर्णय, २. ११७

वाक्यार्थ-दर्शनाधीन, १. ४१

वाक्-सूक्त, ८. ४३

वाग्-देवाय, २. १२५; ८. १२२

वाग्-विद्वस्, ७. १११

वाच्, १. ७४, १२८; २. ३९, ४४, ५०,

७२, ७६, ७९, ८१, ८४, १३८; ३.

१२, १४; ४. ३६, ३९, ७२, ८५,

११३, ११४, ११५, ११६; ५. २, ९८,

१००; ६. १२१, १५२, ७. ७१, १०६,

१०७; ८. ८, ७६, ९१

वाचस्पति, १. १२५, २. ४४; ३. ७१

वाच्य, १. ६२; २. ९६

वाज, ३. ८३; ६. १३५

वाजिन्, ७. ३; बहु०, २. १२; ४. १४१,

१४२

वाजिन-देवत, ५. १६७

वात, १. १२५, २. ५

वातजृति, ८. १२७

वात-देव, ८. ४९

वाभूय, ७. १३४

वाभूयश्च, २. १५५

वाम, ४. ३३

वाम-तस्, ४. ८९

वामदेव, २. ४०; ३. ५७; ४. १३२

वायव्य, १. ८७; २. १२७; ८. ४९

वायु, १. ५, ६८, ६९, ८२, १२२; २. २,

४, १६, ३२, १२४; ३. ९४

वायु-देवत, ८. १०८, १२२

वार, ४. ३८

वारुण, ३. ९८, (जन) ६. १३

वारुणि, (= वसिष्ठ), ६. २४, ३३

वारुणिय, बहु०, ५. १२४, १२५, १३६,

१३७

वारिवाकप (= वारिवाकप), २. ६९

वार्य, ४. ७४

वार्यसहस्रिक, ६. २२

वारिवाकप, ७. १४१

वार्षिक, ८. ६

वारः : ववार, ४. ९३

वासतीवर, ५. १४९

वासस्, ४. ३०, ४१; ६. ५२; ७. १३२

वासिष्ठ, प. १५१
 वास्तु, २. ४३
 वास्तोष्पति, १. १२३; २. ४३; ६. ४८
 वास्तोष्पत्य, ६. २
 वाहन, १. ७४; ३. ८५; ४. १४३
 वाहनार्थ, ३. १४७
 विदाति, २. ९४; प. ३०
 विकर्ष, ८. १२०
 विकार, २. १२१; ७. १०८
 विकुण्ठा, ७. ४९
 विक्रम्य, ६. १२२
 विक्रीणत्, ४. १३३
 विग्रह, २. १०६, ११२
 √विच्.
 वि : वेचयन्ति, २. ९४
 विचिकित्सित, २. १४१, १४४
 विचेतन, ४. ११३
 विछन्दस्, ८. १०९
 विजन, ६. ९९
 विजरारोग, ७. ४७
 विज्ञान, ३. १३५; ७. ११०
 विज्ञाय, ७. ३
 वितत (यज्ञ), प. ५३
 वित्त, २. ३०
 १. √विद् :
 अधि- : वेत्ति, २. ३०
 २. √विद् :
 अनु-, ७. ११२
 विदधि, प. १०२
 विदित, १. ३३, ८. ७६
 विदिवा, ४. १; ६. ३८; ७. ४; ८. २८
 विद्या, ३. १४२
 विद्युत्, १. ५४, ९४; २. ३३
 विद्वस्, ७. ११२, ११३
 विधात्, १. १२६; प. १४७; ८. ७०, १२६
 विधि, प. ९४
 विधि-दृष्ट, ४. ७७; प. २४
 विधि-वत्, ६. ११४

विधूय, ७. ७७
 विनता, प. १४४
 विनाशन, २. १२१; ८. ५०
 विनिश्चिप्य, प. ८४
 विनियोग, ७. ११३; ८. १०
 विनिर्जित, प. १२५
 विनिश्चय, ३. २९
 विपाट् छुनुद्री, ४. १०६
 विपाद्, १. ११४
 विपुल, प. ७०
 विप्रकृष्ट, २. १००
 विप्रवाद, २. १३१
 विफल, प. ८२
 विभक्त, ४. ६
 विभक्त-स्तुति, ३. ४१, ८२
 विभक्ति, १. ४३, ४५; २. ९४
 विभज्य, ७. १२०
 विभव, ७. १२२
 विभाग, २. २०
 विभिन्दु, ६. ४२
 विभु, ६. ११३
 विभूति, १. ७१; ३. १२३; ४. ३७
 विभूति-स्थान-जन्म, १. ९६
 विभूति-स्थान-संभव, १. १०४; २. २०
 विभवन्, ३. ८३
 विमद, ३. १२८
 विमान, १. १२१
 वियोगार्थम्, ७. १४९
 विराग, ७. १३२
 विराज्, ८. १०७
 विलपत्, ६. ३३
 विलपित, १. ३६
 विलाप, १. ५३
 विवर, ६. १२३
 विवस्वत्, २. ४७, प. १४७; ६. ६८,
 १६२, १६३; ७. २, ४, ७, ११९
 ८. १२७
 विवस्वत्-सुत, ६. १५४
 विविक्त, ३. २०

विषिष्य, ८. १३९
 विषिष, ४. ३१; ५. १३९; ७. ५०
 विषिषायुध, ७. १११
 √विश् : विशति, ८. १४०
 जा- : अविशत्, ८. २
 प्रा- : अविशत्, ६. १२; ७. ६२
 उप- : विवेश, ५. २२
 नि- : १. १००
 विशति = √विश्, २. ६९
 विशस्य, ४. ३०
 विशेष, २. १०९
 विशेष-त्सु, ७. १३८
 विशेष-वाचिन्, २. ११०
 विश्व, २. १३४; विश्वे (देवाः), २.
 १२; ७. ४१; (देवाः), १. ८४; ३.
 ९५; ४. ९८; ५. ९७, १५५; ७. ७६;
 ८. १०६; (दिवोकसस्), ७. ११८;
 विश्वान् (देवान्), ३. ४४; विश्वैः,
 ३. ६०; (देवैः), ८. ६२; विश्वे-
 पाम्, ३. ६; ८. १०६; (दिवानाम्),
 ८. १०
 विश्व-कर्मन्, १. १२३; २. ४९; ६. ५६
 विश्व-भोग्य, ८. ५०
 विश्व-रूप, ४. १४२; ६. १५२
 विश्व-रूप-ष्टक, ६. १४९
 विश्व-लिङ्ग, २. १२८; ३. ३३, ४२, ४३
 विश्ववारा, २. ८२
 विश्वा, ५. १४४
 विश्वात्मन्, ४. १२१
 विश्वानर, १. १२७; २. ६६
 विश्वामित्र, २. ४८, १३१, १५०; ४. १०५,
 ११५, ११९
 विश्वामित्र-वत्स, ४. १०८
 विश्वावसु, ७. १३०
 विश्वे देव-गण, ३. १३६
 विश्वेश, ८. १४०
 विष, ७. ४४
 विष-प्र, ४. ६४

विषय, १. १२०; ८. १०७
 विष-दाह्या, ४. ६४
 विष्णाति = √विष्, २. ६९
 विष्णु, १. ८२, ११०, २. २, ११, ६४,
 ७०, ३. ५९; ५. १४८; ६. १२२, १२३
 विष्णु-न्यङ्ग, ५. ९०
 विखंवाद, ५. ९५
 विस्मर्ग, ४. ३८
 विष्टुत्त, १. ९३; २९. ५८
 विस्तर, १. ७९, ८०
 विस्तार, ८. ३२
 विस्पष्ट, ८. ८८
 विस्मय, १. ३८, ५७
 विस्मित, ५. ६९
 विह्वल्य, २. १३१; ३. ५७
 विहित, ८. १३५
 विहीन, ७. १५०
 वीङ्ग, ३. १४७
 वीर्यं, ७. ५४, ६०
 वीर्य-वत्, ५. १४९
 √वृ, ५. ३३, ५१, ६. ३८, ५४
 वृषण, ७. ६१
 वृक्ष-वर्हिस्, १. ६५
 वृक्ष-त्रोणी, ५. ८३
 √वृष्
 अनु- : वर्तन्ते, ३. ६
 उप- : वर्तेत, ६. १४५
 नि- : अवर्तत, ५. ६०; वर्तेताम्,
 ५. ६१
 परि- : वर्तते, १. १२०
 वृत, ४. २३; ७. १५१
 वृत्, ५. ६०
 वृत्ति, २. १०९
 वृत्र, २. ६, ६. ११२, १२१, १२२
 वृत्र-भवादित, ६. १०९
 वृत्र-दाह्या, ७. ११३
 वृत्र-हन्, ४. १२६; ६. ११०
 वृद्धि, २. १२१

बृश (जान), ५ १४, १८, १९	वैश्वदेवत, ८ १२२
√बृष्, वर्षति, १ ६८, ४ ३४, ७ २४, ववर्ष, ८ २	वध्देष्य, ७ ३९
बृषन्, २ ६६, ६७, ७ १४१	वैश्वानर, १ ६७ ९७, १०६, २ ११, ४ ९७, १०२, ५ १०४, ६ ४६, ७ ६१, १४२, ८ १२७
बृषभ, १ १११, ३ १४८, ६ ५२, ८ १२	वैश्वानर-स्तुति, १ ९९
बृषाक्षपायी, २ ८, १०, ८०, ७ १२०	वैश्वानरीय, १ ९९, १०२, ३ ११७, १२९, ४ ९६, ५ १६१
बृषाक्षपि, २ १०, ६७, ६८	वैष्णव, ३ ९३, ८ १०२
बृष्टि, २ ३३	वैष्णव्य, ८ १०२
बृष्टि-कर्मिण्या, ८ ५	बोळद्, ३ ५०, ७९
बृष्टय अर्धम्, ८ ९	व्यस, ६ ७७, ७ ५८
वेग, ७ ५	व्यजन, ३ ११६
वेद, ५ ५८, २ ४४	व्यञ्जित, १ ६४
वेद वितृ, ५ ५८	व्यतिकीर्ण, २ १०४
वेदार्थ-तत्त्व, ७ ११०	व्युत्थय, ६ १७
वेदि, ७ ३२	व्यपेक्षा, ५ २४
√वेन् वेनति, २ ५१	व्यपोहितम्, ६ १४०
वेन, २ ५१	व्यवस्थित, २ ३४, ६ १११, ११२, ७ ५२
ववष्टि, २ ६२	व्यस्त, २ १२३, १२४, ३ १४, ६०, ८ १२४
वैश्वानस, २ २९	व्याख्यात, ६ १२९
वैदक्षि, ५ ६२	व्याप्तिमात्र, १ ९८
वैदिक, १ ४, २३	व्याहृति, २ १२३
वैदेह, ७ ५८, ५९	व्याहृति-दैवत, २ १२३
वेद्युत, ३ ७७, ८ ४४	व्युत्पत्ति, २ १०८
वैग्य, ८ ४१	व्योमन्, १ ९३, २ ३२, ४२, ५६, ३ १४, ४ ४६, ६६
वैराज, १ ११६	√वज् अत्रजत्
१ वरुष, २ १३	अत्रु, ४ ३
२ वरुष, ८ ३७	वज, ८ २७
वरुष्य, १ २६	वजत्, २ ५२, ३ १४३, ४ ११७
वैवाहिक, ७ १३८	वजित, ३ १३५
वैविध्य, १ १४, १६	वजनी, ४ १०१
वैश्वकर्मण, ७ ११७	
वैश्वदेव, २ ८१, १२५, १२८, १३२, १३३, ३ ३३, ४२, ४७, ५१, १२२, १३१, १४१, ४ ७, ८, ३१, ४२, ५ १७५, ८ १२८, -वी, ३ ९९, ४ ९, १२३, ५ १०६, १७४, ६ १३३	क्रयु, ५ १०९
वैश्वदेवक, २ १२७	√क्रस, ६ २, १०४, १२०, १५०, ४.

बृहदेवता : परिशिष्ट-७

१७; प. १४०; द. ५३, १२०, १३०,
 १६०; उ. २३, ९६
 अनु- : शंसति, १. १०३
 प्र- : शंसति, ३. १०१
 √शक् : अशक्त, द. १२२
 शक, घ. ४१
 शकट, प. ३१; द. १०५, १३८
 शकुनि, १. १०२
 १. शक्ति, २. ३२
 २. शक्ति, घ. ११२
 शक्ति-प्रकाशन, ८ १०
 शक्ति-मत्-ता, उ. ६०
 शक्र, ३. ३८; घ. ३, ७०; द. ५३, १०४,
 ११४; उ. २९, ३०
 शम्बरी, १. १३१
 शङ्ख-निधि, द. ५५
 शचीपति, ३ २०; घ. ७४; प. १३८, द.
 ५३, १३७
 शची-सहाय, घ. १
 शत, ३. १४८, १४९; ८. २
 शत क्रतु, घ. ४६, ५२; द. १५२
 शत-धा, घ. १२०
 शत-योजन, ८. ३२
 शतचिन्, ३. ११४, ११६
 शत्रु, प. १२७; उ. ६०, ८४
 शंतनु, उ. १५५, १५६; ८. १, ३, ६
 शंनोमिप्रीय, -या, ३. ७९
 √शप् : शपते, द. ३३
 शप्-काम, द. ३७
 शवर, ८. ७२
 शब्द, २. ९९, १०९; ३. ८०
 शब्द-रूप, २. १०८
 शम्भ्या मात्र, प. १५२
 √शम् : शामयत् :
 प्र-, घ. ५३
 शरद्, १. ११५
 शरीर, घ. ४०; उ. १०१
 शरीर-पात, द. ८९

शरीरिन्, -जी, प. ९८
 शर्कर, उ. ७९
 शर्म, २. ४६
 शर्यणावती, ३. २३
 शक्यक, द. १०६
 शशीयसी, प. ६१, ६४, ८०
 शश्वती २. ८३; द. ४०
 √शस . शस्यते, १. ३३; प. १७५;
 द. १०८
 शख, १ १०२, ५. २२; प. १७५
 शाकिनी, द. १३६
 शाकर, १ १३१
 शान्ति, ८. ९०
 शान्त्-अर्थम, उ. १५, २१ ९४; ८ ८०
 शाप, १. ३९, ४९; द. ३४
 शाङ्ग, ८. ५४
 शार्यान्, २ १२९; ३ ५५
 शालामुख्य, उ. ६७
 शाश्वत, ३. १०६; प. १२६
 √शास .
 अनु- : अशाव, घ. १३१; शासति,
 घ ३; उ. ३७
 आ- : शास्ते, प. १३५; द. ३१; उ.
 ११, १२, १९, १३४, १३६;
 ८. ८२
 शास्त्र-विद्, ३. ४८
 √शिक्ष्, ३. ८४; ८. ४
 शितामन्, २. ११४
 शिरस्, ३. २१, २२, २३; घ. २२,
 १५; द. ३६, १५०
 शिदिर, २. १३
 शिष्ट, प. १६; द. १३९
 शिष्य, ३. ८३
 शीतीष्ण-वर्ष-दातृ, उ. २८
 १. शुक्र, घ. १२; प. ९९, १५१; उ.
 ६, ७८
 २. शुक्र, द. १४४
 शुक्र-प्रतिपेय, घ. १३

शुक्र सकर, ४ १३
 शुक्र, ५ ८०
 शुचि (अग्नि), १ ६६, ३ १२९
 श्रुतुदी १ १४
 शुन, ५ ८
 शुन देवी ५ ७
 शुन शेष, १ ५४, २ ११५, ३ १०३
 शुन्नासीर, ५ ८, १ ११४, ५ ८, ०
 शुभस पति, ५ ८४, ७ ४३
 शुभ्रपु, ६ १४२
 शूल स्तूणा, ४ ३०
 शप ८ ५०, ७ ३७
 शैबल, ७ ७९
 शोकय
 अज्ञोक्तपर, ७ ३६
 शौनहोत्र, २ ४०, ४ ७८
 श्मशान, ६ १६०, ७ १५
 श्याव ३ १४७, ६ ५२, ४ १४२, -वी,
 ३ ८
 श्यावाश्व, ५ ५२, ५५, ५६, ६०, ६४, ६५
 ६९, ७२
 श्येन, १ १२६, ४ १३६
 श्येन रूप, ४ १२६
 श्रद्ध, २ ९५
 श्रद्धा, १ ११२, २ ७४, ८४
 श्रवण, ३ ११२
 श्राद्ध, ८ ५८
 श्री, २ ८३
 धी पुत्र, ५ ९१
 श्या सूक्त, ५ ९१
 √शु शुभाच, ३ १३३ श्रूयन्ते, ७ ७२
 श्रुत, ४ १२०, ५ ५०, ८ ८७, १३५
 श्रुत वन्धु, २ ५३
 श्रुतर्वन्, ६ ९५
 श्रुति, ४ १३९, ५ २३, ८३, १५९, १६७,
 ६ ३४, १४८ ७ ६२, ८ १२८
 श्रष्टय-कर्मन्, ५ १५६
 श्रोत्र, ७ ७१

श्रोत, ३ १४२
 श्लाघा, १ ३६, ५३
 श्लोक, २ ४२
 श्वन्, ४ १२६, ६ १२, १५९
 श्वशुर, ७ ३१
 श्वस्, ४ ५०
 पट्क, ८ ५६
 पडविश, ६ ८४
 पड्विशति, २ २२
 पड् (विकारा), २ १२१
 पाष्टि (चर्पाणि), ७ ४२
 पट्टमुपाधिक, ३ १४९
 पट्ट, ५ १३०; (स्वर), ८ ११९
 पल्लव, ३ २७
 पौळशर्व, ३ १२६
 पौळहा, ४ ३५
 सयुक्त, ७ ८४
 सयोगार्थ, ७ १३६
 सयत्सर, २ १६, ४ ३५, ६ २७
 सवनन, ३ ५९, ४ ५३, ८ ३२, ९५
 सवतयत, २ ६१
 सवाद, २ ८८, ४ ४४, ४०, ५ १६३,
 १६४, ६ १५४, ७ २९, १४८, १५३
 सविज्ञान पद ५ ९५
 सविद्, ७ १४७
 सशय, १ ३५, ५१
 सस्कार्यं प्रत सयुक्त, ६ १५८
 सस्तव, १ ११७, ३ १५९, ४ २७, १३६,
 ५ १०२
 सस्तविक, २ १५
 सस्तुत, २ २, ३ ३६, ८३, ११०, ४
 ६, २८
 सस्तुत वत्, ३ ८१
 सस्तुति, १ ७५, ६ १६१
 सस्था, ३ ८२, ५ ९३
 सस्थित, ५ ६७

दृष्टव्यता : परिशिष्ट-७

सकल, २. १४४

सक्त, ५. ५५

सक्तु, ६. १०३

सक्ति, ४. १; ७. ५६

सखित्व, ४. २, ७५, ७७

सखी, ७. १५१

सख्य, ३. १०६; ७. १०३

संकल्प, १. ३७, ५५

संकल्पयत्, १. ५४

संक्षुभक, २. ६०

संख्या, १. ४५; ८. १३

संख्यात, २. ९३

संगति, ५. ७७

संगृहीत्वा, २. ४०

संग्रामाह, ५. १३६

सचमुर्दश, ६. १४६

√सज् : असज्यत :

सम-, ७. ५१

सज्ज, ३. ४६

सजोपस्, ३. ४६

संज्ञ-वत्, ४. २९

संज्ञा, २. १३४; ३. ८२; ५. ९३; ८. ९९

संज्ञान, ८. ९५

संज्वर, १. ३८, ५६

१. सत्, १. ९२; ७. २३

२. सत्, १. ६२; २. १२०

सद्य, ५. ९७, १४९; ६. २२; ७. ५९

सप्त-सत्, ८. १३३

सत्, १. २३, ८१

सत्-संगति, १. २९

सत्-पति, ३. ७०

सद्य, २. ४०, ४२

√सद् : सीदति, सीद्व

अव-, १. ९०; ४. ११३

वियुत, ७. ५३

प्र-, ८. ३

सद्-असत्, ८. १४०

सदसत्-पति, ३. ६७, ७०

सदस्य, ५. १५९

सदका, २. ९७; ७. १

सद्यस्, ५. ७३

सनातन, ६. १४४

सनामन्, १. ९१

संताप, १. ३४, ५२

संशय्य, ५. १६

संदधत्, ७. १२८

संधि, ८. १३९

संनिधि, ६. १३९

संनिपात, २. १३२

सपत्न्य, ८. ६९, ९४

मपत्न्य निवहंण, ८. ९२

सपत्नी, ६. ५७; ८. ६३

सपत्न्य-अपनोदिक, ८. ५७

सपुत्र, ५. ५२, ५३, १०३

सपुनोहित, ३. १४४

सप्त (रजानि), ५. १२३; (स्वराः),

८. १२१

सप्तक, ७. ५१, ११६

सप्तगु, ७. ५५, ५६, ५७

सप्तति, ६. ५१

सप्त-वृषात्तम, ६. ४५

सप्तदश (स्तोम), २. १४

सप्तर्षि, २. ११; ३. ५८; ८. १२३

सप्ति, ३. ५०, ७९

सफल, ५. ८५

सघर, ३. ८५

सघर-दुधा, ३. ८५

सभार्य, ३. १४३

समग्र, २. ७६

समर, ६. ११५; ७. ५१

समस्त, २. १२३, १२४; ३. १४, ६०; ५.

१७५, ८. ११०, १२४

समस्तार्थ-ज, २. १०४, १४४

समा, ८. २

समादाय, ६. १००

समान-वृन्दस्, १. १६

समान-धमिन्, ३. १२८

समान वयस्, प. ६८	सर्प, ७ ७२, ८ ११५
समामन्व्य, ३ ८८	सर्पिस, ६ १४५
समाज्ञाय, १ १	सर्व, ३ १०३
समायात्, प २२	सर्व-कर्मन्, प १५८, ८ १२४
समाश्रित, ८, ११७, ११८	सर्वं कार्यं, ७ १२८
समास, १ ७९, २ २८, १०६	सर्व-गत, ६ १२१
समाहित, ८ १२०	सर्व-रक्तत्व, ३ १३४
समुत्थाय, ३ २४	सर्वं नामन्, २ ९७
समुत्पन्न, ६ ६२	सर्वं भूत, २ १९
समुद्भूत्य, प. ८५	सर्वभूत हन, ७ ४४
समुद्र, २ ११; ६ १३८	सर्वं रिप्र प्रणोदन, ८ ९२, ९३
समुद्र गा, ६ २०	सर्व-वेद, प ५३
समेत, ७ १२९	सर्वार्ण-शोभन, प ६६
सपद्, १ ११, २. १५८	सर्वान्तर, २ ६९
सप्रवाद, ३ १५५	सर्वावाप्ति, २ १३४
सप्रेष्य, ४ ९४, प. ७४	सलक्षण, ७ ३
सबन्ध, ३ ६८	सलिल, ४ ४१, ४३, प १५५; ६ ८८
सबोध्य, ३ १४५	सवन, ३ ९०, (तृतीय), २ १३,
सभव, १ १०४, २ २०, ३ १	(मध्यम), १ १३०
सभूत प. १५१, १५२, ८ ७९	सर्वर्चस्, २ १४१
सभृत, २ ५६	सवर्णा, ६ ६८
सभेद, ४ १०६	सवितृ, १ ८४, १२५, २ १२, ६२, ३
समत, ४ ११९	८८, ९८
समन्व्य, प. ५९	सव्य, ३ ११४, ११५
समित, प १५३	सखीळ, ७ ९७
समोह, ७ ८४	ससर्परी, ४ ११३
सम्यग भक्ति दिहष्टु, ३ ७३	ससोम, ३ १२४
सयूष्य, ४ २८	सहमान, प २२
सरण्यू २ १०, ८०, ६ १६२, १६३,	सह रक्षस्, ६ १६०
७ १, ३, ४	सहस् (यहु), ३ ६४
सरण्यू देवता, ७ ७	सहसा, प २१, ६ ८८
सरमा, १ १२८, २ ७७, ८३, ८ २५,	सह-सुत, ८ ६१
२७, २८, ३३	सहस्र, ३ १४९, ६ ६१, (त्राणि),
सरस्, ० ५०, ३ २३, ७ १५०	७ ७५
सरस्वत्, १, १२३, २ ५१, ४ ३९, ४२,	सहस्र तम, ३ १७
६ १९	सहस्र दक्षिण, प. ३३
सरस्वती, १ १२८, २, ५१, ७४, ७६,	सहस्र युग पर्यन्त, ८ ९८
८१, १३५, १३७, ३ १३, ४ ३६,	सहित, ४ ७६, १४१, प ९७, १३८, ६
३९, ६ २२, २३, २४, ५९, १३५	३५, ३९, ६३, ७ ७७, ८ ४

'सा : स्तन्ति, स्तैव्
 वि-अच, १. ८६, ८९
 साद्रोगाङ्ग, प. ५३
 साध्य, १. ११६; २. १२; ४. ३६; ५. ९७;
 ७. १४३; ८. ११७, १२८
 सानुग, ३. १४३
 सानुलिङ्ग, ३. १५२
 मानवधिरवा, ६. १३
 सान्त्वय, ४. ३
 सामन्, १. ११६, १३१; २. १३; ८.
 ११०, ११७, १२२, १३०
 सामर्थ्य, १. १२२
 साम-स्वर, ८. ११९, १२१
 सामान्य, २. ११०
 सामान्य-वाचिन्, २. १०९
 सामाधिक, १. ७९
 सप्राजप, १. ११८
 सायम्, २. ६४
 सायाह्न-काल, २. ६८
 सायुज्य, २. २१
 सायुध, ४. ६७
 सारधि, प. १३०
 सारमेय, ६. १२
 सारङ्गल, २. १३५, १३८; प. १२९; ६.
 १९, ८८; ७. ५९
 सार्धैः, प. १२४, १३९
 सार्ध, १. ९
 सार्ध, ४. १०८
 सार्धम्, प. २०; ७. ५१
 सारंपराज्ञी, २. ८४; ८. ८९
 सारङ्गकी-मृत, ३. १३२
 सालोवर्ष, १. १९, ९८; २. २१; प. १७१;
 ७. १४४
 सावर्ण्य, ७. १०३
 सावित्र, ३. ४५, १०५; -त्री, ३. ५०, ७८;
 ६. १३२
 सावित्र-सौम्याधिन-माहन, ४. ९९
 सावित्री (मूर्त्या), २. ८४; ७. ११९
 साहचर्य, १. १९; ३. ७५; प. १७२; ७,
 १४४

साहाय्य-काव्य, प. १३७
 सिद्धिका, प. १४४
 सिद्धत (= सिकता), ७. ७९
 'सिद्धः
 अभि-, ६. १५३; ८. १
 'सिद्धः
 नि- : विषय, ३. १९
 प्रति-, ७. १३, ११०, १३३
 सिनीवालो, १. १२८; २. ७७
 सिन्धुद्वीप, ६. १५३
 सीमा, १. १२९; प. ९
 सीर, प. ८
 'सु : सुपुत्रे, ३. १३३; सुपात्र, ६. १०२
 प्र- : सीति, २. ६२
 सु-ईर्यव, ७. १२८
 सुल, २. ४६
 सुग, ७. ६५
 सुगन्धि-नेजन, ७. ७८
 सुत (मोम), ४. ५४; ३. १८; ४. ११२;
 प. १००, १४६; ७. ४७, ११४, ८. १९
 मृता, प. ५६; ७. ४५
 सुवध्, ६. १०४, १०५
 सुदाम्, ४. १०६, ११२
 सुदाम, ६. ३४
 सुदुर्जय, ८. ३३
 सुधन्वन्, ३. ८३; ८. १२७
 सुपर्ण, १. १२४; ८. १२७; ७. ४८
 सुप्रिय, ७. ५६
 सुमीत, ३. १८; ६. ११९
 सुवर्णु, ७. ८५, ८७, ८८, ८९, ९४,
 ९९, १००
 सुभग, -गा, ७. ४७
 सुभनम्, ७. ६५, ७६
 सुभनम्, ६. १४०; ७. ४९
 सुमहायनम्, १. ७२
 सुमित्र, ८. १७
 सुर, ६. १११
 सुर-द्रुम, ६. ५९

सुरभि, ५, १४४
 सुरा पाण, ६ १५१
 सुलोमन्, ६ १०४
 सुवीर, ४ ७२
 सुवीर्य, ७ १२८
 सुयामन्, ६ ६७
 सुसहस्र, ६ १११
 सहस्य, ७ ४७
 सूक्त, १ १३, ३ २५, ८ ९९
 सूक्त प्राय, ३ ८०
 सूक्त भागिन्, ८ २०, -नी, १ १९, ६०,
 २ ७७, ३ ५३
 सूक्त भाज, १ १७, १८, ९९, ४ ९९, ५
 १४२, ६ १५९, ८ ९९ १२९
 सूक्तर्ग-अर्घ्यं पाद, १ १
 सूक्त वाद, ८ १००
 सूक्त गत, ६ १४५
 सूक्त-शब्द, ८ १००
 सूक्त तोष, ३ ९३, १३८, ४ १४४, ७
 १०१, ८ ९, १६
 सूक्त सहस्र, ३ १३०
 सूक्तादि, ३ ४५, ८ १५, ४२
 सूक्तान्, ७ ३९
 सूक्त-अभिधान, ८ १००
 सूक्त-एकदेश, ८ १०१
 सूना (= सूना), ४ २९
 सुल, ३ १५३
 सुहि, २ २४
 सूर्य, १ ५, ६१, ६९, ८२, ८८, १००, २
 ८, १०, २२, ६१, ७०, १२४, ४ ६३,
 ७. ११४, १२८
 सूर्य चय, ४ ११४
 सूर्य देवत, ८ ११९
 सूर्य प्रसूत, १ १०१
 सूर्य वत्, ६ १३४, १३६
 सूर्य सस्तव, ३ ४४
 सूर्य सस्तव-सयुक्त, ३ ४२
 सूर्या, २ ८, ९, ७९, ८१, ८४, ३ ४५,
 ७ ११९, १२१, १३०
 सूर्या च-द्रमस, ७ ८१, १२६, ८ १६
 सूर्य अनल सम क्षति, ५ १०१

सूर्य अतिल, ७ २८
 सूर्य अनुग, १ ७७
 √सृ सरति, ७ १२८
 √सृज समृत्ते, २ ५३
 उम् सृजामि, ३ १९
 सोभरि, १ ४८, ६ ५८
 सोम, १ ८२, ११७, १२६, २ २, ४,
 १०७, ६ १०१, १०२, १०९, १११,
 ११३ १३०, १३६, ७ ९, ७४
 सोमक, ४ १२९
 सोम देवत, ७ ८३
 सोम पति, ७ ५८
 सोमपान, ६ १५१
 सोम पाधिन्, ४ ५४
 सोम प्रधान, ४ १३७
 सोम भाग, ५ १५६
 सोम सूर्य, ८ १२५
 सोमा पौष्ण, ४ ९१
 सोमेन्द्र, ३ ६७
 सौचीक, ७ ६२
 सौत्रामण, २ १५३
 सौदास, ६ २८
 सौन, ४ २९
 सौपर्ण, -र्जी, ६ १२०
 सौपर्ण्य, ३ ११९
 सौभाग्य, ७ ४५
 सोम, -मी, ५ ४१, ४४
 सौम्य, ३ १११, १२४, ६ २९, १४६
 (मण्डल), ७ २३, ९२, ८ १११
 सीर, -गी, ४ ४२, ११३, ५ ११८, ६
 ५, ९
 सीर्य, १ ८७, २ ७, ३ ११३, १२९,
 ८ ११०, -र्या, ६ ६, १२६
 सीर्य वैश्वानर, २ १६
 सीर्य वैश्वानरामि, २ १८
 सीर्य वैश्वानरीय, २ १७
 सीर्या चान्द्रमस, -सी, ७ १२४
 सीवर्ण, ५ ३१, ३५, ६ ५६
 स्कन्द चस्कन्द, ५ ९९, १४९
 -व ५ ८४

स्त्रीर्ण, २. ५७

√स्त्रु : स्तोत्र्येते, ७. ४५; अस्त्रौत्, ३. ३५; ४. १६; ६. २६, ६२; ८. ७१

स्रम- : स्रम्यन्ते, ३. ७

अभि-स्रम-, ३. ४४

स्रुत-वत्, ८. ६८

स्रुति, १. ६, १४, ३५, ४७, ६०; २. १२१; ३. ५

स्रुति कर्मन्, ३. ४

स्रुति-काश्य, ८. २०

स्रुति-दृष्टिन्, ७. ५७

स्रुत्य-आशिस्रु, १. ८

स्रुयमान, ३. १०३

स्त्रोकोद्या, ५. २५

स्र्योत्, १. २२

स्र्योद्य, ८. ७८

स्त्रोद्यिष, १. १०३

स्त्रोम, १. ११५; २. १, १३

स्त्री, १. ४०; २. ९६; ६. ४१; ७. १, १३२, १३५; ५. ४९; ७. १२

स्त्री-धर्म, ७. १५

स्त्री-लिङ्ग, ६. ७६

स्त्र्यत्, ५. १५१; ६. ८८

स्त्र्यविर, ३. ४७

√स्त्र्या :

अभि- : अतिष्ठत्, ६. ११०

आ- : मस्ये, ७. ४३

प्र-, ५. १३६

स्र्यान, १. ७१; २. २९, २६

स्र्यान-लोक, ३. ६८

स्र्यान-विभाग, १. ७०

स्र्यावर, १. ६९; ८. ११६

स्र्यास्त्रु-जङ्गम, ४. ३०

स्र्यन्त, ७. १२१

स्र्यन्ति, २. ११८

स्र्यात्, -ता, ४. ५७

स्र्यायु, ७. ७८

स्र्याय, ५. ५४, ७९; (इन्द्राय), ७. ३०

स्र्यर्षा, ६. ५७

√स्र्युग, ७. ५१, १०२

स्रुदा, १. ३५, ५३

√स्रुष्ट : स्मरति, ८. ८५

स्रुवत्, ५. ८६; ७. ६९

स्रुवन्ती, ७. ११५

स्रुव, ३. २२; ५. ८५; ६. ४१, १२१; ७. २३

स्रुक्, ८. ७१

स्रु-जन्मन्, ४. १०

स्रु-दार-गर्भायम्, ८. ८३

स्रुध्या, ८. ११२

स्रुधिति, ४. ३०

स्रुधन्य, ३. १४३, १५०; ४. १

स्रुधिल्य, ३. १४२

√स्रुष्ट्य ३. १४२; ४. ६९; ५. ८५; ६. ३६
प्र-, ६. १३

वि- : अमुष्यपत्, ६. १३

स्रुधन्, ६. ११

स्रुधन्त, ६. १४८

स्रुधल, ६. ११

स्रुध्याहु-श्रीर्ष, ७. ५२

स्रुध्याव, ८. ११

स्रुध्याया, ७. १५०

स्रुध्यम्, ८. ८९

स्रुध्य्य, ४. २८

स्रुध्वा, २. ११५; ८. ११२, ११४, ११६, ११७, ११८, ११९, १२१

स्रुध्विम, २. ६५

स्रुध्व्यामन्, ३. १२१

स्रुध्व्याज, ८. १०७

स्रुध्व्या, १. ८; ६. ९०, ११४; ७. १५२, १५७; ८. १३३

स्रुध्व्या-त्रिगीणु, ३. १४३

स्रुध्व्या-भ्रायुर्-धन-पुत्र, १. ७

स्रुध्व्या-लु-दष्ट, ५. १९

स्रुध्व्या, ८. ८७

स्रुध्व्या-वीर्ष, ६. ३१

स्रुध्व्या-वृद्ध, ५. ७२

स्रुध्व्या-वय, २. ५८

स्रुध्व्या-विर, ४. ११०

स्रुध्व्या, २. ८२; ३. ७७, १४२; ८. २८

स्रुध्व्या, ८. ६०

स्वस्ति, १ १२८, २ ०८, ७ ९३, १०५,
८ १२५
स्वस्त्ययन, ७ ९०, ८ ७७, ८०
स्वस्त्यात्रेय, ३ ५६
स्वाध्याय, ८ १३३
स्वाध्याय फल, ६ १४३
स्वाध्याय अध्येतृ परस्त्व, ६ १३३
स्वापयत्, २ ६८
स्वाभिधेय, २ ११७
स्वाहा, ३ ३०
स्वाहा-कार, ८ १११
स्वाहा कृति, १ १०९, २ १५०, ३ २९
स्विष्ट कृत्, ७ ७५
हत, ६ २८, ३४
हत चत्, ६ १५२
हन्, ६ ३२, ११५, १२२, ७ ५१,
५२, ६२, ८ ३४, ३७
अथ अहनत्, ४ २२, ११४
ना- हन्ति, ५ १६६
विआ- हन्ति, ४ ९९
हन, ७ ४४
हन्त ५ ६६, ७८
हय, ४ २८
हय ऋषिन्, ७ ४
हर, ५ १९
हरण, २ १९, ४ ३८, ७ १३३
हरस, ५ २१, ५ १७
हरि, ३ ८६, ४ १४४, ४ ११०
हरित्, ४ १४०
हरि चत्, ४ १
हरि वाहन, ४ ७७, ५ १५७, ८ ३५
हर्षपीथा नदी तट, ५ १३८
हर्षं, ५ ६६
हपित, ३ १५३
हविर् धान, १ ११३, ३ ९२, ५ १५५
हविर भाज्, ८ १२९
हविष् पक्षि प्रधान, १ ८६
हविष्, १ ७८, ११८, ११९, २ १६,
१३८, ३ ७, ६३, ७४, ४ २९, ६
५८, ९३, ७ ७३, १४२, ८ १०३,
१३१, १३२

हव्य, ४ ५०, ७ ६५
हव्य वक्ष्य वह, ६ १६०
हव्य वाहन, ७ ६३, ७७
हस्त, ७ १३५
हस्त झ, १ ११०
हस्त-त्राण, ५ १३२
√हा हीयते, ८ १३४
हान, २ १२१
√हि अहिनोत्
प्र-, ८ २५
हिंकार, ८ १११, १२३
हितार्थिन्, ७ ९९
हिम विन्दु, ३ ९
हिमवत्, ५ ७५
हिम शब्द, २ ११०
हिरण्यमय, ३ १०३
हिरण्य-नाभं, २ ४६
हिरण्य स्तुति, ८ ४५
हिरण्यस्वरूप वा, ३ १०६
हीन, २ १००
√हु, ८ १३२
हुत, ३ ५
√ह्व अहरत्, ३ २२
अप-, ३ १३२, ८. २४
आ-, ५ ९३ (सत्र), ८ ३१, ३६
वि आ- जहार, ४ १४
हृदय गम, ४ ७२
हृद्य, ८ ६२
हृष्ट, -ष्टा, ४ २
हृष्टात्मन्, ४ ११५, ६ ६१
हमन्त, १ १३१
हैन रौप्य भायस, -सी, ७ ५२
होत्, ७ १४, ७०, (देव्यौ) १ १६८,
३ ११
हात्र, ७ ६६, ७७
होत्रा, १ ६५
होम, ८ १३४
√ह्व ह्वयते, ३ ७७
आ-, ४ १३१, ६ १०२, ७ १००
उप-, ३ ८४

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER S No	DUE DTATE	SIGNATURE

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६४

५०३११३०

शौनकीय

बृहदेवता

(ऋग्वेद के देवताओं और पुराणकथाओं का सारांश)

(मूल, हिन्दी अनुवाद, तुलनात्मक टीकाओं और परिशिष्टों से युक्त)

सम्पादक और अनुवादक

रामकुमार राम

प्राध्यापक

बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-६

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, संवत् २०२०
मूल्य : १५-००

© Chowkhamba Sanskrit Series Office,
Post Box 8, Varanasi.
(INDIA)
1963
Phone : 3145

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
164

~*~*~*~

THE
BRHAD-DEVATĀ

ATTRIBUTED TO
S'AUNAKA

(A Summary of the Deities and Myths of the Ṛgveda)

*Edited with Original Sanskrit Text, Hindi Translation,
- Notes and Appendices*

By

RAMKUMAR RAI
Banaras Hindu University.

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Varanasi-1 (India)

1963

भूमिका

यद्यपि वैदिक साहित्य के अन्तर्गत बृहदेवता का पर्याप्त महत्त्व है, तथापि इधर अनेक वर्षों से इसका एक भी संस्करण उपलब्ध नहीं था। और इसका हिन्दी अनुवाद तो अब तक हुआ ही नहीं। ऐसी स्थिति में जब चौखम्बा संस्कृत सीरीज के तंत्रालयों ने मुझ से इसका मूल और हिन्दी अनुवाद सहित एक संस्करण तैयार करने का प्रस्ताव किया तो मैंने इसे स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ अपने गुणों और दोषों के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

मूल बृहदेवता के अब तक दो संस्करण निकल चुके हैं : एक श्री राजेन्द्रलाल मित्रा के सम्पादकत्व में सन् १८८८ में, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, से प्रकाशित हुआ था, और दूसरा श्री ए० ए० मैकडॉनेल के सम्पादकत्व में सन् १९०४ में हर्बर्ट ऑरियण्टल सीरीज में। हर्बर्ट संस्करण में मूल के साथ-साथ अंग्रेजी अनुवाद भी दिया है। प्रस्तुत संस्करण का मूल इस हर्बर्ट संस्करण पर ही आधारित है, क्योंकि, जैसा स्वयं मैकडॉनेल ने भी अपने संस्करण की भूमिका में लिखा है, श्री राजेन्द्रलाल मित्रा के संस्करण का पाठ बहुत शुद्ध नहीं है। साथ ही उसमें अनेक स्थलों पर एक ही श्लोक कई-कई बार मिलता है। इसके विपरीत मैकडॉनेल ने उपलब्ध पाण्डुलिपियों के आधार पर यथा शक्ति एक प्रामाणिक और विश्वसनीय मूल प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

जहाँ तक हिन्दी अनुवाद का प्रश्न है मैंने मैकडॉनेल के अंग्रेजी अनुवाद में कोई विशेष सहायता नहीं ली है क्योंकि मेरी समझ से उनका अंग्रेजी अनुवाद कहीं-कहीं भ्रामक और भारतीय आत्मा के विपरीत भी है। इस बात के लिये भी मैं सर्वत्र सतर्क रहा हूँ कि हिन्दी अनुवाद मूल श्लोकों का अनुवाद ही रहे टीका या अर्थ न बन जाय। अतः अनुवाद में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है जो श्लोक द्वारा प्रत्यक्ष व्यक्त नहीं होता। इसका अपवाद केवल वे ही स्थल हैं जहाँ वाक्य-विन्यास अथवा अभिव्यक्ति की स्पष्टता की दृष्टि से कुछ बातों का लिखना आवश्यक हो गया है। उदाहरण के लिये, अनेक श्लोकों में वैदिक प्रतीकों का व्यवहार किया गया है तथा यह प्रतीक कहीं तो किसी वैदिक ऋचा को, कहीं अर्थ ऋचा को, और कहीं सम्पूर्ण मूक अथवा सूक्त समूह को व्यक्त करते हैं। ऐसी दशाओं में अनुवाद में प्रतीक को लिखने के बाद '•' से आरम्भ सूक्त/ऋचा, अथ ऋचा', आदि भी लिखा गया है जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाय। इस प्रकार के स्थलों के अतिरिक्त अनुवाद में और कहीं भी अतिरिक्त व्याख्यात्मक शब्दों का समावेश नहीं मिलेगा।

श्लोकों पर लिखी टिप्पणियों अधिकारतः मैकडॉनेल के संस्करण से ली गई है। किन्तु मैंने केवल तुलनात्मक और सन्दर्भात्मक टिप्पणियों को ग्रहण किया है क्योंकि बृहद्देवता के मूल्यांकन में उनका पर्याप्त महत्त्व है। मैकडॉनेल की टिप्पणियों में कहीं-कहीं कुछ सन्दर्भ संकेत अशुद्ध भी मिले, किन्तु मैंने उन्हें ठीक कर दिया है। ग्रन्थ के अन्त में विभिन्न परिशिष्टों में बृहद्देवता के तुलनात्मक और विस्तृत अध्ययन के लिये प्रायः समस्त उपलब्ध सामग्री प्रस्तुत कर दी गई है। इन परिशिष्टों के लिये भी हर्बर्ट संस्करण से पर्याप्त सहायता मिली है। इस प्रकार मेरा प्रयास इस संस्करण को उपयोगिता की दृष्टि से हर्बर्ट के दुःप्राप्य संस्करण के समकक्ष बना देना रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं हर्बर्ट विश्वविद्यालय के प्रति विशेष रूप में आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिसके प्रकाशन-अधिकारी ने मुझे मैकडॉनेल द्वारा सम्पादित और हर्बर्ट ऑरियण्टल सीरीज में प्रकाशित बृहद्देवता के संस्करण की टिप्पणियों और परिशिष्टों के उपयोग की अत्यन्त उदारतापूर्वक स्वीकृति प्रदान की है।

अनुवाद की पाण्डुलिपि तैयार करने, तथा अनेक अशों के प्रुफ-संशोधन में मुझे पं० शिवचरण शर्मा से पर्याप्त सहायता मिली है, जिसके लिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के उद्दीयमान संचालक, श्री मोहनदास तथा श्री विठ्ठलदास जी को क्या धन्यवाद दूँ ! इन लोगों की तत्परता और सतत उत्साह के कारण ही न केवल बृहद्देवता के प्रस्तुत संस्करण वरन् मेरे अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन सम्भव हो सका है। भारतीय संस्कृति और सस्कृत साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में इन लोगों के प्रयास की हमारे देश के राष्ट्रपति तक ने सराहना की है।

अन्त में मैं यही कहना चाहता हूँ कि मनुष्य का कोई भी कार्य पूर्ण और निर्दोष नहीं होता, और फिर मैं तो एक साधारण और अल्पज्ञ व्यक्ति हूँ। अतः मुझे आशा है कि विद्वान् पाठक प्रस्तुत कृति के प्रति सहानुभूति-पूर्ण दृष्टिकोण रखते हुये मेरी त्रुटियाँ को मुझे सूचित करेंगे जिससे मैं भविष्य में उनका परिमार्जन करने के साथ-साथ अपना ज्ञानवर्द्धन भी कर सकूँ।

विषय-सूची

अध्याय १

वर्ग		पृष्ठ
१	देवताओं को जानने का महत्त्व; वैदिक-त्रयी	३
२	स्तुति और आशीस्	४
३	सूक्तों के विभिन्न प्रकार	५
४	सूक्तों के देवता, मन्त्रों के देवता, और नेपातिक देवता	६
५	नामों की उत्पत्ति	७
६	शीनक का दृष्टिकोण - सभी नाम कर्म से उत्पन्न होते हैं	८
७	मागलिक नाम, विभिन्न प्रकार के मन्त्र	९
८	विभिन्न प्रकार के मन्त्र तथा अभिव्यञ्जनात्मक पद्धतियाँ	१०
९	संज्ञा और क्रिया की परिभाषा	११
१०	विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के उदाहरण	१२
११	तमस्त स्थावर-अद्भुत के स्रोत के रूप में सूर्य और प्रजापति	१६
१२	अग्नि के तीन रूप	१७
१३	अग्नी और आत्मन्, वान् के तीन रूप	१८
१४	सूक्त का प्रधान देवता	१९
१५	देवों के नामों की गणना	२०
१६	अग्नि, इन्द्र-वायु, और सूर्य की समर्पित सूक्तों की विशेषता	२१
१७	तीन अग्नि	२२
१८	अग्नि, जातवेदस्, वैश्वानर : मूलतः समान, किन्तु इनका विभेद	२३
१९	अवरोहक क्रम से तीनों लोकों के देवता	२४
२०	पारिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करनेवाले देवता	२५
२१	अग्नि के साथ सम्बद्ध अन्य देवता	२८
२२	इन्द्र से सम्बद्ध मध्य-स्थान का देव-समूह	२९
२३	इन्द्र के क्षेत्र से सम्बद्ध देवता तथा दैवीकृत पदार्थ	३०

अध्याय २

१	इन्द्र-स्थान के देवता	३२
२	सूर्य-क्षेत्र के देवता : सूर्य की तीन पत्नियाँ	३३

वर्ग	पृष्ठ
३ सूर्य और वैश्वानर, अग्नि के रूप हैं	३५
४ अग्नि के पाँच नाम, अग्नि द्विविणोदस्, तनूनपात् की उत्पत्ति	३७
५ नराशस, पवमान, जातवेदस्	३८
६ इन्द्र के छब्बीस नाम वायु वरुण, रुद्र, इन्द्र	३९
७ पजन्य, बृहस्पस्ति, ब्रह्माणस्पति, क्षेत्रस्य-पति, ऋत	४०
८ वास्तोष्पति, वाचस्पति, अदिति, क, यम	४२
९ मित्र विश्वकर्मन्, सरस्वत्, वेन, मन्यु	४४
१० असुनीति, अपा नपात्, दधिक्रा, धातृ, तार्क्ष्यं	४५
११ पुरुवरस्, मृत्यु । सूर्य के नाम सवितृ, भग	४६
१२ पूषन्, विष्णु, केशिन् विश्वानर, वृषाकपि	४८
१३ विष्णु की व्युत्पत्ति नैपातिक नामों की गणना नहीं कराई जा सकती	४९
१४ त्रिविध वाच् उसके पार्थिव और मध्यम रूप	५०
१५ वाच् के अन्य मध्य स्थानीय रूप इसके चार दिव्य रूप	५२
१६ स्त्री द्रष्टियो के नाम तीन वर्ग	५३
१७ आत्म-स्तुतियो तथा सवाद वाक्यों के देवता, निपात	५५
१८ उपसर्ग, लिङ्ग	५७
१९ सज्ञा, सर्वनाम आशय अन्वय	५८
२० शब्दों का विग्रह समास के छ प्रकार	५९
२१ शब्दों का विग्रह और अर्थ	६०
२२ यास्क की अशुद्ध व्याख्यायें वर्णलोप	६२
२३ शब्द और अर्थ, क्रिया में भावप्रधानता होती है	६४
२४ व्याहृतियों और ॐ के देवता	६५

ऋग्वेद के देवता

२५ प्रथम तीन सूक्त, विश्वदेव-सूक्तों के ऋषि	६६
२६ विश्वेदेव-सूक्तों की प्रकृति	६८
-७ सरस्वती को संबोधित ऋग्वेद के स्थल । इन्द्र-सूक्त	६८
२८ ऋग्वेद १ ६ में इन्द्र, मरुतो के साथ सम्बद्ध हैं	७०
२९ ऋग्वेद १ १२, तथा आप्री सूक्त १ १३ के देवता	७१
३० ग्यारह आप्री-सूक्त	७२
३१ आप्री-सूक्तों में तनूनपात् और नराशस, अग्नि का एक रूप इधम	७३

अध्याय ३

ऋग्वेद १. १३-१२६ के देवता

१ तनूनपात्, नरायंस, इळ; वहिस्	७५
२ दिव्य द्वार; रात्रि और उपस्	७६
३ वो दिव्य होता, तीन बेबियां, त्वष्टृ	७७
४ दिव्य त्वष्टृ, दध्यञ्च और मधु की कथा	७९
५ दध्यञ्च का अस्व-तिर, मध्यम त्वष्टृ	८०
६ वनस्पति, स्वाहावृत्तियां	८१
७ तनूनपात् और नरायंस ऋग्वेद १ १४ और १५ के देवता	८२
८ ऋतुओं को समर्पित सूक्त : ऋग्वेद १. १५	८४
९ विश्वेदेवो को समर्पित तीन प्रकार के सूक्त	८५
१० किसी सूक्त के देवता का निर्णय कैसे किया जाय	८७
११ प्रमज्जात्मक देवता तथा सूक्त का स्वामित्व । वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टा	८८
१२ वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं की गणना	८९
१३ श्विनोदस् की व्याख्या । ऋग्वेद १ १६-१८ के देवता	९१
१४ ऋग्वेद १. १८ के देवता । प्रजापति के धाठ नाम	९२
१५ प्रजापति के नाम (क्रमशः) । ऋग्वेद १ १९ देवता	९४
१६ किसी ऋचा, इत्यादि, के देवता का किस प्रकार निर्धारण करना चाहिये	९५
१७ ऋतुओं और त्वष्टा की कथा	९७
१८ ऋग्वेद १ २०-२१ के देवता	९८
१९ ऋग्वेद १ २२ (क्रमशः), ऋग्वेद १. २३ : पूषत् आशुणि	९९
२० ऋग्वेद १. २४-३० के देवता	१०१
२१ ऋग्वेद १ ३१-४० के देवता	१०२
२२ ऋग्वेद १ ४१-४७ के देवता	१०३
२३ ऋग्वेद १. ४८-६० । सध्य की कथा । शतविन्-गाण	१०४
२४ ऋग्वेद १ ६१-७३ । न्यारह खिल । ऋग्वेद १ ७४-८९	१०५
२५ ऋग्वेद १ ९०-९३ । प्रथम मण्डल के ७४-१६४ सूक्तों के अन्तर्गत सूक्त-समूह	१०७
२६ ऋग्वेद १. ९४-१११ । ध्रुवपदों में सूक्त सूक्तों के ऋषि कश्यप के खिल	१०८
२७ ऋग्वेद १. १०५ : त्रित की कथा	१०९
२८ ऋग्वेद १. ११९-१२१ के देवता	११०

वर्ग	पृष्ठ
२९ कधीवत् और स्वनय की कथा	१११
३० राजा क उपहार । नारायसी ऋचाओं १ १२६ ६-७ सम्बन्धी विचार	११३

अध्याय ४

ऋग्वेद १ १२७-४ ३२ के देवता

१ रोमगा और इन्द्र । ऋग्वेद १ १२७-१३६ । युगल-स्तुतिया	११५
२ विभक्त स्तुतियाँ । ऋग्वेद १ १३७-१३९ । वश्वदेव सूक्त	११६
३ दीपतमस के जन्म की कथा	११८
४ दीपतमस को प्रकट सूक्त ऋग्वेद १ १४१-१५६	११९
५ दीपतमस की कथा (क्रम)	१२०
६ ऋग्वेद १ १५७-१६३ के देवता	१२१
७ ऋग्वेद १ १६४ के देवता तीन अग्नि सवत्सर	१२२
८ ऋग्वेद १ १६४ के विषय वस्तु का विवरण (क्रम)	१२३
९ ऋग्वेद १ १६४ (क्रम) । ऋग्वेद १ १६५ इन्द्र तथा मघ्न	१२४
१० इन्द्र मरुद्गण और अगस्त्य ऋग्वेद १ १६९ १७०	१२७
११ ऋग्वेद १ १७१-१७८ । अगस्त्य और लोपामुद्रा ऋग्वेद १ १७९	१२८
१२ अगस्त्य और लोपामुद्रा । ऋग्वेद १ १८०-१९०	१२९

द्वितीय मण्डल

१३ ऋग्वेद २ १ १२ के देवता । गृत्समद इन्द्र और दैत्यगण	१३०
१४ गृत्समद और इन्द्र	१३१
१५ इन्द्र और गृत्समद की कथा (क्रम)	१३२
१६ ऋग्वेद २ २३-३० के देवता	१३३
१७ ऋग्वेद २ ३१-३५ के देवता	१३४
१८ ऋग्वेद २ ३६-४३ के देवता । कपिञ्जल के रूप में इन्द्र	१३५

तृतीय मण्डल

१९ विश्वामित्र ऋषि । ऋग्वेद ३ १-६ के देवता	१३६
२० ऋग्वेद ३ ७-२९ के देवता	१३८
२१ ऋग्वेद ३ ३०-३३ के देवता विश्वामित्र मुदास् और नदियाँ	१३९
२२ ऋग्वेद ३ ३४ एक पुत्रिका-पुत्री । विश्वामित्र और गर्ति	१४०

वर्ग		पृ०
२३	विश्वामित्र और वाचू ससंपरी । वसिष्ठो के विरुद्ध अभिचार ...	१४१
२४	ऋग्वेद ३ ५३, २१-२४ । ऋग्वेद ३ ५४-६० के देवता ...	१४२
२५	ऋग्वेद ३ ६१-६२ के देवता ...	१४३

चतुर्थ मण्डल

२६	ऋग्वेद ४ १-१५ के देवता ...	१४३
२७, २८	ऋग्वेद ४ १८-३० । इन्द्र का जन्म और कामदेव के साथ युद्ध	१४४
२९	विभिन्न देवताओं के वाहनाश्व	१४६

अध्याय ५

ऋग्वेद ४. ३३-७. ४९ के देवता

१	ऋग्वेद ४ ३३-५२ के देवता ...	१४८
२	ऋग्वेद ४ ५३-५८ के देवता ...	१४९
३	ऋग्वेद ५. १, २८ के देवता । अरुण वृत्रजान की कथा ...	१५१
४	अरुण की कथा (क्रमशः) ...	१५२
५	अथ कृतियों में ऋग्वेद ५ २, २ ९ के सन्दर्भ । ऋग्वेद ५ २९, ४० के देवता ...	१५३
६	अग्नि की शान-स्तुति ...	१५४
७	अरुणचय का शत्रु को दान । ऋग्वेद ५ ४१-५१ के देवता ...	१५४
८	ऋग्वेद ५ ४१-४३ का विस्तृत वर्णन ...	१५५
९	ऋग्वेद ५ ५३ (क्रमशः) ४४-४५ के देवता ...	१५६
१०	ऋग्वेद ४. ५१-६० के देवता ...	१५७
११	श्यावाश्व की कथा ...	१५८
१२	श्यावाश्व की कथा (क्रमशः) ...	१५९
१३	श्यावाश्व की कथा (क्रमशः) ...	१६०
१४	श्यावाश्व की कथा (क्रमशः) ...	१६१
१५	श्यावाश्व की कथा (समाप्त) ...	१६३
१६	ऋग्वेद ५. ७३-७८ । सप्तर्षि की कथा ...	१६३
१७	ऋग्वेद ५. ७९-८७ के देवता । खिल ...	१६४
१८	प्रजापति और जीवपुत्र के खिल । मन्त्रों का व्यवहार ...	१६५
१९	सुगु, जङ्गिरसू और अग्नि के जन्म की कथा ...	१६६

पष्ठ मण्डल

२० भरद्वाज की उत्पत्ति । ऋग्वेद ६ १-४६ के देवता	..	१६७
२१ ऋग्वेद ६ ३७ ४४ ४५ ४७ के देवता	...	१६८
२२ ऋग्वेद ६ ४७ (कमरा), और ६ ४८ के देवता	..	१६९
२३ ऋग्वेद ६ ४९-६२ के देवता	...	१७०
२४ ऋग्वेद ६ ६३-७४ के देवता । सात रत्न	..	१७१
२५ ऋग्वेद ६ ७५ अम्मारविन्दु और प्रस्तोक सार्वभ्य की कथा	...	१७२
२६ ऋग्वेद ६ ७५ के देवताओं का विस्तृत उल्लेख	...	१७२
२७ ऋग्वेद ६ ७५ (कमरा)	.	१७४
२८ चायमान और प्रस्तोक की कथा	...	१७५

सप्तम मण्डल

२९ वसिष्ठ की वशावलि । कश्यप की पत्नियाँ	..	१७६
३० मित्र-वरुण और उर्वशी की कथा	..	१७६
३१ अगस्त्य और वसिष्ठ का जन्म	..	१७७
३२ वसिष्ठ और उनके वंशज । ऋग्वेद ७ १-३२ के देवता	..	१७८
३३ ऋग्वेद ७ ३३-३८ के देवता	...	१७९
३४ ऋग्वेद ७ ३८-४३ के देवता		१८०
३५ ऋग्वेद ७ ४४-४९ के देवता		१८१

अध्याय ६

ऋग्वेद ७. ५०-१०. १७ के देवता

१ ऋग्वेद ७ ५०-६६ के देवता	.	१८३
२ ऋग्वेद ७ ६६-८५ के देवता	.	१८४
३ वसिष्ठ और वरुण का कुत्ता ऋग्वेद ७ ८६-८९	...	१८५
४ ऋग्वेद ७ ९०-९६ के देवता	.	१८६
५ नाहुष और सरस्वती की कथा ऋग्वेद ७ ९५-९६	!	१८६
६ ऋग्वेद ७ ९७-१०४ के देवता	..	१८७
७ ऋग्वेद ७ १०४ का विस्तृत विवरण	...	१८८

अष्टम मण्डल

८ कण्व और प्रगाथ की कथा	...	१८९
-------------------------	-----	-----

वर्ग			पृष्ठ	
९ ऋग्वेद	८ १-२१ के देवता	...	१९०	
१० ऋग्वेद	८ ५-१८ के देवता	...	१९२	
११ ऋग्वेद	८. १९ : वरदस्यु के दानों की स्तुति	...	१९३	
१२ ऋषि द्वारा मांगे गये वर। सोभरि और चित्र की कथा	१९४	
१३ सोभरि और चित्र की कथा (क्रमशः) ऋग्वेद	८ २२-२५	...	१९४	
१४ ऋग्वेद	८ २६-३१ के देवता । ८ २९ पृथक्-कर्म-स्तुति है	...	१९६	
१५ ऋग्वेद	८. २९ और ३१ का विस्तृत विवरण । ऋग्वेद	८. ३२-३४ के देवता	...	१९६
१६ इन्द्र और अग्नि की बहन । ऋग्वेद	८ ३५-४६ के देवता	...	१९८	
१७ ऋग्वेद	८. ४७-५६ के देवता	...	१९९	
१८ ऋग्वेद	८ ६०-६७ के देवता	...	१९९	
१९ ऋग्वेद	८. ६८-७५ के देवता	...	२०१	
२० ऋग्वेद	८ ७६-९० के देवता	...	२०१	
२१ अपाला की कथा	२०२	
२२ अपाला की कथा (शियास) । ऋग्वेद	८ ९२-९३ के देवता	...	२०३	
२३ देवों के पास से सोम के पलायन की कथा	२०४	
२४ सोम के पलायन की कथा (क्रमशः)	२०५	
२५ ऋग्वेद	८ १०० सम्बन्धी विवरण । विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता	...	२०६	
२६ ऋग्वेद	७ १०१ के देवताओं से सम्बन्धित विवरण	...	२०७	

नवम मण्डल

२७ ऋग्वेद	९ १-८६ के देवता	...	२०८
२८ ऋग्वेद	९ ८७ ९६ ११२, के देवता	...	२०९
२९ इन्द्र और ऋषियण । तप का माहात्म्य	२१०

दशम मण्डल

३० ऋग्वेद	१० १-८ के देवता । विश्वरु और इन्द्र	...	२१२
३१ ऋग्वेद	१०. ९-१४ के देवता	...	२१३
३२ ऋग्वेद	१०. १४ के देवता (क्रमशः), और १५ १६ । तीन अग्नि	...	२१४
३३ सरण्यु की कथा : ऋग्वेद	१०-१७	...	२१५